

पगले मन के दस चेहरे

मूल
डॉ शिवराम कारत
हिंदी रूपांतर
बी आर नारायण



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



सोरोन्ध प्रथमात्ता वपांक 443

पगल मन के दस चेहरे

(आत्मवधा)

डॉ शिवराम कारन्त

प्रथम संस्करण 1985

मूल्य 50/-

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

18 इन्स्टीटयुशनल एरिया लोधी रोड,

नया दिल्ली 110003

मंक

अक्षित प्रिंटिंग प्रेस

शाहदारा दिल्ली 110032

©

सर्वाधिकार सुरक्षित

आवरण दिल्ली वरणाविधान

PAGALE MAN KE DAS CHAHARE (Autobiography) by
Dr Shivaram Karanth Published by Bharatiya Jnanpith
18 Institutional Area Lodhi Road New Delhi 110003 Printed
at Ankit Printing Press Shahdara Delhi First Edition 1985

Rs 50/-



श्रीमती माया नाचमन का
रेखाकन (1934)



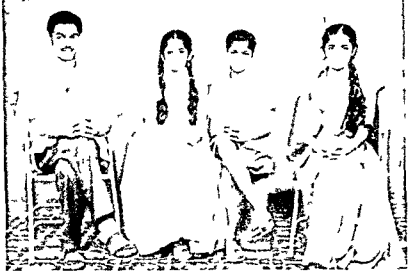
ब क हलवार का तूनिवा म
पट्टि-पूति के अवसर पर



मना का रात (1938)



राज का परिवार— हर भाग मानविरा एवं उन्नाम (1954)



भारत को सतान— हप (स्व) क्षमा उन्नाम और मालविका

9405
3487

39
87

1960 म डॉ भारत



मान्दिय अवाल्मा द्वारा पुरस्कार प्रदान क अवसर पर
(दाय्यम ओर दृष्टिया क मोजय म)



66व ब्रह्मन्दिम पर बेंगलोर की मित्र मइता
राजि (दाँ मिथगम) एव नँ भावान



ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता डा उमाशंकर जाशी एवं डा एच एम नायक
के साथ बंगलूर का अभिनन्दन समारोह (1978)



अपन घर म दशनाथिया म बानचीन (1979)

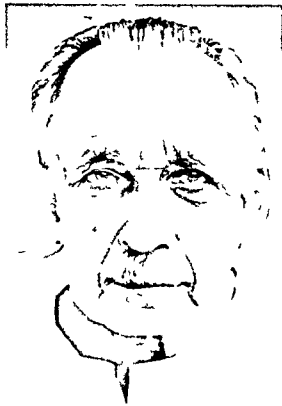


महाराष्ट्र हंगल च शिगरी म वि राजयगार तनुयु रगमव अभितना
रधरामस्या वधरति तगावार वनुनायर व माथ



महाराष्ट्र वराव व माथ भपनी म ग्याग-भमराण (1981)

श्रीशिव दशरत की प्रति (1982)



श्रीशिव दशरत का मन्त्र



अध्ययन (वर्नाटिक मूचना विभाग के मोज य म)



9465
 3487

हिन्दी पाठको के नाम

भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ कि उसने मेरी आत्मकथा (एक प्रकार की) के हिन्दी में प्रकाशनकी दिशा में पहल की। यह योग्य सत्यान सावधानी पूर्ण चयन एवं उपयुक्त भाष्यता-पद्धति के द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर निपुण लेखका की खोज करने और उन्हें राष्ट्रव्यापी प्रतिष्ठा दिलाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहा है। समय-समय पर मेरी कुछ पुस्तका के यासो, निजी प्रकाशका एवं सस्थाआ द्वारा हिन्दी रूपांतर प्रस्तुत किये जाते रहे हैं, किन्तु मैं पाता हूँ कि ज्ञानपीठ द्वारा चुनी गयी पुस्तक 'भूकज्जी' ने मुझे सच्ची राष्ट्रव्यापी प्रतिष्ठा दिलायी है। जो व्यापक प्रचार मुझे उससे प्राप्त हुआ है उसे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ। किन्तु इस तथ्य का अर्थ यह तो नहीं है कि वे मेरे लिए अतिरिक्त कष्ट उठायें। मेरा तात्पर्य यह है कि इससे उन्हें यह कैसे लगा कि मेरी आत्मकथा भी बहुतर पाठक वर्ग की रोचक प्रतीत होगी। बहरहाल, जिस भी योग्य हो, यह कृति भारतीय ज्ञानपीठ के अतिरिक्त अनुग्रह के कारण हिन्दी पाठको के सामने है।

इस पुस्तक का नाम 'पगले मन के दस चेहरे' मैंने पाठक को जीवन के अनेक क्षणों में अपनी मानसिक साहसिकताओं का आभास देने के लिए तय किया है। अपने सावजनिक जीवन की चौथाई शताब्दी (1923-1948) पूर्ण हो जाने पर मैंने अनुभव किया कि कानड जनता को, जिसके बीच रहकर मैंने इतने लम्बे समय तक सघष किया, अपनी आप-बीती कह सुनाऊँ। अनेक लोग न मेरी आरम्भिक गतिविधियाँ पर छीटाकशी की थी और मेरे निकट के लोग तब न महसूस किया था कि मैं 'हरफन मोला' तो था, मगर किसी भी फन का उस्ताद नहीं। निश्चय ही दक्षता का दावा मेरा किसी भी दिशा में नहीं है।

सबसे पहले तो मैं यह अवेषण करना चाहता कि मुझमें क्या-कुछ करने की क्षमता थी, तदुपरांत मैंने अपनी क्षमता का विस्तार अपने साथियों को जानने एवं उनकी सेवा करने के लिए किया। कानड में इस आत्मकथा का प्रथम संस्करण 1948 में प्रकाशित हुआ। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इसका व्यापक स्वागत हुआ।

समय 1962 में इसकी सामग्री को अद्यतन करत हुए इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया।

छठे दशक में मैंने अपने अतीत की क्षलक्षिणां विषयानुसार प्रस्तुत करने की एक भिन्न पद्धति अपनायी। मैंने उनके शीपक इस प्रकार रखे— 'मैं और मेरा मूल स्थान', 'मैं और मेरा साहित्य', 'मैं और शिक्षा', 'मैं और नाटक' आदि-आदि। वे तीन भिन्न भिन्न जिल्दा में 'स्मृति-पटल शीपक' के अंतर्गत प्रकाशित हुई हैं। तिथि क्रमानुसार आत्मकथा को विस्तार देने का मेरा कोई इरादा न था।

किंतु कुछ मित्र उसमें भी रुचि रखते थे। अतः अपन जीवन का काल बढ़ात-बढ़ाते 1983 तक खींच लाने के लिए मैं बाध्य हो गया। सच, जीवन पथ में मेरी यह पर्याप्त लम्बी यात्रा है। यदि हिन्दी पाठक इस प्रकार की पुस्तक पढ़ने में रुचि दिखायेंगे तो मुझे पूरा विश्वास है कि यह उनकी हृत्त श्री के कुछ तारा को अवश्य छेड़गी।

कोई मनुष्य अपने समकालीनों से और चाहता भी क्या है ?

—शिवराम कारत

अनुक्रम

प्रस्तावना	1
अण्डे के भीतर	8
तोता रटत विद्या	20
नगर का मूषक	31
विद्यालय का स्नातक	37
ममाज का परिचय	52
औखें खोलने वाली लंगिक समस्या	59
काम और प्रेम स दाम्पत्य की साधना	66
पत्रकारिता	77
रगमच	86
धुमकड जीवन	96
कुछ अय यात्राएँ	106
दूर और पास	114
धार्मिक विचार	121
यह प्रामाद्वार	129
शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग	143
शिक्षा और भाषा	156
शिक्षा और अय विषय	162
नाटक की दुनिया म	173
अभिनय के समय	182
सगीत म भी	191
दूसरी कलाआ म	200
नाचता मन और विरक्ती दह	208
गद्योद्यान म	223

दुबारा राजनीति मे	234
गृहस्य	239
याद आने पर	251
बीस षप बाद	258
आजीविता के क्षमेले	267
तीन-तीन यानाएँ	275
प्रयाग और कृतियाँ	289
दशक उत्साह	300
रगमच और बाहर	306
अप्रत्याक्षित दो सम्मान	319
षण-चित्र	329
दश विशेश म	335
अस्मी षप पूरे हु ए	347
जब तक जीयें	357

प्रस्तावना

क्षमा-याचना की आवश्यकता नहीं

ऐसी एक रचना के लिए प्रस्तावना लिखनी चाहिए अथवा क्षमायाचना करनी चाहिए यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। लिखना ही मेरी वृत्ति होने के कारण मुझे उसके बारे में क्षमा-याचना करने की आवश्यकता नहीं है। जिन विषयों को मैं जानता हूँ और जितना जानता हूँ उनके बारे में लिखना मेरी आदत-सी हो गयी है। यह वह अधिकार है जो एक लेखक अपने आप को देता है। यह बिना कोई प्रत्यक्ष गुरु के प्राप्त दीक्षा है। विश्व में जीने वाले किसी भी व्यक्ति का यदि कोई गुरु नहीं ही तो भी वे सारे अनुभव, शिक्षा उसे विश्व से प्राप्त हो जाते हैं। निसर्ग की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक जीव, व्यक्ति के सतप होकर जीने वाला प्रत्येक क्षण, लेखक की मनोवृत्ति को सदा निरूपित करते रहते हैं। वैसे दूसरे भी उस नियम के बाहर नहीं हैं। जन्म से ही मिलने वाली यह शिक्षा उसके जीवन के अन्त में ही समाप्त होती है। इन दोनों के बीच के दीर्घ या अल्पावधि में, वह अपने लेखन की दीक्षा प्राप्त करता है। वैसे वह किसी एक व्यक्ति को अपने गुरु के रूप में स्वीकार भले ही न करे, पर संकटा व्यक्ति, संकटो जीव, और असह्य घटनाएँ उसके लिए गुरु ही होते हैं। इनसे परिपुष्ट, स्फूर्ति वाला एक लेखक अनेक कृतियों को जन्म दे सकता है। इनमें अगर सौ खराब हों तो कुछ अच्छी भी होंगी। अच्छे बुरे के बीच की भी कुछ कृतियाँ हो सकती हैं। मूलतः लेखक अथवा कोई भी कलाकार अपनी आत्मतृप्ति के लिए अपने मन के भाव को व्यक्त करता है। वह मूकजीवी नहीं होता है। दूसरे मानव भी मूक नहीं होते हैं। अतः उसकी कृतियाँ उसके समान ही अनुभव वाले दूसरे व्यक्तिप्राय और अनुभव वैधियों के लिए उपयोगी हो सकती हैं और पर्याप्त रूप में सन्तोष भी दे सकती हैं। परन्तु कलाकार को पहला सन्तोष और सब से बड़ा सन्तोष उसकी कृति के निर्माण के समय ही मिलना चाहिए। लोग की पसन्द, आलोचना अथवा प्रशंसा से मिलनेवाला आनन्द तो एक पर्याय मान है। उसी प्रकार निन्दा या

जानेगा स मिलने वाला दुख भी एक पर्याय ही है। उनकी परवाह मुझे है नहीं। मेरा जीवन मेरे अधिकार की वस्तु है। मेरा जीवन मेरा अपना है। उसका सुख, मौज्य दद पीडा और सौंदर्य का अभाव ये सब मेरे हैं। दूसरे उसमें भाग लेना चाहें तो अच्छा, उसे स्वीकार करें तो अच्छा, न भी करें तो भी अच्छा। मैंने जो जीवन बिताया वह मेरा है, बेवत मेरा है। इसका मतलब यह नहीं कि मैं दूसरों को कुछ समझता हूँ। इसका यह भी मतलब नहीं कि उनकी आलोचना के सत्याश की ओर मुझे ध्यान नहीं देना चाहिए। उसके बिना कोई भी मनुष्य प्रगति नहीं कर सकता। फिर भी जिम्मे जो जीवन बिताया, उसे उसके अलावा भला और कौन जान सकता है? यह देखन ही मेरे पणजे मन के दस चेहरे हैं। इस लेखन के बारे में यदि मुझे किसी से दामा माँगनी हो तो मेरे जीवन के साथ मुझे उठा कर, जिस जीवन प्रवाह ने सवार किया उससे माँगनी चाहिए।

एक अर्थ में मैंने अपने जीवन को अपना कहा है। परंतु विस्तृत अर्थ में, सत्य देखने चलें तो यह जीवन दूसरों के साथ घुला मिला है। मैं समाज के जीवन का एक अंग हूँ न! उसके सुख दुख मेरे हैं न! मेरा सदा का जीवन समाज का हिस्सा है न!

सम्पूर्णता की वान नहीं

यह एक सम्पूर्ण आत्मकथा नहीं है। सम्पूर्ण तो मैं भी नहीं हूँ। सम्पूर्णता का एक अर्थ भी नहीं बन पाया है। यह मैं जानता हूँ कि यह विश्व ही सम्पूर्णता के लिए मध्यस्थ है अतः सत्य पद का मैं बहाना नहीं कर सकता। दूसरे अर्थ में भी यह परिपूर्ण नहीं है। मैं अब दसवीं उमर पर पाँच रण चुका हूँ। अतः अपने जीवन के जिम्मे समय यह घणन कर रहा हूँ वहाँ तक का ही चित्र उपस्थित कर सकता हूँ। पूरे जीवन का चित्र नहीं लिखा सकता। मुझे तो यथे जीने की इच्छा नहीं है। पर यह इच्छा अवश्य है कि दूसरा पर शारीरिक रूप से एक भार बन कर न लौड़े। यदि बाद में जीवन रण तो शायद भरी स्थिति घनी ही हो सकती है जहाँ कांश्य मुनि के बड़े उग काँवर म उग कर मलबन प। दूसरा की सहायता न करन वान स्विकार का हमरा पर योम नही बनना चाहिए न।

मित्रों की दृष्टि

शेर बाई भी मुझ से यह पूछ सकता है कि एमी आत्मकथा लिखन का पालन करने में पहन हा यह स्वाकार कर चुका हूँ कि मेरा मा पगला है तो यह प्रश्न ही क्या हा उगता है। कुछ वय पहने मर मित्र गणसूर रगनाथराय न मुझ से कहा ना, मैं प्राणीकार की प्रायनी तिष्ठ रहा हूँ मैं आपस उसकी भूमिका निपटाना चाहता हूँ। वे दोना ही मित्र हैं। अच्छी बात है यह कर मैं भूमिका

के चार शब्द लिख दिये। बाद में उन्होंने कहा, "मैं अपनी भी जीवनी लिखना चाहता हूँ। उसके लिए आप सामग्री दे सकेंगे?", तब मैंने हँस कर कहा, "दूसरो की लेखनी से हत्या कराने की इच्छा मुझे नहीं है। मैं अपनी हत्या अपन आप ही कर लूंगा।" यह बात हुए कुछ ही साल हुए। मेरे कई मित्रो ने ही नहीं, पत्नी लीला ने भी मेरी जीवनी के बारे में लिखा है। मेरा एक गहरा विश्वास है कि यदि किसी व्यक्ति की जीवनी बढिया लिखनी है तो लिखन वाले का और उस व्यक्ति का निबट का परिचय अवश्य होना चाहिए तभी वह सजीव बन पडेगी। केवल पुरानी खोजों से लिखा जानेवाला जीवन चरित्र एक व्यक्ति का नेटेलॉग मात्र हो सकता है। वह हमें तभी सरस लग सकता है जब कि उसमें लेखक की मनोवृत्ति प्रतिबिम्बित हो। तभी सही मायना में लेखक की आत्मकथा होगी।

नेगलूर के मेरा ध्यान उस ओर आकर्षित करने के बाद से आत्मकथा लिखने की इच्छा हुई। एक दो मित्रो ने कहा, "लिख क्यों नहीं डालते?" तब "एकदम मरन की इच्छा नहीं है" कह कर मैंने मजाक भी उडाया था। कुछ वष पूर्व मित्र राजरत्नम् ने 'दस वष नाम से अपनी आत्मकथा लिखकर जनता को प्रदान की। 'दस वष' में तो एक निबल जुबली भी नहीं होती। भला मैं उतना छोटा हूँ क्यों लिखूँ? यह सोच कर मैं पच्चीस वष पूरे होने की प्रतीक्षा करता रहा। य पच्चीस वष मेरे पूरे जीवन के पच्चीस वष नहीं। जबसे मैं 'मैं बना और अपन का समझने लगा तब के पच्चीस वष हैं। बिना दूसरे की सहायता के समाज के प्रवाह में मैंने जो पच्चीस वष काटे उनकी प्रतीक्षा करता रहा। इस लेखन का पहला संस्करण समाप्त होने के पन्द्रह वष बाद दूसरा संस्करण निकला। अब यह तीसरा है।

इतना जीना काफी नहीं ?

सन् 1921 में कलिंग से मुक्त हुआ। तब मैंने केवल ब्रिटिश सरकार से ही सम्बन्ध नहीं छोडा, कहना चाहिए कि अपरोक्ष रूप में मुझसे कहन और पूछने-वाले सभी से सम्बन्ध तोड लिये। मेरा ऐसा 'बे-सगम' जीवन रहा है। पर उत पर जो बाहरी नियंत्रण था वह 'बे' नहीं था। अब वह जमाना पूरी तरह बीत गया है। 1983 चल रहा है। इस बारे में मेरे मन में एक और ही बात उठ रही है — भारतीयों को यदि जीवन चरित्र लिखना हो तो उसे मेरी आयु से पहले ही लिख डालना चाहिए। भारतीयों की औसत आयु करीब 23 वष है ता उनके पास उस पर लिखन को ही भला है क्या? अब मुझे इस बात पर गर्व है कि मैं उससे तिगुना जी चुका हूँ और चौगुन तक जा सकता हूँ कौन जाने। मेरे माता पिता, दादी सभी जिद करने इतने समय तक जीये थे। मुझे क्यों नहीं इतना जीना चाहिए ?

आत्मकथाओं का अभाव

कानड म जीवनिया का अत्यंत अभाव है। श्री डी वी गुदप्पा ने गोखल की जीवनी लिखकर एक मागदशन किया। उन्होंने श्री गोखले के राजनतिक जीवन का गहरा अध्ययन किया था। वसे उच्चकोटि के गुण और सख्या के हिसाब से देखा जाय तो कानड म जीवनिया का सवया अभाव है। तब आत्मकथा की बात कहाँ से उठी? विदेशी साहित्य म ऐसी सकडा पुस्तकें हैं। जिन्होंने ऊँचा जीवन बिताया हो यदि व स्वय ही लिखें तो उनकी आत्मकथा सशक्त होगी। विदेशो म अनेक वज्ञानिका राजनयिका, और विविध क्षेत्रो म साहस दिखानेवालो ने रोचक आत्मकथाएँ लिखी हैं। हमारे यहाँ भी गांधी की आत्मकथा, जवाहरलाल की आत्मकथा मिलती है। उनका व्यक्तित्व महान् होने से उन पुस्तकों को अन्तर्राष्ट्रीय उगाति भी मिली है। उह पठकर मैंने भी आनन्द का अनुभव किया है और कुछ सीखा भी है। विदेशियो की आत्मकथाएँ मैंने अधिक नहीं पढ़ी हैं। सबिन जिन दो चार को पढा है उनसे मुझे बहुत सन्तोष मिला है। इनमे एच-जी वल्ल की आत्मकथा, एडमिग्ल बडन की आत्मकथा ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया है। ऐसी रचनाएँ पढ़कर यह महसूस होने पर भी कि मुझ जैसे व्यक्ति का एम काम म हाथ नहीं डालना चाहिए, मन म यह भाशा अवश्य हुई कि एक बहुद् आत्मकथा के बदले एक छोटी-सी आत्मकथा क्यों न लिखी जाये। मैंन अपने उपयोगों म बीसियों अनाम व्यक्तियों के जीवन को चित्रित किया है। फिर भसा अपनी कसम का शिकार मैं स्वय क्यों न बनूँ। यह शरारत, साहस, विनोद इस रचना मे प्रतिबिम्बित होना चाहिए। इस भूमिका को पहल लिख कर वास्तव म कहना चाहिए कि लिखवाया अर्थात् मुह से बोलकर लिखवाया है। एसा यह मेरा पहला प्रयास है। अब आगे इसके कुछ और भी अध्याय लिखने हैं।

हम स्वय देख नहीं सक्ते

इमका नाम मैंने 'पगसे मन के दस चेहरे' रखा है। अपने मन के पागलपन का बोध हर समय नहीं होता है। दूसरे का पागलपन जितनी सरलता से दिखायी देगा है क्या उतनी ही सरलता से हम अपना पागलपन दीघता है? उसे देखन की इच्छा तो मुझे है। जिन प्रकार मैं अपने समाज से दूर धके होकर उसे देख कर समझने का प्रयत्न करता हू उसी प्रकार मैं अपने जीवन को देखकर समझना चाहता हूँ। यदि यह भाशा पूरी हो ता यह एक अपूर्व सतोष की बात है। यदि इस माध्य करना है ता मुझ अर्न भीतर का अहकार छोडना होगा। दूसरो का कामन श्रुती मग्नता मिशाने की दुराशा छोडनी होगी। इसने अतिरिक्त अपने मन को घ या देन का भी हमारा एक स्वभाव हागा। जब मनुष्य अपने आप को

सफलतापूर्वक धोखा देना भीष लेता तभी उसमे दुनिया को धोखा देने की शक्ति आती है। यह भी एक बात है। हम अपनी गहराई को नाप नहीं सकते। अपना छिछलापन हमें दिखायी नहीं देता। अपने थोड़े गुण अथवा चाहे वन भी हा, वे ही हमें बहुत नजर आते हैं।'

प्यारा-सा पागलपन

मैं अपने मन को पगला क्यों कहता हूँ? इसका कारण यह नहीं कि मैं यह पागलपन नहीं चाहता बल्कि उसे मैं पसन्द करता हूँ। ऐसे पागलपन के कारण ही अनेक ऐसे साहस करके जिन्हें करना नहीं चाहिए, मुझे अपनी और दुनिया का पागलपन समझ में आया है। इसके अलावा इसका एक और भी विशेष कारण है। मैं अपना सारा बचपन अपने दिशाहीन विद्यार्थी जीवन में ही खो बैठा। जब मैंने अपना सावजनिक जीवन आरम्भ किया तब देशाभिमान ने अपनी ओर आकर्षित किया। मैं असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ा। विष्णु के यदि दस अवतार हैं तो मेरे ध्येय ने सोलह अवतार लिये। देशप्रेम, स्वदेशी प्रचार व्यापार, पत्रकारिता, अध्यात्म साधना, कला के विभिन्न रूप—फोटोग्राफी, नाटक, नृत्य, चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, सिनेमा—इतना ही नहीं समाज-सुधार, प्रामोद्वार, शिक्षा व नये-नये प्रयोग, उद्योग—यह सब मेरे कायक्षेत्र रहे। और भी नये नये प्रयोग चल ही रहे हैं। अभी मैं एक प्रेस का मालिक भी रहा हूँ। पुस्तक लेखन से लेकर उसे छाप कर बेचने तक का काम किया है। स्वतन्त्र जीवन से लेकर सभ्यता के जीवन से गुजर कर गृहस्थ भी बना हूँ। केवल अपनी खिडकी से बाहर झाँकने वालों को भले ही इन सब परिवर्तनों में कोई परस्पर सम्बन्ध न देखे पर वास्तविकता ऐसी नहीं है। इस यात्रा में कोई और व्यक्ति यदि मेरे साथ होता तो उसे पता चलता कि यह सब यात्रा के अलग-अलग पड़ाव हैं। वैसे भला मेरा साथ मिल ही कितने थे? उनमें से मुझे केवल एक व्यक्ति की याद आती है। उस व्यक्ति का चित्रण मैं अपने चित्रक-दोड्डरू (बड़े-छोटे) में किया है।

परन्तु मेरी प्रवृत्ति उनमें एकदम भिन्न है। अतः व मुझे आसानी से समझ नहीं सकते। वे इतने तेज भी नहीं हैं। केवल अभिमग्न और स्नेह से हमारी मित्रता चली आ रही है। तो यह निश्चित हुआ कि अपनी आत्मकथा लिखने को मैं अनेका ही उपयुक्त हूँ।

नवीनता में आत्मिक

यहाँ आत्मकथा के केवल कुछ ही रूप आप देख सकते हैं। मैं भी कुछ ही देखे हैं। इन आठ टुकड़ों की अवधि में मेरा जीवन और मन इतनी गहरी दिशाओं में बहा है। और इससे आगे की यात्रा कभी होगी है इसकी कल्पना मैं कस कर

सकता हूँ ? यदि मरना उद्देश्य इतना निश्चित होता तो मेरे इस तरह जीने की आवश्यकता ही नहीं होती। तब क्या जीवन का उद्देश्य पूरा हो जाता ? विश्व का 'कस जितना विचित्र प्रश्न है, हम सब लोगों के 'कल' का रहस्य भी उतना ही गूढ़ और विचित्र है। ऐसे कल के लिए नवीनता है उल्लाह है। यह मरी इच्छा है कि मर चारा ओर की दुनिया चिर नवीनता के लिए अवकाश देती रहे। मन को सना साजा हाना चाहिए, तज होना चाहिए, साँप की जीभ के समान आगे का रास्ता घोषण रहना चाहिए। परिचित रास्ते पर अघे के समान चलन से क्या लाभ ? तात्पर्य यह है कि तब से लेकर अब तक मेरे भीतर जितने परिवर्तन आये हैं उतने ही परिवर्तन आज स कल में भी आ सकते हैं। परन्तु कष्टों के लिए वह अनिश्चित जीवन भयकर दीघ सकता है।

यश की गाथा नहीं

वह आत्मकथा मर जीवन के विविध साहसों के यश की कहानी दीखने की जगह हार की कहानी के रूप में दीघ सकती है। परन्तु मनुष्य को जीवन में अनुभव प्राप्त करने के लिए सफलताएँ जितनी आवश्यक होती हैं असफलताएँ भी उतनी ही आवश्यक हैं या उससे भी ज्यादा। क्योंकि तराजू के एक पलड़े में अपना भार और दूसरे में परिस्थितियाँ का भार होने पर उसमें वह अपने वाले भार को हल्का पाता है।

यात्राओं अपने समान सभ्य करने वाले दूसरे प्राणियों के सामने अपना बड़प्पन दिग्ग मकन है। उस बड़प्पन से गव पदा हो सकता है। पर वह व्यक्ति का सही बदन बना नहीं सकता। समाज के प्रवाह के अनुकूल वह जाने, हवा के रुध के मुठाविक छनरी पकड़न वाले को यश जितना आसानी से मिल सकता है उतना दूसरों को नहीं। दुनिया में चाहे जो भी यश क्यों न हा वह सबल हम पर ही निर्भर नहीं होता है यह मैं अच्छी तरह जान चुका हूँ। विधि कहिए, भाग्य कहिए मनुष्य परिस्थिति कहिए या और कुछ कभी-कभी हमारे प्रयत्न से भी अधिक यश हमें मिल जाता है। कभी-कभी जब हम अत्यन्त परिश्रम करते हैं तो भी वही यश हमें ठोकर मार मत्राक करके चला जाता है। पर एक बात सत्य है पराजित का बार बार काप करने का अयसर मिलता है। विजिता के लिए वह काप समाप्त होने के बराबर ही है। जब तक हम काप में आमन्त्रित रखते हैं, उन्की आवश्यकता समाप्त है उगक सौदय का अनुभव करते हैं तब तक काप ही आनन्द होता है। हार में दुनिया का अनुभव करते हैं, उसमें भी एक प्रकार का आनन्द होता है। व्यक्ति यदि सच है तो हार में मिलने वाला अनुभव रूप नहीं जाता। भावी जीवन में वह सहायक होता है। यह सब हार हुए व्यक्ति के कहने के दशन है—चाहे एसा ही समझा जाय धेर मेरा

दृष्टिकोण तो यही है।

बहुमुखी होना

इस आत्मकथा में विविधा का मूढ्य कारण मेरे मन का बहुमुखी होना है। मेरी इच्छा यह रही है कि मैं अपने शील को, स्वभाव को, इन्द्रियजय लालसाओं को, सभी प्रकार की चेतनाओं को विकास के लिए अवकाश दूँ। अपने जीवन को एक ही ओर मोड़कर, एक ही ध्येय की साधना के लिए स्वयं को अर्पित करके उसके लिए निरंतर परिश्रम करना कुछ लोगों का स्वभाव है। ऐसा परिश्रम करते समय, व्यक्ति की कुछ शक्तियाँ ज्यादा विकसित होती हैं, पर साथ ही अनेक शक्तियाँ मंद पड़ जाती हैं। सदा लकड़ी काटने वाले की बाँह, छाती और पीठ की मांसपेशियाँ अधिक पुष्ट हो जाती हैं, पर पाँव की मांसपेशियाँ क्षीण रह जाती हैं। यह मैं पसंद नहीं करता। विकासवादियों का कहना है कि मनुष्य का विकास बदर से हुआ। मैं अपने मन के स्वभाव से परिचित हूँ। उसकी बहुमुखी चेतना को देखकर इस वाद को स्वीकार करने के सिवा मेरे लिए और कोई चारा है ?

लम्बी प्रस्तावना लिखने के बदल, आत्मकथा को ही आगे बढ़ाते हुए, अपनी पूर्व स्मृतियों को पिराने का प्रयत्न करता हूँ। इसके सार अग सब को भले ही पसंद न आयें पर कुछ अग तो कुछ लोगों को अवश्य पसंद आ सकते हैं। एक बात और है, चाहे किसी को पसंद आयें या न आयें, पर मुझे पसंद है, अतः उनके लिखने में मुझे क्या डरना चाहिए ?

अण्डे के भीतर

बूपमण्डूक

हमारा गाँव समुद्र के किनारे बसा है। दक्षिण कान्ह के उत्तर में 'कोट' नाम का एक ग्राम समुदाय है। हमारे बुढ़गों ने तो उस 'कोट' को कभी एक गाँव नहीं समझा। आज भी बूढ़े लोग उस 'कोट जगत' ही कहते हैं। भला कितना बड़ा रहा होगा मेरे उन लोगों का वह जगत। 'कोट' कोट नहीं, वह एक 'बूट' है, थोड़ा गाँवों का एक समुदाय। यहाँ का एक मुख्य समुदाय ब्राह्मणों का है जिसे 'बूट ब्राह्मण' कहते हैं। हमारा इतिहास बहुत छोटा है। प्रसिद्ध पुराण महाभारत में उसका वणन भी है। हमारे लोग समुद्र के तट पर या गाँव के किसी सासाब में खड़े होकर 'सबत्स' करत समय, 'गोदावारी-तीरे' बहा करते हैं। गाय-नाय 'वरगुराम-शंभ' भी कहते हैं। इस प्रात के लोगों के उद्धार के लिए ही 'बनवासिया' के राजा मयूरवर्मा ने अहिच्छन से कुछ ब्राह्मण परिवारों को साबर यह प्रात बसाया था। उहीं से हम उच्च ब्राह्मणों का विवास हुआ। पहले आये हमारे पूबजों ने यहाँ के ब्राह्मणों से मिल कर अपने परिवारों की वृद्धि की फिर भी उनका दुइ विवाग है कि कोट ब्राह्मणों के समान शुद्ध ब्राह्मण और नहीं हैं। मैं अपने मामा के साथ सन् 1922 में बागी गया था। उन्होंने यहाँ के ब्राह्मणों को देख अपना निगय देते हुए कहा, 'ब्राह्मणत्व यदि यहीं बचा है तो वह हमारे कोट में ही है।' उनके इन निगय को हाइकोट भी नहीं बदल सकता। मुझ भी अपने बचपन में एसा ही लगता था। मैंने अपने मरठि मण्णिगे (माटी की भार) जग्याग में अपने भोगों की मरीची, घाल-चसन और आचार विचार का बागी विचार में विनय किया है। उनके ह्यभाव में घमण्ड, द्वेष, ओटापन मैंने अपने 'शुभिय हनु ममरतरम्ति' (गाँव के इन में) में विनित किया है। मेरे ममाय के शुभ परिचय के लिए इनका बर्पाप्त है।

गोदय के आगार में

मय लंब बढ़ा मुदर है। रीत कान्ह जिन में एक दुसम मगनी इलाका

है। उस समतल भूमि में खेती बाड़ी होती है। बीच-बीच में नारियल के झुरमुट में घर हैं। वहाँ दो छोटी खारियाँ (Backwaters) बहती हैं। पश्चिम में हगार-कटटे की 'कोडी' से कुदापुर की 'कोडी' तक बारह मील के क्षेत्र में फैला समुद्र का सुंदर विस्तार है। एक घट्टान तक नहीं है वहाँ। बचपन से अब तक हमारे घर से दो मील दूर के उस तट पर जब तक मैं घूमता नहीं, उस खार पानी में कुत्तों नहीं मार लेता और सूखी मछली की गंध (अनिवाय रूप से) सूँघ नहीं लेता, मुझे तृप्ति नहीं मिलती। ऐसा शांत तट और वहाँ है! अपने कई दोस्तों को भी वहाँ साँप लेकर गया हूँ। 'राशि' न लिखा है कि मरने से पहले वहाँ जरूर आऊंगा। वी. सीतारामय्या वहाँ पता नहीं कितनी बार खड़े होकर लम्बी-लम्बी साँसें लेकर बेहद खुश हुए थे। वे वहाँ की रेत चुरा कर अपने साँप ले भी गए हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। वहाँ पर सृष्टि के सौंदर्य का कोई अन्त ही नहीं। वहाँ के समुद्र की प्रशान्तता और विस्तार मन पर जो प्रभाव डालते हैं, उसका कोई हिसाब नहीं। समीप से देखने पर तो वह चकराँच बना डालता है। यह कभी जड़ नहीं, निस्तब्ध नहीं है। जरा दूर ऊँचाई पर खड़े होकर उसका विशाल दृश्य देखने पर परम सन्तोष मिलता है।

कमल के साथ कीचड़

हमारे गाँव में स्नान के लिए छोटे बड़े तालाब हैं। रेतीली धरती को गहरा खोद कर चारों ओर पत्थर बाँध कर पुराने सोगों ने तालाब बनाए थे। अब सोडियाँ ढीली पड़ चली हैं। पत्थर टूटें भेड़ हो जाने से उनमें नीचे साँपों और भेड़कों के लिए बिल बन गए हैं। मेरी एक बुआ ऐसे ही एक तालाब के किनारे साँप के काटने से मर गयी थी। अब भी वह चित्र मेरे मन पर से मिटा नहीं। तब मैं कोई चार-पाँच का रहा हूँ। फिर भी हम सोगों का नित्य स्नान वहीं होता था। हमारे घर के बहुत समीप वाले तालाब का नाम 'वृष्ण तीर्थ' है। उस पवित्रोदक में अक्षय्य भस्म और भस्म आनंद लेते हैं। मैंने भी गले तक डूबकर गर्मी का शमन करने का प्रयास किया है। वहाँ के कमलों और कुमुदनियों को देख देखकर मन ही मन आह्लादित हुआ हूँ। उस तालाब के पूरे एक किनारे पर अलग अलग जाति के सोग स्नान किया करते थे। अब समतावाद आ गया, जाति भेद चला गया है। सभी जहाँ जो चाह स्नान करते हैं। तालाब को स्वच्छ रखने को मले न सही, उसे गंदा करने का सभी ने समान अधिकार पा लिया है।

हमारे तालाब के पानी का रंग सभी को पसंद का है। सदा हरे रंग की चाँई से भरा रहता है। जब भी उस तालाब को देखता हूँ, अपने लोगों की उदासीनता देखकर दुःखी होता हूँ।

बिना मठ के लोग

हमारे गाँव की मुन जाति ब्राह्मण ही है। हम समान ब्राह्मण हैं। यहाँ के माया के भाग्य में सबल कीर्ति ही बदा है। उनकी गरीबी का कोई ठिकाना नहीं। सात्रकल ता, गाँव के साग उडपि के कृष्ण की कृपा से दूसरे गाँवों में जा कर हास्य के व्यापार में धुँव पसा बना कर गाँव भेज रहे हैं। तब से अब उनकी अधिष्ठापित म बाकी मुधार हा गया है। पस का घमण्ड भी आ गया है। सट्टे बाजी में भी उल्लास लगे हैं। हमारा ब्राह्मण वग एक दृष्टि से बड़ा ही विचित्र है। हमारा कोई मठ नहीं है। हमारे लिए सायासियों की जमट ही नहीं। एक जमान में हमारे कूट' म ही हमारे आचार विचारों का निष्पत्ति होता था। लोग उडपि की भाजनशाला में घसन पर भी वहाँ के सायासियों को नमस्कार नहीं करते थे। पहले एक बार शृंगेरी मठ के स्वामीजी आये थे तब उनका पाँव छूने से बचने की गाँव के पास वाली नदी में नावों में खड़े होकर ही उनका स्वागत किया था। शामद बाद में स्वामीजी हमारे गाँव आये ही नहीं हुए। हमारे गाँव में माता' का एक मंदिर है। विष्णु की भी मूर्ति है। एक बटा गाँव निवास भी है। हम लोग समान रूप से उन सब की पूजा करते हैं। यहाँ हमारे कुसुमता लक्ष्मी-नरसिंह हैं। लक्ष्मी की कृपा भले ही हमारे गाँव वाता पर अधिष्ठा नहीं रही पर नरसिंह से क्रोध तो पर्याप्त मिला है। मुझ में जो आग्रह है उसका कारण नामद बने नरसिंह रहा हागा जिसे मैं गाँव में ही छोड़ आया हूँ।

मेरे पूर्वज

मुना है कि हमारे पूर्वजों में भी पहले बहुत गरीबी देखी थी। मेरे जन्म के समय परिस्थिति में छोटा मुधार ही चुका था। एक बड़े से घर में मेरा जन्म हुआ था। मेरे पिता केय करते आठ आन मासिक वेतन पर अध्यापन काय किया करते थे। उन्हें अपने पिता से बसल तीन दसम लगान की भूमि बिरासत में मिली थी। मेरे पदा हान में पहला मेरे दादा चल बसे थे। उनकी स्थिति उदा बरपी थी परन्तु नामजून के ममान, उन में रसापन विद्या का बडा पागसपन था। गार माहे को गया कर मोना बनाए के पक्कर में मारी सम्पत्ति गया बडे थे। मेरे पिता ने कुछ धना मित्रों की सहायता से बगड का व्यापार आरम्भ किया, बाँ जमा में पूष दन।

हमारा घर मुक्त राशन पर था। वहाँ मेरा जन्म हुआ। मुझसे पहले चार भाइयों का जन्म हो चुका था। उनमें में एक का बचपन में ही निधन हो चुका था। मेरे भाई भी चार भाई और तीन बहिनें पैदा हुए। घर में सब से बड़े

दादी ही थी। उनका नाम ही था महालक्ष्मी। उसके बाद पिताजी और माँ लक्ष्मी-देवी थे। माँ और दादी बड़े कष्ट में पली थी। उनका जीवन अपार श्रद्धा और भक्ति से भरा था। तालाब पर स्नान को जाते समय हम कभी शरारत से मढको को पत्थर मारते तो वह कहती 'मढक ब्राह्मण होता है उस मारना नहीं चाहिए। यदि किसी भी प्राणी का हम सत्तात ता हमें उसका दण्ड मिलता था। और फिर दादी, माँ दोनों हमारी शरारत, हिंसा और पापकृत्यों के लिए अपना-अपना जप आघा घण्टा और बडा देती थी। हमारे लिए भगवान् स क्षमा भी माँगती थी।

मेरी माँ के इस घर में पाँच रखने के बाद से घर की स्थिति सभली। व सौजन्य की मूर्ति थी। धनागम के मामले में वास्तव में सक्षमी ही थी। वे लगभग चालीस वर्ष पहले गुजर गयी। जब उन्हें याद करता हूँ तो ऐसा लगता है कि बारह बच्चों के जन्म के कारण ही उनका जीवन ढल गया। फिर भी किसी प्रकार सत्तर साल तक जीवित रही। मेरी दादी जब गुजरी तब पचहत्तर बरस की थी। हम सब बच्चे गरीबी में भले ही न सही, पर ऐश्वर्य की गोद में नहीं पले। हमारे पिता हमें ज्यादा पैसे नहीं देते थे। उनकी बच्चा के साथ घनिष्ठता भी कम थी। यदि हमें एक-दो आने की आवश्यकता होती तो दादी या माँ के द्वारा अर्जो लगानी पड़ती। बाद में उनकी वकालत से ही मजूर होती। गाँव के मूल के समय एक या डेढ़ आना हमारे हिस्से पड़ता तो हम वही एक रुपय के बराबर दीखता था। हमारा घर 'कपडे वालो का घर' कहलाता था। गरीबी होने पर भी कभी घाने पीने की लगी नहीं रही।

बचपन की यादें

मेरे बचपन के दिनों में मेरे गाँव में पुराने ढग की पाठशालाएँ चलती थी। अध्यापक बाँस में डण्डा फँसाना, मुरगा बनाना आदि सजाएँ निया करत थे। वहाँ गणित, पहाडे, यक्षगान आदि सिखाया जाता था। रेत पर 'श्री गणाधिपतये नमः' लिखना सिखात थे। उसके बाद पट्टी पर लिखाई शुरू होती, फिर स्लट पर और बाद में भोज-पत्र पर और फिर कण्ठस्थ कराते। मैं तो दस युग का था (जन्म 1902) मैं तो उन पाठशालाओं में पढ़ा नहीं। मेरी उमर के बच्चे वहाँ पढा करते थे। हम तो वहाँ की यशशाला में जाते जहाँ धरती पर बिठा कर पढ़ाई होती थी। मेरे प्रथम गुरु रंगराय थे। वे कल्याणपुर तो-मेरे थे। रंगरायजी ने मुझे क्या पढाया अब याद नहीं, पर उनके हाथ की बलघाती छड़ी अब भी याद है। मेरे साथ कृष्णप्पा नाम का एक लडका पढना था। उसके डराने के लिए वह "तुझे डोल के भीतर बंद करवा दूंगा।" कहा करते थे। गाँव के मंदिर के आँगन में एक बडा-सा डोल रखा रहता था। उसकी छवि बड़ी मग्भोर हुआ करती थी।

भना उसका धम म पढ़ावन मे किसे खुशी हाती । यमशाला मे सदा विमगादड सटके रहन थ । हम उनक नीचे बठन थे । वहीँ आस पास उल्लू, जगली कबूतर, विमगादड, बिल्ली हमार समी साथी थ । 'मन्दिर' मे कभी कभार मदारी वगैरा सगूर आदि ल बर आत ता व भी हमार प्रिय पात्र बन जाते थे । आजकल तो गौवा म सगूर दीछन ही नही ।

यमशाला म ही दो-तीन बरम मरी शिक्षा चली । उहीँ दिनी उडपि ताल्लुक बाड न हमार गाँव म एक स्कूल म लिए भवन बनाया । हम उस स्कूल मे बैठने की बंध मिली । किताबें पढ़न के लिए पुस्तकालय भी खुल गया । 'बोधनी' नाम की शिक्षा सम्बन्धी पत्रिका तभी मैंने देखी । स्कूल म सत्तर-अस्ती विद्यार्थी और तीन चार अध्यापक थे । बाणप्पय्या मेरे प्रिय अध्यापक थ । व हम बागवानी, रगीन बाण्डा स फूस बनाना चटाई बुनना आदि काम सिखा कर खुश होत थे । तभी हमार स्कूल मे हाथ-पैर चसाने की कता यानी ड्रिल नयी-नयी शुरू हुई थी । कुछ दस्तकारिया का प्रशिक्षण भी दिया जान लगा था । यदि कभी स्कूल इस्पेक्टर आता तो वह दिन हमार लिए एक उत्सव जसा होता था । वह एक नयी कामात्र पहनने का अवसर होता था । हम उ हैं इस्पेक्टर साहब नही पुकारते थे । पहली बार आन घाल इस्पेक्टर विश्वेश्वर राय का नाम ही आगे उस पद के लिए चमत्ता चमत्ता । उम शाला मे मैं कोई तीन-चार वय पढा हू गा । तब की एक घटना मुझे अच्युती तरह याद है । मेरे एक सहपाठी मोमयाजी नाम के लडके न अपन रिगा की रैनक चुरा ली । जब स्कूल म उस घमनामा गया कि ऐनक किसे दी उगने मेरी ओर इशारा कर दिया । उस दिन मरा सोभाग्य कहिए या दुर्भाग्य, मैंन चरमा बनवाकर पहना था । अध्यापक ने घमनाने हुए पूछा "क्या चरमा मुंहारे पाग है ?" मैंने 'नहीं' कह दिया । उन्होंने छतरी की छण्डी से मरी यूब रिगाई की । उम मार म डर डर मैंने 'हाँ' कर दी । जब तक तम नही किया जाय भचयन पिपमता नही यह दगन व पहने से ही जानत थे । मैं दोपहर की छुट्टी म जा घर गया तो वहीँ रह गया । चरमा भसा कहीं स साता । वह चरमा बाद म उम मडके व घर म ही भिम गया । उस दिन मेरे पल्लन तो मार पडो । आगे म हमार उम अध्यापक न मार्य की परीक्षा करने के उत रास्ते की मुस पर नही आबयाया ।

मेरे पुनूर आकर बगन के बाजी निन बाद मेरे एक सम्बन्धी ने कल्याणपुर के मीन क एक गाँव बेममना के एक घरान म रिक्ता किया । उम घर म शारी वर अप एक अच्युति म पना चमत्ता कि मेरे प्रथम गूर रणराय जी अभी उनक गाँव के ममीन हा है । बगन निनों मे उन्हें दगन की इच्छा पूरी नही हा पा रही थी । एक बार जब मैं उरदि कमा पागब मेरे भिन्न हरिणाम भट्ट मुझे साथ ल बर बेममना के पाग ही 'लोने' मे गये थ । हम समुगत व उत गाँव मे रणराय का

घर खोज कर जा पहुँचे। तब वे अस्ती से ऊपर के हो चुके थे। दूसरे लाग तो उनका नाम तक भूल चले थे। हम किसी तरह उनके घर पहुँचे थे। दरवाजा खोलने आयी महिला से मैंने कहा, "जाकर कह दो कि उनका एक शिष्य आया है।" तत्काल उस वयोवृद्ध व्यक्ति ने आकर मेरा स्वागत किया। बुढ़ापे के कारण उनके मुख पर कोई पुरानी छाया शेष न थी। मेरे "मैं शिवराम हूँ" कहते ही वे मुझे पहचान गये। उसका कारण यह था कि शुरू में जब वे हमारे गाँव आये तब वे हमारे घर पर ही ठहरे थे, उन्होंने मेरे बड़े भाइयाँ को भी पढाया था। मेरे स्कूल जाना शुरू करने के पहले ही वे मुझे गोद में ले जान और अपनी कुर्सी पर बिठा लेते थे।

उन्होंने एक कहानी सुनायी जो मुझे मालूम नहीं थी। जब मेरा स्वल्प में दाखिला कराया गया तब भी मैंने उसी कुर्सी पर बठने की जिद नहीं छोड़ी। इस पर गुरुजी ने अपने अधिकार का प्रथम परिचय कराया। एक घण्टा जमाकर मुझे अपनी जगह दिखायी।

मेरी यह भेंट लगभग साठ साल के बाद हुई थी। उस दशन के सुख का मैं कभी नहीं भूल सकता। उ ह एक शाल ओढ़ाकर, उनके पाँव छूकर, इस कृतन भाव से नमस्कार करके लौटा कि दूसरी ने भी मरी बुद्धि रूपी बीज को शिखा के जल से सीचा था। ज्यो-ज्या हम बड़े होते जाते हैं, त्यो-त्यो समाज के ऋण का भार भी ज्यादा होता जाता है न।'

उन दिनों पाँचवीं क्लास पूरी होने तक हम, माँ-बाप को पत्र लिखना सिखाने के अतिरिक्त, डिमांड नोट, प्रोनोट, खरीददारी व कागज आदि व्यवहार के लिए आवश्यक बातें लिखनी सिखायी जाती थी। हस्तलेख पढ़ने का भी अभ्यास कराया जाता था। बता नहीं शायद इसीलिए मेरी लिखाई इतनी प्यारव हो गयी कि उसे ब्रह्म भी पढ़ नहीं पाता।

बचपन का स्वप्न साम्राज्य

हमारे स्कूल से बाहर की दुनियाँ बहुत सरल और सुन्दर थी। हम गाँव के मेले में बिना मागा जाते। कोटेश्वर का मेला, माता का मेला, शासिप्राम का मेला, घर के पास बड़े मन्दिर का मेला—इन सब में जाते। उस बड़े मन्दिर का नया रथ हमारे घर पर ही तयार हुआ था। हमारे घर की घुड़साल के पास ही एक छप्पर ढाला गया था। उन दिनों हमारे गाँव में घोड़ा-गाड़ी रखने वाले सब से पहले आदमी मेरे पिता जी ही थे। सफेद और भूरे दुरंगे घोड़े जो मेरे पिताजी 'पंच कल्पानी' कहते थे यह बात मुझे अब भी याद है। घोड़े की बात छोड़ कर अब रथ की बात कहता हूँ। रथ तयार करने के लिए कई बड़ई साल भर काम करते थे। उस पर चित्र तराशन, छीलन और उकेरन के काम

भला उसके यम म पहुचने मे बिसे खुशी होती । यणशाला मे सदा चिमगादड लटके रहते थे । हम उनके नीचे बैठने थे । वही आस पास उल्लू, जगली कबूतर, चिमगादड, बिल्ली हमारे सगी साथी थे । 'मि' दर मे कभी कभार मदारी वगैरा लगूर आदि ल कर आत तो व भी हमार प्रिय पात्र बन जाते थे । आजकल तो गाँवा म लगूर दीघत ही नही ।

यणशाला म ही दो-तीन बरस मेरी शिक्षा चली । उही दिना उडपि ताल्लुक बोड ने हमार गाँव म एक स्कूल के लिए भवन बनाया । हम उस स्कूल म बैठने को बेंच मिली । किताबें पढने के लिए पुस्तकालय भी खुल गया । 'बोधनी' नाम की शिक्षा सम्बन्धी पत्रिका तभी मैंने देखी । स्कूल मे सत्तर-अस्सी विद्यार्थी और तीन-चार अध्यापक थे । काशप्पय्या मेरे प्रिय अध्यापक थे । व हमे ब्रागबानी, रगीन कागजो से फूल बनाना, चटाई बनना आदि काम सिखा कर खुश होत थे । तभी हमारे स्कूल म हाय-पैर चत्ताने की बला यानी ड्रिल नयी-नयी शुरू हुई थी । कुछ दस्तकारियो का प्रशिक्षण भी दिया जाने लगा था । यदि कभी स्कूल इ-स्पेक्टर आता तो वह दिन हमारे लिए एक उत्सव जसा होता था । वह एक नयी कमीज पहनने का अवसर होता था । हम उ ह इ-स्पेक्टर साहब नही पुकारते थे । पहली बार आन वाले इ-स्पेक्टर विश्वेश्वर राय का नाम ही आगे उस पद के लिए चलता चला । उस शाला म मैं कोई तीन-चार बप पढा हूँगा । तब की एक घटना मुझे अच्छी तरह याद है । मेरे एक सहपाठी मोमयाजी नाम के लडके ने अपन पिता की ऐनक चुरा ली । जब स्कूल म उस धमकाया गया कि ऐनक बिसे दी उसने मेरी ओर इशारा कर दिया । उस दिन मेरा सीभाभ्य कहिए या दुर्भाग्य, मैंने चश्मा बनवाकर पहना था । अध्यापक ने धमकाते हुए पूछा, "क्या चश्मा तुम्हारे पास है ?" मैंने 'नही' कह दिया । उन्होंने छतरी की डण्डी से मेरी खूब पिटाई की । उस मार से डरकर मैंने 'हाँ' कर दी । 'जब तक यम नही किया जाय मकधन पिषलता नही यह दशन वे पहले से ही जानत थे । मैं दोपहर की छुट्टी म जो घर गया ता वही रह गया । चश्मा भला वहाँ से लाता । वह चश्मा बाद मे उस सडके के घर मे ही मिल गया । उस दिन मेरे पत्ले तो मार पडी । आगे से हमारे उस अध्यापक ने सत्य की परीक्षा करने के उस रास्ते को मुक्त पर नही आजमाया ।

मेरे पुत्तूर आकर बसने के काफी दिन बाद, मेरे एक सम्बन्धी ने कल्याणपुर के समीप के एक गाँव केम्मण के एक घरान म रिश्ता किया । उस घर मे शादी पर आये एक व्यक्ति से पता चला कि मेरे प्रथम गुरु रगराय जी अभी उनके गाँव के समीप ही हैं । बहुत दिनों से उन्हें देखने की इच्छा पूरी नही हो पा रही थी । एक बार जब मैं उडपि गया था तब मेरे मित्र हरिदास भट्ट मुझे साथ ले कर केम्मण के पास ही 'तोसे' ले गये थे । हम समुद्रतट के उस गाँव म रगराय का

घर खोज कर जा पहुँचे। तब वे अस्ती से ऊपर के हो चुके थे। दूसरे लोग तो उनका नाम तक भूल चले थे। हम किसी तरह उनके घर पहुँचे थे। दरवाजा खोलने आयी महिला से मैंने कहा, "जाकर कह दो कि उनका एक शिष्य आया है।" तत्काल उस वयोवृद्ध व्यक्ति ने आकर मेरा स्वागत किया। बुढ़ापे के कारण उनके मुख पर कोई पुरानी छाया भेष न थी। मेरे "मैं शिवराम हूँ" कहते ही वे मुझे पहचान गये। उसका कारण यह था कि शुरू में जब वे हमारे गाँव आये तब व हमारे घर पर ही ठहरे थे, उन्होंने मेरे बड़े भाइया को भी पढाया था। मेरे स्कूल जाना शुरू करने के पहले ही वे मुझे गोद में ले जाने और अपनी कुर्सी पर बिठा लेते थे।

उन्होंने एक कहानी सुनायी जो मुझे मालूम नहीं थी। जब मेरा स्कूल में दाखिला कराया गया तब भी मैं उसी कुर्सी पर बठने की जिद नहीं छोड़ी। इस पर गुरुजी ने अपने अधिकार का प्रथम परिचय कराया। एक चपत जमाकर मुझे अपनी जगह दिखायी।

मेरी वह भेंट लगभग साठ साल के बाद हुई थी। उस दशक के सुख को मैं कभी नहीं भूल सकता। उह एक शाल ओढाकर, उनके पाँव छुबर, इस कृतज्ञ भाव से नमस्कार करके लौटा कि दूसरों ने भी मरी बुद्धि रूपी बीज को शिखा के जल से सींचा था। ज्यो ज्यो हम बड़े होते जाते हैं, त्यो-त्यो समाज के ऋण का भार भी ज्यादा होता जाता है न।"

उन दिनों पाँचवीं क्लास पूरी होने तक हम, माँ-बाप को पत्र लिखना सिखाने के अतिरिक्त, डिमांड नोट, प्रोनोट, खरीददारी के कागज आदि व्यवहार के लिए आवश्यक बातें लिखनी सिखायी जाती थी। हस्तलेख पढ़ने का भी अभ्यास कराया जाता था। बता नहीं शायद इसीलिए मेरी लिखाई इतनी खराब हो गयी कि उसे ब्रह्मा भी पढ़ नहीं पाता।

बचपन का स्वप्न साम्राज्य

हमारे स्कूल से बाहर की दुनिया बहुत सरल और सुन्दर थी। हम गाँव के मेले में बिना नागा जाते। कोटेश्वर का मेला, माता का मेला, शास्त्रिप्राम का मेला, घर के पास बड़े मन्दिर का मेला—इन सब में जाते। उस बड़े मन्दिर का नया रूप हमारे घर पर ही तैयार हुआ था। हमारे घर की भुइसास के पास ही एक छप्पर ढाला गया था। उन दिनों हमारे गाँव में घोड़ा-गाड़ी रखने वाले सब से पहले आदमी मेरे पिता जी ही थे। सफेद और भूरे दुरगे घोड़े की मरे पिताजी 'पंच कल्याणी' कहते थे मह बात मुझे अब भी याद है। घोड़े की बात छोड़ कर अब रूप की बात कहता हूँ। रूप तैयार करने के लिए कई बड़ई साल भर काम करते थे। उस पर चित्र तराशन, छीसन और उबेरन के काम

देखने में मुझे बड़ी आसक्ति थी। एकाध रप आज भी हमारे घर में है। मेला शुरू होते ही रप को फिर से सजा कर उसे खींचने तक हम उसे देखा करते। शाम की बलि दीपोत्सव, रपारोहण, गाँव में भगवान् की परित्रमा लगाना यह सब एक भी बिना छोड़े हम देखा करते। ऐसे मौका पर हम अपने सम्बन्धियों के बच्चों में मिलने का अवसर मिल जाता था। मेला शुरू होते ही दुकानें लग जाती। हम खिलौनों की दुकानों के सामने खड़े होकर प्रत्येक वस्तु का भाव-भाव करते और चबनी का माल एक पैसे में खरीदने की कोशिश करते। भटभूजे की दुकान की चीजों को चख चख कर देखने में ही पेट भर लेते। पास तो एकाध इक्की ही होती पर व्यापार सँकड़ा का करने के समान दिखावा करते। चाँदनी में खेता से फलियाँ चुराकर मुबह अलाव तैयार करके उन्हें भूनकर खाते। स्नान को तालाब पर जाते तो गदले पानी को और भी गंदा करने गाँव की स्त्रियाँ से डाँट पाते। अकेले रहते हुए हम बड़े सम्म रहते थे, पर लड़कों का झुंड घनते ही हर प्रकार की लूट में मुघ-बुघ भूल कर भाग लेते।

मृत्यु का वैराग्य

दीपोत्सव हमें बड़ा अच्छा लगता था। दीपमाला, आतिशबाजी में सुरीं, बाण, चकरी बनार, पटाके आदि तो हम दूसरे लोक की सर ही करा डालते। सुखद इन यादों के साथ ही एक यात्रा और चली आ रही है। हमारे घर के पास वाले शिव मंदिर के मेले में आतिशबाजी करने को बम-पटाके हमारे घर की एक कोठरी में ला कर भर दिये जाते थे। एक बार मेरी बड़ी मौसी का बेटा, जो हमारे ही घर में रहा करता था, हत्ये वाला दीया ले कर उस कमरे में गया। उसके हाथ से दीया छूट गया। बाह्य में आग लग जाने में विस्फोट हो गया और उसका मार शरीर जल गया। उसके झुलसे शरीर का चित्र आज भी मेरे सामने है। दो दिन बाद ही वह चल बसा था।

छुआछून

अब गाँव की पाठशाला और घर के आचार विचार तथा सावजनिक जीवन के बारे में दो बातें कहूँगा। गाँव के मेला में सँकड़ा लोग इकट्ठे होते थे। लेकिन उनका व्यवहार व्यापार अपनी जातियाँ तक ही रहता था। ब्राह्मण जाति में पैदा होने का कारण अडोम-पडोस के एक दो सड़क के सिवा मेरे और ज्यादा दोस्त नहीं था। छुआछून मानने वाले हमारे घरवाला को शूद्रा के साथ हमारा खेलना पसन्द न था। तब भीलों (शराब उतारनेवाला) के बच्चा को स्कूल में दाखिला नहीं मिलता था। उन्हें छूने पर हम नहाना पढता था। जब हम स्कूल जाते थे तब सामने से यदि हालेत (अछूत) आ जाता तो उसकी छाया से भी बचकर

जाना होता था। दोपहर की धूप के समय उरा पास से निकला जा सकता था। स्कूल के कपड़े बाहर बरामदे में उतारकर हाथ पाँव धोकर केवल कौपीनधारी होकर ही हम घर में भीतर घुस सकते थे। वह कौपीन भले ही कितना ही गन्दा क्यों न रहे, पर हमारा विश्वास था कि वह सदा शुद्ध ही रहता है। बच्चों के कपड़े छू जाने से हमारी माँ और दादी को कभी कभी सात आठ बार नहाना पड़ जाता था। पिता जो जब दुकान से आते थे तब दुकान की छूत वाले कपड़े बाहर उतारकर पीताम्बर पहन कर भीतर खाना खाने घुसते थे। हम ही उनसे अच्छे थे। समुद्र के किनारे मेरी ताई का घर था। उनके घर का वातावरण बिल्कुल वैसा ही था जैसा कि मैंने अपने उपवास 'मरळि-मण्णिगे' (माटी की ओर) में राम ऐताल के घर को दिखाया है। वे हम से भी ज्यादा छुआछूत मानती थी। उस घर के लोग अध्ययन, होम और यज्ञ में ही समय बिताते थे। वहाँ या अपने मामा के घर थाल आदि का बुलावा आन पर हमें खूब मौज उठाने का मौका मिलता। हमारा सारा समय समुद्र या तालाब में ही गुजरता। समुद्र में कूदना, बाहर रेत में छोटना, फिर पानी में कूदना यही हमारा घंघा रहता, जो हम भूल ही नहीं सकते। उस उपवास के नायक 'राम ऐताल' ने जिस नदी को पार किया था हम उसमें किसी-न किसी की नाव चुरा कर नौका बिहार करते थे। दो अलग अलग नावा में खड़े होकर दल बाँधकर रेत के गोल बनाकर एक दूसरे से मुड़ करते। उस समय हमारा जो रग बिगड़ जाता था और कपड़े गंदे होत थे वह सब हम माटी की सतानों को बढी ही पसंद आने वाली चीजें थीं।

सेती और खेल

हमारे यहाँ सेती-बाढी के सब काम मजदूरों के द्वारा होते थे। पर हाई स्कूल की पढ़ाई खत्म होने पर छुट्टियों में हम भी घर के कामों में लग जाते। त्रिगमम की छुट्टियों में घर के चार बड़े आँगनों को पर्यर से रगड़ रगड़ कर साफ-सुवरा करके चिबना कर देते। कुत्थी और उडद के पीछे सेता से उछाड़ने जान। गर्मियों में दोर चराते, मुर्गे मुर्गिया से घान की पजीरी बचाते, उसकी रखवाही करते। मदानों में गर्मी महसूस करने के बढने हम मजा ही आता था। गाँव में खेल गुल्ली डण्डा, कबड्डी, पिट्टू, शेर, गाय—आदि हमारे मनोरान के साधन थे। बहुत मुविधाएँ न होने पर भी मन को प्रसन्न रखने का ये धल हमारे लिए काफी थे।

भैसा-दीड की स्पर्धा

गाँव में भैसा दीड होने पर हम ब्राह्मण होने के कारण देखने नहीं जात थे।

तब हमारा विश्वास था कि वह शत्रु का खेल है। हमारे गाँव से तीन कोस दूरी पर 'बडार' नाम का एक गाँव है। वहाँ की प्रसिद्ध भसा दौड़ मैंने अपने चालीस पार करने के बाद देखी। उस खेल के उत्साह के क्या कहने? एक दिन पहले ही बुलावा जाता और दूर-दूर से भसा की जोड़ियो उस बाजी में भाग लेना आ जाती थीं। सारी रात होलेय (अछूत) डोल पीटते और बाजे बजाते हुए उनका साथ जाते। अगले कभी भैस बीमार पड़ जाये तो लोग मानत मनात कि हम बण्डार क स्पर्धा के मैदान में भैस को उतारेंगे। करीब करीब हजार जोड़ियाँ उस स्पर्धा में भाग लेती हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पाँच छ एकड़ के कीचड़ भरे मैदान में उन भैसों की दौड़ हमारे गाँव के भैस प्रिय लागो के लिए एक उत्सव होती थी।

सावजनिक मनोरंजन

इसके अलावा हमारे गाँव का सावजनिक मनोरंजन दशावतार के नाटक थे। उनमें 'वधती' और 'मारण कट्टे' आदि नाटक के रूप आज भी प्रसिद्ध हैं। हमारे गाँव में नाटक मण्डलियाँ अक्सर आती रहती थी। जब हम छोटे थे तब बयलाट (खुले मैदान में खेले जानेवाले नाटक) की वेश भूषा देखने की बड़ी इच्छा रहता करता था। जब मैं कोई तीन बरस का रहा होगा तब मैंने महाकाली (चण्डी) का वेश देखा था जो आज भी मेरे मन पर अंकित है। नाटक में रंग बिरंगे वेश-भूषा पहने सुबह-सुबह आनेवाले पात्रों को देखने की प्रतीक्षा में हम छोटे छोटे बच्चे खेल के मैदान में सोकर प्रतीक्षा करते। उपरली शेष की वेश भूषा उस जमाने में हमें राक्षस शोक पहुँचा देती। वैसे हम गधव, किरात, कण, शल्य आदि अदभुत और आश्चर्यक वेश धारण करनेवाले पात्रों की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते। वे पात्र आज भी रंग सज्जा और वेश भूषा के अति उत्तम उदाहरण हैं। आजकल इस कला का स्तर घट गया है। उन दिनों पाठेवर पुट्टय्या का नृत्य बड़ा प्रसिद्ध था। उसी पुट्टय्या के एक बेटे में भागे चलकर सिनेमा के क्षेत्र में खूब नाम कमाया। समय कला के प्रेम में भी परिवर्तन लाता है। वर्षों के दिनों में हमारे घर में रोड भागवत का वाचन चलता था। हमारे पड़ोसी एक मित्र भागवत पढ़ा करते थे और पिताजी उसका अर्थ बताया करते थे। मेरी दादी और माँ आदि सभी बड़ी भक्ति से सुना करती। हम भी कहानियों में उतनी ही रुचि लेकर सुनते। ऐसी कहानियाँ सुनने का हम पूरा आनंद तब आता जब हम अपने सम्बन्धियों के यहाँ जाते। हम सब वयस्क लड़के आधी रात तक कहानियाँ कहते और सुनते। उनमें दादी राजकुमार और सूत सीधी वाली कहानियाँ कम होती थीं। कहानी के हास्य भाग को मजाक की बातों से पूरा कर लेते। इसी प्रकार पहलियाँ में भी हमें बड़ा रस आता था।

अद्भुत मे विश्वास

मैंने अपने बचपन मे अद्भुत घटनाएँ न ज्यादा सुनी थी न देखी थी। जब हम अपनी बड़ी मौसी के यहाँ जाते तब ऐसी बातें सुनन को मिलती। वहाँ 'अरम दव' के मन्दिर के पास रेत के टीले पर सँकड़ा चिकने बड़े-बड़े पत्थर थे। उस भगवान् के चमत्कार से समुद्र मे जाता एक जहाज टूट गया। उससे बचकर किनारे लगे नाविको ने वहाँ पड़े पत्थरों से चूल्हा बनाया तो चावल के बतन मे छून उबलने लगा। ऐसी ही एक और कहानी है। हमारे मौसा का अनिष्ट करने के लिए किसी ने 'मारण होम' किया था। स्थानीय मन्दिर, पीपल और बरगद के पेड़ों पर बसने वाले भूतो की कहानियाँ भी प्रचलित थी। यह सब हमारे मन को बहुत आकर्षित करती। उही दिनों एक बार हमारे पड़ोस का एक चौदह बरस का लडका गुम हो गया। गाँववाला का कहना था कि यह सब भूत का उपद्रव है। तीन दिन बाद वह गाँव के मन्दिर की दुछत्ती मे मिला। वह वहाँ बहोश पड़ा हुआ था। ऐसी कहानियों के कारण हम अदृश्य शक्तियों मे एक विशिष्ट विश्वास जाग गया था।

शक्ति ही मृत्यु

अपने बचपन की एक और अद्भुत घटना मुझे याद है। हमारे गाँव मे सुम्बणा हाल्लर नाम के एक ब्राह्मण थे। मैंने जब उन्हें देखा था तब वे करीब पचास वष के हो चुके थे। नाटा और गेहूँ का शरीर, कोई विशेष बात न होने पर भी यह प्रसिद्ध था कि उनके हाथ मे गरुड़ रेखा है। प्रसिद्ध ही क्या, वे बीसियों बार नाग साँप अपने हाथ और गले मे सपेटकर हमारे घर ले आये थे। वे बाबी मे हाथ डालकर नाग पकड़ लेते थे। सड़क के पासवाले हमारे घर के आँगन मे उसे छोड़कर खिलाते भी थे। यदि साँप उनसे छूटकर भागने का प्रयास करता तो वे गुस्सा नहीं करत थे। उन्हें साँपो ने कई बार काटा भी था। काटे हुए शरीर की व स्वमूत्र से चिकित्सा कर लेते थे। सर्पदश की मूत्र चिकित्सा और भी बहुत से साग करत हैं। एक दिन उन्होंने एक साँप को खूब धँडकर बहुत गुस्सा कर दिया था। उन्होंने उसे काटने को एक पान का पत्ता आगे कर दिया, बाद मे वह पान व चबा गया। सोंगो के सामने तो उन्होंने ऐस प्रदर्शन बिय पर अन्त मे व उसी क शिकार हो गये। यह प्राकृतिक शक्ति अन्तिम समय मे उनकी सहायक क्या नहीं हुई, यह मेरी समझ मे नहीं आया।

नाग-नृत्य

हमारे गाँव के साग नागपूजक हैं। नाग देवता पर उन्हें बड़ा विश्वास है। वे नागवन की पूजा करते हैं। यह नाग देवता दूसरों की तरह कुछ सोंगो के शरीर मे

आता था। हमारे गांव के नारायण ऐताल प्रसिद्ध नागपात्री या माध्यम थे। जब व नाग के समान वापते तो बिल्कुल कालिंग नाग ही लगते। उनके शरीर का रंग भी वसा ही था। यह कोई विशेष बात नहीं। नाग मण्डल' नाम की एक विशेष सर्पाराधना के समय उनका सपनत्य देखने में बहुत अच्छा लगता था। पौ फटने के समय एक अलकृत छप्पर के तले विचित्र आकार की रंग बिरंगी रंगोली रची धरती पर यह नृत्य हाता था। सामने एक दो बैद्य (पुजारियों के दल) नाग मन्त्रों की गीत गाने हुए डमरू बजाकर गोल घूमते। उनके सामने नाग-पात्री (नाग माध्यम) कालिंग सर्प की भाँति नाचता। तीन घण्टे तक अनेक भंगिमाओं में फसने और छूटने का प्रयत्न करता-सा नाचता। वह सब देखने में अपूर्व था। तीस चालीस वर्ष की उमिर पर बचपन में देखा नागनृत्य आज भी याद है। आस्ट्रोलायड का सपनत्य क्या ऐसा हो सकता है? मुझे लगता है कि हमारे दक्षिणापथ की द्रविड सस्कृति का सही अवशेष ऐसी ही भूताराधना में है। इसके अतिरिक्त हमारे गाँव की दवाराधना में निम्न जाति के पुजारी भूतों के वष धारण करके कोल नाम के (छोटी जाति का एक उत्सव) उत्सव में नृत्य करते हैं। यह उत्सव मैंने अपने बचपन में नहीं देखा था। बाद में मैंने यह नृत्य अलग में देखा है।

अंग्रेज देवता

हमारे गाँव में दो चार बरस में एक बार अंग्रेज लोग आया करते थे। घोड की बगधी में बैठकर जिला अधिकारी वेल्स आया थे, जो मुझे अब भी याद है। तब हमारे लोगों के द्वारा उनके स्वागत की शान शोकत याद करें तो आजकल हमारे गवर्नर को भी वैसा सम्मान नहीं मिलता। पूरे रास्ते पर तोरण बधत थे। एक बार उनका स्वागत नदी के किनारे हुआ। एक अलकृत नौका पर बैठकर उन्होंने एक मोल की यात्रा की। बाद में हमारे गाँव के प्रमुख गणपय्या हृद के घर उन्हें ल जाया गया। मैं वहाँ भव्य स्वागत देता हूँ। वहाँ भी बदनवार सजे थे। मण्डप अलकृत किया गया था। रंग बिरंगी और तरह-तरह की झण्डियाँ बधी थीं, बदनवार बध थे। सिंघ, तुरही नसिह आदि वाद्य सुनने और हाथी देखने को हजारा अधनग लाग इकट्ठे हो गए थे। जिहान उनका स्वागत किया था उन्होंने उस रात के समाराह का आयोजन भी किया था। बाद में आने वाले अंग्रेज अफसरों की ऐसी आवभगत नहीं हुई। हमारे बड़े बड़े लोग म कोचमन माह्व बड़े प्रसिद्ध थे। उन्होंने सारस्वत समाज की कहानी बतानेवाले 'इंदिरा' नाम के उप यास का अंग्रेजी में अनुवाद किया था।

धूमकेतु

सन् 1910 11 में आकाश में बहुत दिनों तक एक बड़ा धूमकेतु दो-दो बार दिखाई पड़ा। हमारे लोग का विश्वास था कि इससे राजा का अनिष्ट होगा। शायद उनके विश्वास को ही सत्य करने को सप्तम एडवर्ड चल बसा। दूसरे वष जाज पचम गद्दी पर बैठा। उस धूमकेतु ने शुभ और अशुभ दोनों फल दिखाये। जाज पचम के दिल्ली दरबार के समय (सन् 1911 दिसम्बर में) हमारा गाव में भी उत्सव हुआ। तब अपनी बच्चा में शायद मैं ही होशियार रहा हूँगा या कोई बात हागी। जाज की तस्वीर वाले निकल का सिक्का मुझे मडल के तीर पर मिला था। बहुत दिन तक मैं उसे पदक के रूप में गले में लटकाये रहा। उस उत्सव की रात की एक और घटना की याद मुझे अब भी है। हम सब रात का उत्सव दफ़्कर लौट रहे थे कि तभी हमारे गाव के ट्रेवलस बगले को किसी न आग लगा दी। तब एक अग्नि उत्सव देखने को भी मिला। मैंने पहली बार ग्मी भयानक आग देखी थी।

तोता स्टत विद्या

मेरा जन्म 10 अक्टूबर, सन 1902 म हुआ। उस दिन अष्टमी थी। लगभग सन् 1912 स कुदापुर के हाईस्कूल म पढने गया। उसस पहले एलिमेन्टरी स्कूल मे पाँचवी तक पढ चुका था। पर अंग्रेजी की वजह से पुन चौथी से आरम्भ करना पडा। कुदापुर हमारे गाँव से केवल सात-आठ मील दूरी पर है। मरा सबसे बडा भाई तब कलिज मे पढता था। छुट्टी म आने पर ही उसक दशन होत। मर और दो बडे भाई तब हाईस्कूल मे पढते थे। हमारे पिताजी ने सब बच्चा का अंग्रेजी पढान का प्रबन्ध किया था। उन दिना हमार गाँव म बच्चा की पढाई क लिए एसी व्यवस्था करनवान थ ही नहीं। अच्छी जनसख्या वाल गाँवो स भी सात आठ घरो के लडका स ज्यादा उन दिना अंग्रेजी पढन नहीं जाते थ। हमार गाँव के रईस ह'दे' घरान के सभी बच्चे अंग्रेजी स्कूल मे जाते थे। उनक अलावा एसा करन वाले हमार घर के लोग मुख्य थे। गाँव क शेष सात आठ घरो से मिलकर भी हमारे एक घर के बराबर लडके अंग्रेजी पढने नहीं जात थे। जब मैं हाईस्कूल मे पढने गया तब हमारे पिताजी ने हमे पढने क लिए काफी सुविधाएँ दी थी। मेरे भाइया क भाग्य म बहुत समय तक होटल का खाना ही बढा था। मेरे कुदापुर जाने क बाद वहाँ हमारे लिए एक घर बनवाया गया। एक रसोइया रखा गया। वहाँ का वास सुविधाजनक था। उन दिनों हाईस्कूल के विद्यार्थी आज की तरह बंदरा की सी हरकतें नहीं करते थे। समार के सुख दुख से उनका परिचय रहता था। दखन म ता व बडे-बडे दीखत थे पर उनम काफी लोग मूख भी थे। जब मैं हाईस्कूल गया तब मर भाई के सहपाठी मेरे भी सहपाठी बन। जब मैं वहाँ की पढ़ाई पूरी करके निबला, तब भी कुछ लाग वही जम रह थे। उह एक एक क्लास मे तीन-तीन वष पाने पर भी तपित नहीं होती। उनके साथ फुटबाल खेलना हमारे जग सहक क लिए सम्भव ही नहीं था। उन मुष्टपडा क साथ यदि हम खेलने जाते तो हमारी खटनी बन जाती।

हमारे स्कूल के खल के मदान म एक ऊँची सीढ़ी थी। ग्लाइड, ट्रैपेज भी थ।

उबल बार, सिंगल बार हास—यह सब कसरत की सामग्रियाँ भी थी। कसरत की भी ड्रिल के समान ही प्रमुखता प्राप्त थी। इसके साथ बलब, डबेल्स आदि कसरत के साधन थे। जब हम हाईस्कूल के फोरथ फार्म पहुँचे तो यह सब खतम हो गये, केवल ड्रिल ही रह गयी थी। आजकल तो किसी भी स्कूल में ऐसे सक्स के खेला के समान खेलों के उपकरण हैं ही नहीं।

नीद प्यारी थी

स्कूल की पढ़ाई के बारे में कुछ ज्यादा कहने की नहीं है। शुरू से मैं स्कूल की 'बिताये कम पढ़ा करता था। उन दिनों एक आन में मिलने वाली 'बुक्स फॉर दी ब्राज' की कहानियाँ मुझे काफी प्रिय थीं। उन्हें मैं रात के समय पढ़ा करता था। यूँ कहिए कि उन्हें भी बहुत सरलता से नहीं पढ़ा। टेबल पर एक दीया हाता था। वह चिमनी का नहीं होता था। बच्चा की आँखें धराव न हो यह बहकर हो-नहेण्णै वाला दीप ही रखा जाता था। उसकी एक तरफ मेरा भाई, दूसरी ओर मैं बैठा करते थे। सात बजे खाना खाकर पढ़न बैठत ही निद्रादेवी मेरा पीछा करने लगती। मेरी पलकें मुदत ही मेरे भाई का एक जोर का धौल पीठ पर पड़ता। इस प्रकार नौ बजे तक मुझे पढ़ाने का काम उसका था। उस भाइ पर का गुस्ता मैं गाँव में जानकर उतारता था। वहाँ मैं ही पहले उसे मारकर साप ही राने लग जाता। दादी का निणय सदा मेरी तरफ ही होता। जब मैं नौथी बन्ना - पहुँचा तभी मुय भाई के अधिकार स मुक्ति मिली। वह और उसमे छोटा मेरा दूसरा बडा भाइ भी ममलूर चल गय। तब मैं ही घर का राजा बन गया। मर साथ और दो छोटे भाई भी आ मिले।

मेरे बड़े भाई

मर बड भाइयो मे दूसरा सभ्मीनारायण विद्यार्थी जीवन में कसरत की जमह पर सब्ठी धीरता। बागवानी का उस बहुत शौक था। उस महनत क काम बहुत आत थे। वह सब कामा में एक समान उसाह स भाग लेता, पर उतनी ही जल्दी उद्विग्न भी हो उज्जा। उसके बाद वाले भाई का नाम वामुण्डेव था। वह पढ़न म बडा तब था। मरी और उसकी ज्याण पटती थी। पर एक रहस्य की बात थी— वह सुधनी का तबन करता था। वह सुधनी सबकी आँय बचाकर दुबान स लान का काम मर जिम्मे था। उसन बी०ए० (आनम) करक लल०टी० की। एन-दो पप अध्यापक भी रहा। आगे टाटा इन्स्टिट्यूट से इजीनियर बना। बाद म मद्रान सरकार का चीफ इन्जिनियरल इन्सपेक्टर बना। इन प्रकार कौनैज की पढ़ाई शुरू ह्या हान मुगत सभ् अलग हान चल। मसियों की छुट्टिया म ही हम मय पर म मितन। प्रति सध्या समुद्र क बिनारे जान। उन दिनों समुद्र का पाठपन हमारे

घर के सब लोग के अलावा और किसी को नहीं था। अमावस्या के दिन हमारे गाववाले वहाँ स्नान के लिए अवश्य जाते थे। परंतु ममूद्र देखने की चीज है, यह बात उनकी परमाथक बुद्धि को कभी सूझी नहीं।

यह अहंकार है

स्कूल में दूसरो की पढाई में और मेरी पढाई में कोई अन्तर नहीं। इतनी याद है कि जब मैं हाईस्कूल के दूसरे वर्ष में था तो अपनी क्लास में प्रथम आया था। मेरे भाई का कहना था कि इसीलिए मेरा सिर फिर गया और मैंने अपना बेड़ा गव कर लिया। क्या मैं अपने घमण्ड को आप जान सकता था? उसके बारे में लिखने के बदले अपने गुरु मित्र और शरारतो के बारे में लिखना उचित होगा न।

नदलिके से तुलना

सबसे पहले मुझे अपने एक पुराने गुरुजी के बारे में कहना है। नदलिके लक्ष्मी-नारायणप्पा और मेरे दोना के गुरु एक ही थे कहीं तो आपको असूया हो सकती है। वे थे मठली मुन्नाय। वे बड़े नाटे थे, चौड़ा मुह था, बड़ी-बड़ी मूछें थीं। क्लास में बैठते तो उनका स्वर उही की सुनाइ देता था, आँखें बंद करके ही पढाने थे। उनके हाथ में सदा एक साटा रहता था। उसी से अपराधियों को सजा देते। उन्होंने यक्षगान के कुछ प्रसंग लिखकर प्रकाशित करवाये थे। पता चला है कि कवि मुद्दणा का यक्षगान में रुचि उही से पदा हुई थी।

हाईस्कूल की पढाई माने मेरे कितने अध्यापक नहीं रहे होंगे? यहाँ तो केवल स्मरण करने लायक कुछ लोगो की ही बातें बता रहा हूँ। जब मैं हाईस्कूल की पहली कक्षा में पढता था तब एक कथोलिक अध्यापक अग्रजी पढाने आते थे। वे एक हाथ भर लम्बी छड़ी के बिना पढा ही नहीं सकते थे। सुबह पढाने आते समय हाँ घुब घुत् होकर आते थे। नशा उतारने के लिए हमारे घर से छाछ भगवाकर पीते थे। तभी जाकर विद्याधिया का शांति मिलती। ग्यारहवीं कक्षा तक उन्होंने हमारा पीछा किया। उनकी आँखें सदा लाल रहती। मुह भी ऐसा ही रहता था। वे हम अपकी पढाते थे इससे ज्यादा कोई बात याद न होने पर भी मैं उन्हें भुला नहीं पाया। कुछ वर्ष पहले एक बार वे पी फटने से पहले ही हमारे घर आये। आते ही मैं तुम्हारा मास्टर रहा हूँ। तुम्हें याद है? कहकर मुझ अवरज में डाल दिया। भला मुग कस अचरज न होता? तब वे पचहत्तर के हो चुके थे। उनका स्वागत करके कुछ भेट दकर उन्हें विदा किया। उसके बाद वर्ष दो वर्ष में एक बार मिथ्य की आशीर्वाद दकर ही जाते। अस्सो वर्ष की आयु में भी वे मंगलूर में पुनः तब वत्तीस मील पदल चलकर आते रहे। उनकी शारीरिक शुस्ती में मैं हैरान रह गया। यह तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकता। पता नहीं

उहें किस शक्ति न इतने समय तक उत्साहित रखा ।

विद्यार्थी कुलगुरु

गैब्रियल कौडस अनक पीढियो से कुदापुर के विद्यार्थी समुदाय के लिए कुलगुरु थे । व ड्राइंग सिखाते थे । ड्राइंग मे पास न होन वाले लडको को वे 'सूअर कूम' की उपाधि देते । उनका निणय था कि ऐसा कूम और किसी विषय मे पास नही हो सकता । विद्यार्थियो के हाथ के फुट रूलर ही उनकी शिषा का हथियार होता था । अपने विद्यार्थियो से वे बहुत प्यार करते थे । अपने पचासवें वष मे वे बम्बई मे रहने लगे थे । वे जहाँ भी रहते दूढकर अपने विद्यार्थियो के यहाँ पहुँच जाते । उनके सुख-दुख को अपना समझकर उनसे पूछ-ताछ करते रहते । बम्बई से कुदापुर आत-जाते । जब भी हमार घर आते तब खट्टी लस्सी पीकर जाते थे । उनका उत्साह और प्रेम कभी नही घटा । उनके समान शिष्यो पर वात्सल्य रखनेवाले अध्यापक मैंने और कही नही देखे । शिष्यो की एक डायरेक्टरी ही उनके पास रहती थी । ऐसा कोई विद्यार्थी न था जो उनसे प्रेम न करता हो । दिल्ली से साहित्य अकादमी का पुरस्कार लेकर जब मैं बम्बई गया तब बम्बई मे मेरे स्वागत के लिए एक बृहद आयोजन किया गया था । उस स्वागत समारोह के समय अपन गुरु श्री कौडस को वहाँ देखकर मुझे अत्यंत सतोप हुआ था ।

भूत की करामात

एक अद्भुत घटना हमारे कौडस मास्टर साहब के घर म घटी जो मैंन अपनी आँखा से देखी । वे नय-नय प्रोटेस्टेंट त्रिश्चयन बने थे । फिर भी ब्राह्मणा के घर का माँवार और रसम खखकर काफी मुधर चुने थे । उहनि एक बार गाँव के एक देवता का पत्थर लाकर अपने गुसलखान म लगा लिया । तब से एक महीने तक रात-दिन उनके घर मे उस देवता का उपद्रव जारी रहा । कोटेप्वर के मेले मे पादरियो के साथ मिलकर 'मूर्तिपूजा' के विरुद्ध भाषण दनवालो म व भी एक थे । उही को वही पत्थर का देवता तग करने लगा । घर के पिछवाडे लगायी गयी सारी साग-सज्जी उजड गयी । बपडे, बतन रमे रस चूर चूर होन लग । कुछ दिन को घर म ग्राने के भी लाले पड गय । जहाँ-नहीं आग का उत्पात होने लगा । वह उत्पात बरनवाला प्रेत बेवन उनके घर की नोकरानी का ही दीपता था । यह दूसरो को निग्रार्त नही पडा, पर उसका प्रभाव उकर निघाई देता था । उसका उत्पात सहना उनके लिए असम्भव हो गया । हमार मास्टर साहब न एक दिन उस नोक-रानी को भूत दिग्राइ दन की दिशा म गोली चलायी । बाद म तो उपद्रव तो गुन बड गय । लगभग एक मास तक स्कूल के बच्चो के लिए उनका घर-एक-मात्र-स्पल बना रहा । वहाँ कई अजीब-अजीब दृश्य दिग्राई दिने । हमार मास्टरजी के

घरवालो को दूसरो के घरों में खाना खाना पड़ा। बाद में उनके उस भूत की शरा में जाने के बाद से ही उनका उपद्रव कम हुआ।

भोजन भट्ट

कौडस महोन्मय पेटू लडका के लिए एक आदश अद्ययापक थ। एक बार एक स्पघा में उन महाशय ने सात सेर हलवा खाया था। शायद उही की स्फूर्ति में मैंने भी उनका शिष्यत्व सिद्ध करन को भाजन के बाद एक स्पघा में बत्तीस हाठिंग (पूरन पूगी) खाये थे। मुझसे भी एक छोटा लडका सतीस तक पढ़चा था। बाल्य साहब ने एक बार एक छोटी-सी तलवार से एक चीत पर हमला किया। उसमें उही की जीत हुई। ऐमे गुरु को पसंद करने के सिवा और किसे पसन्द किया जा सकता है?

कानड के गुरु

कुदापुर स्कूल में मर पढाई गुरु करन के पहले में ही शिवरामय्या कानड के पण्डित थ। उहान हनुमद्रामायण का सम्पादन भी किया था। व ममलूर के थे। वे श्रौध के अवतार थे। उनके बाद उनका स्थान पर श्री ए० सीतारामय्या आये जो उतन ही शांत थ। उहानि बडे परिश्रम से विद्याजन किया था। काफी समय तक वे हमारे घर में ही रहे। उहान हमारे लिए कर्नाटक पुस्तक भण्डार नाम से एक पुस्तकालय खाना। पहली बार उहानि हम कानड साहित्य करन का पान करन का अवसर दिया। तभी मैंने वैक्याचाय, पुट्टण्णय्या, वामुदवाचाय, तिमलाब और चामराज नगर के वैकटरमण शास्त्री आदि की रचनाए पढी। तब मैं हाईस्कूल के दूसरे साल में पन्ता था। कृष्णमूर्ति, कादम्बरी मण्ड, सत्यवादी आदि पत्रिकाए मंगवाकर हम पढत थे। इस प्रकार कानड साहित्य के प्रति रुचि अकुरित करनेवाले पहले व्यक्ति श्री शिवरामय्या ही थ। तब मरे पढ उपयासा में मसूर के पुट्टण्णय्या का मडिन्दुणा महाराज (जैसा करोगे बसा भराग) और बोलार बाबूराम का लिखा 'वाग्देवी' प्रमुख हैं। दोना ही सामाजिक उपयास हैं। वाग्देवी में उडुपि मठा का ययाय चित्रण है।

संस्कृतमय शैली का मोह

श्री शिवरामय्या के पुस्तकालय शरा ही तब मुझ पता चला कि कानड में पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। प्राथमिक शास्त्र में पढत समय सेन फ्रँडस और मरटन की कहानों और वितामणि के कुछ भाग पढ़े थे। बाद में मैंने कानड पुस्तकें उनके पुस्तकालय में हाँ सेकर पढ़नी शुरू की। मेरा ध्यान कहानों की ओर ज्यादा था। गली पर मेरा मोह बकिम्बट्ट के उपयासा का कानड अनूवाण पढन के बाद ही

शुरू हुआ। मूल के समान कानड के अनुवाद में भी संस्कृत शब्दों का बाहुल्य था और वग भाषा का विशिष्ट प्रभाव था। बेंकटाचाय के 'रजनी' के (अंग्रेजी से अनुवाद) कानड अनुवाद में और 'विपवक्ष' तथा 'मणालिनी' आदि की भाषा में बड़ा अन्तर है। रजनी 'लास्ट डेज आफ पाम्पी' का अनुवाद था, मूल शैली का अनुकरण के लिए उसमें अवकाश ही नहीं था। उस जमाने के गलगनाय की रचनाएँ मैंने पढ़ी थी, पर वे ज्यादा पसंद नहीं आयी।

नदलिके के गुरु कौन थे

शिवरामय्याजी पुस्तक के कीड़े थे। उनका घर कुंदापुर से बारह मील ऐरोडे में था। वहाँ से पैदल जाते-आने समय पुस्तकों के बड़े से एक गटठर को उठाकर साथे बिना उन्हें तसल्ली नहीं होती थी। उन्होंने संस्कृत और प्राचीन कानड का विशेष अध्ययन किया था। नदलिके (कवि मुद्दण्णा) जी से उनका अच्छा परिचय था। शिवरामय्याजी द्वारा उपलब्ध करायी गयी सामग्री की सहायता से ही बेनगल रामराय ने नदलिकेजी के बारे में एक लेख लिखा। लिखते समय विषय के साथ पूरी सच्चाई बरत नहीं पाय। यह तो सच है कि नदलिकेजी को मळल्लि-सुब्बाराय साहित्य के अध्ययन में महायक थे।

संस्कृत से संघर्ष

शिवरामय्या उस जमाने की कानड पत्रिकाओं में लिखते बरत थे। यह देखकर कानड पत्रिकाओं ने प्रति मेरी भी रुचि बढ़ी। उनका संस्कृत पाण्डित्य देखकर मुझे उनमें संस्कृत सीखने की इच्छा हुई। दो वर्ष तक मैंने उनसे संस्कृत पढ़ी। भण्डारकर की एक-दो पुस्तकें, रघुवश के कुछ भाग, माघ के कुछ भाग, ऋतु-संहार, समामचन्द्रिका—य सब कण्ठस्थ करने का यत्न किया गया। कण्ठस्थ करना मेरी मर्यादा का कभी पसन्द नहीं आया इसलिए उन्होंने जो संस्कृत पढ़ाई वह उही के पास रह गयी और मैं केवल बन्नडवाला ही रह गया।

गम्भीर लोगों से

मैं एक गुरुजी थे। नाम था श्री पुराणिक। एक जमान में हम दोनों साथ पढ़ते थे। वे बड़ी कक्षा में थे और मैं छाटी बना था। कभी-कभी एक साथ गाँव आया करते थे। वही, जब मैं नौवीं बना में पढ़ता था, ज्ञानपाठ का कर आया। "भला मुझे क्या मान्य होना ? मैंने मजाक में पूछा, 'कहिए जनाब, क्या हैं ?' वे गम्भीरता में मेरी आर दृष्टि हुए स्कूल के भीतर चले गये। एक घण्टे के बाद मेरे ही अध्यापक बनकर हमारी कक्षा में आकर बैठे। मैं हैरान हो गया। एक बार व्याख्यान का सवाल हल करने समय कुछ गलती हो गयी। उन्होंने उन

दुबारा करने को कहा। भला भेरे अहम् को क्या न दुख होता? मैंने दुबारा किया नहीं। दूसरे दिन उहाने पूछा, 'वह तवाल दुबारा किया?' मैंने "नहीं" कहा। उहाने पूछा, "बुरी नही क्या?" मैंने फिर कह दिया "नहीं"। आगे से उहाने मुझ वैसे सजा नहीं दी। उनकी गम्भीरता को ताड़न के लिए कुछ विद्यार्थियां न खजली बूटी उनकी नुसों पर रगड़ कर उहे खूब तग किया।

शाला की पढाई में केमिस्ट्री के अतिरिक्त मुझे और किसी विषय में रुचि पग न हो पायी। हमारा विज्ञान के अध्यापक गिराली मुन्नाय पूछा करते— डिड ही वण्ट। उनका अंग्रेजी का पाण्डित्य इतना ही था। परंतु रसायन शास्त्र बहुत बढ़िया पढात था। उनमें मैंने सिर्फ केमिस्ट्री ही नहीं सीखी बल्कि दूसरे लडकों की भांति प्रयोगशाला में सामान भी चुराया था।

मुख्याध्यापक

जा भी कुदापुर शाला में पढ चुका है वह हमारे मुख्याध्यापक बेटवाल गणनाथराय को भूल नहीं सकता। सग लाल पगड़ी और काली कमीज पहन कर आत था। मैं कभी उहे कपडे बदलकर आते देखा ही नहीं। हम व हर प्रकार का विषय पगता था। जनवरी परवरी तक गांव की गली गली घूमत रहना उनका स्वभाव था। आत में सारे पीरियड लेन लग जात। कभी कभी व रात का आठ-साठ आठ तक भी पढाते थे। नाचते-बूदते, हँसते-मजाक करते और किसी-न किसी तरह परीक्षा में हमारी नाव पार करा देन की जितनी शक्ति उनमें थी उतनी और किसी में नहीं। शाला में विद्यार्थी, उनसे जितना द्वेष रखत था उतना और बिभी में नहीं। उनका विरोधी अध्यापक के साथ मल-जोल रखनेवाले विद्यार्थियां पर उह बड़ा गुस्सा आता था। रात में कौन सा विद्यार्थी पढता है और कौन-सा नहीं इस बात की सी० आई० डी० का काम भी व करत था। रास्त में घूमन फिरते विद्यार्थी यदि हाथ पढ जाते तो व वहाँ उनकी पिटाई करत में नहीं चूकत थे। एक बार उहोंने एक इतवार के दिन दो बजे पढन को बुलाया था। हमने मवा दो तक उनका इतजार किया पर वे न आय। मैं चला आया। घर सोटत वकन दूसरा को उवसाया। भर साथ व भी चले आये। जब गुरुजी आय तक एक दो के अलावा काइ न था। उस दिन बेचारों को अपना गुस्सा आप ही पीना पडा।

उहे शाला में लडका का अंग्रेजी व सिवा दूसरी भाषा में बात करना कतई पमद न था। यदि कोई बोलना ता व छडी में उमकी भरभमत कर दत। उनकी यह बात रावन का मैंने एक दिन एक उगाम निकाला। जब वे पास के कमर में थे तो मैंने एक लडके से हसन का कहा। वह लडका जोर से हसन लगा। तब मैं उस हाँटत हुए कहा यू तिली एस व्हाइ आर यू लाफिंग इन

कानठ, लाफ इन इगलिश" वह बात उन्हें चुभ गयी। आगे से उनका अंग्रेजी का नियम जाता रहा। हमारी शाला की घड़ी को उन्हीं के साथ चलना होता था। वे चाहे कितनी भी देर से क्या न आयें, सुइया को घुमाकर वही ले आत जिस समय उनकी आना चाहिए था। वह घड़ी उनसे दुगनी उमर की थी।

अनासक्ति योग

घर में भया के नियंत्रण से छुटकारा मिलने के बाद, हाईस्कूल में तीन चार वर्ष बड़े सन्तोष से बिताय। पढ़ाई पर मेरा ध्यान कम था। शरारत, मजाक मुझे प्रिय थे। एस०एस०एल०सी० पढते समय ता मैंने पुस्तकें ही कम खरीदी थी। परीक्षा से दस दिन पहले मैंने अंग्रेजी की पुस्तक एक बार पलटकर देखी थी। शेष आठ दिन अर्थ लडका को तग करता रहा। परीक्षा की पहली वाली रात का कोटेश्वर में यमगान देखने के लिए अपन कुछ मित्रों को जगाकर साथ लेकर गया था। खैर परीक्षा में ज्यादा अंक लेकर हाजिमा खराब न करने पर भी औसतन नम्बर नेकर पास हो गया। सभी मुझे कुदापुर की शाला के ऋण से छुटकारा मिला।

शाला से बाहर

शाला के भीतर के कायन्त्रम का केवल मुझसे सम्बन्ध था क्या? वही गुफ व ही पाठ, वही शाला! समझ में नहीं आता था कि आठ वर्ष की हाई-स्कूल पढ़ाई कैसा पूरी हो गयी। इसीलिए शाला के बाहर की हलचल के बारे में बताऊंगा। हलचल कहाँ से आती? हमारे कुदापुर ने तो भैंस का दूध पी रखा था। मेरे मित्रों में कइयों ने खेल में ताम बनाया था। क्रिकेट और फुटबाल हमारे गाँव में खेल जात थे। मैं बड़ा होत-होत खेलों में रचि लेने लगा। फुटबाल में गेंद रोकने, दूसरे को पास देने और गोल करने की ओर मेरा ध्यान नहीं जाता था। चाह कसा बलवान क्या न आये उसकी टाँग पर लात मारकर अपनी शक्ति दिखाने की इच्छा रहती थी। उसी प्रकार पास आयी गेंद को पाँव से खेलने के बदल सिर से खेलना ज्यादा प्रिय लगता। क्रिकेट में थोड़ा बहुत फील्डिंग कर लेता। खैर, मैं कुछ क्रिकेट मैचों में भाग लिया। खेल में मेरी दक्षता के कारण मेरा चुनाव नहीं हुआ करता था, चौधकर खिलाड़ियों का जाश दिलाने की शक्ति मुझ में थी इसीलिए चुन लिया जाता था।

जब मैं चौध फाम में आया तब कई मित्रों ता एकदम मुष्टण्डेय कई छाटे भी थे। सभी मुझे पता चल गया था कि विद्याधिया में कुछ शृंगारप्रिय भी हैं। हमारे गाँव के एक विशिष्ट परिवार में घड़ी-बड़ी सडकियाँ पडन आया करता थी। सडकों को पवानिग करके गहस्याभय की दीगा देती थी।

जलनीडा

मुझे पानी का खेल बहुत अच्छा लगता था। उन दिनों हमारे घर के समीप एक तालाब का जीर्णोद्धार हुआ। प्रतिदिन सुबह और शाम मैं वही बना रहता। ऊपर से कूदता, घुट देर तक पानी में डूबता उतराता तैरता। एक बार मैं एक लडके को तैरना सिखा रहा था। वह पानी में डूब गया। उसे किनार पर लाने में मैं जा परिश्रम किया उसका बयान नहीं कर सकता। मृत्यु की विचित्र अनुभूति पहली बार मुझे तब हुई। उसे वहाँ छोड़कर पार हो जाना मेरे लिए सम्भव था। ऐसा कहे तो? यह प्रश्न भी तब मेरे सामने आया था। खर जस-तैसे उसे पार लगाकर मैं भी पार हो गया।

मेरे विद्यार्थी काल में राजनीति की हवा ज्यादा नहीं बही थी। यूरोप का प्रथम महायुद्ध समाप्त हो गया था। मैं अंग्रेजी पढ़ रहा था। डा० एनीबेसेंट की 'यू इण्डिया' पत्रिका पढ़ा करता था। उनके द्वारा चलाय गये राष्ट्रीय आन्दोलन में भासक्ति पदा हो गयी थी। एनीबेसेंट, वाडिया और अह्देल की गिरफ्तारी की खबर सुनकर मन को चिंता हुई थी। उन दिनों मैं डॉ० बेसेंट के विज्ञानालय बिल्गा नमीज पर लगाकर घूमनवाला मैं अनेला ही था।

दाशनिकों के साथ

जब मैं फाय फाम में पढ़ता था तब तनालि के नारायण स्वामी अय्यर आध्यात्मिक पान प्रचार के लिए हमारे यहाँ आय थे। वे यियोसोफिकल पाथ को मानते थे। हमारे घर में काफी समय तक रहे। तब वे लगभग साठ साल के थे। तेजस्वी मुख, खोदनाय ठाकुर के समान दाढ़ी रखते और मदा रशमी कपड़े ही पहनते थे। उनका रूप बड़ा भव्य था। वे अच्छे वाग्मी थे। उन्होंने दस पंद्रह अच्छी पुस्तकें लिखी थीं। बड़े सबरे उठकर स्नान, ध्यान और प्राणायाम करने। दिन में दो बार गेहूँ की बनी उपमा ही उनका भोजन था। वे हम सनातन धर्म सिखाते थे। दो-तीन वर्ष तक मैंने उनसे बड़ी रुचि से पढ़ा। जब से वे हमारे गाँव आये तब से उनकी हमारे हैड मास्टर रघुनाथ से बड़ी मित्रता हो गयी। आगे एक दिन अय्यर ने उनसे पूछ ही डाला मुना है कि तुम बहुत व्यभिचारी हो। परिणाम यह हुआ कि मुझे हैडमास्टर साहब के गुस्से का शिकार बनना पड़ा। अय्यर हमारे घर में रहते थे न।

स्वाउट

हार्डस्कूल में पढ़ने का हमारे वर्ष में पढ़ते समय मैं उड़ुपि गया था। तब मुजीर उमानाथराव से मेरा परिचय हुआ। हिन्दुस्तान में डॉ० बेसेंट ने तभी स्वाउट का प्रचार करना किया था। उमानाथराव मगनूर के गणपति मूल में अध्यापक थे।

उहें स्वाउट बड़ा प्रिय था। उनकी प्रेरणा से मैं विद्यार्थी जीवन में ही गांव में स्वाउट दल तैयार करने लगा। उससे सम्बंधित लडका पर हेडमास्टर रघुनाथ राय की वत्र दृष्टि पड़ी। फिर भी हमारा दल शिरली गांव के मेले में जाता और और शान से अपना काम करता रहा। एक बार चूड़ियो, मालामा और श्रिलौना की दुवान में लगी आग हम लोगों ने ही बुझायी। सॉर के काटे एक व्यक्ति की चिकित्सा की, गुडहन पाया। शिराली में हमारे साथ आये सारस्वत लोग अपने मठ में जाकर भोजन करने थे। हमारे लिए रसोई का सामान आ जाता था। मेरे साथ आया सदाशिव नाम का एक मात्र सारस्वत लडका भोजन करने मठ नहीं जाता था। उसका जीजा डा० हट्टियगडी एल०आर० सी० पी० करने विलायत गया था। इसलिए वे मठवाला से बहिष्कृत थे। आनंदाश्रम के आजकल के स्वामी जी ही तब भी थे। तब वे बहुत छोटे थे। इस दीर्घावधि में उनकी धार्मिक दृष्टि काफी उदार हो गयी है यह मैंने देखा भी है और सुना भी है।

मेरा स्वाउट दल बहुत दिन चल नहीं पाया। उसका कारण यह था कि सरकार द्वारा एक और दल शुरू कर दिया गया था। स्वाउट नियमों के अनुसार उसमें ईश्वर, ताज और देश के प्रति भक्ति व्यक्त करना आवश्यक था। ताज अथवा राजा का सम्मान करने का मेरा मन नहीं करता था। इसलिए उससे मैं दूर हट गया। बाद में हमारे रघुनाथ राय जी ने ही उस स्वाउट दल को अपनी शाखा में ही आश्रय दिया।

अकाल की पुकार

उन दिनों मुझे सावजनिक सेवा करने का अनुभव ही नहीं था। केवल एक छोटी घटना याद आती है। उस घटना से रघुनाथराय और मुझ में मित्रता हो गयी। मुझे शाला के पुस्तकालय की चाबी दे देने तक वे उदार हो गये। तब हमारे जिले पर अकाल का कुप्रभाव पडा था। हाईस्कूल के दूसरे वर्ष में पढ रहा था तब मैं। गांववाले जगह जगह पर अन्नदान कर रहे थे। मुझे भी एक दिन ऐसा करने का जोश आया। लडका से चन्पा उगाह कर दान करने का एक दिन निश्चय किया। कोई उपयुक्त स्थान न मिलने से रघुनाथराय के स्कूल में ही जगह मांगी, जहाँ वे खुद यही काम कर रहे थे। उसके लिए उन्होंने सहप स्वीकृति दे दी। उस दिन हमने अपने-अपने घबरा स चावल दिए और उन्होंने अपनी तरफ से गुड का प्रबंध किया। इस प्रकार हमने गरीबों को घीर परोसी।

नाटक में रचि

इस दशा में, कला के मोह न और एक मोड लिया। यद्यपि पर का प्रेम जाता रहा और मेरा ध्यान नाटकों की ओर मुड़ गया। हमारी शाला के समीप अडप की

‘रजिश्वरी नाटक मण्डली’ ने डेरा डाला। सन 1913-14 के लगभग मने उनके कालिदास प्रभावती, दरवार, युवतीविजय जैसे पुराने नाटक देखे थे। “सोने की अंगूठी किस के वश में चली गई” ‘का तासुनो !”, “ओह चंद्रोदय हो रहा है!” गीता न हम उन दिनों आकर्षित किया था। ए बी वरदाचार्यजी की कम्पनी दूसरी, तीसरी बार हमारे गाँव आयी थी। वे अपनी कम्पनी के लडकों का विशेष ध्यान रखते थे। मुझे उनके नाटका का वैभव, मंगीत अदभुत ट्रांसफर सीनरी ने बड़ा आकर्षित किया। अपने भाइ के सो जाने के बाद मैं उनके नाटक देखन जाता और अगले दिन मार भी खाता ऐसा सद्भ भी आये थे। मन वरदाचार्य और कृष्णमूर्ति का अभिनय पढ़न भी देखा था और पसंद भी किया था। तब मरिराय ने बड़ी बड़ी चोटियाँ रख रखी थी। मरि और नगेद्र आदि बाद में सिनेमा साम्राज्य में चले गये। परंतु अद्य भी की कम्पनी के अभिनेता गोपालाचार्य और मुन्बण्णा भट्ट तो 1950 तक नाटक खेलत रहें। वरदाचार्य के नाटक देखने के बाद मैं कई बार घर में कागज काटकर ममुद्र की तरफ बनाकर छलांग लगाता। उस जमान में नाटक के अद्भुत दृश्य ही मन को ज्यादा पसंद आते थे। बाद में मरे बेटे हर्ष ने जब मेरी ही तरह एक पेटी में रंगभूमि का निर्माण कर हैंडबिल बाँटकर, गडरवाहन विष्णु का ऊपर से उतारा तो उसे देखकर मुझे महसूस हुआ कि बच्चों की मनोवृत्ति सदा एक ही होती है।

बाद में हमारे गाँव में गुबी कम्पनी शिरहट्टी के बकाबराय की कम्पनी आदि कम्पनियाँ आती रहीं। इन कम्पनियों को काफी पसंद भी मिलते थे। शिरहट्टी कम्पनी का नारद, लक्ष्मणपुरी का मजाक, असुडी की अतहीन तान, हाबल वामुन्वराय के अलाप—यह सब देखकर नाटका के प्रति झुकाव मरे भीतर भी उत्पन्न हुआ। गुबी कम्पनी भी हमारे गाँव आयी थी। उनके नाटको में बदल प्रभामणि विजय नाटक देखने की तो मुझे याद है। तब नवयुवक वीरणा का साइबिल के पडसाद पर खड़े हो कर सारा गाँव घूमने की याद है। धारवाड के अभिनतामा का भी हमारे गाँव में आगमन हुआ। उसके बाद स तो मराठी संगीत हमारे यहाँ ज्यादा प्रचलित होने लगा। उन नाटको की कबिताएँ खरीद कर हम सब उन्हें पठस्थ करत थे।

हमारे गाँव में जब-तब सक्स भी आया करते थे। उन्हें देखने के कुछ दिन बाद तक गाँव में मदान में हमारे करतबा के बया बहने? छाती पर चार पाँच सोगा का बिठाना दाँता में अपने मित्रा को उठाना, पिरामिड बनाना—यह सब हमारे प्रिय मनोरंजन बन गये थे। दसवीं में पढ़ते समय भी बिल्ली के बच्चे में शेर के रूप की कल्पना करते उससे साथ खेलने की याद है।

नगर का मूपक

रेवड मे बिछडी बकरी

मरा कुदापुर का जीवन आठ बष तक बिना किसी हलचल के अपन आप बीत गया । उसने बाद कॉलेज जाने की सोची । पिताजी अपने सारे बच्चो की कॉलेज मे पढाने को तयार थे । इसलिए मुझे मगलूर जाने मे कोई कठिनाई नहीं हुई । उनका इतने सारे बच्चो की गाँव मे ही बनाय रखने का विचार भी नहीं था । शायद होता भी तो तब रखना साध्य न हाता । मगलूर मे रहन को मेरे भाई का घर भी था । उसने एल एल० बी० पास करके तब बकालत शुरू कर दी थी । मगलूर के सयासी गृहडे म उसका घर था । वहाँ से गवर्नमेंट कॉलेज ज्यादा दूर नहीं था । दाखिला लेने के लिए जब मैं पहली बार गया तार् पिताजी का अलपाक का कोट पहन कर गया था, यह याद है । उस कोट की महिमा से याँ किमी और कारण घम दाखिला मिल गया । चौथे फाम के बाद स मैंन कभी कोट नहीं पहना था । कॉलेज मे दाखिला मिलने के बाद दुबारा वह कोट मैंने नहीं पहना । कॉलेज के अहाते म आठ दस सडका के साथ बैठना पडा । वहाँ एक खास बात देखने मे आयी । कॉलेज मे केनरा हाईस्कूल के सडके और मिशा स्कूल के सडका का झुण्ड अलग-अलग बठा करता था । कुदापुर से आये पाँच छ सडके एलासियम कॉलेज मे पन्ते थे । इम प्रकार मरी स्थिति रेवड से बिछडी बकरी के समान हा गयी थी । कॉलेज के अध्यापक अपना भाषण झाड कर चले जात—बहना चाहिए कि य गप्पे मार कर ही चले जात । मुझे इतना ही याद है । पानड मिग्यानवान पण्डित सीतारामाचार्य के अतिरिक्त मुझे किमी पर कोई खास अभिमान पदा नहीं हुआ । हाई स्कूल के जमाने के विद्यार्थी मित्र दूर दूर हो गय और दूमरा म मित्रता भी नहीं हुई । आसबस अपने पुराने सहपाठियों से मुलाकात ही कम होती है । कॉलेज के दिना मे अपने माय के पाँच छ जनों से ख्यादा मेरा परिचित नहीं हुआ । उनमें एक हाईकोट का जज बना और तीन बकीस बन गये दूमरे पता नहीं क्या-क्या बने । मेरे अध्यापकों मे प्रिंसिपल सबूर रामराय चिन्ता विभाग म उन

निदेशक व पत्र से निवृत्त हुए। फिजिक्स के प्रोफेसर श्रीनिवासजी मटिरियला-जिकल विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी बन। शेष पता नहीं कहा-कहाँ है। वर्षों बाद पुनः मही एक दिन मुझे अपने अध्यापक श्री सोताराम चालु के दशन हुए। वह अपूर्व श्रेष्ठ वास्तव में एक सुखद अवसर था।

व्यासग, विरक्ति

कॉलेज में क्रिकेट खेलने वाले लड़कों पर प्रिंसिपल को अधिक अभिमान था। मैं बढिया खिलाड़ी नहीं था इसलिए मैं अध्यापक और सहपाठियों से जरा दूर ही हो गया था। पढ़ाई में भी मरी विशेष आसक्ति न थी। हाँ, कॉलेज के पुस्तकालय का छुट्टी उपयोग करता था। हमारे अग्रजों के प्रोफेसर श्रीराम अय्यर ने कौन कौन-सी किताबें पढ़नी चाहिए इसकी एक सूची दी थी। उसमें से रेडयाड किर्पलिंग का लाइट डेट फील्ड उप-यास ले कर पढ़ने लगा। उसे पढ़ कर समाप्त करने के बाद उनकी सूची से मैं ऊब गया। मुझे कोई भी किताब पसन्द न आयी। पर हमारा पुस्तकालय बहुत बड़ा था। सभी किताबें किर्पलिंग की ही तो नहीं थी? न जाने क्यों मैंने एक क्रम बनाया। वह यू था कि वह किताब भारतीय विचार धारा की श्रेणी चाहिए या फिर हिन्दुस्तानियों की ही लिखी हुई होनी चाहिए। इस सङ्कुचित दृष्टिकोण से किताबें लेकर पढ़ने लगा। रवीन्द्रनाथ की अधिकांश पुस्तकें मैंने सभी पढ़ी। कॉलेज की पढ़ाई के बारे में मरी विरक्ति तब और पक्की हो उठी थी।

सन् 1921 तितम्बर में नागपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। मेरे मित्र पन्मराज आरिण वहाँ गए थे। गाँधीजी का असहयोग आन्दोलन सब जगह फल गया। शायद अक्तूबर का माह था। बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु से हम लोग को बहुत दुःख हुआ। मेरे एक विद्यार्थी मित्र ने उनका श्रद्धाञ्जली देने के लिए छुट्टी ली। उसको एक दिन में ही हज़ार प्रतिपाँ विक्रय की थी। उसके कुछ ही दिन बाद विनायक आन्दोलन के लिए गाँधी जी अलीभाइयो सहित भगलूर आये थे। इससे विद्यार्थियों को स्वदेशी, स्वराज्य आन्दोलन ने अपनी ओर आकर्षित किया। कांग्रेस के प्रति मेरी विरक्ति अब पूर्ण हो उठी। शायद रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाएँ पढ़ने के कारण मुझमें शान्ति निवेदन जान की इच्छा प्रबल हो उठी थी। वहाँ रेकर्ड सा० एफ० एड्स थे। मैंने उनसे पत्र व्यवहार किया। उन्होंने आगे का लिखा। मैंने अपने पिताजी को इस बारे में बताया। उन्होंने कहा "बंगाली ब्राह्मण मछली घात है। वहाँ जान की जरूरत नहीं।" श्री एड्स ने वहाँ से लिखा कि वहाँ रहनेवाले मैथिल ब्राह्मण (गुजराती) मछली नहीं खाते। पर अंत तक इस बारे में मैं अपने पिताजी का मन बदल नही सका।

एक सहचर

उही दिना हमारे घर के पास के आयसमाज के प्रचारक पण्डित अमरनाथ से भेंट हुई। उनक सम्पर्क से, हिंदू धर्म के सुधार के बारे में अधिक आसक्ति पैदा हुई। उनके रविवार के हवन में मैं जाया करता था। उनसे हिंदी सीखने लगा। मन में स्वदेशी आन्दोलन, सुधार, शान्तिनिकेतन भरे थे। अंत कॉलेज में जाकर बठना शुरू हो गया। जनवरी तक किसी रूप में जाता रहा। कॉलेज से चलकर घर आते समय रास्ते में 'बाउटे गुडडे' मिलता। ऊब जाने पर उस टीका पर जा बैठता और समुद्र को निराशा भरी दृष्टि से निहारता। उन्ही दिनों एक और छोटा-सा विद्यार्थी भी वहाँ कभी कभार आया करता था। वह गणपति हाईस्कूल में तीसरे वर्ष का विद्यार्थी था। नामेश था उसका नाम। हम दोनों में गहरी मित्रता हो गयी। उसी स्नेह के कारण हम आग सहचर भी बन। हम दोनों बहुत साल पुत्र में रहे। उससे मैंने जितना प्यार किया, उतना और किसी से नहीं। स्नेह और मानसिक विचार धारा के हिसाब से हम दोनों में उत्तर दक्षिण जितना अंतर है।

अशान्ति के तुमुल में

फरवरी के आते-आते मेरा मन एकदम उलझन लगा। मन में यह विचार उठ रहा था कि मुझे राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़ना चाहिए। बुद्धे ने मेरे इस विचार पर पीठ टाकी। कॉलेज जाने पर भी मैं पढ़ता नहीं था। किसी न किसी वान में बैठ कर भविष्य की चिन्ता किया करता। एक दिन हमारे फॉच के प्रोफेसर कण्ठ्या मेरी मुक्ति में सहायक हुए। उन्होंने पास आकर पीठ थपथपाकर पूछा, "क्या सोच रहे हो? पढ़ाई छोड़ना चाहते हो?" मैंने "जी हाँ" कहा। तब उन्होंने कहा, 'पढ़ाई से कोई लाभ नहीं?' मैंने कहा, 'उममें कोई मूल्य दिखायी नहीं देता'। वे बोले 'सोचो!' उनके जाते ही मैंने एक पत्र में प्रिंसिपल को यह लिखकर भेजा कि मैं कॉलेज से असहयोग कर रहा हूँ। सुना है उन्होंने उस देख कर "उस लड़के को बुलाओ। यह क्या? छुट्टी के अवसर के समान लिखकर भेज दिया?" मैं उनक पास गया नहीं। उस दिन फरवरी (1922) की दस तारीख रही होगी। कॉलेज जान का मेरा वही अंतिम दिन रहा। घर जाने पर भाईसाहब को पता चल चुका था, मैं जरा धराराया। वे स्वयं बोट का बहिष्कार करने की सोच रहे थे। पर पिताजी के डर से चुप थे। इसकी भनक पड़त ही मैं उनका घर छोड़ कर चला आया।

राष्ट्रीयता का ज्वर

श्री बार्नाड सदाशिव राय सब तिलक महाविद्यालय चला रहे थे। डी० के०

भारद्वाज वहाँ के अध्यापक थे। वहाँ खादी और चरखे का ही धोल-बाला था। मैं वहाँ केवल एक दिन गया था ऐसा मुझे याद है। मेरे बड़े भैया न फिर से मुझे घर बुला भेजा। कॉलेज जान का उपदेश भी नहीं झाडा। उन्होंने भी एक साल को नाट का बहिष्कार कर दिया। हमारे लिए उस जमाने की सबसे बड़ी घटना यही थी कि मगलूर में अखिल कर्नाटक राष्ट्रीय परिषद की बैठक हुई। 'शट्टी गुड्ड के जन अहाते में उसके लिए मण्डप बनाया गया था। भारतकोविला सरोजनी देवी ने उसकी अध्यक्षता की। उसमें कर्नाटक के शेर गंगाधरराव देशपांडे, कौजलगी श्रीनिवासराम आदि ने भाग लिया था। उनके जोश भरे भाषण सुनकर राष्ट्रभक्ति की स्फूर्ति हम सब के खून में ढाठें मारन लगी। तब पहली बार होनय लोग हम सबके साथ आकर बैठे थे। तब से मगलूर में मदान में प्रतिदिन सभाएँ होने लगी। उस जमाने में मगलूर के एक महाशय एक श्रेष्ठ वक्ता के रूप में प्रसिद्ध थे। अंग्रेजों को भगाने के लिए वे अपने भाषण में 'हरामजादे और 'हरामखोर' का धारावाह प्रयोग करते। एक बार उन्होंने खड़े-खड़े अपनी कमीज फाड़ कर फेंक दी और खादी की कमीज पहन ली। 'भारत के तैंतीस करोड़ लोग यदि अपनी रेंट सिनक दें तो उसमें बह जायेंग यह सारे अंग्रेज' कह कर ब घमकाते। तब के उन महाशय के दिये भाषण में और हाल में पच्चीस साल बाद एक कम्युनिस्ट मित्र के तुलू में दिये भाषण में एकदम कोई अंतर दिखायी नहीं दिया। 'ब्रिटिश शब्द के स्थान पर 'पूजीवाद का प्रयोग किया गया था। मान यही अंतर था। शेष सभी अमृतवाणी वसी की वसी थी। इतना ही नहीं, 1950 के आस पास श्री कृपलानी जी का भाषण सुना था। उनके मुह से 'घोर डाकू' आदि अहिंसात्मक शब्द मुन कर आश्चर्य हुआ था। बाद में कई राजनतिक और सावजनिक भाषण सुने। विषय होता तात्कालीन परिस्थिति' और कम होता ब्रिटिशों की अवहेलना। पेट क दद स लेकर प्रत्येक सामाजिक बीमारी का कारण भारत की स्वतंत्रता का अभाव ठहराया जाता। यह उस जमाने के भाषणा का अमूल्य सार हुआ करता था।

कायदेशत्र का चुनाव

जब मैं कॉलेज छोटा तब कुछ अध्यापकान भी अपनी नौकरियाँ छोड़ दी थी। मेरी ही तरह कुछ विद्यार्थिमान भी कानज छोड़ दिया था। उनमें दो तीन तो जीवन की अंतिम साम तक सावजनिक कार्यों में लग रहे। हाँ, कुछेक फिर से नौकरी में लग गये। कॉलेज छोड़ने के बाद मैं ज्यादा दिन मगलूर में नहीं रहना उद्घुषि चता गया। एक सप्ताह उद्घुषि की राष्ट्रीय पाठशाला में चरमे का प्राप्सेसर रहा। तब भर मित्र रामराय मरुय और हिरियडक नारायणराय न उद्घुषि का अपना काय-क्षण बनाकर सत्याग्रही नाम की पत्रिका शुरू की। मैं अपने विद्यार्थी काल के

केन्द्र कुन्दापुर पहुँचा ।

इस राष्ट्रीय आन्दोलन से हम सबको एक लाभ हुआ । हम सबने कानड में भाषण देना सीख लिया, सब कांग्रेस के प्रचारक बन गये । भाषण के लिए विषयों की कमी होती है क्या ? गाँधी जी की 'यंग इंडिया' पत्रिका पढ़कर स्वदेशी, सत्याग्रह, छादी, असहयोग, नमक का कर, विदेशी कपड़ा का बहिष्कार, विदेशी चीनी का बहिष्कार आदि विषयों पर भाषणें शब्दावली करते थे । हमारे क्रोध के शिकार सदा जलियाँवाले बाग के प्रसिद्ध जनरल डायर और माइकेल ओडायर हुआ करते थे । अमृतसर के हत्याकाण्ड का हम अपनी आँखों देखी से भी अधिक बर्णन करते थे । विदेशी कपड़ों की होली को प्रोत्साहन देते थे । उस विषय पर रवीन्द्र ठाकुर और गाँधीजी के बीच विवाद चल पड़ा था । मरी सारी सहानुभूति तो गाँधी जी की ओर अर्पित थी । श्री ठाकुर ने कल्ट आप दी चरखा' लक्ष्य में गाँधीजी का विरोध किया । तब मुझे लगा कि शांति निवेदन न जाना अच्छा हुआ । ठाकुर और गाँधी जी के विवाद के बीच दोनों के प्रिय सी० एफ० एड्स की स्थिति बड़ी सोचनीय थी ।

पुन कुन्दापुर

मैंने स्वप्नाम भक्ति से कुन्दापुर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया । गाँव के व्यापारी और प्रमुख पुरोहित कामत अपने सगे भाई के समान मेरे सहायक बन । जाने-भीने की कोई चिन्ता नहीं थी । मेरे भाइयों के रहने के लिए पहले स प्रबंध था ही । परन्तु मैं अपने गाँव चोट जा नहीं सकता था । मेरे असहयोग आन्दोलन में भाग लेने पर पिताजी को बड़ा असमाधान था । वे सपना दखा करते थे कि मैं पढ़ लिख कर बकील बनूँगा और कुन्दापुर में एक शेर की तरह जीवन बिताऊँगा । उनका यह सपना पूरी तरह टूट गया । उन्होंने मुझे पण्डा उपदेश दिये । मेरी दाँगीमाँ और सब गिड़गिड़ाए । पिताजी ने रिश्तेदारों से भी कहलाकर देखा, उन सबकी बातें सुन कर मैं कोई उत्तर दे नहीं सका, मैं मूक हो गया । अंत में पिताजी ने, तुझसे बात करना एक पत्थर के छम्भे से बात करने के बराबर है मेरी आशा छोड़ दी । अंत में छम्भे की ही जीत हुई । मेरे पिताजी भी हार माननेवाले नहीं थे । उन्होंने गाँव के सामयाजी को घर बुलाकर मेरी पत्नी दिखायी । सामयाजी ने पल बताया । हम लड़के का बुद्धिभ्रम हो गया है । पोंडे समय में ठीक हो जाएगा । वह समय पतम होने के बाद मैं एक बार उम्मी सामयाजी से मजाक में पूछा, "महाराज, मरी बुद्धि तो अब भी दुग्गत नहीं हुई है वैसी ही है ।"

पिताजी की निराशा

मेरे पिता जी को मुझ से और किसी चीज की जरूरत नहीं थी । वे केवल

इतना ही चाहते थे कि मैं जेल नहीं जाऊँ, घर में आराम से बना रहूँ।

मुझे बुरे ग्रहों से मुक्त कराने के लिए, उन्होंने शांति पाठ कराया। होम वं समय में नहीं बठा तो उस स्थान पर उन्हीं को बँठना पडा।

आप को तब के राष्ट्रभक्त कार्त की देखना चाहिए था। तब मैं छादी का तनियों वाला कुर्ता पहनता था। उस पर विदेशी बटन नहीं लग सकते थे। सिर पर टोपी लगाता था। देशभक्ति का प्रतीक एक चरखा पास रखकर मैंने एव फोटा भी खिचवाया था। उन्हीं दिनों हमारे गाँव में मुंबई टैक्सटाइल शाला का एक विद्यार्थी दत्तात्रेय और विज्ञान का विद्यार्थी शंकरराव असहयोग करने आये थे। उन्हें साथ लेकर मैं गाँव गाँव घूमने लगा। एक सप्ताह में ही वे दोनों मित्र मुंबई को 'रिटर्न विद थैवस' हो गये। बाद में उनके बारे में पता चला — दत्तात्रेय मुंबई के एक कारखाने में नौकर हो गये। शंकरराव रेडियो और कैबिल कम्पनी के एक बड़े पद पर काम करने लगे। जीवन के यश में और सावारिस देशभक्ति में भला कैसे सम्बन्ध हो सकता है? आज के समान तब का देश भक्ति लाभदायक उद्योग नहीं थी।

विश्वविद्यालय का स्नातक

जीवन का आरम्भ

मगनूर का कॉलेज छोड़कर कुन्दापुर में आकर बसने के बाद से ही कहना चाहिए कि मेरा असली जीवन शुरू हुआ और असली शिक्षा शुरू हुई। बड़ों के पोषण का सहारा छोड़कर तथा शाला का मोह छोड़कर समाज के विशाल विद्यालय में पाँच घंटे पर ही मेरे व्यक्तिगत जीवन को रंग मिला। इसलिए अब तक सोचने पर भी उस समय जो मैंने निष्पत्ति किया था वह गलत नहीं लगता। ऐसा मुझे लगता है कि शाला और कॉलेज से बाहर जो कुछ मैंने सीखा उसका सोचा भाग भी मैंने उनमें रहकर नहीं सीखा। पढ़ाई लिखाई छोड़कर कॉलेज और शाला ने मुझे दूसरी कोई कला नहीं सिखायी। मुझे महसूस हुआ कि शाला की दीवारा के बाहर जो कुछ मैंने सीखा वही मेरे जीवन को आगे बढ़ा रहा है। जो भी हो, वास्तविक 'विश्व' विद्यालय का स्नातक मैं अभी तक नहीं बना हूँ फिर भी बसे बस रहा हूँ यह आगे के पृष्ठों में चित्रित करता हूँ।

आदर्श का घूट

असहयोग आन्दोलन में कूदकर जब मैं कुन्दापुर पहुँचा तब गांधीजी के आदर्शों से ओत प्रोत था। उन्होंने हिन्दी स्वराज्य' नाम के ग्रन्थ में जो बातें लिखी थी वे मेरे लिए वेदवाक्य थी। वे यज्ञयुग के एकदम विरोधी थे। मैं उनसे एहिक जीवन से तिरस्कार और ब्रह्मचर्य आदि के आदर्श का एक ही घूट में पीकर जीवन भर के जीवन में बड़े-बड़े सपने देखने लगा। किसी भी चीज़ का यान ही जोग या अजोग का प्रश्न नहीं उठता। घाने के कुछ देर बाद ही वह प्रश्न उठता है। मरे चार में भी यही बात रही।

गाने की करामात

कुन्दापुर में मेरा पहला कार्यक्रम काँग्रेस के सिद्धांतों का प्रचार करना था।

सरकार से असहयोग करने को लोगों से कहना, खादी का प्रचार आदि-आदि । यह काम मैंने गले की ताकत से शुरू किया । कुदापुर के आस पास कोई ऐसा गाँव नहीं जहाँ मैं नहीं गया । शेड्डीमने, और कोल्लूर जैसी घाटी के पास से लेकर बारावली तक मालूम नहीं मैं कितनी धार भटका हूँ । पहले मप्ताह तो मैंने जिन दो मित्रों का जिक्र किया था वे मेरे साथ थे । रोज सात आठ कास चलने पर चक्कर चूर होकर ऐसे ग्रामीणों के सामने भाषण दिये जो सुनना नहीं चाहते थे । उसी से मरे वे मित्र निराश होकर चले गये । पर मैंने अपनी हठ नहीं छोड़ी । गाँव में भाषण सुनने के लिए आठ दस लोगों को भी इकट्ठा करना कठिन था । एक घण्टा मुनाता हूँ—अमावस्ये बलु घाटी से सात आठ मील की दूरी पर है । कृष्णराय कोडगी वहाँ एक रईस थे वे कांग्रेस के भक्त थे । हम दोनों ने मिलकर सारा दिन उस गाँव का चक्कर लगाया, दूर-दूर के दस-बीस धरो में जाकर लोगों को अपने भाषण सुनने को आमंत्रित किया । ऐसी सभाओं के द्वारा ही मुझे कांग्रेस कमेटीयाँ की स्थापना करनी थी । उस साँझ मेरा भाषण एक टूटे फूटे मन्दिर में होना था । शाम को 'जमी लोग' जमा हुए । मैं मेरे अनदाता कोडगी और एक मात्र ग्राम के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए । उसी में मैंने अपना भाषण दिया और भी मैंने ऐसे कई भाषण दिये । अंत में यह महसूस किया कि इस तरह काम नहीं चलेगा । जहाँ लाग इकट्ठे होते हैं जैसे जलसा में, विवाहा में, और कई समारोहों में मैंने अपने मन का प्रयोग किया । मैंने उन अनुभवाओं को अपने एक उपयोगी औदायद अष्टलि में चित्रित किया है । इधर उधर एकाध कांग्रेस कमेटीयों का भी जन्म हुआ । जब हम उन ग्रामों में जाते तभी उनमें ज़रा सी जान दिखायी दती अथवा नहीं । कुछ स्थानों पर चरखे का भी प्रचार किया । उस दिना सांग का ब्रिटिश सरकार पर ही विश्वास था । हमारे गाँववालों को यह पक्का विश्वास था कि ब्रिटिशों के जात ही लोग यहाँ एक-दूसरे को मारकर खा जायेंगे । इस बात का अपवाद संकड़ों में एक-आध ही मिलता था ।

बाप का बाया बरगद

अस्पृश्यता निवारण तो हमारे कुदापुर के लोगों के गले में उतरने की बात नहीं थी । कारण इतना ही था कि वे एकदम पुराने ढंग के थे । रीति रिवाजों से एकदम जकड़े हुए थे । उनमें अंधविश्वासों की कोई हद नहीं थी । ऐसे लोगों के सामने पिता के सगाय बरगद से मत विपकी' कहकर गाँधीजी का तत्त्वोपदेश, स्वामी दयानंद की शास्त्र चिकित्सा यह सब मिलाकर कहें तो क्या वे लोग मान मन ? बाहूँ गाँधीजी हाँ या स्वामी दयानंद ये लोग भला हमारे बाप-दादाओं से अधिक समझदार हैं ?

परन्तु एक-दो बातों में हमारा चातुर्य लाभदायक रहा। ग्रामीणों को झूठ बोलकर मैंने कई जगह मद्यपान निषेध के बारे में भाषण दिये। गाँव के प्रभावशाली व्यक्तियों को अपने साथ साथ रखा। सैकड़ों पियक्कड़ों ने 'आज से शराब छोड़ दी' कहकर हमारे सामने प्रतिज्ञा की। कुछ सप्ताह या मास तक ऐसा लगा कि उहान छोड़ भी दी। कुदापुर में वार्षिक शराब के ठेके की नीलामी के समय ठेकेदारों की बाली के लिए खड़ा नहीं होना चाहिए यह बात हमने गाँव के प्रमुखों द्वारा कहलवायी। पुण्डरीक कामत जैसे व्यक्तियों का गाँववालों पर पूरा प्रभाव था। इसीलिए कई बार शराब के ठेके की नीलामी रुकी भी रही। परन्तु धीरे-धीरे पहले की तरह गाँव में ही शराब के ठेके की नीलामी होने लगी और लोग फिर से पीने लगे।

परदेशी वृद्धि

मेरे स्वदेशी प्रचार के कार्य में चीनी और कपड़ा मुख्य थे। लोगों को ठाँके की मलमल की कहानी भी सुनाया करता था। बाद में यह भी बताया कि मैनचेस्टर का कपड़ा हमारे देश में भर गया है, जिससे हर वर्ष चौंसठ करोड़ रुपया देश से बाहर चला जा रहा है। इसलिए विदेशी कपड़ा जला डालना चाहिए। जहाँ कीपीन भी लोगो को दुलभ हो, वहाँ कपड़े जलाने की बात भला कौन सुनता? सरता कपड़ा मैनचेस्टर तो क्या, परलोक से भी आता तो भी यहाँ के लोग खरीदते ही।

उन दिनों हमारे देश में सालह करोड़ रुपये की चीनी प्रतिवर्ष विदेश से आती थी। शादी-ब्याही में चीनी से बनी चीजें हमारे लोगों को बहुत प्रिय होती थीं। उनके सामने 'चीनी तयार करने में हडिडियों का प्रयोग किया जाता है' कहने पर उन छुआछूत माननवालों की आत्मा को दुख हुआ। बहुत से लोगों ने कम-से-कम पाँचे समय का चीनी छोड़ दी। आगे के कुछ ही वर्षों में मोतीचूर के सड़क और बेसन के लड्डूओं का पहलू जैसी विजय मिली।

चन्दा झूठ बोलना

उही दिना गाँधीजी ने तिलक स्वराज्य निधि के लिए एक करोड़ रुपय जमा करवा का प्रण लिया था। मुझे उस कार्य में बड़ी उत्सुकता हुई। सागो के पास जाकर शोली फलाता और उनसे निम्न की बातें सुनकर सौटता था। मेरी शोली में तो कुछ भी नहीं पडा। बाद में मैंने सोचा कि हर एक के माँगने से लाभ नहीं होगा। कुछ धास सागो को पकड़ना चाहिए जो एक मुश्किल पैसा देंगे। ऐसे कितने लोगों से मेरा परिचय था? मर कुदापुर में रहते समय पड़ोस के एक घर के सड़क के साथ परिचय हुआ था। व तीर्थ हस्तिह तालूक के एक गाँव के साहूकार

के लड़के थे। उनकी अपनी गाड़ी थी। वे एक बड़े जमींदार भी थे, पैसे का लेन-देन भी करते थे। बड़े धार्मिक थे। दिन में तीन बार जाप किया करते थे। जप के समय वे नवरत्ना का जो हार पहनते थे उसी की उन दिना में एक लाख रुपये कीमत रही होगी। अपने बच्चा की पढ़ाई के लिए वे उनको कुदापुर में रहने की व्यवस्था करके खूब धन खर्च करते थे। मैंने साक्षात् उनके पास जाकर माँगे तो एक साथ एक गठरी मिल जायेगी। उनसे मेरा काफी परिचय भी था। वहाँ जाने से पहले, पता नहीं क्या, मैं अपने गाँव भी गया था। तब मेरे पिताजी घर में बीमार पड़े थे। मेरी यात्रा निश्चित हो चुकी थी। 'पिता से दश सेवा मुख्य है' कहकर वहाँ बिना दूबे मैं आगे चल पड़ा। वाद में पता चला कि उससे मेरे पिताजी को बड़ा दुःख हुआ।

मैं अपने गाँव से कुदापुर लौटा वहाँ से आगे चल पड़ा। उस समय की मारी बातें चिरस्मरणीय हैं। रात में बारह मील नाव की यात्रा करके 'सौड' नाम के स्थान पर जा उतरा। मेरी पैली में एक बमीज, एक घोती और एक तौलिया शरीर पर के बपड़े, मेरे पास बस मेरी यात्रा का इतना ही सामान था। वहाँ से पन्द्रह मील दूर पर 'अमावस्ये बलु' नाम का गाँव है। एकदम जंगली प्रदेश। रास्ते में कोई भी दिखाई नहीं दे रहा था। एकदम चक्करदार रास्ता। प्रातःकाल के मूस की ओर मुह करके जिस रास्ते पर ज्यादा लोग चल चुके थे उसी पर चल पड़ा। धर, दोपहर तक मैं 'अमावस्ये बलु' के बौडगी के घर पहुँच गया। वहाँ मे उहाँने एक आदमी मेरे साथ कर दिया। दूसरे दिन सुबह उठकर मैं उस साथ लेकर चल पड़ा। दो घण्टे चलकर पश्चिमी घाटी के पास जा पहुँचा। साथ आया आदमी सौट गया। वह भीतरी घाटी थी। उसका नाम उलतद घाट था। वहाँ एक आदमी चलने भर की सक्ती पगडण्डी थी। धने जंगल के कारण रास्ता भी बड़ा कठिन था। जंगल की उस दीवार पर चढ़ने में मैंने पूरे तीन घण्टे लगाये। वह मूस रश्मिहीन घना जंगल था। बीच-बीच में पशियों का घोर कलरव मात्र मुनायी देना था। उस दिन के डर का मैं बयान नहीं कर सकता। तीन घण्टे के बाद थड़ाई कम हुई। मैं चारों ओर से जंगल से घिरी एक जगह जा पहुँचा था। वहाँ जमीन से ठण्डा पानी रिस रहा था। उसमें मुह धोया, बही जल पीया। थकावट से दिन खोर में घड़कने लगा। मामन और कोई भी रास्ता दिखाई न देने से परवाह हुई। लगा कि रास्ता भूलकर मैं कहीं मेर के माँद में ता आ नहीं पहुँचा। बाँ में उरा इधर-उधर भटकने के बाद एक छोटा-सा रास्ता दिखाई दिया। जंगल में घुस गया और कुछ देर में बाहर निकल आया। तब मूस एकत्र मिर पर आ गया था। वहाँ से पूव की ओर मुह करके चल पड़ा। वहाँ मैं किमते पूछता कि मुझे किम गाँव जाना है वह कहाँ है? सीधे रास्ते पर पूव की ओर मुँद करने चल पड़ा। बीच-बीच में अलग-अलग रास्ते दिखाई दिये। जो

रास्ता ज्यादा चला था उसी पर चलने लगता। एक घण्टा चलने के बाद बम्बल ओढ़े गाय चराने वाला एक गोड़ा दिखाई दिया। उससे पूछा, "शीरनाळ कहाँ है?" सुबह से दिखाई देने वाला वही एकमात्र आदमी था। उसने "यही एक आवाज की दूरी पर है" कहा। मैं आगे चल पड़ा। उसके हिसाब से वह 'राक्षस की आवाज' रही होगी। गाँव के मील तो चुटकियों के होते होंगे। चाहे कितना भी क्यों न चलो वह रास्ता ही खतम होने को नहीं आता।

शीरनाळ के साहूकार के घर पहुँचने तक दोपहर के दा बज गये। वह एक अच्छे अमीर का घर लगता था। कई नौकर-चाकर काम कर रहे थे। एक बहुत बड़ा मुपारी का बाग था। उनके गुसलघाने में एक दिन में जितनी लकड़ी जलती थी उतनी हमारे जैसे लोग के घर के लिए एक बप भर को पूरी हाती। मलेनाळ का वैभव वहाँ के वातावरण से पूणरूप से व्यक्त हो रहा था। उस घर से बाहर आते ही प्रतिक्षण बड़ी-बड़ी चीटिया की दोसे बनाते समय जसी आवाज आती है वैसी आवाज आ रही थी।

पर्वतीय यात्रा

साहूकार के बंटे गर्मी की छुट्टियों में घर पर आये हुए थे। मैंने उनके साथ दस दिन बड़ी खशी से बिताये। वहाँ से उनके साथ श्रुगेरी भी हो आया। तुगा तट और शारदाम्बा का मन्दिर देखकर बड़ा सतोप हुआ। शीरनाळ से निबलत समय मैंने अपना भिक्षुक हाथ उनके सामने फैलाया। उन्होंने दस रुपये का एक नोट रघ दिया। मैंने जितना सोचा था उसमें केवल दो शून्य की कमी थी। मुह लटका कर मैं वहाँ से चल पड़ा। घाटी के बीच आने-जाने वाली उनकी एक बेलगाड़ी में ही मैं चल पड़ा। उसी रात को सो गया। सुबह मैं नौ बजे सीतानदी पहुँचा। वहाँ उतरते समय उन्होंने जो रुपये दिये उससे केवल आठ आने ज्यादा मेर पास थे। वहाँ से कोकरणें चौदह पन्द्रह मील दूर है। जलती घरती पर धूल चाटता मैं आगे चल पड़ा। पहले ही मन मर गया था। अब शरीर भी थक गया। यथा-माँदा मैं रास्ते में केवल पानी पीता चलता रहा। स्नान भी पड़ा था कि गर्म वस्तु पलती है शायद इसीलिए गर्मी के कारण रात की लम्बाई भी बढ़ती-सी लगी। मेरा शरीर तो एकात्म मिथिल हो गया था। रास्त में कोई दुकान या मकान कुछ भी नहीं था। दोपहर तक चलत रहने पर भी कोकरणें एक बौस दूर था। रास्ते में किसी ने कहा, 'वहाँ एक ब्राह्मण का घर है। वहाँ जाने पर भोजन मिलेगा।' उस भिन्ना की ओर मरा मन नहीं गया और आगे चल पड़ा। अतः मैं पक्कर हर फलान पर बटता सेटता कोकरणें पहुँचा। अंत में एक भोजन खसन में दो घण्टे लगे। वहाँ एक धाना देकर दूध पिया। नदी के पास पहुँचा। आगे की यात्रा के लिए नाव लय की। शेष सात आन उम देने पड़े। साध्या की छापी देट

उस नाव पर सवार हुआ। सुबह तक वह नाव बगारबटटे पहुँची। वहाँ एक परिचित के घर में एक दिन बिताया। उस रात मुझे मनेरिया का प्रथम दशन हुआ। यह साचकर कि वहाँ बठे रहने से काम नहीं चलेगा, अपने घर चल पड़ा जा वहाँ में पाँच मील दूरी पर था। तीन महीने तक भियादी बुखार ने जान नहीं छोड़ी। इमक अलावा पिताजी के गुस्से का भाजन बनना पड़ा। पिताजी ने कहा 'पता नहीं कहाँ-कहाँ जाकर बुखार चढ़ा आया है। यहाँ घरवालों की भी आफत। उनका ताना सुनकर मन को बड़ा दुख हुआ। बाद में एक बार जब मुझे निमानिया हुआ तब भी वही बात याद करके मैं घर में पाँच नहीं रखा। मैंने ऐसी कई यात्राएँ की हैं और उनके सुख-दुख देखे हैं। निसर्ग के मोह में मुझे उल्टे सहन करने का साहस जा दिया था।

खादी का उत्पादन

शुरू शुरू के दिनों में खादी का प्रसार ही मेरा प्रमुख उद्योग था। चरखे तयार करने बाँटता था। स्वयं कई बार बड़ईगिरी करके चरखे तयार भी किये। कुन्दापुर में वातन वालों की पुनियाँ उपलब्ध कराना मेरा काम था। कुन्दापुर से तीन मील दूर बसहर में मेरा एक मित्र था। घनी परिवार से सम्बन्ध रखते थे और हाईस्कूल में मेरे सहपाठी थे। उनका नाम सूरप्पा शेट्टी था। वे अपने गाँव के जुलाहों से कपड़ा बुनवाकर मुझे पहुँचाते थे। गाँव के लोग हाथ का कता सूत देते थे। ऐसा नहीं लगता था कि किसी ने एक दिन में दस तोले से अधिक काना ही। वह सूत भी हर एक का अलग अलग नमून का होता था। उससे बना कपड़ा एकदम शाना होता था। ऐसा खाली का कपड़ा लादकर घर घर घूमने पर भी बिक्री नहीं होती थी। इस कारण खादी की दुकान रखने को दूसरे गाँव से खादी मँगानी पड़ी।

उहाँ दिना उत्तर भारत में मुझे एक पत्र मिला। वह मध्य प्रदेश से आया था या बिहार से यह मुझे याद नहीं। उस पत्र में पूछा गया था, "हमारे यहाँ सारे मुसलमान ही सूत कातते हैं। उनके सूत का कपड़ा मुझे नहीं चाहिए। आपके यहाँ हिन्दुओं का कात सूत का कपड़ा हो तो भेज सकेंगे?" यह वह समय था जब लीचीजी श्रीमन् अली को अपना बड़ा भाई मानते थे। परन्तु मैं जो सूत कातता था उसमें मुसलमान स्त्रियाँ भी काता करती थीं। उसको मुझसे कोई सामान नहीं पट्टा था।

मेरा मित्र सूरप्पा अकस्मात् विपमज्वर का शिकार होकर चल बसे। उनकी मौत का मेरा भावित मैं अभी भूल नहीं पाऊँगा। उनकी मृत्यु से खादी केन्द्र का दार्शनिक मुत पर आ पड़ा। वहाँ जुलाहों का सहयोग भी मिलना बन्द हो गया। सूरप्पा का सिहात्र मैं उनका रमत जुताई खादी बुनने को तयार थे, देशभक्ति के

धारण नहीं। उसके बन्ने मिल का कता सूत बुनना उनके लिए सरल और लाभ-
दायक था।

रंगों की दुनिया

मेरी तयार करायी गयी रंगहीन खादी ही हमारा गाँव की खादी थी। काम के अनुसार ही उसका काम था। भला बिबती कस ? तब मैं लकड़ी के छाप बाबा घर बपड़ा छपवाना शुरू किया। पी०सी०रे की लिपि 'देसी रंग' नाम की पुस्तक मंगवाकर स्वदेशी रंग बनाना सीखा। खादी की तरह यह रंग भी महंगा था इसलिए कम भीमतवाली रंगरजी की मुझे आवश्यकता थी। दूसरो से सल्फर के रंग और एनलाइन रंग मंगवाकर कपड़े रंगना सीखा। जब काम जरा चलने लगा तो कपड़े की बुनवाई में बाधाएँ आने लगीं। मेरी दुकान सूत की बारियों से भर उठी। समझ में न आया कि उस सूत का क्या किया जाय ? नया कपड़ा बनवाने का काम रुक गया। सूत मगलूर भेजा। वह बेकार ठहराया गया। इसलिए छ महीने बाद मुझे सूत वापस मंगाना पडा। बाद में पास के एक चडडीवाले को पकड़कर मिल का सूत ताने में और हाथ का कता सूत पेटे में लगाकर कपड़ा तयार कराया। इस प्रकार अध खादी का निर्माण हुआ। इस कपड़े के लिए फिर से ग्राहक खोजने थे। शाला के लडके को साथ लेकर कई बार गली-गली बेचने गया। उधार देने से लोग कपड़ा खरीदते। उधार का पैसा खाते में ही रह गया। बसूली के लिए चक्कर काटता-काटता थक गया और एक दिन उस खाते को ही फाड़कर फेंक दिया। तब से खादी उद्योग के बारे में मेरा अभियान जाता रहा। आज के युग में खादी दुर्द नीव पर पड़ी रह सकेगी मेरा यह विश्वास जाता रहा। लगता था कि अछण्ड देशभक्ति ही उसे जीवित रख सकती है। वह ऐसा जमाना था कि देश भक्ति का भ्रम पूर्णरूप से जा नहीं सकता था। खादी अगर चली गयी तो क्या हुआ ? क्या मैं अपनी दुकान छोड़ सकता था ? मुझे बैठन को एक जगह चाहिए थी। इसलिए मैं अपनी दुकान को स्वदेशी भण्डार बना दिया। उसमें स्वदेशी कागज, पेसिल आदि का व्यापार शुरू किया। शायद मुल पाँच सौ रुपये का सामान रहा होगा। शाला के धार छ लडके वहाँ आकर बैठत और गप्पें मारते। दुकान खोलने के बाद दुकान का मालिक आधा वकत भी वहाँ नहीं बैठता था। कोई ग्राहक आने पर कोई न कोई विद्यार्थी-सहायक सामान दता। इन सब कामों से काफी कूज पड गया। खादी और स्वदेशी प्रकरण के बीतन-बीतते पाँच साल बीत गये। तब तब स्वदेशी आंदोलन हमारे गाँव में टण्डा पड पसा था।

जल से बाहर ही जेल का राज

बाँधेस की ओर स काम करते समय साधारणतः पुस्तक के मुखबिर ५

बैंक देते हैं। वहाँ से मिठाई के लिए दूसरी दुकान पर जाना पड़ता है। जीण शक्ति हो तो भी मिठाई खरीदकर खायी जा सकती है। उत्तर भारत के लोग इनकी मिठाई खाते हैं। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि उन्हें चींटियों न खाने बिना कैसे छोट दिया।

काशी देखकर, आगे गया पहुँचे। वहाँ भी ठहरने के लिए एक पण्डे का घर ही गले पड़ा। सारे बुजुर्ग फाल्गुणी नदी में स्नान करने गये। “मुझे वह पुण्य भी नहीं चाहिए और वह स्नान भी नहीं चाहिए” कहकर निवास पर ही रह गया। पसे छीनने में गयावाला का कोई जवाब नहीं। लौटते समय भी हमने मद्रासवाला रास्ता लिया। गुड्डर से वे सभी तिरुपति गये और वहाँ की यात्रा करके मद्राम लौटे। “मुझे और किसी धार्मिक क्षेत्र नहीं जाना” कहकर सीधा मद्रास पहुँचा। बाद में मद्रास से चलकर हम सब अपन अपने घर पहुँचे। मेरी दादी को काशी जाकर आने की उत्कट इच्छा थी। उनकी आशा पूरी हुई। बाद में वे कहने लगी कि अब मुझे और जीने की इच्छा नहीं। पश्चात् एक-दो महीने में ही वे स्वर्गगामिनी हुई। उनके निधन से पहले की एक घटना याद हो आती है। बहुत समय से उनकी एक गरीब सहेली थी। उसका नाम पावती था। किसी कारण दोनों में मनमुटाव हो गया और वे एक-दूसरे से दूर हो गयीं। काशी से लौटने के बाद दोनों ने मिलकर खूब आँसू बहाये। बचपन की सखी से मन में कड़वाहट रखकर नहीं मरना चाहिए। शायद यह बात दादी को सूझ गयी होगी। उस पावती के मन में जो आम्ना हमारे घर के प्रति थी उसे मैं शब्दों में नहीं बता सकता।

शवरी का सत्कार

पावती का घर हमारे घर से आधा मील दूर था। तब यानी सन् 1922 में उसका बचपन ही रहा होगा। वह सन् 1950 के आस पास गुजर गयी। मैं जब भी गाँव जाता था उसका घर अवश्य जाता था। अन्तिम बार (1943-44 में) मैं जब वहाँ गया तब वह पकी बुढ़िया हो गयी थी। आँखा से ठीक दिव्याई नहीं देता था। हड्डियाँ चमकी से बिपक गयी थी। उसकी एक मात्र बेटा सावित्री घर पर ही थी। वह मरी ही आयु की थी। उसका घरवाला बही और था। उसके दो-तीन दुबल बच्चे थे। उन्हें सभी पेट भर खाना नहीं मिला था। मेरा मन बहुत है कि जीवन भर गरीबी की एंगी मजा मनुष्य को नहीं मिलनी चाहिए। मेरी माँ या दादी को—जब भी घर में अकृष्ट खाना बनता—बिना पावती के घर भेजे तसल्ली न होती। ‘मरठि मणिग तिघन गमय मैं बहूँ गया था। एक शाम समुद्र तट से लौटते समय उमक पर गया था। पावती अकली थी। मेरी आवाज सुनकर पहचान कर उसने मुग बुलाकर बिगाया और पापड़ धूनकर खाने को दिया। झटपट चूल्हा मुलगा

कर कापाय तयार किया। आंगन (मण्डल) में नारियल की चटाई बिछाकर आग्रह से बिठाया। अपने पीने के लिए सहेज कर रखे दूध में से थोड़ा उसमें डाल कर पीने को मजबूर किया। मुझे उस आतिथ्य को स्वीकार करना पड़ा। उस गरीबी में भी उसके द्वारा किया गया अतिथि सत्कार भूलने की चीज नहीं।

मैंने अपना जीवन में ऐसा प्रेम और कहीं नहीं देखा। उसकी गरीबी याद करके, उसकी दी चीज खाते समय गले से उतर नहीं रही थी। वह प्रत्येक क्षण मृत्यु की प्रतीक्षा में ही थी। एक टुकड़े जमीन की खेती भी उसी को करनी पड़ती थी। तब वह अम्मी साल की रही होगी। उसके घर में बटी और दाहूते थे जो सूखकर बटि हो चुके थे। उसके उस जमीन के एक टुकड़े पर भी पडोसिया की आंसि जमी थी। उनके बारे में उसने मुझे बताया भी। यह देखकर मैं सोचने लगा कि भगवान पर भरोसा रखनेवाली और प्रतिदिन उसकी शरण जानेवाली को मिला ही क्या? मैं उसे कभी-कभी पैसे या साड़ी आदि भेजा करता था। परंतु उसके प्रेम के सामने इसकी क्या कीमत। प्रेम की कोई कीमत हो तो ऐसे अमूल्य प्रेम की कीमत मैं कभी अदा नहीं कर पाया। सुदक से वह मर गयी, कम-से-कम मृत्यु के कारण वह इस इहलाक के दुःख से मुक्त हुई। ऐसे और भी कुछ बाघु हैं, परिचित भी हैं। उनका कारण जीवन में ही 'मरच्छि मण्णिम' की क्यावस्तु को जन्म दिया और विकसित किया।

श्री कानाड

इस प्रसंग में हमारे कांग्रेस समिति के वरिष्ठों से जो मेरा सम्बन्ध था उनके बारे में लिख रहा हूँ। जिने के प्रभुष कानाड सदाशिवराय कभी-कभी कुन्दापुर आया करते थे। उनसे मेरी बड़ी मित्रता थी। उही के कारण मेरा अछिल कानाटक राज नीति से परिचय हुआ। कानाड का चरित्र मैंने अपने उपन्यास 'औदायद उरळल्लि' में परोक्ष रूप से प्रस्तुत किया है। मैं जब कुन्दापुर में कांग्रेस का काम करता था तब उनसे मिलने कई बार गया था। वे भी कुन्दापुर आया करते थे। गांधीजी की इस बात पर कि एक वर्ष में ही स्वराज्य मिल जाएगा उन्हें जितना विश्वास था उतना किसी दूसरे को नहीं। जब वह वर्ष पूरा हुआ तो उनकी निराशा का काइ ठिठाना न रहा। वे सब पर विश्वास कर सके थे। परोपकार में समर्थ अरण करके उनको एक दिन दूसरा के दान पर जीने की नीवत आ गयी।

अछिल कानाटक

उत्तर कानाटक के नेताओं और दक्षिण कानाड जिले की जनता के बीच कभी गांधी आत्मसाध दिखायी नहीं गिया। देशपांडे गंगाधर राय, बीजलनी श्रीनिवास राव आदि नेता उन दिना यहाँ के सोमा का विश्वास नहीं जीत सके। आज भी सोमों का

उत्तर कानड से दक्षिण कानड में घूमते समय 'यह जिले उत्तर कर्नाटक की पट्ट हैं' कहते हुए मने सुना है।

पहले मैं कवल स्वयंसेवक था। कई बार तालुक समिति का मंत्री भी बना। पर बड़ी बड़ी समितियाँ म घुसने का प्रयास नहीं किया। उन सबके लिए, चाहे कुछ भी हो, अपने से बड़े कोडगी पुण्डलीक कामत जैसे मित्रों को आगे बढ़ने में पीछे हट जाता।

हमारे जिले में एक छात्रों के दूरे खोलने के लिए जितनी अड़चनें दी जा सकती हैं उतनी कर्नाटक के हमारे नेताओं ने दी। अपने आप मरनेवाले उस केंद्र ने उन नेताओं की मेहरबानी से चार दिन पहले ही दम तोड़ दिया। 'हुददलि' (बेलगाँव) में घादी तयार की जा सकती है तो 'नीलेश्वर' में तयार करने की जरूरत नहीं है यह उन नेताओं का संकुचित दृष्टिकोण था। और एक बड़ा मगदा कांग्रेस के अधिवेशन स्थान को लेकर चला। यह प्रश्न उठा कि कांग्रेस का अधिवेशन बेलगाँव में होना चाहिए या मंगलूर में। मंगलूर के लिए जितने मत मिले उतने बेलगाँव की नहीं। यही मनमुटाव का कारण बना। इस बहुसंख्ये के शुरू होने के दूसरे वर्ष मैंने बुदापुर में जिला राष्ट्रीय सम्मेलन के आयोजन का प्रबंध किया। उसमें मैंने स्पष्ट रूप से भाग लिया। नेता बनकर नहीं, सहायक के रूप में। मगाधरराव देसापाडे जी का अध्यक्ष पद स्वीकार करने के लिए तार दिया। उस विषय में आया उत्तर मुझे आज भी याद है। योर पीपल हेव नो फेथ इन मर्डी गार्ड्स हेस रिप्रेट'। हम लोगों ने यत्न किया था कि कांग्रेस का अधिवेशन बेलगाँव में बदले मंगलूर में हो। इस बात से दुखी होकर उन्होंने ऐसा उत्तर दिया था। हम लोगों के यह लिखने के बाद 'यह आप जैसे लोगों से कहने की बात नहीं' उन्होंने सम्मेलन में आना स्वीकार किया था।

अपार जीणशक्ति

कर्नाटक में उन दिनों की एक शक्ति का तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। बाकी बातों में वह किस भी तरह सम्मेलन में शेर की तरह गरजते थे। हमारे यहाँ नेता गान-ध्यान में बाणों के पक्षों को भी मात करते थे। हमारे सम्मेलन के समय तो आत्मियाँ के लिए बने लड़कियों को व तीन चार लोग ही चट कर जाते अतः उन्हें वास्तव में शक्ति स्वीकार करना पड़ा।

डॉ० हार्डीकर

हमारे नेताओं में डॉ० ना० मु० हार्डीकर सरासरी विराम परिचय था। मैंने उन्हें पहली बार मंगलूर की 'कर्नाटक प्रांतीय परिषद' के सम्मेलन के अवसर पर देखा था। सरासरी नायक के लिए आयोजित जुलूम में हाथ में बैठ पकड़े, बड़ी शान

से और बड़े अहिंसात्मक ढंग से सबको अनुशासन में रखा था। मैंने एक बार उनके मेवा दल के प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। हम राष्ट्र के लिए प्राण देने का तैयार हैं—यह उस प्रतिज्ञा का सार था। हाईकोर जी ही सेवादल के कप्तान थे। एक दिन अकस्मात् उनसे तार मिला। "तुरन्त गदुग आओ।" हाईकोर की भाषा के अनुसार मुझे ताबडतोड चल पडना चाहिए। दूसरे दिन ही छोटी बहिन का विवाह था। तो भी तार देखते ही मैं निकल पडा। उसी बस से मेरे पिता जी कुदापुर स गांव जा रहे थे। व कोट में उतरे। उन्होंने पूछा, "तुम किधर?" मैंने कहा, "मैं हुब्बल्ली जा रहा हूँ।" तब उनके असातोप का ठिकाना नहीं रहा। मैं ता मीधा हुब्बल्ली चला गया। वहाँ स स्वयंसेवकों के लिए निश्चित सफेद निशाने की पहनकर खंला सटवाए, टापी पहन, मेरी ही तरह के अनेक शूरवीरों के साथ राष्ट्रभक्ति के गीत गाता गदुग पहुँचा। वहाँ एक और भी सभा चल रही थी। गदुग के जालीहाल वकील के घर उस दिन 'कर्नाटक प्रांत समिति' की सभा हुई। साथ ही, हम स्वयंसेवकों की सभा भी होने वाली थी। उसमें यह निणय करना था कि कर्नाटक में कानून भंग करने का आन्दोलन शुरू करना चाहिए या नहीं। हम लोगो न सोचा था कि हम लोग ही उसका निर्णय करने वाले हैं। परंतु जालीहाल के घर एक कोने में प्रांतीय समिति के सदस्यों ने घण्टा विचार विनिमय करके यह निणय लिया कि कानून भंग करने का आन्दोलन नहीं छेड़ना चाहिए। नेताओं ने हमें केवल इतना ही सूचित किया। हमें कोई पूछन-ताछन वाला ही नहीं था। मैं यह समय नहीं रुका कि केवल इतनी बात बताने भर को तार देकर हमें इतनी दूर से क्यों बुलाना गया। मैंने गांव सोटने ही हाईकोर को एक बड़ा पत्र लिखा। मैंने उसमें कुछ दिग्दर्शन समिति के निणय को मुनान भर के लिए हमें अपने-अपने खूबसूरत कोनों कहा गया, इतने लोगों को बुलाकर समय क्या नष्ट किया गया। मैंने भी लिखा, वृषया आप अपने अधिकार का दुरुपयोग मत कीजिए। मैंने उन्हें भी अच्छा परिचय हुआ। उनके उत्साह और शक्ति से मैं बहुत प्रभावित हुआ।

मेरे परिचित दशमकता में अत्यंत निस्वार्थी रूप में कार्य करने का कारण था व अनेक ही थे। हिन्दुस्तानी सेवा दल का उद्देश्य करके उन्होंने बहुत दिन तक सवालित भी किया। आग दल की उद्देश्य 'जो भी' की भावना जार पकडन में उन्हें 'शरणा' ही प्राप्त हुई।

आध्यात्म—अश्लील

एक बार धीरानुर की एक सभा में मैंने भी भाग लिया। मैंने वहाँ बहुत ही विचारणीय, भवतिज्ञा के अर्थ में ज्ञान का ध्यान किया। मैंने वहाँ बहुत ही

भी हा लिया। मजलिजी और दिवाकरजी के प्रति मेरे मन में बड़ा गौरव था। श्रीनिवास राय और दशपांडे बड़े निरंकुश स्वभाव के थे। पर ये दोनों तो अहिंसा की मूर्ति थे। उनके आध्यात्मिक विचार ही मेरी इस भावना के कारण थे। उस सर के समय दिवाकर वं मुख से कुछ अश्लील मुक्ताफल टूटे। तब उनके बारे में मेरा अभिमान काफी घट गया। मैं प्रथम असहयोग आन्दोलन के ही समय में राजनीतिक आन्दोलन में उतरा था। आगे कइयो से निकट में परिचय हुआ। श्री मदाशिव राव उनमें एक थे। उन जैसे त्यागी ध्यनित का वाद में कांग्रेस में आये श्रीनिवास मन्थ जैसे चालाक द्वारा स्थानच्युत किया जाना देखकर मुझे बहुत बुरा लगा।

एस भी कुछ लोग = जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद अपने स्वायत्तता का पूरा फल पाया। इस सन्दर्भ में श्रीदिवाकर का नाम लिया जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मैं कर्नाटक के एकीकरण के आन्दोलन में भी बड़ा उन्माहित था। श्री दिवाकर के द्वारा सरकार में मंत्री बन। तब उन्होंने हम सब का नसलनी का मन्त्रोपदेश दिया। बाद में वे हमारे राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस की ओर से कर्नाटक में प्रचार करने भी आये। सन 1952 के चुनाव के अवसर पर मैं कांग्रेस व विरुद्ध जसेम्बनी की सीट के लिए खड़ा हुआ। मेरे भाई पालियामट की सीट के लिए चुनाव लड़े। तब दिवाकर जी ने बणूर के भाषण में मोरे व मुताबिक कहा ' पुस्तक लिखने वाला का चुनाव से क्या वास्ता और वकील भी भला क्या इस मामले में पढ़ें ' यह यह भूल गये थे कि वे स्वयं भी एक वकील थे पुस्तकें लिखने थे और साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रह चुके थे। काम साधने वाला की अपनी पुरानी बातें याद नहीं रखनी चाहिए इसका वे एक अच्छा उदाहरण हैं।

सायासी सी० आई० डी०

पढ़ते जब मैं छादी व कपड़े पहनता था तब जहाँ मैं जाता वहाँ मेरा पता, मैं कहाँ जाता हूँ वह सारी खबर पुलिस रखती करती थी। इसके अलावा यह भी पता चलता कि मेरे पीछे गुप्तचर भी लगे थे। एक दिन कुन्दापुर में गहव बस्त्र पहन एक सपागी आया। काँग्रेस कमिटी की पूछताछ करता मुझ तक पहुँचा। था तब तब मेरे साथ रहा भी। एकत्र हूट-हूट था, साथ ही जवान भी। उसके पहरे पर विरक्ति व भाव नाम की भाँस थी। सोत समय दरवाजा बंद करके गया था। उसमें सम्बन्धों में कसर पट्टी व पास कुछ आनाउ हुआ करती थी। उसमें सपागी का स्थानाप काँग्रेस के बारे में पूछताछ करते देखकर हम उसपर सन्तुष्ट हुए। एक दिन तीन चार मित्र उमे साथ लकर एक मदान में जाकर बैठे। उसका उद्देश्य मुझे के लिए साथ इकट्ठे किया। बसल भगव कपड़े पहने

लेन से ही आध्यात्मिक उपदेश मुह से निकलने लगने क्या ? उसने मुंह से राज नीतिक बातें निकल रही थी । मरे एक मित्र न तुरत उसकी बात रोक्कर उसस पूछा "यह सब तो ठीक है, पर तुम स यासी हा यह बात निरी झूठी है । तुम सी आई डी हो न ? तुम्हारी कमर मे क्या बंधा है ? हम छ आदमी तुम्ह पकडकर तुम्हारी गदन दवा दें, तो तुम क्या करोगे ?" तब वह घबरा गया । वह उसी रात गाँव से अदृश्य हो गया ।

यहाँ मुझे एक और बात याद आ रही है । उस जमाने मे सरकार हमार पीछे पुलिस लगाती थी तो हम सोचत थे कि हम कैसे गुलाम हैं ? परतु उस घटना क पैंतीस बष बाद भी उसी काँग्रेस सस्था के शासन मे यह क्या हो रहा है ? 'सगान नहीं बढाना चाहिए' इस बारे मे एक सभा हुई । उसमे भी काँग्रेस को गुप्तचर लगाने चाहिए थे क्या ? अधिकार का नशा ही कुछ ऐसा हाता है । प्रजा के प्रभुत्व काल मे प्रजा से अधिकार प्राप्त करके मस्ती छानने वाला को क्या यह ध्यान नही होना चाहिए कि प्रजा क्या चाहती है ? क्या उह केवल प्रजा के 'वोट' ही चाहिए ?

समाज का परिचय

बाढ़ का प्रकाप

मर कुदापुर के जीवन ने मुझ कई प्रकार के सामाजिक कार्य करन का अर्थ-
शाश प्रदान किया। सन् 1924 मे हमार जिले मे भयानक बाढ़ का प्रकोप हुआ।
उमकी कुछेक घटनाआ का चित्रण मने अपने उप-यास 'औदायन उच्छलित' मे किया
है। तब मैं कुदापुर मे रहता था। वह भी समुद्र का तटवर्ती प्रदेश है। एक दिन
बाढ़ का प्रकाप दिखाई दन लगा। उससे सैकड़ों घर नष्ट हो गय। आरम्भ मे उसमे
क्या-क्या नुकसान हुआ, इसका जायजा लेने क लिए मैं एक बार नदी के तटवर्ती गाँव
मे घूम आया। उस काम मे मर मित्र मूरप्पा शेट्टी मेरे सहायक रह। कुदापुर से
लगभग पत्रह मील दूर हत्ताडि मे करीब चालीस फीट पानी चढ गया था। सभी
ओर की स्थिति का जापजा लेने मैं निष्कल पडा था। सौड नाम की जगह से नाव
पर बैठकर आठ-दस मील दूर तक नदी यात्रा बाढ़ के समय मही की। नदी के
पागलपन ने मुझे भी पागल बना दिया था। मैं निसर्ग का कोप देखना चाहता था।
बाढ़ के पानी में नाव सता की तरह बहती थी। उस समय नदी-यात्रा खतरनाक
थी पर उसको भर-आँख देखने की इच्छा से मैं यात्रा करना चाहता था।

कुदापुर से केवल डेढ़ मील पूव मे आनेगलिन नाम का गाँव है। वहाँ की
घरनी बहुत नीची है। उस बाढ़ मे वहाँ के सक्ड़ो घरों मे से एक भी नही बचा बहूँ से
कई आश्रय की बात नहा। बाढ़ उतरन की थी बि सभी में जायजा लने गया।
मर दखन-दखन एक सड़का एक ताल मे गिर पडा। मन उसे बचाने का साहस भी
किया। बाढ़ मे मुझे मय मे अधिक अहसास हुआ क्षेत्र प्रदेश की भयकर गरीबी
का। जब मने यह जानन का प्रयास किया कि लोग का बितना नुकसान हुआ तब
अपनाडा नही मना गया कि वहाँ बितनी गरीबी है। वर्षा मे रोपायी के बाग
मगभग छान मान हमार यही के लोगो के आदर की कमी का बणन करन
कामि है। तब गरीबों का ध्यान के लिए धन नही जुट पाता। कटहल के बीज
इकरवनी, अक्टो (एक जाति का भांग घास) खात है। यह सब वायु पदा बने

वाली चीजें ह। पेट भरा है यह महसूस करने के लिए काफी है। छोटी जाति के सभी घरों में यही आहार होता है। पर वह भी बाढ़ में नष्ट हो चुका था। चार जन के रहने योग्य घरों में तीन माह के आहार के लिए पांच छ रुपये का अनाज भी नहीं होता था। उनके घरों में घाना घाने को एक-दो बाँसे की घाली और कटोरे के अनावा बतन भी नहीं थे। ऐसी घोर दरिद्रता थी। ऐसे लोगों के लिए धर्माय चावल बाँटने वाली डिपो में बैठकर मैंने काम किया। नुकसान के आँकड़े मैंने स्वयं नैयार किये थे। इसलिए उन सब का अच्छा परिचय था जिन्हें नुकसान हुआ था। फिर भी कुछ विचित्र आदमी मिले। एक किसान जो दो सौ रुपये सालाना लगान देता और जिसने तीन हजार रुपये बच दे रखे थे वह भी गरीबी का दिखावा करने डिपो से धर्माय चावल ले जाता था।

उन लोगों को बाहर से सहायता मिलने में देर लगी। एक वर्षा ऋतु के बाद जब दूसरी वर्षा ऋतु आरम्भ हुई तभी उनके लिए आय बपड़े हम बाँट सके। केवल कुछ ही लोगों को हम पैसे से सहायता कर पाये। दूसरों से मिला पैसा बाँटना मरे लिए कोई कष्ट का काम न था। उस अवसर पर जिले के मुखिया कानाई सदाशिवराय ने विशेष रूप से परिश्रम किया। उसी समय दक्षिण कानड में बाढ़ के शिकार हुए लोगों की सहायता करने के लिए जिले में एक समिति का गठन हुआ। उसने सदस्या में आज मैं अकेला ही बचा हूँ।

उस बाढ़ के बारे में जब भी मैं याद करता हूँ मुझे अपने एक मित्र की याद आ जाती है। व दिवंगत फोच्चिकार पाण्डुरंग पेंथ। व अमहयोग के दिनों के मेरे साथी थे। उन्होंने उड़ुपि में रहकर बाढ़ निवारण समिति के मंत्री के रूप में बहुत काम किया। शुरू के दिनों में मुझ में आत्मविश्वास जगानवाले थे एवमात्र स्थिति थी।

चेदवाओ की समस्या

एक विषय में तो कुदापुर के मेरे जीवन ने मुझे बहुत तपित दी। पर वह तपित प्राप्त करने में उम्मा समय लगा। बाँट भी बहुत उठाना पड़ा। फिर भी 'कुछ काम किया' यह सतोप उससे मिला। मैंने उस समय जो काम किया उसका वचन अपरोक्ष रूप से 'ब-वा-बलि' में किया है। मैंने बताया कि तब का मेरा जीवन गांधी ज्ञान पर आधारित था। कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करना मेरा आदम था। नैतिक प्रश्नों के बारे में विचार केवल मेरे अपने ही नहीं थे बल्कि उन आदम के माग पर बहुत सभ्ये समय तक चलता चला गया। यहाँ जिस विषय का उत्तर दे रहा हूँ वह समाज में पर्याप्त का प्रश्न है। लगभग 1930 तक हमारा गाँव के बह घरों के विवाहों में बध्याएँ गुलाबर नधाने का रिवाज था। 'परलि मणिग भ एक गुरिकार (मुखिया) के घर के विवाह में उनका वचन किया है। मैं और मेरा भाई

सहमीनारायण विवाहो मे वश्याआ को बुलाने के घोर विरोधी थे । उसका हफने प्रचार भी किया । उस प्रचार के कारण गाँव का यह रिवाज उठ गया । वेश्यावर्तिता नहीं गयी, पर उहे नचान का रिवाज जाता रहा । कुँदापुर, बसरूर, बरकूर म घुघरू बाँधनेवाले घरान भी है । उनके मोहजाल मे पडकर सबकुछ लुटा देनेवाले भी कुछ घराने हैं । हमारी समाज मे वश्याओ का बाहरी रूप से सम्मान न होने पर भी भीतर ही भीतर बहुत मान है । इसलिए पीढियो से वेश्यावर्ति करनेवान कुछ घर हैं । व्यभिचार मानव बुल रहते तक चलता ही रहेगा—इस समस्या से मैं परिचित हू । परंतु इसको अपनानेवाले घरों के प्रति लोगो द्वारा दिखामा गया बाह्य तिरस्कार और भीतरही इच्छा म कोई सम्बन्ध नहीं ।

कुँदापुर म रहते मुझे मनीत सिखाने की रामकृष्ण नाम के एक व्यक्तित आया करत थ । व अच्छे संगीतकार थ । वे कारवार के बालकृष्ण बुआ के शिष्य थ । ताग उनकी जाति के लोगो को ह्य दृष्टि स देखत थे । वेश्याओ के किसी लडके का देखन ही कोई भी उस दस आदमियो की ओलाद कह दता । वे दस आदमी समाज म हम ही हैं यह बात भूल जात हैं । इसके अतिरिक्त कोई यन्त्र अपने जन्म का स्वयं तो नहीं बदल सकता ? ऐसी बात भी नहीं कि हम म कोई वेश्या क पट स ज म नहीं ले सकता था । हम यह बात भूल जाते हैं । उसी समाज का एक लडका मरा मित्र बना । उसका गुणा को देखकर मुझे बहुत म तोप हुआ । वह एक दा साल भरे साथ रहा । एक बार पता चला कि वह कौन है । यह भी पता चला कि उसकी बहिन के कारण हमारे गाँव का एक अमीर घराने का लडका पर स ही दूर हो गया । उसकी एक बहिन और भी थी । उसकी और भी दो मौतरी बहिन थी । उन दिना व तीनो बाजार म बडो बिकाऊ चीजें थी । अमतौर पर उनम पाँच म 'पायल बाँधन की आयु की युवतियाँ हात ही कोई एक अमीर घर पना दकर गुहागरात मनाता है । बाद म वह उसी की कहलाती है । जब तक वह उमका निमाठा है तब तक वह उसकी प्रेयसी रहती है । बन्त से घरों म ऐस प्रणयी जाश न विवाहित दम्पतिया स भी सुखी जीवन बिताया है यह मेरी आँखों दपी बात है । जो इस रास्त को भी छोडकर चलती है उसे गाँव मे छट्टी वश्या' कहते हैं । मरा मित्र रा— ऐस हा वश्या बुल म जमा था । उसने बारे म लोगो का घटिया व्यवहार देखकर मुझे दुख हाता था । एक दिन मैंने उसस कहा, ' यदि तुम अपनी बहिनो का ऋय की चीज न समझो तो मैं उनका लिए कही स भी उपयुक्त घर छोडकर उनका विवाह कर दूगा ।' रा—का बहुत म तोप हुआ । वह मान गया फिर भी उसके घरवात मान जायेंगे ऐसी उम्मीद मुझे नहीं थी । उसने जाकर घरवाता म प्राथना की । व लोग और घर की सडकियाँ विवाह के लिए मान गय । तब म मुझ अपनी बात के दावित्व का बाध हुआ ।

गांधीजी द्वारा समाधान

लगभग तीन वष तक, वेश्याकुल म विवाह की इच्छा रखनवाली लड़कियाँ हैं या नहीं यह पता लगान के लिए मैं घूमता रहा। उत्तर कानड, दम्बई और मंमूर प्रांत के चक्कर लगाय। मरे प्रयत्न सफल न हो सक, मैं अपनी जिम्मणारी समझता था अत अत्यंत निराशा स मने गांधीजी को पत्र लिखा। उसपर उ होने लिखा, ' एमी लडकियाको जीवन भर ब्रह्मचय का पालन करना चाहिए। ' उमसे मुझे बहुत निराशा हुई। आसू आ गया। मने साचा, मनुष्य क स्वभाव का परिचय गांधीजी को नहीं है। उ होने सोच रखा है कि उहान जो साध लिया वह सबसे हो सकता है। ऐसी स्थिति म मरी तसल्ली कसे होती? अथवा रा— के घर के लाग जवान लडकियाको घर म यू ही रखकर रह सकत हैं? अत म, मने सोचा कि यदि ऐमा अवसर आ ही पडे ता कम से-कम उनम स एक स मैं विवाह कर लूगा।

तय ब्रह्मचय मरे जीवन का आदर्श था। इस प्रकार काफी दिन बीत गया। एक दिन उत्तर कानड का मेरा एक मित्र अपन बडे भाई के लिए लडकी छाजन हमार यहाँ आया। मैं उस रा—के घर ल गया। मरी बात का विश्वास कर रा— की एक बहिन क साथ उसके भाई का विवाह निश्चित हुआ।

उन काय पर जान स पूव मैं अपनी माँ स मिला। पता नहीं क्या सूझा, उहाने कहा ' शिवराम, तुम्ह वहाँ नहीं जाना चाहिए। ' मैं अपन मन को जानता हू कहकर मैं उनक घर गया और एक दिन रहकर लौटा। उस प्रयत्न क फल न मुझ सतोप दिया। पहला विवाह भी हो गया। उमक पीछे और दो बहिन का भी विवाह हुआ गया। तय मर सन्तोप की सीमा न रही। पहलीवाली सान आठ बच्चा की माँ बनी और सुधी गहस्वी बिताकर कर मर गयी। साल म कम-से-कम एक बार मैं उनके घर हो आया करता था।

माँ के लिए बेटा ?

रा—क गाँव म ही और एक मुंदर किगोरी थी। वह भी क्रय क लिए रखी चीज थी। एक दिन मैं रा—को लेकर उमके घर गया। उसकी माँ के सामन अपना गला घाली किया। उसका मन अपना रास्ता बद कर सन को तैयार नहीं था। उस डर था कि अगर बेटा की शाणी करा दी तो उसका दुकापा कसे बटेगा। उसने बेसा व्यवहार भी किया। वह लडकी आग एक अमीर की निकार हुई। उसी अमीर की बात म जाकर एक दिन वह अपनी माँ म दूर हो गयी। माँ न बटी क जीवन को तो नष्ट किया ही, साथ ही, उसक मन गरीबी ही पटी।

मरे इस कार्य म मुझे बन्नामी मिली जो स्वाभाविक था। कुछ मित्रों को यह

कहत मुना कि मैं लडकिया की शादी करान का दलाल बन गया हूँ। अपन हाथ स शिकार जान स भला व मुझे छाडत ?

मेरे एक डाक्टर मित्र की एक बध्याबुल की प्रयत्नी थी। उनस परिचय कम होन पर भी जब मैं दावणमेरे म रह रहा था तब कुंदापुर के उनके पते पर एक पत्र लिखा— 'आप समझदार आदमी है। आपकी गलती कुछ भी रह क्या आप अपनी बटिया को याज्ञारू जीवन बितान को छाड देंगे ? उनसे उत्तर मिला, 'इज्जत से जीवन बितानेवाल लडके हो तो बताना।' तब तक मेरा उस समाज के कई लडका स परिचय हो गया था। इसनिए उनकी बडी बेटी को अच्छी जगह दबर विवाह करना सम्भव हुआ। आगे उसकी बहिन का भी बडी बहिन की सहायता स ढग के बर मिल गये।

कीचड म कमल

बध्या जीवन की गदगो मे मैंने जीवन की सुदरता भी देखी है। हम एसा सग सकता है कि क्या वहाँ सौंदर्य क लिए भी स्यात है। समाज म एक घटिया रिवाज हान से जीवन को ही हेप क्या समर्थे ? रा—के पिता ने—पिता नहीं—माँ क प्रेमा न ही उस और उसकी बहिन को रख लिया था। उनके लिए उमन न केवल अपनी गृहस्त्री ज्ञान दी बल्कि घर बार भी उसके हाथ से जाता रहा। बुढ़ापे मे उसे बध्याआ क घर म ही जीवन काटना पडा। रा—की माँ यदि बुल्टा हाती तो उस सुछन जीव का सात मार सकतो थी। पर उमन एसा नहीं बिमा। उस रा—और दूसर बच्च पाळा (पिता जी) पुकारत थे। उन बुढ़ापे म मधुमह हा गया था। जब मैं उसम मिला तब उमक हाथ की एक उगरी जाती रही थी। उसक मरन तक रा—की माँ उसका सडा घाव धाकर पट्टी बांधती रही। सभी क सभी उगो सहज प्रेम स उसकी देखभाल करत रह। कितनी विवाहिता मित्रमाँ पति की इतनी सया करती हैं ? उसकी मृत्यु तक रा—की माँ न उसक प्रति जा भक्ति और प्रेम सिखाया था यह एक बध्या का दिखाने की आवश्यकता नहीं थी। काम जीवन का एक ही पत्र नहीं है। काम पशु सहज होन पर भी प्रेम क लिए एक सहज भाव है। व अयोग्य सहायक शक्तियाँ हैं। जहाँ सहज प्रेम रहता है वहाँ सही दाम्पत्य की राह बनती है। जहाँ यह नहीं, दाम्पत्य भी बध्याबति हो सकता है। मानवकुल के निर्माण के लिए आवश्यक मानवीय काम भाष उगकी मनोवक्ति के प्यरस्वरूप श्रष्ट भी हो सकता है और अघत निवृष्ट भा हो सकता है। यह एक ऐसी बसोटी है जिम पर स्त्री पुरुष क मन्व-धो की नीति को महता और सधुता का आका जा सकता है।

ममप बीतत-बीतत आयु म मुसम भी छोटा रा—यागे बन गया, तब स भी उदादा भापुबान मरन माता पिता को छाडकर महात्मा बन गया।

एक और समस्या

जब मैं यह सब सोच रहा था कि तभी हमारे समाज की बाल विधवा की समस्या भी मेरे ध्यान में आयी। उम्र विषय में सोचते समय जो प्रसंग आया उसका उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ। सन् 1925 के लगभग मेरा परिचय एक नाटक मण्डली से हुआ। मैं कभी कभी यहाँ जाता करता था। मेरे एक अभिनेता मित्र ने मुझे अपने यहाँ बुलाया। मुझे बुलाने का कारण भी बड़ा विचित्र था। उसने लिखा था कि उसका और एक मित्र, जो छुद अभिनेता है, मैसूर प्रांत से एक लडकी उठा लाया है। उसके बारे में जरा झगडा हा गया है।

वहाँ जाने के बाद मुझे सारी बातें मालूम हुई। शा—नाम की लडकी कोई अठारह की रही होगी। वह बहुत सुन्दर थी। विवाह के दो वष बाद ही उसका पति मर गया था। उसे एक नट सावभौम प्रेम करके, उसके घरवाला में आँख बचाकर अपने घर ले आया था। लडकी को भय था कि पता नहीं उसके घर वाले क्या कर डालें। उसे दूसरों की असूया में जीना था। मैं उन दोनों से तिरपट्टर में मिला। मेरा उस कलाकार से निकट का परिचय था। उसमें कोई विशिष्ट गुण नहीं थे। शा—को अलग बुलाकर उस मित्र के बारे में अपना अभिप्राय बताया। बाद में यह भी कहा—“यदि तुम उसी को चाहती हो तो ऐंसे रहने की अपेक्षा, उससे शादी कर लो।” अपने मित्र को भी मैंने जिम्मेदारी बताई, और उन्हें शादी करने की सलाह दी। मुझे ऐसे प्रश्न उठने पर तुरन्त सलाह देने का साहस नहीं होता था। ऐसे मौकों पर मैं अपने सम्मानित व्यक्तियों से पूछता था। पहल एक बार गांधीजी से पूछने का उल्लेख कर चुका हूँ। अतः इस बार उनसे पूछने का मन नहीं हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द के सामने यह प्रश्न रखा। उनके पुत्र प्रो० इन्द्र ने उनकी तरफ से उत्तर लिखा था। स्वामीजी का आदेश था कि उम लडकी का उस आदमी से विवाह कर देना उचित है, शास्त्र की दृष्टि से वह गलत नहीं होगा। उसके पन्द्रह दिन बाद ही स्वामीजी की हत्या हो गयी। उम बात को मैं अपने मित्र तक पहुँचाता कि तभी सुनने में आया कि शा—को उसके माता पिता जबदस्ती लिवा ले गये। शा—ने अपने घर के बच्चा को वहीं बान भुग बना—“तुम घर में इसी प्रकार रहो, बाहर किसी के साथ भाग गयी तो यात्रा हमारा क्या होगा ?” घर में उसने पुनर्विवाह के लिए तैयार नहीं हुए।

शा—की मृत्यु

वह मेरे दुष्ट के आगे के चार-पाँच महीने में ही मर गयी। शा—की कहानी में मेरे मन को बड़ा दुखी किया। मुझे लगा कि यहाँ लोग विधवाओं पर जबरन जयास सादते हैं। बाद में एक दो बार अपने मित्रों का विधवाओं में विवाह करने

के लिए बहुत प्रेरित किया लेकिन हमारे तर्कण उसके लिए आग नहीं आये। इस कारण बहुत निराशा हुई। आज भी दहेज के लिए लार टपकाने वाले तर्कण में, बधाई की दुरवस्था देखकर उनसे विवाह करने को भला कितने लोग आग आयेंगे ?

दूसरी तरह और एक बाल विधवा थी। उसके विवाह के लिए मने बहुत प्रयास किया। वह तो मर लिए एक प्रयास मात्र ही रह गया। कारण यह था कि उसे दाशर की हवा लाग चुकी थी। कुछ वय बाद उसने अपने आप दूसरा विवाह कर लिया। परन्तु उसने यह विवाह उस व्यक्ति से किया जो पहले से विवाहित था। वह तो हनुमाय थी ही, लेकिन इसके साथ ही उसने दूसरी का भी दाम्पत्य जीवन नष्ट कर दिया।

त्रिगुण प्रश्न में जुड़ी यह दाम्पत्य नीति अत्यन्त जटिल समस्या है। हमारे समाज के धर्मकार मनु, या अर्वाचीन नीतिकारों के वर्णन करने के समान आसानी में टूट-टुकड़ा में नियमों को अपनाने का प्रश्न नहीं है यह।

आँखे खोलने वाली लैंगिक समस्या

जो आदर्श मेरा नहीं

मैं जब स्वतंत्र हो जीवन निर्वाह करने लगा तब मैं गाँधीजी के उपदेश का पूरा रूप से और भक्तिपूर्वक मानता था। तब मैं अनुभवहीन था। लोगों से और पुस्तक से प्राप्त मेरा ज्ञान भी बहुत कम था। जो मन को पसंद जाया उसी पर अनुरक्त हो जाना मेरे तरण मन का स्वभाव था। शायद उस आयु का ही यह गुण रहा होगा कि जो उस अनुकूल लगा वही सत्य है दूसरे सारे विचार अथहीन हैं। इससे अतिरिक्त तब हमारे भावात्मक तीक्ष्ण होते हैं। जिस आदर्श को हम पसंद करते हैं उसी में उद्वेग से मोह भी रखते हैं। कुदापुर में रहते हुए मेरा जीवन उसी प्रकार था। यदि यह कहा जाय कि मेरा आदर्श अपना ही था तो कहना चाहिए कि तब मैंने गाँधीजी के जीवन दर्शन को पूरुरूप से अपना लिया था। इस प्रकार के आदर्श से कट नहीं होता। अनुभव से, विचार या तर्क से किसी नियम पर पहुँचने का वहाँ प्रश्न नहीं उठता। पहले ही किये गये नियम के लिए कारण ढूँढने का काम रह जाता है। कारण गाँधीजी बना चुके थे। परन्तु उनसे अनुभव, उनके विचार मेरे नहीं हो सकते यह समझने में मुझे काफी समय लगा। मुझे अपने आप अनुभव प्राप्त करने, दूसरे के विचारों को अलग रखकर सोचने के बाद ही वह सम्भव हो सका। धीरे धीरे मैंने यह भी सीखा। आज मैं जैसे कह सकता हूँ कि यह मेरे विचार हैं वैसे लगभग चालीस वर्ष पूर्व कहने का साहस भला कहाँ से आता? इस अध्याय में लैंगिक समस्याओं का बार-बार लिखना चाहता हूँ। गाँधीजी के विचारधारा हम सब को मालूम है ही। उनके लिए तो लैंगिक समस्या जसी कोई चीज नहीं थी। यावज्जीवन यज्ञधर्म का पालन करना चाहिए। केवल सन्तान प्राप्ति के लिए भाग है—यह उनकी धारणा थी। अथवा यह निश्चित नियम भी था। इसका लिए उन्होंने विस्तार से बताया था कि हमारा व्यवहार आचार विचार कैसा होना चाहिए। यह विचारधारा हमारे दम में कोई नयी बात नहीं थी। हमारे दम के आदर्श में परमात्म साधना ही मुख्य रही है। ऐहिक जीवन उसी के लिए

उन दिना भी समझ म नही आयी ।

अनुभवो मे प्राप्त निणय

मरी शिक्षा और मरे अनुभव दोना से मर सामन यह प्रश्न उपस्थित होन हैं । मुझ ऐसा नही लगता कि सावजनिक प्रश्न म हमारे बाह्य निणय, नीति और वस्तु स्थिति म कोई सम्बन्ध हो । इसलिए मुझ देवलॉक एलिस, वटेंड रसेल, वाल्टर विमन द्वारा उपस्थित तक को सांचना ही पडा । गांधी जी क भाष्य पर इननी दूर की यात्रा मेर लिए केवल तक से ही सभव हुई । तक करन वान मन का तक ही मुख्य नही होना चाहिए । तक मे जीतना मुख्य नही है, तक स सत्याश जानना मुख्य है । मुझे अपन इतने सारे अनुभवो को भूल जाना मुझ स यदि सम्भव नहा है तो मुझ अपने अनुभवो के महत्व को अस्वीकार करना पडेगा । एलिस मतिनोवस्की, आदि विचारको के तक किसी सिद्धांत विशय क प्रतिपादन को लेकर नही चले । उन्होन वैज्ञानिक दृष्टि स यह दिखान का मत्न किया है कि व सब दूसर देशा के चित्र हैं सब है-लकिन वे झूठे और बडे नही । हम इस तरह अपनी तसल्ली कर सकने हैं कि हमारा भारत ऐसा नही, पर भारत को थोडा बहुत भी मैंने जानन का प्रयत्न किया है और महीं क सक्ठो चित्रा का मैन सप्रहीत किया है । आदर्श के चक्कर मे मैं अपन अनुभवा को झूठा नही ठहरा सकता । इस विस्तृत जीवन मे जो सत्य देखा वह कम-स-कम मर लिए तो सत्य है ही । इस सबके आधार पर लोग चाह जो भा निणय मे मरा निणय तो यह है

आधुनिक भारत म कामवासना अधिक दीखने पर भी, प्राचीन भारत तो भाषण्ड डूबा या यह बात मैं आँखें मूँटकर अस्वीकार नही कर सका । इतिहास म तो हम कबल सात-आठ प्रमुख लोका क दर्शन होते हैं । उसमे जनसाधारण के दर्शन नहा हात । मैं यह विश्वास नहा कर सकता कि सारे भारतवष म अग्नि, गौतम और विश्वामित्र भरे ये । प्राप्त साहित्य और विज्ञान क आधार पर यह कहना पात्र कि प्राचीन हिन्दुआ का जीवन शृंगारविहीन था, ब्रह्मचर्य से पूण था तो मैं यह नही कह सकूँगा । हमारे ऋषि राजा तथा कृष्ण, शिव ब्रह्मा जैसे देवता काम मे तरत हुए निर्गर्ह देव हैं । देवता चाह जग रह हों उनकी कल्पना करने-बानो मानवोक्ति यदि काम प्ररित न होनी तो देवताओ का ऐसा चित्रण न कर पानी ।

वाग्दामन १ कामगुत्र पर एक बडा मा प्रय हा लिय मारा । विरह क वातावरण म एसा प्रय लिखा नही जा सकता । एस लोग भी हैं जिनका कहना है कि माा दुग्ण रोग किन्तों स हा भारत म आय है । सिफासिस (फिरगी रोग) तो हमारे म म बाहर स आया हाा पर नु म अम जननेन्द्रियो के रोग तो हमारे

देश म चल रहे हगि, नही तो उन रोगी की चिकि-सा कंमे बतायी जाती ? आयुर्वेद म एसी कई बीमारियों का उल्लेख है । एक विद्वान ने मुझे यह भी बताया कि पहलेवाल गुप्त रोग आजकल नही है । इसके अतिरिक्त हम जग-नाथ देवालय, काशी के पाली मंदिरा मे जाएं तो रतिशास्त्र के चित्र देख सकते हैं । हलेबिड म भी उनकी कमी नही । लैंगिक प्रश्न मानव कुल का प्रश्न है मानव स्वभाव का प्रश्न है । मनुष्य एक प्राणी है—एक बुद्धिशाली पशु । पशुत्व को त्यागकर मात्र बुद्धिशाली नही हो सकता ।

पर लगता है, अपने समय के प्रतिनिधि रचनाकारो ने मत और सम्प्रदायो की चर्चा करते समय वास्तविकता को भूलकर ही अपने नीतिशास्त्रो की रचना की होगी ।

काम और प्रेम से दाम्पत्य की साधना

दो प्रश्न

भर मन में दो प्रश्न मुख्य रूप से उठते हैं। एक—मनुष्य की काम भावना जीवन में एकदम दिखनेवाली वस्तु है अथवा शैशव से आनेवाला एक स्वाभाविक गुण है? दूसरा—मनुष्य दूसरे कुछ प्राणियों के समान सन्तान प्राप्त करने के लिए ही ऋतुगामी होने के बगले उसका बाहर भी शृंगारपरक क्या होता है? इस दूसरे प्रश्न का मैं पहले और एक ढंग से देखता था। उसका मुख्य कारण यह था कि मैं शुरू में ब्रह्मचर्य का ही आदर्श जीवन मानता था। मैं अपने भाषणा में यह कहा करता था कि मानव को ऋतुगामी पक्षी के समान अथवा कुछ और पशुओं के समान सन्तान के लिए भोगापेभी होना चाहिए। गाँधीजी का मत भी यही है। मैंने यह सिद्धांत उही से प्राप्त किया था। बाद में मैंने इस प्रश्न के उत्तर के लिए पशु-जीवन का निरीक्षण किया प्राणी-जीवन के बारे में लिखी गयी विद्वानों की पुस्तकें भी पढ़ी। पहले उन प्रश्नों का उत्तर देकर, बाद में दूसरा प्रश्न सना है।

जीवन चाहे मानव का हो या किसी और प्राणी का यह एक निरंतर चलन वाला प्रवाह है। हमारा साग स्वभाव त्रियामलाप मानसिक भावग आदि का विकास जन्म से ही होना लगता है। प्रणय और काम भी इससे अलग नहीं। शिशुओं का प्यार, माँ के प्रेम की स्पर्श चपेटों का भी आग चलकर आवरण या प्रणय चपेटों बन सकता है। उसका आरम्भ बचपन से ही हो जाता है। स्नेह व्यक्त करने को कुछ साग दूसरों को विकारी बाटते हैं। वह भी प्रणय व्यक्त करने का ही एक रूप है। मानव बालक बननेवाला प्राणी है। उसकी बानों में बुद्धि की पक्षधर्मों में मनुष्य के एकत्रित स्मृति ही उसकी सहायक शक्ति है। इसलिये व्यक्ति के अन्दर प्रेम की इच्छा पुण्य के साथ तथा पुण्य जब स्त्री के साथ रहता है तब बानों में भी व्यक्त होती है। बचपन में अश्लील कहानेवाली बातें, बातें, कहानी इत्यादि बचपन की शक्ति लगता है। बचपने के विकास के साथ ही यह पुण्य

हाता है। मन की पृष्ठभूमि में जितनी कामासक्ति रहती है उतना ही अधिक वातांग और सग चेष्टाओं से यह स्वभाव व्यक्त होता है। लैंगिक विषय में प्रतिबन्ध रहने से मन बहिष्कृत विषयों में आसक्ति लेता है। जननेन्द्रिय में आसक्ति लाने वाला बालक आगे चलकर काम में भी आसक्ति होता है। कुछ समय तक उन बच्चों में कोई लुभाव छिपाव नहीं रहता। बालक की उन चेष्टाओं को हम भोली चेष्टाएँ समझते हैं। उनके बड़े होने पर उही भोली चेष्टाओं का खण्डन करते हैं अथवा उन्हें दण्डित भी करते हैं। हमारे कपड़े लते भी इस खण्डन का ही एक रूप है। लैंगिक चेष्टाएँ तब गुप्तरूप अपनाती हैं। बाहरी रूप से काम लज्जा का रूप लेता है। यह लज्जा ही दूसरों में काम भड़काती है। निसर्ग में काम और लज्जा का स्थान भी वही होता है।

इन्द्रियासक्ति

बच्चे में, चाहे लड़की के रूप में हो या लड़के के रूप में, बढ़ते-बढ़ते इन्द्रियासक्ति बढ़ती जाती है। उसकी इस आसक्ति का समाज खण्डन करता है। लेकिन बड़ा के सामने उनके मौन रहने पर भी उनका मन सोता नहीं। स्पष्टचेष्टा से तप्त होने वाला मन का आवेग, जब उसका कौतूहल बढ़ता है तब लज्जा, नीति अथवा खण्डन के आवरण में समाप्त नहीं होता। उसमें और अधिक आसक्ति बढ़ जाती है। सप्टिम दोषनेवाल पशु जीवन से, अश्लील गालियाँ और बात चीत से वह कल्पना और अधिक पुष्टि पाती है। तब ज्ञात विषय का अज्ञात रूप मिलता है। तारुण्य प्राप्त करते-करते काम, आनवासी से तान प्राप्त करने का माग बन जाता है। यह जान पान से पूरा ही उत्तम काम प्रकट हो उठता है। कितने दिन तक निसर्ग की शक्ति मौन रहगी? ऐसी कल्पना दाम्पत्य में ही सफल होती तो दुनिया में इतनी आबादी नहीं बढ़ती।

सन्तान प्राप्त करने के लिए स्त्री को पुरुष से बीस वर्ष के बीच में होना चाहिए। मातृत्व और पितृत्व की शक्ति पर उससे पहले मनुष्य का स्वभाव भूक नहीं रहता। लैंगिक आसक्ति स्वाभाविक रूप में पैदा हो जाती है। विषय पान के सभी रूप भी समाज में आ जाते हैं। गुप्त रूप में अपने कौतूहल का तृप्त करने की सभी चेष्टाएँ सभी से पुरू हो जाती हैं। आदिवासीयों में काम और लज्जा के घर अलग अलग हात हैं, अस्वाभाविक बाधना के बिना वे बढ़ते हैं। उनकी दाम्पत्य नीति हम में निश्चय भी नहीं है। मैं व्यास की दृष्टि से यह बात नहीं कर रहा हूँ केवल सामाजिक दृष्टिकोण से यह कह रहा हूँ।

प्रतीक्षा में करनेवाला काम

मनुष्य सन्तानत्रयी होने पर अपेक्षित शारीरिक शक्ति,¹ मानसिक स्थिरता

पाने तक उमम काम भाव चुपचाप बठा नही रहता। वह बचप से, काम का नाम प्राप्त करने के पहले से ही, बात से, मन में और शारीरिक चेष्टाओं से प्रकट होता है। मौचन को अभी प्राप्त न हुए बछड़ा, जन्म जानवरो के बच्चा में काम-चेष्टा का कीतूहल देखन पर यह बात समझ में आ सकती है। मनुष्य कृत्रिम जीवन चलाने लगा है। अपनी नर्मगिक शक्ति का वह एक हीय वस्तु ममज्ञान बना है परन्तु जीवन की अन्य अनक आवश्यक क्रियाओं के समान काम भी एक है। हमारा जीवन के समान वह हेय नहीं है अत्याराध्य भी नहीं है। उसका एक अपना म्यान है। उसको अवहेलना करने से वह शक्ति कम नहीं जाती, बल्कि उसकी प्रतिक्रिया और भी तीव्र हो सकती है। इस विषय में मानव की कल्पनाएँ स्वाभाविक होने का स्थान पर, कल्पना और रमा से भरी रहती हैं। उसका परिणाम होता है—उच्च आदर्श, नीच जीवन। समय और ब्रह्मचर्य नित्य जीवन में दिखाई न देकर बचप आदर्श बनकर रह जाते हैं। मानव स्वाभाव की ही अवहेलना करने वाली रीतियाँ-नीतियाँ तो बन जाती हैं पर वे आचरण में कही भी दिखाई नहीं देती।

जैसे पहले कहा गया असह्य तरुण और तरुणियों की प्रवृत्ति में काम की ल दिखाई देने पर भी क्या उसे 'अनसर्गिक' कहना उचित होगा—यह प्रश्न उठता है। स्वाभाविक यानी जो सत्तान उत्पत्ति का कारण नहीं बनती ऐसी क्रिया को ही अनसर्गिक क्रिया कह सकते हैं। अन्य शब्द में ऐसी लत को परवशन कहते हैं। वे गह्र रास्ता नहीं है—इस बात का यह अर्थ होना है। शत प्रतिशत लोग म दिखा दनवासी प्रवृत्ति का अस्वाभाविक कहते समय भी हम उरा साचना पड़ता है। तता उमम बचनवात सात-आठ लोग की प्रवृत्ति का ही अस्वाभाविक कहना पड़ेगा हमारी समाज में अनेक लोग का स्वभाव का अध्ययन करने का बाएँ एक सप् में जिस बात का लकर दुखी हुआ था, अब साचन पर ऐसा लगता है कि उन दुखी होने का कोई कारण नहीं था। मनुष्य-स्वभाव को भूलकर नीतिशास्त्र। दुग्द दनवासा का ही म अपराध का रूप में दिखाई दे सकन है। पेनल काड। दष्टि ग भी व स्वभाव का अनुकूल ही ब्यक्त हात हागे। पशु-जीवन में, उसम। दशों में पड विधिपाधर का प्राणिया में, अनेक प्रकार की असहज नष्टाएँ हम दे सकन है। यह जब अपनी सीमा सीम जाती है तब वह ब्यक्ति दुख और घम। निवार बन जाता है। कर्म प्रकार की प्रवृत्तियाँ मनुष्य का पागल बना देती काम र बना देती हैं। दुखन बना देती है। उगी दष्टिकाण से हमें इन प्रवृत्त। विन्नन और ममागान करना चाहिए।

निम्नमग म

कथ में हमारा प्रवृत्त उगता है। कुछ प्राणिया के जीवन में यह दिखाई देता है

भोग सत्तानोत्पत्ति के लिए है। लेकिन बैबटीरिया जसा अणुजीवी अपनी सत्तान लिए के प्रश्न के बिना ही पैदा कर नेता है। वह अपने शरीर को अपने आप दो भागो म विभाजित कर लेता है। उसका एक ही कोशवाला शरीर है। ऊँचे वग व जीवा म दिखाई देनवाली विविध प्रकार की क्रियाएँ और प्रवृत्तिया उसमे नही ?। बहुकोश जीविया मे नर मान्य जैसे प्रभेद दिखाई दत है। कुछ कीटा मे ता नर मादा एक ही हात ह। वह अपने आप मिलता ह और सत्तान उत्पत्ति कर लेता है। एककोश जीवी मे बहुकोश जीवी का विकास हुआ। उसके शरीर के काम-ध्याप्ति व विस्तार स नर-मादा का भेद शुरू हुआ। ऐसे जीवा मे अण्डा दन या बच्चा पैदा करत व बाद पुद सत्तान की रक्षा करने वाल भी हैं नही करन वाले भी हैं।

प्रेम और दीघ दाम्पत्य जीवन

मधुमक्खियो म नर मादा के मिलने के बाद सत्तान तो उत्पन्न हा जाती है। पर नर मक्खी मर जाती है। कुछेक जीवा मे माँ अण्डे देन या बच्चे दने के बाद मर जाती है। उस पर सत्तान के पोषण का भार नही रहता। बहुकोप-जीवी पशु पक्षियो के समान ही विकसित हुए हैं। पशुआ से ही कपिकुल का विकास हुआ, और उससे मानवकुल का विकास हुआ है। यदि हम सिद्धा त का स्वीकार करें ता हम सत्तान और सम्भोग के बीच दीखनवाले स्न आकषण और शृंगार का समझ सतने हैं। जिनम सत्तान व पोषण का दायित्व नही है वहाँ केवल सत्तान भर व लिए कामवृत्ति पर्याप्त रहनी है। बाकी समय मे उसकी आश्रयनता नही रहती। जहाँ मादा को अपनी सत्तान पालनी हाती है वहाँ नर का काम कम हा जाता है। उसम शृंगार का आकषण सम्भोग तक सीमित हाता है। नर मादा मे दूर भी रह सकता है। यदि अण्ड म रहता हो तो भी अनुकूल आन तप भा की रच्छा उसम नही होनी। पक्षिया म अण्डे मर, सेवर बच्च निकलने के त्रा, बच्चन के पध निकलने के बाद उडा की शक्ति आने तक और अपना आहार स्वय जुटा पाने तक नर आर मादा का दायित्व अधिक रहता है। एक समाज म नर मादा व बीच दाम्पत्य दिखाई दता है। बहुत वार दरपथी अण्डे सेना है। बच्चा की खुग्ना भी सानर सता है। बचन नान्य का ही वह काम नही करना पडता। नर मादा का सहायक हाता है। प्रकृति का उद्देश्य स तानोत्पत्ति हान पर भी उद्देश्य पूर्ण व लिए नर और मान्य दोनो को मिलकर तन्ही चलानी पडनी है। इन कारण पतिया म, जाक्य-ओर शृंगार का विशेष महत्व है। नर और मादा म सत्री दोस्ती गवश्यक है। सम्भोग ता बेरत अनुकूल म ही होता है। पर नु उनका स्नेह अण्ड पूरकर, बच्च निकलकर उनसे बढ होन तद, आवश्यक होता है।

पशु जीवन इसम भी तनिक विकसित है। अथवा पिकाय के सम्य पर कुछ

अलग ही है। कुछ प्राणी पशिया की दाम्पत्य नीति पर ही चलते हैं। नर और मादा दोनों, बच्चा का पालन हैं। बच्चे का शिकार खेलना सिखाना पड़ता है। यहाँ भी उनका स्नेह और दाम्पत्य दीर्घकाल तक चलता है। नर अपने आकषण से मादा को अपनी ओर आकर्षित करता है। काटना, चाटना उनके शृंगार की चेष्टाएँ हैं। शेर और चीत में भोग भयंकर रूप धारण कर लेता है। उस समय नर मादा को जान से भी मार सकता है। झुण्ड में रहनेवाले पशुओं का जीवन कुछ और ही ढंग का होता है। हिरण आदि प्राणियों में, जो प्रायः झुण्ड में रहते हैं मादा को प्रतिस्पर्धा के द्वारा जीतना होता है। मादा को बच्चे देने में सात-आठ मास लग जाते हैं तब पशिया के जीवन में दीर्घनेवाला दाम्पत्य यहाँ नहीं दीखता। वह आवश्यक भी नहीं। नर मादाओं के साथ कभी-कभी झुण्ड में रहते भी हैं और नहीं भी रहते समय उनका काय मादाओं की रक्षा करना होता है। शेर या भेड़िया आन पर उनका प्रतिरोध करते हैं। मादा माँ बनते ही बच्चे का पालन का काम में जुट जाती है। झुण्ड में रहकर अनुकरण करने के कारण बच्चा जल्दी स्वतन्त्र हो उठता है। ऐसे समाज में केवल ऋतुगामत्व ही तो चल जाता है।

कवि जीवन

कविया में भी वह भीड़ का अच्छी नस्ल के कविया में, जैसे पूछरीन गारिल्ला, वदून आदि का जीवन झुण्ड का जीवन होता है। यहाँ काम चेष्टाएँ बचपन से सिखाई दनी हैं। उन झुण्ड की माता सरदार बन्दर के अधीन होती है। वह सरदार ही पति जाता है। सब बन्दरिया को उसके अधीन रहना पड़ता है। उस झुण्ड में पलने वान नर बन्दरों को शक्तिम ढंग में अपना काम जीवन बिताना पड़ता है। नहीं तो अपने सरदारों का बोध का भाजन बनना पड़ता है। सरदार के झुण्ड के बन्दरों की काम रक्षाओं का प्रति उत्साहीनता सिद्धान्त पर भी उस परिवार में बढ़े हुए अप बन्दरों का अपने अंतःपुर की बन्दरियाँ छूने नहीं देता। तो निम्न की नीति क्या है? दूसरे बन्दरों को मानान प्राप्त करने का अधिकार नहीं है? उन्हें सम्भोग सुगम। चाहिए? कवि समाज में झुण्ड के जीवन की रीति अनुसार उन्हें सरदारों का मान में जीना पड़ना है। इस परिस्थिति में उनके मान के प्रति आकषण में और अधिक जीवन में बाधा आती है न? प्रत्येक जीव को मानान की दृष्टि होती है। पशु प्राणियों का मान भी चाहिए—जिस दूसरे हित को माधनेवाने कविराज कहते हैं कि किण्ड होता है न? पहला उद्देश्य तो उगम पूरा ही माना है। पशु दूसरे बन्दरों से भोग का अधिकार छीन लिया जाता है। तब में मान का हित में प्रेम करने का साधन नहीं मिलता। जबरनस्ती का पति ही उतर निम्न में आता है। मुद्रिया बन्दर के मरने के बाद दूसरा उसका स्थापन

लेता है। ऐसी सतति से ही आगे के कपि मानव और मानवा का जन्म हुआ होगा।

कपि-मानव, मनुष्य

कपि मानव न कपिया व दाम्पत्य जीवन का अनुमरण किया। कपि स विकसित मानव, मूल म उसके समान ही जीया हागा। परंतु ऐसे समाज के ओर आज व समाज के रूप म आने के लिए हजारों वष लग हाग। तब भाग से सर्वा धत समाज की नीति रूपांतरित हुई होगी। आज मनुष्य कुटुम्बजीवी है। दाम्पत्य जीवन चला रहा है। इसलिए हमें अब सोचना है कि 'सतान के लिए ही भोग' क्या यह निणय ठीक है? पहली बात यह है कि मनुष्य को सतान को स्वतन्त्र-जीवी हान के लिए एक लम्बे अवधि की आवश्यकता होती है। कम से-कम दस पन्द्रह वष तक आश्रय के बिना मानव सतान रह नहीं सकती। मानव की साधारण आयु साठ सत्तर की होती है। उसम स जवान होन म ही बीम वष लग जात है। शेष पचास वर्षों म वह आमतौर पर सात आठ बच्चा का पिता बन सकता है। इतना भारी भोग और सुख उसे तप्त कर सकता है तो ऐसे एक मानव का सम्पूर्ण स यासी कहना गलत नहीं होगा।

एक बात और—यह ऋतुगामत्व से सम्बन्धित है। निम्नवर्ग के प्राणिया व जीवन म ऋतुकाल का एक निश्चित समय हाता है। तभी उनम काम प्रवृत्ति नजर आती है। मानव म यह नियम एकदम बदल गया है। स्त्री के रजस्वला हाने पर भोग निषिद्ध है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि ऋतुकाल भोग का समय नहीं है। स्त्री ऋतुमती होती है परंतु यह नियम-सा बन गया है कि वह ऋतुकाल छोड़कर ही भोग का समय है। यह बात अद्यतन हा या अद्यतन पर है विचारणीय विषय। स्त्री की दह परिपक्व होन के बाद माहवारी बंद होन तब गभ धारण करने योग्य रहती है। उसका निर्माण ही इस प्रकार का हुआ है। ऋतुत्व से स्त्री-पुरुष मे काम जागकर सतान की प्रक्रिया होनी चाहिए। उनके बिना भी काम चलता है। भोग की इच्छा जागृत करने वाली निसर्ग की इस व्यवस्था का मानव समाज म महत्त्व ही नहीं रहा। ऐस जीवन मे ऋतुत्व द्वारा प्रेरित करनेवाली काम क्रिया की आशय और शृंगार प्रेरित करते हैं। यह शक्तिया बुद्धिजीवी मानव म नष्ट नहीं हुई हैं। दूसरी प्रक्रिया म तो थोड़े समय को—यानी ऋतुकाल मे ही ियाई देनेवाला काम जीवन मानव मे लम्बे समय तक दीयना सम्भव हो मका। काम, स्नेह को प्रेरित करनेवाली शक्ति है। मानव की यौवनावस्था म उमका प्रभाव रहता है। अथवा उसके पहले मे उममे दियाई दन पर भी यौवन म सम्भाग की इच्छा और सतान प्राप्ति की इच्छा दाना का एक न ही पाना आशय की बात नहीं। इस सतान व ऋतुकाल के सम्बन्ध म, मानव म हुए दहिब क्रियाओं के

अंतर म हजारों वष सगे होंगे । निसग ने ही ऐसा परिवतन क्यो किया होगा ?

दीघकालीन शिशु सरक्षण

मनुष्य जीवन म सत्तान क लालन पालन के लिए लम्बी अवधि चाहिए । इस कारण स्त्री पुरुष के प्रेम के लिए दीघकाल की आवश्यकता होती है । शृगार, आक्षयण काम और उनसे बढन वाला प्रेम यह सब लम्बी योजना के अग बन चुके हैं । आक्षयण और शृगार यह तो केवल स्त्री पुरुष के मिलाप पर ही समाप्त नहीं होता यदि उन्हें दीघकाल तक के स्नेह म बदलना हो तो सदा रहनेवाली प्रेरणा होनी चाहिए । अधिकांश प्रदत्त विवाहा मे क्या हम यह दीखता है ? अथवा हमारा समाज क परम्परागत दाम्पत्य जीवन म क्या हम यह दिखाई देता है ? मानव की काम भावना ऋतुकाल समाप्त होन के बाद पूरा होती है—यह भी दीघ दाम्पत्य के लिए आवश्यक स्नेह और प्रेम की प्रेरणा है । प्रकृति म मनुष्य के ऋतुव को पार करन का यही उद्देश्य होगा । भोग से सत्तान उत्पत्ति ता होती है परंतु मानव कुन की ता परिस्थितियाँ हैं उसम भोग और काम सत्तानोपत्ति से भी अधिक ध्याप्त हैं । काम स्नेह सम्बन्ध को अवकाश देने और साय-भाय जीवन घसात और स्नेहको बनाय रखन का कारण है । सत्तान उत्पन्न करना ही काम का मवस्व है यह नतिकवाद भी जीवन म दिखाई नहीं देता । प्रकृति सत्तान उत्पादन की राह में बहुत ही बड़ी उदार शक्ति है । एक पेढ पर हजारों फल लगते हैं । उन हजारों बीजो म कितने कम पौधे निकल पाते हैं । सभी कष्ट व अडचनें पार कर पौधे का बसा बचाय रखन को कितने फूल फल निकलत हैं ? मानव की बीजोपत्ति भी यगी ही है । भोग म व्यय होनेवाले लाखो वीर्यकणा म एक ही फलता है कही-कही दो या तीन भी । निसग बहुत उदार है इसका यह एक उदाहरण है । एक वीर्यकण के फलित होने के बाद शेष सब व्यय होत हैं । अति भोग भी व्यय होता है । स्त्रिया क लिए प्राय एक पुरुष ही पर्याप्त है । काम के लिए बचस सत्तान ही उद्देश्य नहीं प्राणी जीवन म शिशु सरक्षण भी उमम सम्मिलित होता है । मनुष्य जीवन म लम्बी अवधि तक शिशु-सरक्षण का काम रहता है । इसलिये भाग बचस सत्तानोपत्ति का साधन न होकर स्त्री-पुरुष के दोषे भाग का कारण बन जाता है । तब काम का विस्तृत कस्य और विस्तृत व्यय हो जाता है । काम और आक्षयण मानव सहज सत्तान-नर तन और लासला को बनाय रखन म ग्हायक हान हैं । इनम से एक भी कम जान पर दाम्पत्य अमल हो उठता है । यह तपि, आक्षयण शृगार काम क व्यापक व्यय है । इसी पर दाम्पत्य की नाति का स्वरूप एक व्यय सेता है ।

विम्बुय जीवन

मानव जीवन म आक्षयण और शृगार का अधिक महत्व हाना चाहिए यानी शय

प्राणियों के जीवन से मानव का जीवन विशेष अयपूर्ण होना चाहिए। उनका मिलन अल्पकालीन होता है जबकि मानव का दीर्घकालीन। शेष प्राणीकुल में अपने बच्चे पैदा करके उस पालकर, आहार देना और उसे शत्रुओं से बचाकर बड़ा कर देना ही बहुत है। प्राचीन काल का गुहामानव भी उतना ही काम करता था। स्त्री पुरुष के मिलन के लिए, स्नेह के लिए, ऐसे उद्देश्यों की एकता होना सरल है। आज का मानव समाज गुहामानव का समाज नहीं रहा। उसकी आशा आकांक्षा—आहार अजन, शत्रुओं से बचना—इतने में ही समाप्त नहीं होती। उसका सुख कई रास्ते चुनता है। अनेक प्रकार के हास विलास, उद्यम, अभ्यास, अभिरुचियाँ आदि अनेक बातें उसके मानसिक ससार में भरी हैं। उसकी आहार समस्या भी गुहामानव के समान सुलभ नहीं। स्त्री पुरुष का, समाज में उमर-भार को वहन करने का ढंग ही कुछ और बन गया है। अन प्राप्त करने का साधन बदल चुके हैं, क्षेत्र बदल चुका है। समाज में स्त्री पुरुष को इन सब कारणों से अपने परिवार से बाहर, गाँव से बाहर दिन बिताने पड़ते हैं। सीमित आवरण में अपना मापी चुन कर प्रेम करके जीवन चलाना एक सरल काम है। उमर भी स्पर्धा दिखाई देती है। लेकिन मानव समाज में विभिन्न प्रकार की अभिरुचियाँ, विस्तृत आहार-क्षेत्र आदि में उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ और भी बढ़ गयी हैं। दीर्घकाल तक साथ रहने का प्रयत्न करने से स्त्री-पुरुष के काम में बहुत समस्याएँ और जटिलताएँ पैदा होती हैं।

शृंगार का स्थान

इसलिए शृंगार और आवरण से स्नेह प्राप्त करके, उस स्नेह का बचाए रखना और बचाना है। स्त्री-पुरुष का स्नेह केवल शारीरिक मोह से ही पूर्ण नहीं जाना। मात्र मानसिक मोह स्त्री पुरुष को शास्त्र की डारी से बाँध सकता है यह समझना भी असाध्य है। नसर्गिक जीवन में यदि प्रेम से दाम्पत्य शुरू हो तो उस दाम्पत्य का कारण को स्वीकार करके, बाद में हम स्नेहपूर्वक ही जीवन बितायेँगे कहना सरल है क्या? यह बात नहीं कि यह सम्भव नहीं है, अपितु सम्भव जाना बचिन है। भोग से बच्चे पैदा हो ही जाते हैं। पर माता रिता का पूरा प्रेम—ह प्राप्त होगा? पिता के बिना और पिता को दग बिना भी माँ सतान प्राप्त कर सकती है। पर तु उस बच्चे की बाढ़ के लिए विश्वास के लिए प्रेममय वातावरण बरकरार होना चाहिए। मनुष्य अन जीवी है पर सुख के लिए उसे स्नेह शीर्ष भी देना पड़ता है।

हित शत्रु

यदि स्वीकार किया जाय कि स्त्री पुरुष के लिए दीर्घकाल का स्नेह-आधार-रक्ष

है ता यह भी मानना पड़ेगा कि उसमें आकषण और शृंगार हो तो अधिक हितकारी होगा। पर एक क्षण भर का काम मोह, प्रमिया को क्षण भर के लिए समीर लाय भी ता उतने स ही वह मित्रता दीघकाल तक नहीं चल सकती। तात्कालिक माह को यदि दीघकाल तक बनाय रखना है तो स्त्री पुरुष की मनोवृत्ति, आनन्त उद्देश्य, स्नह म मल होना चाहिए। उनकी शारीरिक मानसिक इच्छा भी मिलना चाहिए नहीं तो विवाह शब्द का कोई अर्थ नहीं है। इसीलिए पाश्चात्य दशा म विवाह विच्छद की दौड़ लगी रहती है। पति पत्नी का, बच्चों क सामन झगडन की अपेक्षा उनका दूर रहना ही बेहतर है। हमारे समाज म दाम्पत्य का विधाता द्वारा बनाया गया मानते हैं।

हमारे यहाँ गुरु म आकषण और शृंगार के लिए स्थान ही नहा होता, आगे भी शायद वह प्रकट न हो। इस विषय की आन्तरिक तपित और अतपित के बारे म विवाहिन स्त्री-पुरुष चर्चा ही नहीं करत। स्त्री अधिकतर काम की पूर्ति के लिए शरार दनवाली दासी क समान है। उसमें उसके मन का प्रश्न ही नहीं उठता। जहाँ मन क लिए स्थान होना भी है वहाँ दाना क मन की प्रवृत्ति और मनाभाव न मिन ता वहाँ झगडा भी हो सकता है। रोज लडते झगडत एक ही घर म रहन तिन मनु की भांति दाम्पत्य जीवन चल सकता है ?

मनना सब होन पर भी मन की इच्छा और तन की इच्छा छुप रहेगी ? तब हमिन आकषण क विलास दाम्पत्य जीवन से बाहर दीखन लगत हैं या असह्य रास्य पर चलन लगन हैं। यह स्त्री क जीवन म भी हो सकता है। दाम्पत्य जीवन म जब तपित नहा मिलती तब तन और मन बाहर तपित धाजन लगते हैं। नीति क उर स बवसर क अभाव स, जब वह सम्भव नहीं हो पाता तो मन विपरीत माग अन्तान लगता है। श्राध, उदक हिंसा प्रियता, अश्लील भाषण और ध्रम आदि क दमना अन्त हाता है। हमारे नित्य जीवन म निसर्ग की सहज मनोवृत्तियो का अवकाश न मिन ता विचित्र प्रतिनियार्ण हान लगती हैं।

समाज म एक प्रकार क दाम्पत्य और भोग-नीतियो क प्रश्न को ध्यान में रखकर हा आत्म शांतिना पढता है। उनका छोडकर कोई भी नीति व्यावहारिक न। हा मकल केवल किताबा र् जायगी। यदि जबरन उस धोपना चाह तो हम उन्की प्रतिनिया भूगतनी पहनी है।

विष्णु का म

काम शक्त न मकर धीयन आन तर विकसित हानवाली एक शक्ति है। उसका उ ह ममान और मर ता है। उस काय माधन म शृंगार और आकषण सहानक ह। है। मानव समाज म अ वररक ताप दाम्पत्य जीवन क लिए यह काम और अकषण माधन हान है। मानव समाज की विभिन्न अभिवृत्तियाँ और शारीरिक

मुम्ताएँ स्त्री-पुरुष के दूर-दूर रहने के कुछ सादभ, दोस्त या सहलिया से दूर रहत समय किमी अय आवरणो म पनपनेवाले दूमर प्रसग, इन सबको ध्यान म रत्रकर नीनि की रूपरेखा घनानी चाहिए। इन बातो की आर ध्यान दिय बिना घापे गय आश्रम व्यावहारिक नही हो सकत।

अप्रकट विरवित

कितने सयासी ओर स यासिनियो के मठ नही हैं। जवरन घोपा गया वैधव्य नही है। उनम रहनवाले क्या काम दहन कर चुके है? मैंन मुय देखकर ही कुछ एस व्यक्तियो का परीक्षण किया है। जैमा कि पहले बताया कि बच्चो के बार म मैंन जैसे परीक्षण किये वैसे यहाँ भी किये। उनका आदश जो चाह रह उनव मुय उनके आदश चित्रित नही करते यह मेरा निश्चित विश्वास है। ऐसे सयासी ओर मयासिनियाँ क्या करती हैं यह उनस पूछकर देखिय।

लगभग बारह वष की षोज, विचार विनिमय और अनुभवो के आधार पर मैं उपयुक्त निणय पर पहुँचा। यह निणय मैंने अपन लिए किया है। परोपकार के लिए ब्रह्मचय का उपदेश देनेवाले व्यक्ति का नी बारह वष के अन्त म इस निणय पर पहुँचना जापको आश्चय म डाल सकता है। उसे विशद रूप म बताने क लिए और बारह वष लग मकन हैं। परतु अनुभव क आधार पर सही बात कहन के लिए हर की आवश्यकता नही। मैंने जो बात पहल कही उमी को सिद्ध करन का षठ भी न्ी है। मुझे अपन म ईमानदार हाने की बात ही मूध्य है।

आदश बदल गया

पाना मानसिक सघप करन के घाद अपने घारे म निणय लेन म मुझ कोई मुश्विल न्नी हुई। शुरू म विवाहित जीवन मेर दृष्टिकोण से दूर था। इमक अतिरिक्त सावजनिक सेवा म लग शक्ति का यह एक भार भी हो सकता है। मुझे उमय एक गहायना भी मिली। वह यट् थी कि निश्चित होकर अपना काम करने और अपनी शक्ति और मन को उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयोग म लान म सहायता हूद। एक निष्ठुर आदश मरे सम्मुख होन से ही चाहे मैं बँस भी मित्रो के साथ रहा पाहे जहाँ भी ध्रमण करता रहा योवन क सत्ज शृंगार की बलि हान स बन रहने म सहायता मिली। एस उद्देश्य क करतव की जानावाला मैं, अब उनकी शोमन ता जानन लग गया हूँ पर तब ता मैं उह निदनीय समझता था। मर सकागे मित्रों म तरट-तरट के आत्मी ये। नीतिवात उसका दियावा करनवान नीतिहीन—मय म मरा परिषय था। इमम मर जीवन का पय बल्ला न्नी। उन जमान म हो मैंन ब्रह्मचय पर 'जीवन राम्य नाम की पुस्तक लिखकर प्रकाशित करापी थी। तब का मरा जीवन मरी मानसिक प्रवृत्ति के अनुकूल था।

गांधीजी और रामकृष्ण आदि की रचनाओं के प्रभाव और अन्य प्रभावों से मन का झुकाव तब भगवान की ओर अधिक था। वह एक स्वतंत्र विषय के रूप में आगे तिष्ठेगा। यहाँ तो केवल इतना ही कहूँगा कि ऐसी इच्छा के लिए वही जीवन अनुकूल था।

सहचरी का मिलना सरल है ?

मेरे उद्देश्य में परिवर्तन आने से पहले लोगों के शादी के लिए मजबूर करने पर भी मैं तैयार न था। यदि मैं तभी स्वीकार कर लेता तो मेरे जीवन का यह रूप न बन पाता। बारह वर्ष की लम्बी अवधि में मेरे पुराने आदर्श बदल गये। विवाह न करने का हठ जाता रहा। ऐसा लगा कि सांसारिक जीवन व्यक्ति के सस्कार के लिए आवश्यक है। यह सस्कार जाति के चाहे बाहर हो या भीतर दीर्घ मित्रता से बनना चाहिए। जीवन पत्नी और बालबच्चा में गुजारना होता है परन्तु उसकी सफलता या असफलता सही सहचरी के मिलने पर ही सम्भव है। ऐसी सहचरी के मिलने तक विवाह की आशा लगाये रहा। आँखें मूढ़करी रीति में धरणागत होकर जमपत्री मिलाकर विवाह करना मेरे लिए सरल था। पर यह मेरे जीवन की कल्पना के साथ मेल नहीं खाता था। मेरे जीवन का, मरी जान को गमन की बुद्धि शक्ति मरी सहचरी में नहीं होनी चाहिए ? वह चुनाव क्या सम्भव था ? हमारी समाज में स्त्री-मुरूप को अपने अपने आवरण में ओगा पला है। अगर उन सीमा को लौंछें तो निंदा के शिकार बनते हैं। यह मानूँ कि ऐसी स्थिति में साधारणतः हमारे युवक युवतियाँ के लिए सरल स्नेह और परिचय के लिए अवकाश ही नहीं है।

मैं शुरू में जानि के बाधना को नहीं मानता था। जब से सावजनिक काम शुरू किया तब ही जाति या मन में रास्ते में बाधा नहीं बन पाये। परन्तु मरा विचार है कि मन धर्म और सम्प्रति हमारी मानसिकता को प्रभावित करते हैं। दूसरे मनारमस्विय में विवाह करना हितकर नहीं रहेगा। परन्तु हिंदू समाज में ही भूत जन्तुनीय विवाह में कोई दिक्कत नहीं दिखाई दी।

मरा सगर दोष बड़ा विस्तृत था। दोस्ता का दासरा भी बड़ा विस्तृत था। परन्तु उदा विषयों में मर और उन सागा के विचारा में काफी अंतर था। बहुत पालि मित्रता में भी लग विषय के बार में पचा करना बठिना काम था। इस बार में हमारा बाना का विषय कर मन के धार गृहस्थ बनने में तीन चार वर्ष लग गये। तब तक मैं मरा समाज के विचार में परिपक्व हो चुका था। धर्म अपने विचार में भी प्रभा मटका ही था। अंतर बयस इतना था कि मैं मूढा वाता मरता था।

पत्रकारिता

स्वप्नलाक से

पिछले एक अध्याय में मैं खादी प्रचार के साहस और उसकी इतिथी के बारे में लिखा है। उस प्रयास में मूझ पर बर्ज हो गया था। यह काम बंद करते-करते मुझे दूसरे काम के लिए अवकाश मिला। कलिंग छोड़ने के बाद गुजरात में चार-पाँच वर्ष में मुझे अपने कल्पनालोक और वास्तविकता के साथ काफी सघप करने का मौका मिला। तब मैंने यह जाना कि अनुभव की पच्छभूमि के बिना आशा और अभिरुचियाँ सुन्दर आधार प्राप्त नहीं कर सकती।

सेवा ?

अब तक मैं यह सोच रहा था कि मैं एक देशभक्त हूँ। देश सेवा' जैसी बात बहुत बड़ी चीज है। एक अर्थ में वह सब कुछ लेकर चलती है। दूसरी ओर उसमें कुछ भी अर्थ नहीं निकलता। यह बड़ी बात अर्थ की अस्पष्टता होने से पैदा हुई। क्या उसका यह अर्थ है कि देश की उन्नति यानी अमुक उन्नति के लिए प्रयत्न करना चाहिए? देश की स्वतंत्रता—क्या वही एक काम है? राजनीतिक स्वतंत्रता साम्प्रदायिकता से मुक्ति, अर्थात् विश्वास से छुटकारा, इन सब बंधना में परमो मानसिकता एक व्यवहारा से मुक्ति—इनमें से कौन-सी बात देश सेवा है? केवल राजनीतिक स्वतंत्रता ही वह सेवा है? देश जैसी बात ही बटुल बनी है। किसी एक गाँव में बैठे व्यक्ति के लिए अपना देश, अपना समस्त रूप महक जसा ही होता है। हम चाहें जो भी काम करें वह परिमित कार्यण में ही होना चाहिए। हमारे त्रिपाकतापा चाल चलन के लिए वही ज्यादा मौका नहीं मिलता। मुझे जैसे के लिए वह एक ग्राम ही सबता है। ज्यादा में ज्यादा एक तालुका ही सबता है। अब 'सेवा' शब्द भी मुझे एक आडम्बर ही लगता है। सबक बनने में दिखावा नहीं है। पर अपने आपका काम में लगानेवाला व्यक्ति कसा सबक ? यह किसी की सेवा करता है ? जब कोई स्वयं को अपने समाज का अंग समझे तो उसमें सेवा की बात ही नहीं उठती है। वह तो एसा ही दृष्टा

जैसे हम अपने घर के काम आप करते हैं। क्या वह सेवा हुई? उस समाज का ही विस्तार किया जाय तो वह देश सेवा होती है। देश स्वतंत्र होता है तो हम भी स्वतंत्र हान हैं। उसके लिए किया जान वाला काम सेवा है? बड़े बड़े शब्दों में मोह में पड़कर हम कई बार अपना कतव्य ही भूल बैठते हैं। हम 'सवा करते हैं' कहना कबल एक झूठे गव की बात हाती है।

कानड-मेवा

मैंने जो एक काम शुरू किया वह कानड सेवा थी। कानड हमारे घर की भाषा थी। मरा तुळुनाड से सम्पर्क भी नहीं था। अपनी भावनाओं का कानड में प्रकट करने के सिवा मैं क्या कर सकता हूँ फिर भी एक जमाने में मुझे यह भ्रम था कि मैं कानड की सेवा कर रहा हूँ। वह भ्रम भग होने में काफी दिन नहीं लग। काम करने का आरम्भ में यह भ्रम होता है। काम करते चलो तो भ्रम अपने आप मिट जाता है। कुदापुर में दक्षिणाप नाम के एक मित्र थे। वे एक वकील के मुनीम थे। उन्हें पढ़ने का बहुत शौक था। कई मराठी और बंगाली पत्रिकाएँ भगवात थीं। मराठी का मामिक मनोरंजन, नवयुग और बंगाली का भारतवर्ष आदि पत्रिकाएँ भगवात कर पढ़ा करत थे। अगड़ी की शेपाचल प्रथमाता के भी वे पढ़ाते थे। मैं कानड की पत्रिका 'कादम्बरी' भगवाता था। उसने और बंगाली तथा मराठी पत्रिकाओं के स्तर में अन्तर देखकर हम दोनों को दुःख हुआ। हम ऐसा लगा कि कानड पत्रिका में न तो बाह्य आकर्षण है और न भीतरी आकर्षण। तब मरी यह इच्छा हुई कि क्या न एक अच्छी कानड पत्रिका शुरू करें। हमने योजना बनाई कि उस पत्रिका में उपवास और कहानियाँ भी हानी चाहिए। अच्छे लेख होने चाहिए और काफी चित्र भी होना चाहिए। 1924 में हमने यह निर्णय किया कि मरे सम्पादन में 'वसन्त' नाम की एक पत्रिका शुरू की जाय। सम्पादन के लिए मुझे बड़ा मोह था। मुझे ऐसा लगा कि घाट कोई विरोध न मिले पर सम्पादन का विरोध मिल जाये तो बड़ा व्यक्ति हो जाऊँगा। मैंने यह काम करना स्वीकार कर लिया। मेरे पास पस नहा था। 'देवणा के ने कहा, क्या पढ़ कर एक मान के लिए किसी प्रकार चलाने।' दिमाग में विचार उठा। जो हमारा योग्य कार्यालय की स्थापना करने 'वसन्त' मासिक पत्रिका समाज का विरोध कर लिया। मर और एक मित्र थे बी० आनन्द धरदारी। वे एक स्वयं मास्टर थे। पढ़ाई के नाम पर वे कबल मट्टिक थे फिर भी हमने भारदारकर का० ए० की उपाधि लेकर उन्हें सम्मानित व्यवस्थापक बनाया। सम्पादन करने का काम मैं 'हम' बन गया। स्वयं की 'हम' कहने की सम्पादन की लक्ष्य भय भा मुता में बाकी बची है।

पृष्ठ भरना

पत्रिका चलाने के बाद उसमें लेख नहीं भरने चाहिए ? तब शुरू हुई अमली मुमोवत । स्थानीय मित्रों से तकादा कर करके लेख लिखाये । अधिकांश लेख मैं ही लिखता था । पहले दो वर्षों में 'विचित्र कूट', 'भूत' नाम से दा जासूसी उप-यास प्रकाशित किये । आज भी उसकी प्रसिद्धि शेष है । कई लोग बहुत दिना तक 'विचित्र कूट की प्रतियाँ हैं ?' कह कर पत्र लिखत रहें । वह सेक्सटन ब्लक की कहानियाँ पढने की प्रेरणा थी । उन जासूसी कहानियाँ में पता नहीं मैंने कितनी गोलियाँ चलाइ, कितने बरत कराये हैं यह मुझे याद नहीं । उस समय जसी मनोवृत्ति थी वैसी मनोवृत्ति वालों को आज भी वे कहानियाँ पसंद आ सकती हैं । परन्तु मैं तो उससे बहुत जल्दी ऊब गया । एक बुजुर्ग श्री उम्राण भगश राय ने मुझसे एक दिन पूछा "ऐसी कहानियाँ स देश का क्या उद्धार होगा ?" तब मुझे उस प्रश्न के बारे में सोचना ही पडा । उन्हीं दिनों 'निर्भाग्य जन्म' नाम से एक सामाजिक उप-यास लिख कर प्रकाशित किया । तब उस पर मैंने लेखक का नाम नहीं दिया था ।

खाली स्थान पर कविता

पहले दो वर्ष तक तो पत्रिका में किसी प्रकार लेख भरे । मेरे गुरु श्री ऐ० सिव रामय्या जी उसके लिए लेख लिखत थे । मैं मजेदार गावित्तों से कविता लिखने का तकादा करता था, 'प जी, लेखा के बीच में स्थान बच जाता है । उनमें कविता हाता सुन्दर लगता । मुझे तो कविता की गंध तक मालूम नहीं है । आप एकाध कविता दे दें तो बहुत उपकार होगा ।" उन्होंने भी ऐसे सम्पादक पर अभिमान रखकर कुछ कविताएँ भेजी । कुछ दूरमा से लिखवायी । खाली स्थान कविता में पूरा किया । बम्बई, बलकत्ता से रंगीन और अन्य चित्र भगवानकर, अपनी पत्रिका की जगह भरा करता था । अंग्रेजी की 'शिनिर' मासिक पत्रिका की तरह काटून और ध्याय चित्र मैं खुद लिखता था । कुछ विशेषांक भी निकले । उसमें एक सी० आर० दास के बारे में था । पत्रिका में सत निहाल सिंह के लेख का अनु-यास करके छापने की अनुमति प्राप्त की । बाबू भगवान दास का आशीर्वाद भी प्राप्त किया । जो भी हो, पत्रिका के प्रथम दो वर्ष बड़े सफल से बीतें ।

प्राहकों की तलाश में

पत्रिका का संपादन करने में सफल करने में ही काम पूरा हो जाता है क्या ? उस योजना नहीं चाहिए ? प्राहक बनाने के लिए मैं न मगूर, बंगनूर मद्रास बम्बई, उत्तर बर्नाटक आदि स्थानों के कई-कई पत्रकार लगाए । उसमें राह खचक लिए

भी पस नहा जुट पाते थे। लागा व घर जाता ता व भिण्डुको के साथ जसा मनुष्य करत। मुमीबतका टालने क लिए वी०पी० भेज दीजिए' कहते। वी०पी०म ता पना का खच वेवार जाता। कई बार अगले स्टेशन तक पहुँचने के लिए भी पसे ती हुआ करत थ। सत्र बोर्ड न-बोर्ड चन्दादार पेसगी म चन्दा दे देता और मुस आग जान म मन्द करना। कई बार एमा भी हुआ है। मैं एक बार गदग गया था। वहाँ के एक होटल म ठहरा। हाथ म केवल एक अठ्ठी थी। आग हुबन्ली गान के लिए पैस की जरूरत थी। पर होटल वाले को पस दिए बिना काम बने चनता। हाल छोटत समय मैं पूछा, 'कितने पसे हुए?' उन्होंने 'कोई बात नग जान्य कहा। उनकी वृषा स मैं हुबन्ली पहुँचा। कई बार इस प्रकार मेरे साथ घटित हुआ है जिस दखर मुझे आश्चय हुआ। साल के अत तक हमारा पत्रिका का चार मी चन्दादार भी नहीं मिल सके। अगले वष क आरम्भ मे चार मी म बवल एक मी रह गये थ। इन यात्राभा स एक लाभ तो हुआ। हम हने अ ि गीय दखन का अवसर मिला। उसस लख लिखन क लिए सामग्री मिली।

जानियादी पत्रिका

दो ही वर्षों मे मेरे मित्र हार गये। मैं भी बन्दादार हो गया। मित्र मण्डारी का हनाग लिए परिश्रम करना ध्यय गया। उनके पास मेरी ओर स उह प्रदान की गद वी० ए० की द्विती ग गयी। पत्रिका बन्द करनी पडी। बाद म अरे आपकी पत्रिका अफठी थी। आपने उमे बन्द क्या कर दी? यह बात पूछनेवाले भी मिले। इमन बाद तगभग तीन वष तक अनातवात म रहा। उसकी कहानी और कभी बसाऊगा। थान म मैं मगनूर आ गया। सन 1927 म मेरे भाई रामकृष्णवार न यहाँ बसोच थ। 'भू-स्वामी और अरण्य के धार म काम कर रहे थे। तब व मगन विधान मभा क सारथ्य थ। उन्होंने कहा, 'मेरे काम म सहायक होने वाली एक पत्रिका चाहिए। अगर तुम यहाँ रह कर पत्रिका चला सका तो शुरू कर दो। तब मैंन उन्हें उमक लिए आवश्यक प्रबन्ध करने की बात कही। उनके धारे म दूसरा मे भी प्रमिषि पंग करने उम पर मद्रास के मित्रा स चर्चा करने के लिए वे मगन गद। वहाँ के मित्रा म भी महमनि द गी। भय्या शुभी-शुभी गाय लोट। उनकी मगनगा करने के लिए एक गज्जत मद्रास म बेगनूर आय। पर व अपना बचन मय ग। उ गने दूसरी ही एक पत्रिका की नीव रखी। उसे उन्होंने मेरे भाई क मित्र मिह दपट्टे को गीस। य उस पत्रिका को ब्राह्मणा के उदार क लिए प्र ं : माना गान म। मद्रास म उन बुजुग मित्र ने पाले बरिस के विरोध म पत्रिका लगी क लिए काम किया था। मिह जी न मुस ग ही पूछा, 'कदा तुम हमारी पत्रिका को मगन करोगे?' मुझे शुरू म ही ब्राह्मणा स कोई मो ' ' था। सन मैं उमग लिए मैजार न। हुआ। उन्होंने दूसरा ही सभाक

नियुक्त किया। धीरे धीरे भिडे भी उनसे दूर हो गये।

सम्पादकीय द्विज

इससे निराश होने पर भी अपनी 'वसन्त' पत्रिका को फिर स चलाने की इच्छा हुई। मगलूर म और एक बार 'वसन्त कार्यालय' की स्थापना हुई। वहाँ एक वर्ष तक पत्रिका चलाता रहा। तब पत्र की जिम्मेदारी या यूँ कहना चाहिए कि बच्चों की जिम्मेदारी मेरी ही थी। धर्मप्रकाश प्रेसवाले छापन को तयार हो गये। पत्रा सुविधा के अनुसार दिया जा सकता था। वास्तव में उन्हीं को मालिक कहना चाहिए। पत्रिका देखने में मनोहर थी। अनेक विषयों से उसे भरने का प्रयास किया। अनेक मित्रों ने उसके लिए लेख लिखे। तब जमनी में रहनेवाले ५० आचार्य से पत्र द्वारा ही परिचय हुआ। वे वही से अराजकतावाद पर लेख लिखते थे। मैं इंग्लण्ड के लेबर पार्टी कार्यालय से रूस के बारे में पुस्तकें प्राप्त करने लेख लिखने लगा। चीन से Agnes Smedley नाम की महिला लेख भेजा करती थी। जो भी हो, एक पत्रिका को विषयों से भरना एक कठिन कार्य होता है। ऐसा लगता है कि विषय का अध्ययन करके लिखने का गुण हमारे लोगों में नहीं है। उन्हीं दिनों मेरे भाई वासुदेव ने भारतीय वास्तुकला पर लेख लिखे। उनमें मैं चित्रकला की ओर आकर्षित हुआ। उस विषय का अध्ययन करने मैंने भारतीय चित्रकला पर एक लेखमाला तैयार की। बाद में उस पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित किया। उसे देवराज बहादुर निधि का प्रथम पुरस्कार भी मिला। मगर वसु की Rise of the Christian Power in India के सार को लेख माला के रूप में देने का मन हुआ। उनकी अनुमति प्राप्त करके, 'भारत वर्ष में ब्रिटिश लोग' नाम की लेखमाला प्रकाशित की। उसे भी बाद में मैंने पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। तब 'थूट्टेयर ससार' (वश्याशा की दुनिया) नाम का मेरा एक सामाजिक उपन्यास तभी प्रकाशित हुआ। 'बैबरिंग जयवा गलि' (पत्नी की विजय हो) नाम से एक नाटक भी प्रकाशित किया। 'वसन्त' में ही मेरा 'कृष्णाजून' नाटक प्रकाशित हुआ।

सिद्धवन्तल्ली कृष्ण शर्मा ने 'निर्भाग्यद बोरगोड' शीर्षक से अथशास्त्र सम्बन्धी एक लेखमाला दी। और भी कई मित्र मेरे सहायक हुए। फिर भी ऐसा लग रहा था कि पत्रिका के लिए पर्याप्त लेख नहीं मिल रहे हैं। कठिनाई बढ़ी थी कि लिखने वालों को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं था। छात्रागण की सहायता भी बढ़ी नहीं। तो तो पर ही व्यतन हो गयी। तब एक सचित्र पत्रिका चलाना कैसे सम्भव था ?

कृतिचोय

उन दिनों में और भी एक-दो बट्टे अनुभव हुए। हमारे लेखक किसी विषय पर

अच्छी तरह पढ़कर लिखने का कष्ट नहीं उठाते। वे केवल यज्ञ चाहते हैं। यज्ञ भी जो आसानी से मिल जाय। वृत्तिचौय से ही उम प्राप्त करनेवाला की सघना दयादा रहती है—अल्पमति सम्पादक को वह कस समझ में आये? उसे इस बात का भी ध्यान नहीं रहता कि एस लेखका को छापकर वह भी उस चारी में सम्पादक बनना है। मरी पत्रिका को, पहले ही वष में एक महाशय ने भीष्म की भयानक भूने नाम का एक लेख भेजा। वह युक्तिपूर्ण था। उसमें यह तक था कि भीष्म के विवाह न करने से ही महाभारत युद्ध हुआ। उस लेख की प्रशंसा में एक-दो मित्रों ने पत्र भी लिखे। पर एक मित्र ने यह लिखा कि वह मराठी के 'नख' सिप्पाचे भयकर भूल का अनुवाद है। और एक बार एक लेखक ने 'बटुक' राहिणी सवतार दिल्ली' नाम का एक नाटक दिया। मैंने उसे भी प्रकाशित किया। कईदिन उसकी प्रशंसा की। कुछ समय के बाद पता चला कि वह मराठी पत्रिका 'गणसदसी' में प्रकाशित 'बाहे वपचि नरत नाटक' का अनुवाद है। वहाँ का 'रोना पत यहाँ 'नरगम्या' हुआ गया था।

बन्दूक में आजकल वृत्तिचौय खूब जोरो पर है। प्रायः अंग्रेजी से और हिंदी पत्रिकाओं में चोरी होती है। बन्दूकवाले राष्ट्रभाषा से स्तूति पाकर अपने नाम पर उम बन्दूक में छपवा देते हैं। इस प्रकार चोरी बार बार प्रकट हो जाती है। एक बग साहित्यकार ने चेकाव की कानो को अपना बताया था। उसके बन्दूक के अनुवाद से उसका चौप कम प्रकट हो गया। इसी प्रकार एक प्रय में एक लेखक ने Will Durant की Mansions Philosophy में एक अध्याय का अनुवाद करके, अपने नाम में निकाल दिया। एक लखक मित्र ने 'Sixth Beatitude' कहानी का 'छटा स्वयं' या सातवाँ स्वयं नाम से अनुवाद करके अपने नाम से प्रकाशित किया। और एक ने 'सवन ओ कनाक' कहानी का अपनी कहकर प्रकाशित कराया। इन तरीक से अपनी पत्रिकाओं को भरने से बड़ा अपमान देश के लिए और रहा है। इन बार में मुझे और एक व्यक्ति की याद आती है। एक महान साहित्यकार का प्रत्येक साहित्यिक स्पर्धा में प्रथम स्थान पाता देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। एक बार मैं एक कानो प्रतियोगिता का निर्णायक था। उसमें भी उसे प्रथम स्थान मिला। बार में मुझे पता चला कि वह बन्दूक के एक बड़े लेखक की कहानी का अनुवाद है। यह बात मैंने साहित्य परिषद के अध्यायीय सभामें कहा। उस सभा को सुनकर वह लेखक मुझसे झगड़ने लगा। उस विचारक के लिए मैंने ३०० या ४०० पर छाप दिया। उन्होंने लिखा कि मैंने भी ३०० पर हमें कम से कम यह सा जानना ही चाहिए कि हमें किसके लिए है। तब उन महान साहित्यकार का यह मान्यता नहीं। उन्हें न पत्रिकाओं में भी विरायत किया। उनका विचार रहा जाता कि प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए मैंने प्रतियोगिता की आवश्यकता नहीं होती।

हमारी 'वसत' का पुनर्जन्म तो हुआ लेकिन दो वष तक ही चल सकी। उससे और भी बड़ा बड़ गया। यह विचार स्वाभाविक रूप से उठा कि जब पाठक ही नहीं है तब भना पत्रिका किसके लिए निकाली जाय। इसलिए उसे बन्द कर देना पडा। 'वसत' नाम की वह मासिक पत्रिका मेरे वैभव की स्मृतिया मे से एक है।

कभी समाप्त न होने वाली आशा

आज भी मेरा मन पत्रिका चलाना चाहता है। नुबसान से भी उस चलाने का उत्साह है। जब विदेशी पत्रिकाओ को मँगवा कर पढ़ता हूँ तब कानड की पत्रिका-जगत का दारिद्र्य अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है। हमारे सम्पादकों में अध्ययन और विद्वत्ता दोनों पर्याप्त मात्रा में दिखाई नहीं देते। ऐसा लगता है कि वे इस अनुभव के लिए अपवाद हैं। अलग अलग विषयों के लिए समर्पित पत्रिकाएँ भी नहीं हैं और सामान्य पत्रिकाएँ भी नहीं हैं। 'कानड की सेवा के लिए पत्रिका चला रहे हैं, लेख भेजिए' इस अधिकार से लिखनेवाला भी सख्या ही ज्यादा है। एक टा ही लेखकों को पारिश्रमिक दे पा रहे हैं। परंतु अपने लिए आवश्यक लेख हट्टु नोटिस भेजनेवाले सम्पादक ही ज्यादा हैं। उनका विचार है कि लेखक एक अग्रपत्र है उसे तो किसी चीज की जरूरत नहीं होती। एक विशेषांक निकालकर सिने जगत् की चार तारिकाओ के फोटो और सिनेमाओ की चर्चा करने से उन्हें पसंद मिल जाते हैं और पत्रिका चलाना भी सम्भव हो जाता है। और कुछ तो जम से ही सवज होते हैं। दुनिया के पान की आँख और कान खाले बिना ही बड़ी बड़ी बातें लिखने लग जाते हैं। चार सागो की निंदा करके पत्रिका को प्रसिद्ध कराने की घटिया पत्रकारिता भी सिर उठा रही है। अच्छी पत्रिकाओं से अच्छी अभिरुचि पैदा करने की इच्छा कितना म है? उस इच्छा से परिश्रम करने का मन कितना म है? फिर भी हमारा देश बड़ा है, पत्रिकाएँ भी बड़ी हैं। आम विमर्श में मुह मोड़कर ऐसा बड़प्पन रखने वाला भी कभी नहीं है इस देश में।

अपने पास आनेवाले लेखों की सही जाँच करने, अपनी आवश्यकता के अनुसार महायत्ना पाएँ के लिए सम्पादक में आवश्यक सस्कार अभ्यास और विद्वत्ता नहीं होनी चाहिए? अपने पत्रिकोद्यम से मैंने यह अनुभव किया कि मैं अभी अव्योच विद्यार्थी ही हूँ। उस उद्यम से तो कोई यत्न प्राप्त नहीं हुआ।

परोपकार

पत्रिका व्यवसाय में मन प्राप्त नहीं हुआ। पर विषय भरने के लिए जो अभ्यास करता पडा उद्यम में भीतर कुछ अभिरुचियाँ अचानक आयी। उद्यम काय फोटोप्रासी की ओर भी मोर मन गया। 'मन' अनिश्चित मेरा प्रधान काय तंत्र संचयनवति उद्योग प्रवृत्त हुई। मैंने एकत्र नुसू म तामूमी उद्योग में काम रखा।

लघु साहित्य

मेरी बग़्त पत्रिका तो रूक गयी। पर पत्रकारिता वहीं नहीं रकी। उसके बाद भी मैं लेखन व्यवसाय करता रहा। मंगलूर में 'स्वदेशाभिमानी' का सम्पादन कई वर्षों तक मेरे मित्र वामन कुड्डव कर रहे। उन्होंने पहले मेरी पत्रिका के लिए कुछ लेख लिखे थे। बाद में मैं भी उनकी पत्रिका के लिए लेख लिखे। उन लेखों में कुछ वास्तविक और कुछ काल्पनिक व्यक्ति चित्र अधिक रहे। 'दह ज्वाति' नाम से या किसी और उपनाम से कुछ लेख लिखे। 'चिक्क दोडडप' (छाटे-बड़े) लेखमाला भी उसी में प्रकाशित हुई। ज्ञान के सार अध्याय उसीमें प्रकाशित हुए। और भी ऐसे ही कई लेख प्रकाशित हुए। उस सम्पादन का सहायता देने हेतु मैं भी कभी-कभी सम्पादकीय लेख लिख देता था। आगे चल कर कुछ समय तक स्थानीय राजनीति पर समीक्षा-लेख लिखता रहा। यूरॉप की राजनीति पर भी कुछ लेख लिखे। लगभग तीन वर्ष तक उन पत्रिका के साथ मेरा निष्ठा का सम्बन्ध रहा। बाद में मुझ से प्रत्यक्ष सप्ताह लिखना सम्भव न हो सका, पर बीच-बीच में उसीके लिए लिख दिया करता था।

मैं जिना कन्ड पत्रिकाओं के लिए लिख रहा था उनकी अपेक्षाएँ ऊँची नहीं थी। एका लगा कि सब को हल्के-पूल्के लेख चाहिए। वास्तव में मेरी रचि उनमें कम थी। विषयों के अध्ययन में ही ज्यादा रचि थी। इस के लिए मुझे अग्रणी पत्रिकाएँ पढ़नी पड़ती थी।

अग्रणी पत्रिकाओं में

यदि मैं यह कहूँ कि मेरी अग्रणी अपने ढँग की थी तो गलत नहीं होगा। फिर भी मैं अग्रणी में लिखा करता था। कर्नाटक से बाहर जाने पर अग्रणी में भाषण देना पड़ता था। इसलिए लिखने से डरता नहीं था। मुझे लगता था कि विषय मुख्य है या, भाषा कभी भी क्या न हो। मैंने यशगान पर एक लेख लिखा था, जो अमेरिका की 'एशिया' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। उसके पारिध्यमिक के रूप में तो गे हाउर पापिमी डाक में मिला। लेख के अनुसार पारिध्यमिक 'इलस्ट्रेट कीबसो' में प्रकाशित था। अधिकांश पत्रिकाओं में लेख तो स्वीकृत हो जाते पर पारिध्यमिक नहीं मिलता था। यदि मिलता भी तो वह बहुत कम। कन्नड़ की एक पत्रिका में मुझे कई लेख लिखवाये। वेम दन का याचना भी किया। पर देते समय उगा हने शर्त लगायी। अग्रणी पत्रिका में एक बार पाँच-पाँच गो पृष्ठा को दो पृष्ठा का कमोका कमोका कराया। उन लौटान में भी बार-बार आन लेख हुए। मेरी तथा एक पारिध्यमिक कन्नड़ में मनिमादर का कमीशन काय्यकर एक रपय दान देने लिए अर्थात् मेरा पारिध्यमिक बचप से आन रहा। उनका लेख जोया तो

इच और सेंटीमीटर पर चलता था।

पहले मैं 'बम्बई त्रानिकल' नाम के बीकली को लेख भेजा करता था। अन्तिम एक घटना के बाद से मैं उसे लेख देना बन्द कर दिया। 'मलेकुडियर' जीवन के बारे में मैंने एक लेख लिखा। उनके पहाड़ी स्थान में गया। आठ दिन वहाँ रहा। उनके फोटो लिये। बाद में तैयार करके भेजा। उसके प्रकाशन पर उन्होंने चित्र और लेख पर केवल आठ रुपये दिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पत्रकारिता से धन कमानवालों को खाल उधेड़ने के लिए ऐसे लेखक ही उपयुक्त व्यक्ति हैं जो प्रायः दूसरे देशों के लेखकों के लेखों की चोरी करके ही अखबारों को भरते हैं। ऐसा काम करने वाले को मी, दो सी देने से काम चल जाता है। दूसरों के परिश्रमों को वे महत्त्व नहीं देते। हमारी कानड की हालत तो और भी खराब है। कानड में लिखनवालों को केवल सेवा के लिए लिखना पड़ता है। एक बार लिखकर यदि उसने आगे लिखना बन्द कर दिया तो साथ में झिडकियाँ भी घानी पड़ती हैं। मुफ्त में लिखने समय जितनी आपकी प्रशंसा होती है उसे बन्द करने के बाद उतनी ही निंदा भी हाती है। बंगलूर की एक प्रगतिशील पत्रिका ने इस बारे में मुझे सबक भी सिखाया। फिर भी मेरा विश्वास है कि देश की पत्रिकाएँ और लेखक भूख की सीमा लाँघकर सुखद जीवन बिता सकेंगे। आज पाठकों की संख्या में वृद्धि हुई है। अतः लगता है कि सम्पादक अपनी अभिरुचि का विकास करेंगे और जनता से सम्पर्क स्थापित करने पत्रिकाओं के द्वारा धन प्रसार कर सकेंगे, करना भी चाहिए।

यहाँ भी हम एक विषय का परिशीलन कर सकते हैं। हमारी पत्रिकाओं का, खासतौर पर साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाओं का बन्दवर् बड़ा है। लेखकों की संख्या भी बढ़ रही है। ऐसा भी देखने में आया है कि अपने गाँव में बान में पड़े रहनेवाले व्यक्ति न भी 'अज्ञेयता के पेरू' के बारे में लेख लिखा है। आठवीं तक पढ़े लिए लड़कें भी साहित्य, विज्ञान पर लेख लिखकर भेजने लगे हैं। ऐसे लेखकों का समुदाय बढ़ रहा है। उनमें कुछ के लिए कतिचोय मुख्य वृत्ति बन चुका है। सम्पादक से ऐसा अच्छा नहीं हो सकता। परन्तु मुफ्त में मिलने वाले लेख उनमें से भी खुशी ही हाती है। इन अवाञ्छनीय परिस्थितियों के कारण अपनी मायगता में लिखनवानों को प्रोत्साहित करने वाले बहुत कम हैं।

1

रगमच्च

नाटक से समाज सुधार

वसन्त का शुरु करने ही मुझे कुदापुर छोड़ना पडा । चाहे काँग्रेस का काम हा या पत्रिका का वहाँ रहते हुए आगे तही चल पा रहा था । इसी बीच पत्रिका के लिए धन देन वालो की योज म और ग्रहणचय के बारे म भाषण देने हुए रावि-माव भट्टने जाने मुझे दम परिवर्तन से कोई विशेष अंतर नही पडा । मुझ मे एक नयी अभिरुचि पया हुई । मैंने एक-ओ नाटक लिखे थे । उनके मचन के लिए प्रयत्न कर रहा था । यह अभिरुचि विद्यार्थी काल म ही अकुरित हो गई थी । विद्यार्थी काल समाप्त होने तक मैंने किसी नाटक म भाग नही लिया था । अपने बम्बई के प्रवास काल म मैंने जो मराठी नाटक देखे उनके कारण नाटको में अभिरुचि बढ़ी । कला की दृष्टि से उनके बारे म अलग से ही लिखूंगा । यही बम्बई के नाटकों और उनस गिण्ट होनेपाल प्रयोजन के बारे म लिखूंगा । महकरी के मराठी नाटक 'एक प्याला का काट मे अनुवा' करने की इच्छा हुई । एक मराठी जाना को पास बिठाकर उसका अथ ममता कर अनुवा पूरा किया । शराब के दुःखरिणाम लिखाने वाले उम नाटक म दुःखाल नाटक के सभी सगण थे । अनुवा का नाम मैंने लिखा महिमे रखा । तब से मुझ मराठी बड़कर ममजना गरल हो गया । माराष्ट्र के रगमच्च पर उन लिों सामाजिक नाटका का जार था । लभामन म दक्षिणार आया कि क्या नाटक सुधार का साधन नही बन सकता ? हमलिय मैंने अपने नाटका का रगमच्च पर साा का प्रयत्न किया । कई विद्यार्थियों और मित्रा का साहायता म लिखा महिम क मसन की तैयारी की । उमस मैंने लिखकर क मित मनाराम की भुमिका की । उम नाटक म पीने क विरह मस ह दोषाया का मममम था । उमका पाठ मराठ म दूर रहने मरे एक मने क अरुणक क लिखा । उम नाटक क लिखा राष्ट्रीय परिवर्द्ध क ममममन क अरुण पर क दुर म मने जाने का विषय हुआ । पर इसी बीच हमारे हैर म मने रचनेक मने न मने विद्यार्थियों का दुःखकर मने उनेस लिखा कि नाटकों

में अभिनय करन में नीच काम जीर काई नहीं। इससे मर काम में बाधा पड़ी। मुझे गुस्सा आया। मैंने उह कहला भेजा, 'नाटक ता जन्मर मेल जायगा। अगर आपके विद्यार्थी न मिल तो मैं गाँव के पाचका से अभिनय करा लूँगा। व चुप रह गय। उनके विद्यार्थियों का लेकर ही मैंने नाटक भला। वह संगीत नाटका का जमाना था। एक वार्तालाप जीर एक गीत की आवृत्ति हाती थी। मैं जब म्यय अभिनय करन लगा तब यह महमूस हुआ कि भावा क प्रवाह न गीत से बाधा पडती है। मुझे लगा कि गद्य नाटक ही श्रेष्ठ है।

व्यावसायिक लोगों से परिचय

उही दिनों अथवा कुछ पहले हमारे गाँव गदग के गुहड सदाशिवराय की नाटक कम्पनी आयी थी। नाटकों से समाज सुधार हो सकता है इस बारे में व सम्बे चौड़े भाषण झाडा करत थे। तभी मुझे पहली बार नाटकों से सम्बन्धित लोगों का जीवन देखने का अवसर मिला। उनके जीवन और समाज सुधार में काई समता दिखायी नहीं दी। पर मुझे यह जाशा अवश्य थी कि नाटकों से समाज सुधार हो सकता है। उस व्यवसाय के लोगों का ही सुधार करें तो उनके द्वारा समाज सुधार हा सकता है। यह पागल कल्पना मेरे मन में बलवती हा उठी। सन् 1925 में मंगलूर की एक नाटक कम्पनी हमारे गाँव आयी। पहले बताय श्री रा—के भाई उस कम्पनी में थे। मेरा उनमें और दूसरे लोगों से परिचय हुआ। उन परिचय से जहाँ जहाँ नाटक मण्डली ठहरती वहाँ वहाँ मैं भी जाता। उसी नाटक कम्पनी की अपना एक नाटक देकर तयार कराया।

सुधार असम्भव

व मेरे नाटक को तयार करने मेलने लगे। बाद में अपना नाटक 'सती' सयुक्त उनसे बिलवाया। इस काम से मुझमें अभिनय में भी अभिरुचि उत्पन्न हुई। परन्तु उस व्यवसाय के लोगों को सुधारने की आशा में उनके साथ बहुत शिनो तक सम्पर्क रखने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। उह सुधारना, उनके द्वारा समाज को सुधारना एक सपना सा ही लगा। एक बार उसने लिए बहुत प्रयत्न किया। वही कम्पनीवाले जब 'कोन्वेगल' गये तो वहाँ उन्हें पैसा की कमी पड गयी। तब वहाँ बम मंगलूर के एक मित्र ने आश्वासन देते हुए कहा, "अगर आप प्रकाश का डेग बसैं तो मैं पैसा उधार दे सकता हूँ। मैं जब गया था तब मेरा उनसे परिचय हुआ था। उन्होंने कहा अगर आप इनकी जिम्मेदारी सैं तो मैं पैसा दे दूँगा। मुश्किल के समय कोई पैसा दे द कम्पनीवाला के लिए यही बहुत था। मैं उनका मित्र था। मुझ पर उन्हें विश्वास था। वे अपने गाँव की कम्पनी को महत्ता करना चाहते थे। इनके अनावा उनका और बिगो प्रतिपन्न की आशा

न थी। उनके पस के कारण कम्पनी मेरे नाम पर ही गयी। कुछ उतरने तक मैंने उनके लिए कम्पनी का प्रबंध मंभाला। कम्पनी कोल्लेगाल से येलदूर गयी। जान ही मैंने कम्पनी के मूत्र अपने हाथ मे ले लिये। नये नाटकी का अभ्यास शुरू कराया। फालतू कलाकार हटा दिये। नयी योजनानुसार सही कलाकारों को खोज में उतर कर्नाटक का कोना-कोना छान आया। बीजापुर में हलसिगी के मेरे एक मित्र श्री पी० घुसा को भी इसी प्रकार का एक भ्रम था। वह मुसलमान था। हम दोनों की बड़ी मित्रता थी। मेरे लिहाज से वह मेरा साथ हा गया। उसकी सहायता से मैं उतरी कर्नाटक से कुछ कलाकार चुनकर ले आया। जब यह सब कुछ हुआ तब अग्रिहार का मूत्र अपने हाथ से खिसकत दखकर कम्पनी के पुराने मालिक को दुख हुआ। कम्पनी और भी दो-तीन गाँव गयी। तब उन्होंने महसूस किया कि उनकी लच्छा और रगडग में मरी उपस्थिति एक बाधा है। ऐसे अविश्वास के घाता कारण में मरी बार्ड आशा पूर्ण नहीं होगी यह निश्चित था। उनके रग डग सुधारने की शक्ति मुझ में नहीं थी। मैं कम्पनी जिम ढंग में चलाना चाहता था, उसमें उन्होंने सहयोग नहीं दिया। मुझे लगा कि ऐसी परिस्थिति में मेरा कम्पनी छोड़ देना ही ठीक है। इसलिए उन्होंने कम्पनी का भार सौंपा था उही को उस कारण सौंपना पडा। उस नाटक कम्पनी से मुझे थोडा सा ज्ञा पता मिलना था उग लेने का भी मन नहीं रहा। वहाँ से चला आया।

बुल्लपुर में लुकात तथा मासिक पत्र से जो कुछ हो गया था वह भी मरी प्रतीका में था। उसके साथ यह निराशा भी मिल गयी। फिर भी नाटक द्वारा समाज सुधार का भ्रम नहीं गया। इसलिए मैंने यह सावना शुरू किया कि नये सोमों के सहयोग में मैं ही क्यों न एक सस्या खड़ी करूँ। यह स्वल्प बहुत दिना तक मरे दिमाग में बबबर काटता रहा।

भालू मामा

उपवन नाटक कम्पनी जब बनपट्टण में थी तब उसे छोडकर दायनगर में एक पत्र के पाग जान का रिश्ता किया। उस समय घरी एक पटना बताया है। बनपट्टण में घना। समय मेरे पास कुछ दो रुपय भर थे। उस सप्ताह से मुझे बट्टण नगरण जान्यो थी। इसलिए मेरी यात्रा के समय वे जो पस देने आये व भी मैंने स्वीकार गरी किये। हालाँकि मेरा ही पैसा उनकी तरफ था। थामी हाथ ही निकल पडा। रात में एक परिचित मिता, उसका भी रस का भाडा मैंने ही लिया। मुझे भालूनी गोमात्रा का पता था। मुझे दायनगर तक का टिकट खाना था पर मैं पास बीरूर तक के पास ही बच दे। किराय से अति रिक्त बजल दा आन था। बाद में हा गाबकर मैं रस में बैठ गया। मैं बीरूर पहुँच गया। बच आने में मुझे अपने मीन और जाना था। मेरे पास एक पला,

एक एल्युमिनियम का लोटा और दो आने थे। उन दो आने में से एक आना मैंने अपने प्रिय भोजन के लिए खर्च किया। चैन खरीदकर पानी के लाट में भर लिये। बीरूर में गाड़ी से उतर कर पैदल दावणगेर के लिए चल पड़ा। बीरूर से चार मील आगे निकल आया। वहाँ कुछ बच्चे खल रहे थे। वे मेरी आर्ति और रूपको देख कर, मुझे 'भालू मामा' 'भालू मामा' बटकर पुकारने लगे। मुझे भी हँसी आ गयी। कई बार बच्चों के साथ खेलते समय वही बात याद आने पर मैंने अपना नाम भालू मामा बताया है।

दान से नुकसान नहीं

धूप में चलते हुए अज्जमपुर नाम का गाँव पार करके दोपहर के बाद दा वज में शिवनी स्टेशन पहुँचा। मैंने वहाँ नाश्ता किया। वहाँ के स्टेशन मास्टर ने आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? आदि बातें पूछी। तब मैंने क्या जवाब दिया आज याद नहीं। एक घण्टे बाद आधी मिक्स्ट्र गुडस ट्रेन में बिठाकर उठाने मुझे दावणगेरे भेज दिया। गाड़ी में बैठकर मैंने हिसाब लगाकर देखा कि मैंने जा पैसे दिये थे और मेरी जा मुफ्त यात्रा हुई, उसका किराया बराबर था। शायद वह बारह-तरह आने का हिसाब था।

मुसाफिर

आगे की यात्राओं में मेरा और भी कई नाटक मण्डलियों से परिचय हुआ। मेरे मन में उन के प्रति कोई गौरव न होने पर भी किसी मने में बघबर मैंने अपना कुछ समय उनके साथ बिताया।

लगभग सन् 1925 से अगले दो-तीन वर्ष उद्देश्यहीन घूमता रहा। नया कायक्षेत्र नहीं चुना। पुराने क्षेत्र में कोई काम जमा नहीं। बज की चिन्ता मुझे घाये जा रही थी। मन को कुछ सूझा। बज की याद बनाये रखने के लिए एक निशानी रख कर घूमने लगा। दाढ़ी बनाना छोड़ दिया। दाढ़ी छूब बढ़ गयी। उससे मेरी आयु बीस वर्ष अधिक लगने लगी। वे मेरे बड़े बेट के दिन थे। नाटक के प्रशिक्षण से जो थोड़े बहुत पस मिलते उनसे मैं गाँव-गाँव घूमता रहा। मैंने अपने प्रदेश का कई बार चक्कर लगाया। मेरे एक मित्र की पत्नी जब भी मुझे देखती तो 'बारत के पाँव में चत्र है।' कह कर मजाक किया करती जिसे मैं बर्फी भूल नहीं सकता। उन दिनों मेरा जीवनगम्य का था। अपना घाना मैं आर पकाता था। उसका स्वाद अपने ही दूँग का फाग था। शनिवार मैं ही घाना पकाता था। गहूँ, दूध, भूँगपत्ती और घन यही मेरे मुख्य खाद्य पदार्थ थे। अपने घूमवकल्पन का चित्र खींचने में पहले नाटकों में मुद्रार का भ्रम बने छूटा, पहल यह बनाईगा।

जट्टा का जट्टा

जट्टा नाम का एक नाटक है। वह के जट्टा (रा) का नाटक है। नाटक नाटकी से परिचय हुआ। जट्टा मरा बस बस निर्य दल ... मैं जट्टे मरीने उनके साथ रहा। उन दिनों महाभारत का एक श्रेष्ठो जट्टवद पटक ... जट्टा की कथा पर आधारित एक नाटक निर्या। जट्टा ... नाटक में था, तब प्राणी दया सभ' के एक मित्र की प्रशा ... माया नाम का एक नाटक लिखा था। उसे जट्टा की कथा की बातों ने बना। निर्यदगर माया का एक नाटक खेलन की उनकी बहुत इच्छा। मैं S-y el s Forgotten Empire नाम की पुस्तक पढ़कर तीन दशकों का एक नाटक निर्या। उसका नाम 'विजय नगर का मूय' रखा। उसमें मैं निर्य कि विजयनगर के समय स मूय का उदय होता है और कृष्णदेव राय के शासन की नीति आकाश का छून लगती है। रामराय के काल में वह मूय बस रहा है। जट्टा नाटक रगमच तक पहुँचा ही नहीं। उहीं दिनों अपनी माँ के प्रिय का कारण मैं एक और पुस्तक आरम्भ की। उह भगवान पर अक्षय निर्य था। मरी उन निर्या की मनावृत्ति भी उसके अनुकूल थी। रामकृष्ण परमहंस का श्रम म न थ। आज भगवान और धर्म के बारे में मरे विचार बस तो रहे। पर रामकृष्ण का प्रति गौरव की भावना जा रही सकती। इसीलिए मैं उनकी जीवनी का गो पण्डा में अनुवाद किया। जब घर गया तो वह अनुवाद मँ होता कर गुनाया। नाटक कम्पनी में काम करने पर भी मैं अलग काम कर रहा करता था। नाटक का प्रशिक्षण देने भर को बहा जाया करता था। मैं एक शास्त्रीय मास्टर था। उह अभिनय सिखाना मेरा काम था। मैं जो कुछ निर्या उग रामशा की शक्ति उन नटों में नहीं थी। उस जमाने में अच्छे गतेवने ही कहलाते थे। गाने के अलावा उहे कुछ और आता ही न था। यहाँ तक कि नटों को कई पढ़ना लिखना भी नहीं जानते थे। ऐसे नटों को लेकर अभिनय क्या मैं कर क्या गणतता मिलती? जट्टा जो तब मुझसे बीच बीच में कहा करते थे भी, धिया दण्डे के उर निर्या की मरीने ... जट्टा नाम मारने स हिक्कबत्ते।

म भी अल्पप्राण और महाप्राण ज, च श, य, ल, ट का विपरीत उच्चारण कर डालत। रोगमार स रगटन पर भी उनकी जबान ठीक से घूमन वाली नहीं थी।

जट्टप्पा की एक आदत मुझे बहुत पसंद थी। वह जिस गाँव में जाता वहाँ कभी कज नहीं लेता था। जस भी हो अपन गाँव जाकर अपने एक मित्र से उधार-सुधार लेकर कम्पनी चलाया करता। वह कपटी नहीं था। बहुत ईमानदार था। पर जल्दी गुस्से में आ जाता था। उसका सरल स्वभाव अनगढ़ हीरे जसा था। उसे कोई बीमारी लग गयी थी। उसके मरने से दो महीने पहले गाँव में उससे भेंट हुई थी। वही उसके अंतिम दशन थे।

जिना से पहले के

हलगेरी नाटक कम्पनी जब दावणगेरे में थी तब की एक घटना सुनाता हूँ। वह नाटक कम्पनी छाडिलकर के 'राशसी महत्वावाशा' का अनुवाद खेल रही थी। दावणगेरे के मुसलमानों को आकर्षित करने के लिए उन्होंने मूल नाटक का नाम 'खूबमूरत बला' उर्दू अक्षरों में जगह-जगह बोड पर लिखवा दिया। उसका परिणाम उल्टा ही हुआ। गाँव के कुछ मुसलमान उनके पास आये, "अरबी लिपि हमारी है। आप लोग ने हिंदू होकर उसे क्यों लिखा?" कहकर उन्होंने सार बोड उतरवा दिये।

दावणगेरे में मराठी बोलनवाला काफी सख्या में हैं। एक बार उन्होंने मुझे शिवाजी पर भाषण करने को बुलाया था। भाषण के एक मास के भीतर ही वहाँ भी हिंदू-मुसलमान दंग की नौबत क्यों आनी थी?

गुब्बी वीरणा

मेरी एक और परिचित कम्पनी गुब्बी वीरणा की थी। जब वह कम्पनी मंगलूर आयी तब मंगलूर ट्रेनिंग कॉलेज के विद्यार्थियों ने मेरा 'सती सयुक्ता' नाटक उनके थिएटर में गला। वही मेरा और वीरणा का परिचय आरम्भ हुआ। उन्होंने मेरा 'गदायुद्ध' नाटक खेलने का लिया। तीन बार महीने उसका अभ्यास भी किया। पर बीच बीच में कलाकार बर्तते रहे इस कारण वह नाटक रणमंच पर आया ही नहीं। मृदय पात्र दुर्गोधन की भूमिका ही अनेक बार बरती गयी। उम भल्लप्पा (दिव्यात) को निभानी थी। उसने कम्पनी ही छोड़ दी। बाद में कानड फिल्म जगत के प्रसिद्ध अभिनेता मुग्ग्या नायडू (निवर्तन) को अजुन की भूमिका का अभ्यास कराया। दुर्गोधन के अभिनय के लिए वीरणा का ही अभ्यास कराया। उन्होंने अपना सारा समय हास्य अभिनेता के रूप में बिताया था। कम्पनी की दुनियाँ को नया के लिए अपनी सारी शक्ति उसी में व्यर्थ कर दी।

हलगेरी का जट्टप्पा

राणबनूर क पाम हलगेरी नाम का एवगांव है। वहाँ के जट्टप्पा (बडा) का श्रीज्ञानमिठ्ठे श्वर नाटक मण्डली से परिचय हुआ। जट्टप्पा मरा बहुत अच्छे मित्र बन गया। मैं कई महीने उसका साथ रहा। उन दिनों महाभारत का एक अध्याय अनुवाद पढ़कर गणायुद्ध की कथा पर आधारित एक नाटक लिखा। जब वह मण्डली दावणगर में थी तब 'प्राणी दया सध' के एक मित्र की प्रेरणा से 'मो माता' नाम का एक नाटक लिखा था। उसे जट्टप्पा की कम्पनीवाला ने रखा। विजयनगर साम्राज्य के समय का एक नाटक खेलने की उनकी बहुत इच्छा थी। मैंने S-wel's Forgotten Empire नाम की पुस्तक पढ़कर तीन दशका का एक नाटक लिखा। उसका नाम 'विजय नगर का सूर्य' रखा। उसमें मैंने सिद्धांत कि विदारण्य के समय में सूर्य का उदय होता है और कृष्णदेव राय के काल में उसकी कीर्ति आकाश को छूने लगती है। रामराय के काल में वह सूर्य डूब जाता है। वह नाटक रणमंच तक पहुँचा ही नहीं। उही दिनों अपनी माँ के प्रति श्रद्धा के कारण मैंने एक और पुस्तक आरम्भ की। उन्हें भगवान पर अघण्ड विश्वास था। मरा उन सिद्धांतों की मतावृत्ति भी उसने अनुकूल थी। रामकृष्ण परमहंस मरे आश्रम गत थे। आज भगवान और धर्म के बारे में मर विचार बदल तो गया है पर रामकृष्ण के प्रति गौरव की भावना जा नहीं सकती। इसीलिए मैंने उनका जीवनो का मो पछा में अनुवाद किया। जब घर गया तो वह अनुवाद माँ को पढ़कर गुनाह। नाटक कम्पनी में काम करने पर भी मैं अलग कमरा लेकर रखा करता था। नाटक का प्रशिक्षण देने भर को वहाँ जाया करता था। मैं उनका तामाम मास्टर था। उन्हें अभिनय सिखाना मेरा काम था। मैं जो कुछ सिखाता उस समय की तकिये उन मर्तों में नहीं थी। उस जमाने में अच्छे गलेवाले ही मर्त काम करते थे। गाने के अलावा उन्हें कुछ और आता ही था था। यहाँ तब कि उनमें कई पढ़ना लिखना भी नहीं जानते थे। ऐसे मर्तों को लेकर अभिनय कला में मला क्या सम्पत्ति मिलता? जट्टप्पा जो तब मुझसे बीच बीच में बहस करत, 'मास्टर जो बिना हस्त के उन्हें सिखा नहीं आयेगी। अगर आप मारने से हिचकधात है तो मैं उस काम के लिए तब आश्री देता हूँ। उनका हाथ में चाहे धातुक बमाल्य मा दान। 'क्या सम्पत्ति करूँ ही वह अपना काम करने लगता। तभी जाकर डण की सम्पत्ति था। तेनी सम्पत्ति के स्वर तक मुझसे पहुँचना सम्भव था? उनका सम्पत्ति सम्पत्ति है ईश्वर के पत्नी रही। वही आप मास्टर के एक प्रसिद्ध हाथ के स्वर करके कम्पनी में नाट्य। वरू गहरिया का सिद्धांत के स्वर में रणमंच पर आना और अपना भावपूर्ण एक किया। 'अब इसकी माँ की पत्नी मुझसे मुझसे मैं उनसे सम्भव पर करे काम। उनसे सम्भव इतने बढ़िया थे! जो मर

म भी अल्पप्राण और महाप्राण ज, च श, य, ल, ड का विपरीत उच्चारण कर डालत। रंगमार्ग से रंगडन पर भी उनकी जवान ठीक से धूमन वाला नहा थी।

जट्टप्पा की एक आदत मुझ बहुत पसंद थी। वह जिस गाँव में जाता वहाँ कभी कच नहीं लेता था। जस भी हो अपने गाँव जाकर अपने एक मित्र से उधार सुधार लेकर कम्पनी चलाया करता। वह कपटी नहीं था। बहुत ईमानदार था। पर जल्दी गुस्से में आ जाता था। उसका सरल स्वभाव अनगढ़ हीरे जसा था। उसे कोई बीमारी लग गयी थी। उसके मरने से दो महीने पहले गाँव में उससे भेंट हुई थी। वही उसके अंतिम दशन था।

जिना से पहले के

हलगेरी नाटक कम्पनी जब दावणगेरे में थी तब की एक घटना सुनाता हूँ। वह नाटक कम्पनी छाड़िलकर के 'राक्षसी महत्वाकांक्षा' का अनुवाद खेल रही थी। दावणगेरे के मुसलमानों को आकर्षित करने के लिए उन्होंने मूल नाटक का नाम 'धूममूरत बला' उर्दू अक्षरों में जगह जगह बोड पर लिखवा दिया। उसका परिणाम उल्टा ही हुआ। गाँव के कुछ मुसलमान उनके पास आये, "अरबी लिपि हमारी है। आप लोग ने हिंदू होकर उसे क्या लिखा?" बहकर उन्होंने सार बोड उतरवा दिये।

दावणगेरे में मराठी बोलनेवाले काफी सख्या में हैं। एक बार उन्होंने मुझे शिवाजी पर भाषण करने को बुलाया था। भाषण के एक मास के भीतर ही वहाँ भी हिंदू-मुसलमान दंग की नौबत क्या आनी थी?

गुब्बो वीरणा

मरी एक और परिचित कम्पनी गुब्बो वीरणा की थी। जब वह कम्पनी मंगलूर आयी तब मंगलूर ट्रेनिंग कॉलेज के विद्याधियो ने मरा 'सती सयुक्ता' नाटक उनके थिएटर में गेला। वही से मरा और वीरणा का परिवर्ध आरम्भ हुआ। उन्होंने मेरा 'गदायुद्ध' नाटक खेलने का लिया। तीन चार महीने उसका अभ्यास भी किया। पर बीच बीच में बलाकार चलते रहे इस कारण वह नाटक रंगमंच पर आया ही नहीं। मुख्य पात्र दुर्घोषन की भूमिका ही अनक बार खिली गयी। उस भल्लप्पा (दिवान) को निभानी थी। उसने कम्पनी ही छोड़ दी। बाद में कानड तिने गगत के प्रसिद्ध अभिनेता मुग्गय्या नायडू (शिवगत) को अजुन की भूमिका का अभ्यास कराया। दुर्घोषन के अभिनय के लिए वीरणा की ही अभ्यास कराया। उन्होंने अपना सारा समय हास्य अभिनय के रूप में बिताया था। कम्पनी की दुनियाँ को नब न के लिए अपनी सारी शक्ति उसी में व्यर्थ कर दियो

थी। लेकिन मुझे एसा लगा की उनमे गम्भीर अभिनय करने की क्षमता है। इसने लिए मैंने स्वयं उन्हें कुछ अभ्यास कराया और पाया कि उनमे सब प्रकार के रसा का चिन्तन करने की शक्ति है। मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि एक गम्भीर कलाकार अपना गारा जीवन अचहीन भूमिकाओ मे ही नष्ट कर रहा है। उन दिना (1930) मे उनका पास दो दो कम्पनिया थी। खूब आमदनी थी। कलाकारो के लिए लगर चलता था। उन जिना के अपने कलाकारो का जितना बतन देना था उनना सारे कर्नाटक की रगभूमि मे और बाईं नही दता था। परंतु उनमे उन जिना तीन सौ रुपय महीना बतन पाने वाल कलाकार भी असंतुष्ट थे। उन्हें गद की कम्पनी खालकर पसवाला बनने की लालसा थी। ऐसे बड़े कलाकार गद की कम्पनिया बनाकर हूये भी। एक अभिनेत्री को सात सौ रुपय महीना दोबान गान्धी के थे। उहात नौया को खुश करके अपना सम्मान बनाये रया। एक कम्पनी चलान की जितनी शक्ति उनमे थी उतनी दूसरो मे नही थी। उन कम्पनी मे रण रण उनके बेटा की काम लिप्पा देगकर मैं बहुत दुखी हुआ था। "यग के सातक मे आप बच्चा का भविष्य बिगाड रहे है।" इस आशय का एक पत्र मैंने उन्हें लिखा था।

उस नाटक कम्पनी के साग हर शुक्रवार का भजन किया करते थे। सबसे बड़ी विशेषता यह कि सभी के सभी मगीत जानने वाल थे। उस भजन मे भक्त घाटेन के गुणगना सदा बेसा बजाया करते थे।

भजन के समय उनका बेसा बजाना अच्छा लगता था। परंतु आस पास बैठे भजनों का जोप पर हाथ मारकर ताल देना और भजनों का कुछ छुप करके उनका गाना मुझे बहुत अघरता था। सब मुझे गौधीजी के साबरमती आश्रम का गान बानावरण याद आ जाता था।

गुद ममथ

सन् 1930 के मगभग मगनूर मे गुद ममथ नाटक 'मण्डस' नाम से एक कम्पनी आयी। उनका निग विजयनगर के गाल्य जिम्मा की कहानी पाँच अक्ता मे लिखकर दा. उगका नाम कटारो प्रेरक रघुवर उगका सम्पाद भी कराया। ये लोग बारी मगभग मे उगका मगन करत रहे।

बट-बटे नाटक

एक भव्य मे मैंने पाँच अक्ता के कई नाटक लिखे जिन मे कुछ का ममथ मगभग के निग लिखे गये थे और कुछ अभिनय कौशल के प्रशंसक के निग।

एक नाटक लिख करे के बाद नाटक मे हृष्णाञ्जन गभदुरा प्रशान्ति ए. के. के भव्यन हा जिन। उनमे 'जिम्मागर', कौनमुय कही 'ज्वाला

बघन', 'विजयदशमी', 'बादल विजली', 'गो माता' आदि के नाम याद हैं। 'विजयदशमी' एक बड़ा नाटक था। महल के प्रदर्शन से लेकर गरीबी तक का चित्रण उसमें हुआ था। नाटक की कथा के अंत में विजयदशमी की शोभायात्रा के सामने से एक गरीब का शव निकलने का अभिनय किया जाता है। यहाँ में मुना कि जिस वप मैंने यह नाटक लिखा उसी वप मैंमूर की विजयदशमी की शोभायात्रा के समय ऐसी ही एक दुःखद घटना हा गयी थी।

कला की पृष्ठभूमि

नाटका के द्वारा सुधार का मेरा भ्रम कैसे टूटा यह कहने के बाद यह अध्याय समाप्त करूँगा। व्यावसायिक नाटक मण्डलियों का जीवन पाम से दखन के बाद, उनसे सुधार हो सकता है यह आशा बाकी नहीं रही। उहाँ भी दूसरी क ममान ही इस जीविका का एक साधन मात्र समझा था यद्यपि उनमें कुछ की समीत में अभिगच्छि थी और अभ्यास भी किया था। किसी भी कला को भली प्रकार प्रकट होना में कलाकार का अपना संस्कार प्रमुख होना चाहिए। उसके संस्कार का आधार है इस जगत का पान और अनुभव। भल ही वह सामान्य कलाकार क्या न हा, विविध पात्रों का अभिनय करने के लिए उम मूल व्यक्तित्व के जीवन की कल्पना तो हानी ही चाहिए। चाह रोना हो या हँसना या और किसी रस को अभिव्यक्त करना हो, एक ही तरह दूसरा नहीं करता। गली-गली आवाज़ धूमने वाल का गुस्सा और दुर्गंधन जैसे व्यक्तित्व का गुस्सा सामान नहीं हाता। दुर्गंधन उच्च संस्कारों में पला होना है। उसका वचस्व उसका श्रेष्ठ क ढग में व्यक्त होना चाहिए। क्या एक ही व्यक्ति हर परिस्थिति में रोने या हँसने समय एक ही जसा रोवेगा या हँसेगा ?

पौराणिक नाटक खेसनवाल हमार कलाकारों में प्राचीन काल की हमारी संस्कृति की कल्पना नहीं होनी चाहिए ? सामाजिक नाटक खेसना भी सरल नहीं। विविध स्तरवाले जन जीवन के भीतर घुसकर दखनेवाली आँखा को ही अभिनय करने का रास्ता सीधता है। ऐसी चीजें पत्रकार समझी जा सकती हैं, पर पढ़े लिखे कलाकार कम ही होत हैं। पढ़ा की आदत हमार कलाकारों में बहुत कम है। सजुचित वातावरण और सजुचित पान के कारण समाज-सुधार की बात के समझ ही नहीं सकते। एक ओर बात हमार उपरान और हमारे जीवन में अगर कोई सम्बन्ध न हो तो हमारी बात की कोई कीमत नहीं रहती। हृदय से निकलने वाली बात ही हृदय का छू सकती है। मुझे ऐसा नहीं लगता कि ऐसा हृदय व्यावसायिक कलाकार के पाम हो सकता है। वह तो उसमें हा ही नहीं सकता। चार दिन क मनोरजन के लिए नाटक खेसन वान नाटकप्रतियों में भी मैंने यह बात नहीं देखी।

अपनी कम्पनी

कभी मुझे एसा लगता था कि मुझे अपनी ही एक मण्डली बनाकर यह काम करना चाहिए। आमतौर पर मर लिख नाटक मर व्यावसायिक कलाकारों को पसन्द नही आता था। व सदा की बहाना करते थे कि हमारी कम्पनी क लागे क लागे नाटक लिखिए। राज कम्पनी छाटक कर चल जानवाल कलाकार म किम्व हिनाब म नाटक लिखता। इसके अलावा उनकी आँखें सदा कलमशन पर लगी रहती। म और बहाना मदान लोगे का आश्चर्यचकित करनवाले रगे की तक भटक और ट्रीमजर सीन नाटक म हा तो उनका काम चल जाता था। नाटक म आदि म अन्त तक मगीत हाना चाहिए। स्त्री कलाकार हाने ही चाहिए। स्त्री कलाकार रने ता साग पस देखर नाटक देखते हैं। पुरुष कलाकारों के पास विल्लान भर को रगा हा ता काफी था। एम म मरी कौन-सी आशा पूरी होनवाली थी? मैं कुछ समझार सस्याए भी देखी थी। यहाँ भी कला पर थड्डा या जीवन की पवित्रता द्यन का नही मिनी। एमा होन पर भी मैं केवल अपने पागलपन के लिए मसूर क एक नता म सहायता सेकर एक नाटक कम्पनी बनाने चला। उसने लिए बैंगलूर म पुना तक चक्कर पाट। मन्ाराष्ट्र के बालगधव से भी मिला। एम कथा क पास रगा। मरे नाटक के लिए गुन्नी वीरणा न जो पसा लिया था व मर इम उठ गया। अन्त म हाथ धाली हा जान पर चुपचाप बठ गया।

अनुराग का परदा

बैंगलूर म रहत (1927-30 म) अन्त कुछ मित्रों के साथ मिलकर मैंने एक नाटक भात। यह काम करे समय मैं देखा कि कला और प्रचार म बहुत अन्तर है। भावुकता म बहु कर किमी एक बात म अनुराग हो जाता है तब नाटक का मसक मूँट म बही बात कामवाना पाता है। उन नाटक म हमारी भावना म समाजारी भी हो और कथा का प्रसंग नाटक के उपयुक्त भी हा फिर भी पात्रों का निर्माण सामर्थ्य नही हा सकता। प्रत्येक पात्र का उनके ही अस्तित्व म चक्कर उठाका निर्माण करत म और अपनी आँखा म देखकर उगका निर्माण करत म काम अन्तर है। मसक के अनुसार विषय जनप्रिय हाने हैं। उदाहरण क लिए भाग्यदत्त निवारण, शाली उपहार, अन्त का विरोध धानपिदाह का विरोध सामर्थ्य एम विषय म भावुकता का काने क तो मीग सान्नी बनत है। एम विषय को धर्मिका क प्रसंग का मूँट के प्रसंग का उगार ता व नाटक प्रगतिशील हाता है। एम का कला के मग मूँट का मसक। प्रचार भर हा सकता है। कला के मर एक प्रसंग का विचार करता है तब उम क मय कारण मानवाने क्षमता को मिला। ईम म विचार करना चाहिए। ताकि नाटक देखन काने उम वारे म

अपना ही निणय कर सकें। नाटक म नाटककार यदि अपने पूव निणय के अनुसार रगभूमि पर दन नमूने प्रस्तुत करे तो वह नाटक नहीं हा सबता।

समस्या नाटक

मगलूर म आकर बसने के बाद मेरा मोलहत्तिल शिवराय स परिचय हुआ। हमारे जिले म ऐसा कोई न था जो उह न जानता हो। उनके बारे म विस्तार म आग लिखूंगा। तब (1928 29 म) के पुल्लूर तालुक बोड के अध्यक्ष थ। उनके अधीन कई हायर सेनेण्ट्री पाठशालाएँ थी। उनके स्कूल के बच्चे सभी प्रकार क कायप्रमाण म भाग लेते थे। एक बार उन्होंने अपन स्कूल के बच्चा के द्वारा समस्या नाटक कराने की इच्छा प्रकट की। मैंने उनके लिए दा नाटक लिखे। एक वध उनके स्कूल के बच्चा ने मेरा 'डोमिंगो' नाम का एकाकी नाटक अभिनीत किया। दूसरे वध मेरा ही 'साबिर मिलिया' नाटक खेला। पहले वाले नाटक मे एक हरिजन और ब्राह्मण सडके की दोस्ती की कहानी थी। दूसरे म एक पियनफ्ट की कहानी थी। सात-आठ स्कूल के बच्चो न उन नाटक का अभ्यास किया और अपनी प्रिममस की छुट्टियों मे अलग अलग गाँवा म, अपना मामान सिर पर ढो कर ले जा कर वह नाटक दिखाया। इस प्रकार उन नाटक को दस-बारह दिनों की छुट्टियों मे उन सात आठ स्कूलो के बच्चो न पचान-साठ गाँवा मे जाकर उमे प्रदर्शन किया।

आगे एक बार शिवराय की मित्रता से मैंने पुल्लूर के तैतीस गाँवा का घ्रमण किया। उस घ्रमण का उद्देश्य गाँवा की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना था। चार मास के अपने प्रयास म मैं जिन गाँवो म गया वहाँ तीन-तीन दिन गुजार। अपन साथ चार-पाँच युवको को लेकर नाटक का सामान ढोकर ले गया और नाटको के प्रदर्शन भी किये। तब मैंने 'हणोयवरा' (भाग्य का लेख) नामका नाटक भी लिखा। उमम भाग्य पर विश्वास रखन याने एक व्यक्ति की कहानी थी। मेरा दूसरा एकाकी नाटक था 'अदु इदु' (आज कल)। उम दो दिन खेलने और तीसरे दिन गाँववालो मे ही यशमान करवाते थे। यह कटना पाहिए कि नाटका के द्वारा प्रचार करन का मेरा प्रयास यहाँ समाप्त हो गया। य। अंतिम प्रयास था।

बाद म तीन नाटक के अलग-अलग भेदा के प्रयास किये। इनलिए नाटक के बारे म मेरी कल्पना और दृष्टिकोण मे परिवर्तन आन लग।

घुमकड जीवन

हनसगी म

यंगी में अपनी कुछ यात्राओं की कहानियाँ बनाना चाहता हूँ। यात्रा ही-
सामग्य बनाने ही तो कोई-न-कोई अभिरुचि या उद्देश्य होना चाहिए। दूसरों
के यंगी रोगी सादना ही उद्देश्य नहीं होना चाहिए। पहले स ही मैं घुमकड था।
वसन्त ऋतु का मिनाटन व समय मैं कई गाँव देगे दे। उससे अलग-अलग
राज की कानून जनता के जीवन का परिचय हुआ था। एक बार मैं बीजापुर
जिला व हनसगी गाँव गया। वहाँ घुसा घनमल्ल बापस आदि मित्र थे। मेरा तो
काम कानून दिने स सम्बन्ध था। सगा अकालपीठित बीजापुर का परिचय वस
राजा ? यंगी ता पेड़-पौधे व वस नाम भर व लिए व। जब मैं वहाँ गया तब मेरी
आँखें घुस म जपने लगी। हनसगी इसका अपवाद नहीं था। वहाँ के घर
का काम कहता। मधुमक्खी के छत्ता के समान एक-दूसरे से सट थे। चारों
आर घुस का सामग्य था। मगता था मनी गाँव का मन्गी स निवट का
सम्बन्ध है।

मैं यंगी नाल्यकमी के दिन गया था। घुसा माह्व के बड़े भाई गाँव व
व स व। मैं उहा के यंगी जाकर ठहरा। मेरे लिए आवश्यक मूंगरनी और दूध
का उन गाँव म अभाव नहा था। उम दिन शाम को एक गोडा के घर के सामने
माल्यकमी मन्गी के लिए मीर के गभी सान दृक्कट हुए। पहली बार मीरे उतर
का एक व मन्गी का गोम्य देगा। उम गाँव म किमी जमाने से गोडा माह्व
मान का एक भाग वसि हुआ था। उमकी 'माह्वी' उम गाँव व रामबाद नाम
व मन्गी का न मन्गी मुनापी। उमक पीछ ही एक मुमसमान राज ने जीर्णी
का। दिने मुन्गी के लीव। हनसगी के रनिकों की वयाएँ अभिमयु की
का। मन्गी के दिन मुन्गी की यात्र आदि मीन उगने एक के बाद एक
ले। यंगी माह्व का रका मया 'निव तर दिना मरा कोई नहीं' मीन मी
का के विना। उम मीर की निवने का न मुमसमान वरि का निव परान

नहीं लगा। अब्दुल करीम जैसा उत्तर हिंदुस्तान का, ऐसा कौन-सा मुसलमान गायक है जो 'मर कहेया जुमना तीर,' 'मेरे तो गिरधर गोपाल' आदि भक्ति के गीत गाने में हिचकिचाता है? कला के राज्य में मत और द्वेष का दखल नहीं होता, वैसे ही हलसगी गाँव के जीवन में हिंदू मुसलमान पूरी तरह घुल मिल गये थे। आज इन साम्प्रदायिक झगडा को देखने से लगता है कि हमारे नेता ही राजनीतिक स्वायत्त क लिए सौहाद के दूध के प्याले में विष घाल रहे हैं। रामचंद्र की लावणी सुनने हिंदू मुसलमानों का उस दिन का मिलाप मेरी याद में बहुत दिनों तक बना रहा। मैंने आगे एक बार उन्हें अपने गाँव बुला कर, उनकी लावणी सुनी थी। एक बार उनसे हमारे स्कूल के लड़कों की सिखान का प्रबंध भी हुआ था।

नविलरू (मोरगाव)

हलसगी गाँव की याद आने पर उस गाँव के मोरा की मैं कभी भूल नहीं सकता। उस गाँव के पास एक नाला है। उसके पास नीम के पेड़ों का झुरमुट है। संध्या को सड़का मोर वहाँ आकर इकट्ठे होते हैं, उनकी बोली का क्या कहना! एक बार जब मैं उस गाँव गया उस दिन खूब बाले बागल घिर आये थे। तब मारा का मस्त नरम देखकर मैं भुग्न हो उठा था। उसी याद में मैंने एक बार 'मेघ-मयूर' नरम की सजाजना की थी। उस हलसगी को मैंने अपने एक ज्ञानिय में भी पाठ किया है।

निसर्ग का मोह

मैंने शुरू-शुरू में जो प्रवेश देते उनमें उत्तर कानड ही मुख्य है। हमारे जिन के सौंदर्य की वह बराबरी कर सकता है। उन प्रात के बटबल के पाग समुद्र के किनारे के टील पर खड़े होने पर जो दृश्य दीखता है वह अनुपम है। बारबार के समुद्र का किनारा, बीच के पहाड़ प्रत्येक निसर्गप्रिय को मोहित करत हैं। मलनाड के सब से आकर्षक स्थान का मैंने कई बार देखा है। वहाँ के सारे झरन मनमाहक हैं। शरावती नदी के किनारे बैठ भोजन पकाकर खाया है और उसकी रत में सला हू। पहाड़ की झील छाया तथा जामुनी रंग की बाई का देखकर प्रसन्न हुआ हू। एक बार पदल थे। यह नदी पार करन का मन हुआ। वहाँ के बड़े-बड़े पर्यटन लाघकर, पानी में उतरकर दूसरे किनारे तक जान की इच्छा हुई। पर्यटन पर से छर्नांग लगाकर पानी में उतरकर उगे पार करन का प्रयत्न किया। बहुत दूर तक माहम करन के बाग, आन में किसी एक चट्टान पर आया था ठाँठे मारता पानी। उनके धग का देखकर डर गया। उनमें मैं बच गया वही बड़ी बात थी। घटबने दिन से और आधा घण्टा के थम के बाद हाटल मोटा। सब मोचा कि ऐस पागलपन के काम में हाथ नहीं डालना चाहिए।

बादामी

हाथ में कमरा लिय हलविड अच्यु तजाबूर, बेलूरु आदि सब दण आया ह । शिल्प और वास्तुकला के मोह के कारण ऐसे स्थानों की स्मृतियाँ अभी मिट नहीं सकती । और एक बार मिय घूला को साथ लेकर बादामी बनगरी देत्र आया । चातुर्व्या की उस राजधानी में अब कुछ मन्दिरों के अलावा कुछ भी नहीं बचा है । यह प्रश्न तारों आर में चट्टानों में घिरा है । सदा धूप भूनती रहती है । व्यक्ति पाहे कितना भी गया त धक गया हो बादामी गुफाओं के भीतर जात ही भीनसता पान लगता है । वहाँ के जन मन्दिर हमारे देश के गौरव की वस्तु है । वहाँ शिल्प कला ही नहीं वास्तुकला के भी उत्कृष्ट नमूने हैं । प्राचीन चित्रकला के अवशेष भी वहाँ मिलते हैं ।

वास्तुकला में ममता

एक बार मैं हनुगुद गया और वहाँ से पैदल ही ऐहोल गया । वहाँ के कई भवन मन्दिर देखे । ई० बी० १००० साल के पट्टकवस्तु ऐहोल को 'हिन्दु मन्दिरों का पालना' कहा है । यह बात बहुत सटीक है । उसी जगहें देखते समय न मुझे यकान लगती है न भ्रम-भ्रम । एक मात्र आँत्र भरकर देख लेने की आतुरता रहती है । पाँच कोम पत्तन चसकर ऐहोल पहुँचा था और उसे देखन के बाद 'पट्टकवस्तु' की चमक पडा । राज न छाया नाम भर की भी नहीं थी । धूप और धून मही वहाँ की साधो रही । चाह जहाँ तक चला किसी गीब या घर द्वार का अता-गता नहीं पीन का पाना का भी भरागा नहीं । ऊपर से धूप आँत्रें चाधियान का दण उपस्थित करती है । धरती पर के पहाड सरोवर में पहाडा से दीपत है । यह सब देखना पानो के बान पानी की छाया पीता हुआ पट्टकवस्तु पहुँचा । चमके की शोभा न कृष्ण नभी पार करके ही उम गीब पहुँचा था । तबसे पहन मैं बिरु पान मन्दिर देखत गया । वहाँ बनाना मन्दिर चालुक्य काल की वास्तुकला की शान्ति का रूप था । पाग हा दूगर पार-पार मन्दिर है । एक ही स्थान पर ही मन्दिर और उमर शान्ति के मन्दिरों के गूण पहाँ गिराई जात हैं । लगता है कि वे पौरुषों का ही शान्ति का मन्दिर है । विनाता का मत है कि वही म उमर भारत का मन्दिर मान्य शिल्प कला हुआ । वहाँ में चालुक्य वास्तुगुनी का विकास हुआ और मात्र बनाने के रूप में मन्दिरों का स्थान अपने गीब ही जात था । वहाँ कला का मन न जान मन्दिरों को टाया । भूय और यकान गीब का मन्दिरों के पणकर मन्दिरों का अलग गिर आया था । उम गीब की शोभा न को । मन्दिरों का पहाड पारिषदात । उम गीब में बान कला हुर घर में मन्दिरों का मन्दिर । मन्दा कि मन्दा की अलग स्थानों की मन्दा अलग है ।

मुझ अपरिचित को देखते ही भौंकने लगे। आखिर डरता डरता चौपाल आ पहुँचा। मुझमें तब यह देखने की शक्ति नहीं रह गयी थी कि उस गाँव में कोई होटल भी है या नहीं। बहुत थक गया था। किसी तरह सो जाना चाहता था। मुझे यह भी ध्यान नहीं आया कि भूखे लटन पर नींद नहीं आयेगी। तभी वहाँ एक गज्जा आया। पूछने लगे, "तुम कौन हो? कहाँ से आये हो?" फिर उन्होंने ही मुझे जबरन अपने घर ले जाकर दूध और रोटी दी। इतने वक़्त जान पर भी उनकी कृपा और आतिथ्य की याद कभी भूल नहीं सकता।

मैंने कई बार हम्पी के खण्डहर देखे हैं। जब पहली बार गया था तब वहाँ एक साहूवार में परिचय हुआ था। तब उनकी सड़की से मर एक मित्र की शादी हुई थी इसलिए कमलापुरम में भागन की सुविधा रही। कुछ परिचित मित्र थे। वहाँ तीन दिन रहकर हम्पी और आनेगुद आदि स्थानों को छान मारा। उस हम्पी का विस्तार—वहाँ के पहाड़, उजड़े मंदिर भग्न मूर्तियाँ सब के सब कर्नाटक की आज की दुरावस्था का प्रदर्शन करते हैं। उसे देखकर सोचता हूँ कि एक अरण्या को विजयनगर की राजधानी भला क्या बनाया था। हम्पी रामायण की याद अवश्य दिलाता है। बादर के झुण्ड ही सब से पहले बट्ट याद दिलाते हैं। याली की गुफा के भीतर जाना चाहता था, पर चिमगादडा की दुग्ध के मार घुस न सका। और बट्ट पम्पा सरोवर! आज उससे तो हमारे गाँव का गद-गद गंगा तालाब भला। सारा जल बाई और कमल के फूल-पत्ता सड़का पड़ा है। राम के आने के बाद वहाँ मच्छर वस गए होंगे अब वे मलेरियाँ का प्रचार कर रहे हैं। त्रिपुण्यधारी एक मित्र ने, "बाली के जलने की जगह भी यहाँ है" कहकर रात्र भी दिखायी। और क्या चाहिए था पुण्य कमान को! उस भग्न हम्पी को देखकर लपा कि "यह नागरिकता ही तहम नहम हो जाती है ता भला नगरा की क्या बिनात! राज्य र्थभव की क्या बिनात! उनके जान में पक्कर मन्त्र हानवात मानव की क्या बिनात!"

साबरमती में

आमतीर पर जब मैं किसी यात्रा पर जाता हूँ तो वहाँ से केवल मुँह स्थान देखकर आ जाता हूँ। उस गंगा की कुछ समय तक जुगलौ करता रहता हूँ। उस आन पर फिर चल पड़ता हूँ। यम में मुँह रूप में वास्तुविद्या के लिए प्रसिद्ध स्थान देखा ही जाता था। और तब एक बार बादामी गुणजा म प्रेरित हुआ मैं अज या की यात्रा पर चल पड़ा। उस दिन निष्ठा नगरा में हुआ था। गौधीजी का अनुसारी हान के कारण मुझे साबरमती स्थान की दृश्य हुई। पढ़न सम्बन्ध गया। वहाँ में बड़ोदा पहुँचा। मारा दिन बड़ोदा में परकर बाटा। फिर वहाँ में राम में अहमदाबाद गया स्थान पर उतरकर जेब में हाथ डाल कर देखा तो परीण हुआ टिकट ही गारब था। पता नहीं कहीं गिता दिया था।

गोष्ठा गेट पर जाकर टिकट चेकर से कहा, 'मेरा टिकट गिर गया है।' उसनपूछ, 'उम घरीन्ने की यात्रा है?' बडौला से इतने पैसे द कर खरीदा था। नडिपड म उमकी चेंबिंग हुइ थी। पता नही आगे क्या हो गया?' मेरी यह बात सुनकर उमने फिर पूछा 'कहाँ जाना है?' 'साबरमती' मीने कहा। उसने "जाइए" कह दिया। उसन सोचा होगा कि गांधीजी के पास जानेवाला यह ध्वजित झूठ नहीं बानगा। वहाँ आश्रम म सिद्ध्या गोडा नाम के एक सज्जन थे। उनके नाम पर मैं एक परिचय-पत्र ले गाया था। उनक साथ आश्रम म भोजन के लिए भी गया। वह मरे लिए परिचित, बिना नमक का भोजन था। उन निना गांधी जी और बस्तूरवा आश्रम म ही थे। उनके प्रिय मगनलाल गांधी वहाँ की उद्योग मण्डली की देखभाल करत थे। मैंन वहाँ कुछ दिन रहकर कई धुनन का काम सीखा। आगे वपी यात्रा (1980 क लगभग) साबरमती से अपने गाँव पहुँचकर तट्मीन-दार क पत्र म निवत हुए सिद्ध्या गोडा से मडया म भेंट हुई।

भजन

आश्रम क प्रमवद्ध जीवन को देखकर मुझे बडी प्रमनता हुई। प्रात काल चार बजे तक जाग जात। उठकर गांधीजी क निवास क सामन के आँगन म इकटठ होकर भजन करने थे। पत्रन कुछ मस्तूत श्लोका का पाठ होना कोई भक्त कविता की कृतिना म कुछ भजन गाता। मय जनशात होकर गुनते। तभी मैंन नरसिंह महता का मिथा गांधीजी का प्रिय भजन 'वैष्णव जा ता तने कल्पि' गुता। भजन होने क बाद मय मिनकर रूपपति राधय कीनन करते। बाद म गांधीजी गीता के कुछ अंगा की ध्याय्या करत। बडा प्रशात था वहाँ का वातावरण। भजन करना ही ता लग करना चाहिए। मगीय प्रदशन से क्या लाभ? शाम के मात बजे प्रात की ही मीनि भजन बानना का काय चसता। शाम का भजन तो छट बजे से पहन ही ममप्य हो जाता था।

आश्रम क ममीय ही पुरान रास्ट्रीय विद्यालय की इमारत है। जब मैं वहाँ गया तब वह खाली था। वहाँ ममीय एक बडा पुस्तकालय है। अग्याग करने क मय क निग कह बना होना न वातावरण है। जिनन निन मैं आश्रम म रहा तब शाम का साबरमती क स्नान तक घुमा जाता करता। गांधीजी भा बपया का मय मकर हेंगल हुए उमा रागने जान थे। एक निन मैं अहमदाबाद पत्रन म गया। वहाँ कुछ पुस्तकालय मिन था। उम मय मकर एक पुरानी मसजिद मीने भोजन का काकर बनादी मयायम मसजिद का विडविड करवा। और मीने दरवाजा का मय बडा मुतर थी।

पत्रन, पत्र मय

आश्रम के निवासे करत हुए बसने क सिद्ध्या गोडा म परिचय हुए

या। इसी प्रकार कुछ और लोगों से भी दोस्ती हो गयी थी। उनमें एक तमिलनाडु के सुब्रह्म्या थे। एक दिन गांधीजी ने उन्हें बुलाकर मन कप उन्हें सम्भालकर रखने दी गयी मच्छरदानों के बाँस माँगे। पता नहीं सुब्रह्म्या ने उन्हें नहीं रख दिया था। उन्हें वे मिले ही नहीं। इस लापरवाही के लिए गांधीजी ने उन्हें सजा दी कि सारी रात उनके पलंग के पास बैठकर उन्हें मच्छर भगाने होंगे। यह देखकर लगा कि कई बार गलती पर सजा देने में गांधीजी से अधिक धूर और कोढ़ नहीं परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि स्वयं उनमें भी गलती हो जाती थी तो अपने लिए भी वे उतने ही बठोर और निष्ठुर हो जाते थे।

जब मैं यहाँ था तब एक चीनी मिश्रक वहाँ आया था। गांधीजी हर रविवार को मोन व्रत रखते थे। उसने भी छह मास का मोन रख था। श्री एड्ज का मुँगे प्रथम मासात्वार वही हुआ। वे खादी की धाती कमीज पर हैट लगाकर आये थे। मफेद दाढ़ीवाले उस तूडे को देखने की इच्छा मुझे कई दिनों से थी। मन में जब मैं शांतिनिकेतन जाने की लालसा उठी थी तभी मैं उन्हें देखने की इच्छा बनी हुई थी। गांधी जी और एड्ज के बीच धार्तालाप मुनन में बड़ा आनन्द आता था। लगभग पन्द्रह दिन साबरमती में गुजारने के बाद मैं वापस बनावट चल पड़ा।

अजन्ता को

सन् 1916 ई० के लगभग हमारे गाँव आलूर बैक्टराय मुन्दीडू कृष्णराय आये थे। उन्होंने हम लोगों में बनावट के प्रति अभिमान जगाया था। उन्होंने बताया था कि अजन्ता और एलोरा की गुफाएँ बनावट धारा का कृतित्व हैं। 'बनावट' नाम का ग्राम अजन्ता के समीप है। मुझे पहले से ही चित्र और वास्तुशास्त्र के प्रति अभिरुचि थी। अतः उन दोनों को देखने का निश्चय करके निकल पड़ा। सूरत के रास्ते में ताप्ती नदी की घाटी पार करके भुमावल पहुँचा। वहाँ मैं जलगाँव आया। जलगाँव में बस पकड़ कर बरोड घाटी में मोल की दूरी पर पाहूर पहुँचा। हाथ के थले में छाना बनाने का सामान आदि था। घोषणा गहू का आटा, मूँगफली और गुड घरीद कर पाहूर से आगे चल पड़ा। वहाँ में बरोड छ बोग की दूरी पर अजन्ता की गुफाएँ हैं। राह पर घूप का ही माझाण्ड था नाम को भी घर नहीं दीया। राह में एक गाँव में साडा सा पानी मिला। लगभग तीन बजे अजन्ता के उम पहाड़ी प्रवेश में जा पहुँचा। रात में पहले एक लूँड खाता मिला। उसमें गुफा दिखाने की बत्ती। उमरा दही जान का रास्ता बनता गया। मैं अगे चल पड़ा। रास्ता बदोना पार पारिजात के वन थे। हवा पारिजात की पत्तों में सनी हुई थी। और आधा मोन प्रागे चलने पर पाटे की जान की आर्ति की पवन धेनी दिखाने में। पहाड़ चढ़कर मास आगे बनावट एक करके गुफालय दिखाने देने लगे। बरोड तेरीन विनाय गुराते हैं। सुहृद

चामनय भी हैं और कुछ बुद्ध विहार हैं। एक जमाने में वहाँ बौद्ध भिक्षुओं का एक विश्वविद्यालय था। वहाँ जाकर छठे होन के बाद यह याद ही नहीं रहता कि बाहर भी एक दुनिया है। वहाँ की गुफाओं का निर्माण, वहाँ का गिल्स, चित्रकारी अत्यन्त माहक हैं। प्रकृति ने भी उस सौन्दर्य में एक पुट दिया है। उस भव्य पवनश्रणी के नीचे एक छाटी-सी नदी बहती है। रात को वही सोने की झुलझुली है। पर पहरदारा ने कहा, 'यहाँ रात को कोई नहीं रह सकता। हम सब भी यहाँ में चले जायेंगे। दरअसल साग यहाँ घाना आदि पका कर धुएँ से यह जगह घराब कर देते हैं। उनकी याता भी सच्चाई यही दीख रही थी। और जोर पाया न होन से वहाँ से चल पडा। काफी दूर चल चुकन के बाद अज्ञात की नगी में स्नान कर घुल्टा तुलगाया और आटा गूथा। रात को वहाँ सोन का विचार किया। मैं निजम पहाड़ी प्रदेशों में मैं कई बार अनेलासोया था इसलिए मुझे उमम काई यात बात नहीं सगी। तभी वहाँ एक बैलगाड़ी आयी। यह पाहूर जा रहा थी। मैं गाड़ीवाले से आग्रह किया 'आधा घण्टा ठहर जाओ मैं भी साथ चलता हूँ। गाड़ीवाले जल्दी में था। दूधर भूख और दवान दाना ही अयाग थी। गाड़ी की सवारा का माह भी उही छोट सकता था इसलिए बोडा-सी मंगलगी और कुछ घाबर उसने साथ चल पडा। दूसरे दिन प्रातः पाहूर की नगी के किनारे अपना भोजन किया। पाहूर में चालीस गाँव तक रत है। रत में उमी रात में मुसा गया वहाँ से मुसाबर ऐलोरा रोड पर चला। वहाँ पुस्तिक के साग। मरा नाम लिखकर ही आग जाने दिया। मर घाने के कपडा नानवान का गा.० आर्.० टी.० पुस्तिक का आकषित किया होगा।

एनारा

एनारा अपना बहुत एक प्रसिद्ध धन है। वहाँ अहिल्याबाई होनकर का बनवाया हुआ एक सुन्दर दवालय भी है। वहाँ पशुचत ही वहाँ के पण्डित पर गिन। मर ४० पयटका का आड करन को यतभी सवाराथ। मैं मुह भादरी १९०० था। मैंने गाथा कि वहाँ के नाग में स्नान करके वहाँ भोजन करा। उस सुन वहाँ भी नहीं छाड़ा। मग कि एग दाना में ता प्रता को ही जना कादि एनायामा का गतति का नहीं। दिता स्नान किय ही दो भील दूर पर दिवस लुग त दया कर गया। वहाँ की पवाश्री में अत्र ता से भी बडा सुन्दर बन गई है। ये शालकर रातामा के समय की निर्मित है। बौद्ध बुदाभी के लय दान करन दूर ही और दान प्राप्ता दवालय भा बायाय गये है। उग अथशर गिन दवादी सागाने परिधम करन मखिल-दर मखिल पापर की बटाई करके उन्कर मन्थन बागु-कताईयो का निर्माण किया है। बीषः मर वनाग मन्थन है। एनारा की गुफा की गुफाओं तक चारों ओर बाकर दवालय दवाया गया है।

हमारे पूवजा की महान आकाशाएँ उनके भव्य सपने अजर अमर हो गिलाभो भ वस चुके हैं। एक से बढ कर एक भव्य मंदिरो पर हम गव कर सक्न हैं।

वहाँ स उती दिन चार कोस की दूरी पर स्थित दौलताबाद पल ही गया। माग मे बूनाबादी हान लगी। सिर पर की गठरी और कपडे सब भारी हा उठ। भूख और थकान का ठिकाना नही। बागदीपुर लाय कर और भी आग चलता गया। उस गाँव म एक ममजिद है। पता चला कि वह औरगजब का विश्रामस्थल है। दौलताबाद पहु उन तक वही भी र्का नही। देवगिरि का किला और मीनारें देखी। यदि थकान अधिक न होती तो देवगिरि का किला चढन की इच्छा थी। सगीनन सारगदेव यही क थे। पर मन का उत्साह शरीर म बचा नही था। आध घण्टे के बाद रत्न भी पकडनी थी इसलिए स्टेशन पर जा बंठा। वहाँ स सीधा हुम्नल्ली पहुचा। मरी यह यात्रा चिरस्मरणीय है। अजता तक पला कर्नाटक आज शोलापुर को भी खो चुका है। यह हमारा दुर्भाग्य ही तो है।

काल चैत्यालय

काठ वालो की ऐसी ही एक और महान कृति काल म है। वहाँ का चैत्यालय पहली सती का हो सकता है। उसकी मतिया का तराशन वाल का उल्लेख उम मंदिर के सामन ही है। कहा जाता है कि बनवासी के एक व्यापारी ने इस बननाया था। बौद्ध चत्यालय का यह इनका भव्य और इतना मूर्त्त नपूना। छण्डाला की पहाडिया म आँचल म है यह काल पहाडी जहाँ उहाने इम पत्य का उकेरा है। बौद्धालय के पास ही पाँच छ विहार हैं। ह्य की बात है कि सष्टि क सौंदर्य का अनुकरण करने मे हमार पूवजा की आँत्रें अधी नही थी। उस पहाडी पर मिलनवाल रंग बिरंगे पत्थरा से हमार प्राचीन काल के चित्रकार चित्रकारी क लिए रंग तैयार करत थ। अजता के चित्रा का रंग अब तक पीना न पढन का कारण उनका पक्कापन है। काल स चार मील की दूरी पर साना वाला है। वहाँ पहाडा की घाटी म बाँध बना कर एक सुन्दर सरोवर का निर्माण किया गया है। साध्या काल की वहाँ की रमणीयता अवगनीय है। चारा ओर छापी हरियाली आँवा को शीतलता प्रदान करती है। उम मय को देप्रता हुआ पहाड म उतर कर मँदानो रास्त से सोतावा ना चल पडा। वहाँ से वयस्थयाम का जाना ही मरा उद्देश्य था। योगामन क लिए वहाँ जान की अपनी बग मँन पिछन छप्याया म लिखी है। अब राट म पटी एक घटना भी मुन सीझिए।

दिग्वाचे के प्रभाव मे फँसे लोग

जब मन काल छाडा ता मूर्त्त डूबन को था। अछरा हान म पढन सोनावाला पहुवन की जहनी थी पर पहुँचन पहुँचन अछेरा हान सग्य था। एक

समीप मराठी मुझे देख पीछे पीछे आन लगा । वह मुझे पुकारे जा रहा था । मैंने मुड़ कर देखा । मोचा कि वह शायद मुझे अपना परिचित समझ कर बुला रहा है लेकिन ऐसी कोई बात नहीं थी । समीप आते ही गूक कर नमस्कार करके उसने पूछा 'आप माधु हैं ?'

मैं 'नहीं' कहने पर वह बड़ी मानन वाला था ? गुण। से निवृत्त कर आनवाला वह भी दक्षीणासा भला साधु नहीं होगा तो यौन होगा यह उसकी कल्पना थी । जब तक मैं उस पर मुस्मा नहीं दिखाया तब तक मुझे वह साधु ही समझता रहा था । और ता और मुझ वह अपन घर ले जाने का आग्रह कर रहा था । बड़ी मुश्किल में उसमें छत्रकारा मिला और इस तरह मैं लौनावाला पहुँचा ।

दाढ़ी में साधु

मैंने अपना कब्र या रथन के दाढ़ी बढ़ा ली थी । याद में वह भी एक भारी भारी । आदृति और वशभूया के भुलावे में आनेवाले कितने लोग नहीं हैं हमारे देश में ? हम लस के सागे का वन में करन के लिए सत्यास से बड़ा स्वाय और ता । । जब मैं दावणपेरे में था तब एक गाँव का मित्र मुझ से बभी नभो भेंट करन आता था । यह भी मुझे साधु ही समझ बैठे था । वह मुझ में देखते पानक कवचम लु कह कर एक कचन का प्रयोग करता था । तब मुझे दाढ़ी में धिरविण हुई । उम पूरा करन के लिए और एक घटना घटी । हृदयलि म मैं एक बार 'दुःखम' में गुजर रहा था । यहाँ लोग की वटी भीड़ थी । एक राहगीर ने मुझ राका । मुझ कुछ समझ में नहीं आया । उमन मेरे मुँह की ओर ध्यान से गया और बिना कुछ बोले सहक के बीच मर पाँव छूकर नमस्कार करके चला गया । मैं हैरात रह गया । मुझ दर लगा कि दाढ़ी ने जिग प्रकार दूसरों को धाया दिया हमी प्रकार यह मुझ भी धाया दे सकती है । हृदयलि छोड़ने तब पुन रहा । वही ग मोलगिरि गया । यहाँ मैं तीन दिन रहा । यहाँ मरा पहला काम था उम दाश में लखारा पाना । अब कवचम मूँठ बघी थी । विपन्न प्रयास के कारण वह भा र लीनी रह गयी । तब मुझ मगा कि बभी भी बाह्य मानपना नहीं होना चाहिए ।

साधु

इस विषय में एक कहानी सुनाता हूँ । मारिग जिहमन नाम के एक पानिग लखर लखरपन जनम न भविष्य । बगमूर में रहने समय मरा उनमें लियन हुआ । के कभ-कभी समय मह्यि के पास जाया करता था । उन तिनो के पास का एक लखर पानिग था । एक-एक बार वह हमारे घर भा आया था । एक बार जब आने का लखर करन पारण करके आया । साथ लुके 'भारतवर्ष'

कह कर पुकारते थे। मैं उनके कपड देखकर पूछा, 'आप पर यह पागसपन
 क्या म सवार हो गया?' उन्होंने हँस कर कहा "दो आने दोगे?" मैं पूछा,
 "क्या?" तो वे बोले, "एसे ही आप के कपडा को भी कापाय रग में रगवा दता
 हूँ। दा आने म स-पास मिल जाता है।' बाद म हँसत हुए मुझ स कटा मुये य
 रग और कपडे आसान लगे इसलिए पहन लिय। हमारे दृष्टिकोण मे इन सब का
 और कोई खास अय नहीं है।" और एक बार, चल्कि कहना चाहिए दा-तीन
 बार, नद नाम का स-पासी हमारे यहाँ आया था। उसका चाहे जसा भी सत्वार
 करने, चाहे कितना भी अच्छा खाने को बयो न दत उसे कभी तपित नहीं हाती
 थी। खाने-पीने के बारे मे आतिथ्य के बारे म जहाँ भी गया वहाँ शगडा चडा कर
 देता था। जैसे कापाय वेश के अधिकार की स्थापना के लिए ही यह घुमा
 करता है। उसे मैंने स्वामी 'कोपिटानद' उपनाम दिया था। उसक नाम क साथ
 आनन्द जुडा होन पर भी उसमे कोई आनन्द नहीं था। बहुत श्राधी था। भग्न
 मनोरथ होकर कापाय धारण करने पर भी दुनियाँ मे जिन वस्तुआ का उमन
 त्याग किया था उसी के लिए सार टपकाता फिरता था। मैं एम कई सागा का
 देत्रा है जो स-पासी बनकर विरक्त हो जाते हैं और बाद मे सागा की पूजा-मत्कार
 क शिकार हो जाते हैं। फिर आश्रमा की स्थापना करवे गहृस्था स ज्यादा माह
 माया मे फम जात हैं। अपन को बडा भवत समझना भी अपन का नुकसान
 पहुचाना होता है। बाद म जब य 'राम' 'कृष्ण' के नाम स पूज जान लगत हैं त
 यह अनुमान होने लगता है कि पूजा करनेवाल भूय हैं या पूजा पानवाले भूय हैं।

रामकृष्ण परहस का जीवन साधु-सत्ता म एक आदर्श है उस समझ लनवाला
 न्यबिन कभी भी नकली साधुओ से धाया नहीं था मकता।

बाल ने जस अपना व्यक्तित्व ही खो दिया है। एकदम निचली पंक्तियों में वात्स्यायन के कामसूत्र के चित्र हैं, शिल्प और सस्कृति की दृष्टि से वे होम्मल युग के जीवन की सम्मान नहीं दिला पाते हैं।

पल्लवों का आदर्श

शिल्पकला का भव्य रूप महाबलिपुरम् में देख सकते हैं। वहाँ अजुन की तपस्या के बारे में इतना भव्य चित्रण हुआ है कि उसका वर्णन करना ही कठिन है। लगता है कि उन पल्लव राजाओं ने हमारे लिए शिला शिल्प और धातुकला की आधारशिला रखी थी। वहाँ अष्टांग शिला से बने मंदिर और गोपुरों के अछूत नमूने हैं। समुद्रतट का वह शिवालय किसी को भी मोहित कर लेनवाली कृति है। वह पत्थर पर नहीं खोदा गया बल्कि पत्थरों से ही बना है। एक जमाने में बंगाल की खाड़ी की लहरें वहाँ के विग्रहों के पाँव धोती थीं। अब भी समुद्र का जल मंदिर के भीतर जा सकता है लेकिन मंदिर में विग्रह ही नहीं। उसका बनवाने वाले पल्लव राजाओं ने तीसरी और आगे की सदियों में मलया, स्याम जाकर वहाँ भी हिंदू सस्कृति के बीज बोए। उनका कृतित्व का अर्थोप बरोनुदर, देवालय, इण्डोचीन का अकोरवाट देवालय में देखने की बरी दृष्टि अब भी बाकी है। महाबलिपुरम् का शिल्पियों को देवी देवताओं से जितना लगाव था उतना ही प्रकृति से भी था। उनका बनाया हिरण, बकर, हाथी आदि किसी भी प्रकृतिप्रेमी कलाकार को आकर्षित करेंगे।

वास्तु दर्शन

एक बार मैं पुरी के जगन्नाथ मंदिर गया था। नागर शिल्प का वह मंदिर सदा यात्रियों में भरा रहता है। इस कारण वास्तुकला का प्रेमी के लिए आदर्श का प्रतिबन्ध नहीं मिल पाती। वहाँ का मंदिर एक भव्य कृति है। विद्वानों का कथन है कि उस नागर शैली का प्रारम्भ हमारे कर्नाटक के 'पट्टदकस्तु' से आरम्भ हुआ था। लेकिन उस शैली का विषयित रूप भुवनेश्वर कापाल और घनुराहो में है जो उन शैली में देख नहीं पाया था। गोनुर और मंदिर देखने की दृष्टि से वस एक साथी की दृष्टि से नहीं वह तो कला-दृष्टि से प्रेरित शैली है। विचार में जहाँ भयंकर शक्ति का दान है वहाँ सस्कृति की महाशक्ति के भी दर्शन होते हैं।

शिल्प के बारे में

एक बार मैंने बलरत्ना के महालय में पाँच पीठ ऊँची मूर्तों की मूर्ति देखी थी। मूर्त हमारा पहला देवता है। आय सस्कृति में मूर्त का बाल कला की मायता है। उत्तर भारत में हरे अधिभार मूर्त के ही विग्रह मिलते हैं। मैं मानूँ

बाल ने जस अपना व्यक्तित्व ही छो दिया है। एकदम निचली पंक्तियों में वास्तुशास्त्र के कामसूत्र के चित्र हैं, शिल्प और सृष्टि की दृष्टि से व होयसल युग के जीवन को सम्मान नहीं दिला पाते हैं।

पल्लवों का आदर्श

शिल्पकला का भाव रूप महाबलिपुरम में दृश्य करने हैं। वहाँ अजुन की तपस्या के बारे में इतना भाव चित्रण हुआ है कि उसका वर्णन करना ही कठिन है। लगता है कि उन पल्लव राजाओं ने हमारे लिए शिला शिल्प और वास्तुशास्त्र का आधारशिला रखी थी। वहाँ अखण्ड शिला से बन मंदिर और गोपुरा के अक्षे नमूने हैं। समुद्रतट का वह शिवालय किसी को भी माहित कर लानेवाली कृति है। वह पत्थर पर नहीं खादा गया बल्कि पत्थरों से ही बना है। एक जमाने में बंगाल की खाड़ी की लहरें वहाँ के विग्रहों के पाँव धोती थीं। अब भी समुद्र का जल मंदिर के भीतर जा सकता है लेकिन मंदिर में विग्रह ही नहीं। उसका बनवाने वाले पल्लव राजाओं ने तीसरी और आगे की सदियों में मलाया, स्याम जाकर वहाँ भी हिन्दू सभ्यता के बीज बोये। उनका कृतित्व के विशेष बारागुदर, देवालय, इण्डोचीन व अकोरवाट देवालय में दृश्य की मरी इच्छा अब भी बाकी है। महाबलिपुरम् के शिल्पियों को देवी देवताओं से जितना लगाव था उतना ही प्रकृति से भी था। उनका बनाया हिरण, बादर हाथी आदि किसी भी प्रकृतिप्रेमी कलाकार को आकर्षित करेंगे।

वास्तु दर्शन

एक बार मैं पुरी के जगन्नाथ मंदिर गया था। नागर शिल्प का वह मंदिर सदा यात्रियों में भरा रहता है। इस कारण वास्तुकला के प्रेमी के लिए आदर्शदर्शन का स्थान वहाँ नहीं मिल पाती। वहाँ का मंदिर एक भव्य कृति है। विद्वानों का कथन है कि उस नागर शैली का प्रारम्भ हमारे कर्नाटक के पट्टदकल्लु से आरम्भ हुआ था। लेकिन उस शैली का विकसित रूप भुवनेश्वर का नाग और घनुराहा में है जो उन दिनों मैं देख नहीं पाया था। गोपुर और मंदिर दृश्य की इच्छा बचन एक यात्री की दृष्टि से नहीं यह तो कला-दृष्टि में प्रेरित होती है। विचार में जहाँ भी शिल्प का दर्शन है वहाँ सभ्यता की महानता का भी दर्शन होता है।

शिल्प के बारे में

एक बार मैं कलकत्ता के सप्टहास्य में पाँच पीठ ऊँची मूर्तियों की मूर्तियाँ देखीं। मूर्तियों द्वारा पहला श्रेय है। आज मूर्तियों में मूर्तियों का बाद विष्णु की मूर्तियाँ हैं। उत्तर भारत में रूप अधिकतर मूर्तियों की विषय मित है। मैं राम के

कि य मानव नागरिकता के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। साँची के स्मारक भी वस्तु ही हैं।

सारनाथ

उसी बुद्ध के प्रति प्रेम मुझे काशी के समीपस्थ सारनाथ खींच कर ल गया। सारनाथ में प्राचीन स्तूप नष्ट हो चुका है। केवल इट मिट्टी के निशान भर बच हैं। वहाँ के मूर्ति-संग्रहालय में बुद्ध की कुछ प्रतिमाएँ हैं। कहा जाता है कि बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश सारनाथ में ही दिया था। महावीर सघ वाला न वहाँ एक मंदिर बनवाया है। जब मैं वहाँ गया तब वह पूरा वन चुका था। उसके भीतर दोबारा पर एक जापानी चित्रकार चित्र बना रहा था। उनमें एक चित्र 'मार' (शामदेव) के बुद्ध को छेड़ने का था। अजन्ता चित्रा की-सी सौम्यता उन चित्रों में दिखाई नहीं दी। घट बहुत ही भडकीले रंग इस्तमाल कर रहा था।

आबू की बारीक नवकाशी

मैं एक बार आबू पहाड़ गया था। राजस्थान की मरुभूमि में स्थित यह जन मंदिर बारहवीं या तरहवीं शताब्दी के हैं। इन्हें दिलावर मंदिर भी कहते हैं। जब मैं पत्थरी बार वहाँ गया, मरे जैन महान के कारण मंदिर देखने से पहले मृदा एक-दो रूप कर के रूप में देने पड़े। बाहर से देखने पर यह मंदिर इतने सुंदर नहीं हैं। वास्तु रचना में विषय महानता नहीं है। वहाँ का सारा सौंदर्य भीतर का है। गभ मंदिर, नवरंग और मण्डप सब सगमरमर के बन हैं। मोमकी तरह सगमरमर की शिलावा पर बहुत ही बारीकी से काम किया गया है। स्तम्भों और भीतरी छतों पर यह बारीक बारीगरी स्पष्ट दिखाई देती है। वहाँ की इस बारीगरी के नमूने की परिवर्तन देखने के लिए ही मैं वहाँ गया था। हनुमिड और बेलूर के समान ही यहाँ की बारीगरी बड़ी सूक्ष्म है। वहाँ स्लटी पत्थरों पर बारीगरी की गयी है लेकिन यहाँ सगमरमर के पत्थरों पर उसी नवकाशी का समरकार दिखाई देता है। आबू जलवायु के लिए भी प्रसिद्ध स्थल है। यहाँ एक सुंदर सरावर है। उस पहाड़ से स्टेशन तक पहुँचने के लिए उस मरुभूमि में जा सड़क बनी है वह भी अपने में एक अपूर्व है, मार्क है।

सगमरमर पर इसी प्रकार की सूक्ष्म बारीगरी और तमून देखने के लिए हम आमर के राजमहल, आगरे में एतमादुलीता और पत्तपुर सीकरी में मस्तीम विष्णु की मगजिद देखनी चाहिए।

दक्षिण-पथ में

उत्तर भारत के कुछ मंदिरों के समान दक्षिण भारत में भी कुछ मंदिर

दृष्टान्त की दृष्टा हुई। इसी उद्देश्य से पश्चिम समुद्र के कराबली से ब्याकुमारी तक गया। पश्चिम कराबली के कुछ मंदिर तो बहुत ही साधारण हैं। उनके बाहु गोन्य का तो तांब से मढ़ी छत्रें निकल गयी हैं। ब्याकुमारी बहू सुन्दर मन्दिर है। भरतजय के अंतिम छार पर छोड़े होकर पूर्व पश्चिम और गीता के समुद्र के समान की छार ही स्वामी विद्यवानन्द अपने आप का भूल गये थे। उस प्रयोग की सम्पीयता ही एगो है कि हम भी अपने को भूल गये हैं। वहाँ का निर्माण हो एक याग-स्थान है दूसरे मंदिर और गोपुरा की आवश्यकता ही नहीं। और एक बार मैं मदुरे गजापुर चिदंबरम तिरुवत्तिकुडू क्षेत्र देखकर आया। रामेश्वरम भी गया था। रामेश्वरम् का समुद्रतट भी एक सुन्दर स्थल है। पर वहाँ का मन्दिर मुझे पगल नहीं आया। यहाँ बिना किसी सही कल्पना के धारण करने भरनी भक्ति का प्रमाण करने का प्रयास स्पष्ट दिखाई देता है। सब अन्तःनिर्माण स्तम्भा का बेमेल निर्माण हुआ है।

महावनीपुरम्

मरे मा की गवग ज्यादा आकर्षित करनेवाला स्थल तजापुर का महाेश्वर मन्दिर है। वहाँ के गोपुर मन्दिर हमी के विमानों के ऊँचे दर्जे के न होने पर भी उसको मान्यता का अपना ही मन्त्र है। उसका सौन्दर्य कुछ और ही है। बंगला का वापन क्या न हा। उसे देखकर मूक हो जाता है। मन मूढीश्वर के मन्दिर पर बलिष्ठ हो जाता है। सगता है जमे वास्तुशाली का सौन्दर्य यहाँ अपना लिए उगाव गया है। आकार में भी यह मन्दिर बहू बड़ा है। उसका गगनधुम्बी शिखर ही गीता का महाागा का छानक है। मैं उस मन्दिर के भीतर गया ही गी। एगो दृष्टा भी गती हुई। मुझे तो यह मन्दिर ही भगवात का सग। छत्ररत्न के चरचरित्त महाेश्वर के मन्दिर को देखकर मुग्ध हुआ था। बहू न लगेगी का है पर वह भी एक एगा ही भय्य मगा था। हासला की वास्तु के सम रवही बारीक काशी होने पर भा मन्दिर के विचार के कारण बहू रोग भी का प्रभाव पडा गी है। एग कागत करनवान वास्तु विनियोग का मन उतर निर्माण के समन पगा म्ही विमान उगगत रता हाण।

महापुरा गा. करा

मेरे बाद मैं उस दशका में मैंने शिबू गर्मनिव भाती की कुछ इमारतें देखीं। मैंने क मगा भासत के मन्दिर और गजमठम, एगमागुनीना का कगल कर एगु का ककवा अति दय आना था। मैं एक एक मन्दिर के मन्दिर के अन्तःनिर्माण ही जो इमारत का आकर्षित करा है। वहेहुता

सीकरी देखने में अकेला ही गया था। वह एक गाँव है। पहले भी वह एक गाँव ही था। अकबर बादशाह पहले एक बार उसे अपनी राजधानी बनाना चाहत थे। अपन घमणु सलीम चिश्ती की याद में उन्होंने उसे बनाया भी। पर चिश्ती को राजधानी का शोरगुल रास नहीं आया तो अकबर ने उसे वेंगा ही बीरान छाड़ दिया। वहाँ जान के पहले मुल्क दरवाजा मिलता है। उसके भीतर राजवंश के मुताबिक कई इमारतें हैं। वहाँ का 'पंच महल' बड़ा आकर्षक है। यन्ी सरल शली में पाँच मजिलो में बना है यह महल। वह शली आज भी अनुकरणीय है। वही निक्कट ही अकबर ने अपनी हिंदू भाषा के लिए एक और महल बनवाया था। उसे महल कहने की अपेक्षा बंदखाना कहना उपयुक्त होगा। उसमें रोशनी का नाम नहीं है। हिंदू रजवाडे में जितनी रोशनी है यहाँ उतना ही अँधेरा है। जो भी हो, अत-पुर जो ठहरा। सलीम चिश्ती का मकबरा भी वही पास में है। संक्षेप में, यह है कि यह नगर अकबर के काल की सस्ृति का प्रतिबिम्ब है।

केतकी-वन

आगरा का किला दशनीय है। उसके भीतर की बँठकें, मस्जिदें विशाल सभा भवन, बादशाह के शान के मुताबिक हैं। वहाँ मुगल दरबार का सारा वैभव दिखाई देता है। उनकी रसिकता, दम्भ दोना एक साथ व्यक्त हैं। वहाँ के तहखाने और गुप्त माग दखन से इस कथन की याद हो आती है कि केतकी का भी सोंपों का घर हो सकता है। सिंहासन की आकांक्षा के लिए वहाँ कितनी हत्याएँ नहीं हुईं होगी? कितनी निरापराधी बंदी बनाये गये हंगे? वह भी भारत का ही एक चित्र है। वहाँ यमुना की ओर मुह करके बनाया गया एक मण्डप है। वह भी सगमरमर का बना है। शाहजहाँ अपन अंतिम श्मिता में वहाँ से दूरस्थ ताजमहल को देखा करता था। इसी बात को लेकर मैंने एक गीत नाटक लिख कर मचन कराया। डॉ. अबनीद्रनाथ ठाकुर ने शाहजहाँ के अंतिम दिना का बड़ मुद्दर ढग से चित्रण किया है।

गम करने योग्य स्मारक

बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है। कर्नाटक में ही बीजापुर भारतीय इस्लाम सस्ृति का एक चित्र उपस्थित करता है। वहाँ का गान मुम्बद बन महत्व का स्मारक नहीं है। ताजमहल सगमरमर का बना है तो यह पत्थर की गनी कृति है जो आँधों को तुप्त कर देती है। अटटारह हजार बग पृष्ठ जमीन पर यह बना सारी दुनिया में इब्नीनियरी समकाल का छोटा एक महान मुम्बद है। आगरा का ताजमहल इसका एकदम भिन्न है। उगकी प्रेरणा अंगार है राज अंगार। दोनों पर खूब धन खर्च हुआ है। ताजमहल में बारीकी है पर बस्तु का

रचनाए पढो । अब इतिहास अच्छा लगने लगा । विश्व के इतिहासकारों में बल्स और डुराण्ट पसंद आये । मेरा भारत कैसा है ? किस किस नागरिकता के आक-पण और भवर में फँसकर वह आगे बढ़ा है, यह तब पता चला । चीन और मिस्र का इतिहास भी हमारे जितना ही पुराना और महान है । एक ओर आज लोग उन्नति के पथ पर अग्रसर होकर सुख और सतोष का जीवन बिता रहे हैं, दूसरी ओर हम जैसे प्राचीन इतिहास की धरोहरवाले सो रहे हैं ।

निष्ठा आपणित एक सतुलन नहीं है। वहाँ की बारीगरी अद्भुत है। दोन
 गुम्बज में बसो नज़ाबत नहा है। हाँ, आदिलशाह क घराने की सारी शान उमर
 दिग्गज शो है। मुख्य इमारत की शान बदान को यहाँ अथ छोटी इमारतें भी
 नहा है। वहाँ शृंगार की स्मृति भी नहीं है पर उसकी जगह पर वह स्थान
 निश्चय ही बादशाह के अहम् का एतान करता है।

राजमहल

मुगलमाना क राजमहल हम जस दिखाइ देत हैं वसे विजयनगर, मुठ,
 पामरप पत्तव अथवा राजाभा क महल दिखाई नहीं देत हैं। उहाँन ता उन
 बाग़शाहो न भी ऊँची ससृति की प्ररणा दी है। अपन महलो क निर्माण मउहोन
 पत्तव की जगह ससो का प्रयाग अधि क कराया। उन क बनवाय मंदिर गोरु
 भाँति ना नय बध है पर महल ता उही क समान ध्वस्त हो गय। हिंदू राजाओं
 क मान स्थन क लिए हम राजस्थान जाना चाहिए। आम्बेर, जयपुर उज्जुर
 भाँति नगरो म एम भवन हैं। तरह बध पहल एक बार में आम्बेर गया था। पहन
 जब में जयपुर गया था ता पाग ही आम्बेर नहीं जा पाया था। भन ही जयपुर
 क महल या गजबो हा या आम्बेर क महल हा, व मुगलो की वास्तुबला से कहीं भी
 कम नहा है। राजपूताने बढ ऊँचे स्तर का जीवन बिताया था। व शृंगारभिय
 ध और और रगि क भी थ। गव और साहस म भर हुए थ। उनके द्वारा बनवायी
 गयी इमारतें भी बसो ही है। झूठे गव और दायादि मासय के कारण ही मोहम्म
 गरीबी का आमतित्त बिपा गया। उन समय शुरू हुआ हिंदू मुस्लिम बमाम्य
 भाँतन गारा पाकिस्तान क रूप म परिणित हुआ।

प्राचीन यभव ही क्या पर्याप्त है ?

जब में शुरू म पढ़ना था तब मागहन का इतिहास पढ़ा था। भारत पर
 शासन कर। शान राजाओं के जम और मयु का तिथियाँ पाद भी की थी। पलानी
 क मुठ म बनाम्य न कही ताँ रेखा थी, पानीरत म इबाहिम सो ने कही
 इतिहास म माहा लिपा था—यह सब सब पढ़ा तो था पर सब भूल गया था।
 तेर माग विवरण म भना इतिहास की क्या बयना हो सकती है। राजाभा
 क इतिहास का मुधा भी भना इतिहास है ? इतिहास कबल राजाभा की कही
 मर हन न का जयन का बयना जाना चाहिए। यर तो जन-जीवन की बयनी
 क ल कर्त। मयव न इतिहास का जगि और भयानि का मूम बिना
 नय इतिहास कर्त। मर हर एक प्रयाग का मयुभव मर अथ तब पढ़ गया
 न। इत क इतिहास कर्त था। इतिहास इतिहास शुरू छोडा क भाँ दुबारा
 न। इतिहास इतिहास कर्त। इतिहास इतिहास कर्त इतिहास इतिहास कर्त

रचनाए पढ़ो। अब इतिहास अच्छा लगने लगा। विश्व में इतिहासकारों में बल्म और डुराण्ट पसंद आयें। मेरा भारत कैसा है? किस किस नागरिकता के आकषण और भवर में फँसकर वह आगे बढ़ा है, यह तब पता चला। चीन और मिस्र का इतिहास भी हमारे जितना ही पुराना और महान है। एक ओर आज लोग उन्नति के पथ पर अग्रसर होकर सुख और सतोष का जीवन बिता रहे हैं, दूसरी ओर हम जैसे प्राचीन इतिहास की धरोहरवाले सो रहे हैं।

दूर और पास

हमारे गाव में ही

अपने गाँव के प्रति अभिमान कोई अपराध नहीं। लेकिन वह यदि हमारे मन को गाव की सीमा में ही बाँधे रखे तो "व्यक्तित्व के विकास में बाधा आ सकती है। अर्थात् वह एक आवश्यक प्रवृत्ति है। जो अपने घर में ही सौंदर्य नहीं पहचान पाये वह सत्कार का सौंदर्य भला कैसे पहचान पायेगा? अब मैं यह कैसे बताऊँ कि मेरा घर कौन सा है? यदि मैं दक्षिण कन्नड़ जिला कहूँ तो वह सृष्टि के सौंदर्य की खान है। वहाँ से मुझे जो पालन पोषण मिला वह अनुपम है। बाद में अपनी विद्या और प्रवासा से जो ज्ञान मिला उससे मैंने समझा कि दूसरे स्थानों में और अपन जिन में देखने का अनक बला स्मारक है। उनका बार में मैं यहाँ मोटे तौर पर कहना चाहता हूँ।

वास्तुकला

हमारे यहाँ पर वास्तुकला का नाम पर केवल दरवालय हैं। उनमें अधिकांश शिवालय हैं। कुछ जिनालय भी हैं। इस प्रदेश में अधिक वर्षा होती है इसलिए यहाँ का मंदिरों की छता की बनावट महाबलिपुरम् के स्थलों की भाँति अथवा चत्पा लया का भीतरी भाग की तरह होती है। वे छतें भूरे ही ताँबे में मजी हुई या पत्थर में निर्मित हों भीतरी शिल्पकला का झुला देती हैं। यह बात ध्यान में रखकर हम वास्तुकला का सौंदर्य का अध्ययन करना चाहिए। मूडविद्रि का जिनालय, वाराणा का जिनालय और कुछ शिवालय हमारे पश्चिम करावली का वास्तुशिल्प का वषय सिद्धांत हैं। उनका भीतरी भाग की रचना के बारे में बहुत समय गम गह का आगवाले नवरंग अथवा मण्डप भी देखने होते हैं। ये कुछ मंदिर अपनी छता और स्तम्भों के कारण प्रमुख हैं। उदुपि, कोटेश्वर, बसूर, मूडविद्रि आदि स्थान इनमें प्रमुख हैं। इन मंदिरों का निर्माण का समय भी दसवीं शताब्दी का आग-याम तक आया जा सकता है। बारकूर के पुरातन मंदिर गोपुर

हम वास्तुकला की विशिष्ट जानकारी दे सकते हैं।

शिल्प

उत्तम शिल्प के कुछ नमूने तो हमारे जिने में भी हैं। बाल्लूर और वमरु की बान की बनी द्वारपाला की प्रतिमाएँ बहुत भव्य हैं। बदरी देवानय किमी जमान में बौद्ध विहार था, बाद में यह शिवालय के रूप में परिवर्तित हो गया। वहाँ बाँस की बनी तीन भव्य प्रतिमाएँ जो आज तक बची हैं कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। बोल्लूर की भूकाम्बिका का विग्रह भी बहुत सुंदर है। परन्तु हमारे अधिकांश देवालया में भक्तों की कृपा से मूल विग्रह ही गायब हो चुके हैं।

इनके अतिरिक्त, धनूर और कारकल में जैनियों द्वारा निर्मापित महाशिल्प कुछ ही शताब्दी पूर्व के हैं लेकिन उनका निर्माण में बहुत बड़े स्वयं दत्ते गए हैं, उनमें कारकल की बाहुवली की प्रतिमा और उसमें स्थापना-स्थल का याद करने पर उन लोगों की सौंदर्यप्रज्ञा के सम्मुख हमें नतमस्तक होना पड़ेगा।

अपने नजदीक की कला के बारे में इतना कहना ही काफी है। भारत का कई प्रयाग के बारे में अब तक काफी लिख चुका हूँ। इन प्रयाग की बात समाप्त करने में पूर्व यदि अपने विदेशी प्रयाग के बारे में कुछ लिखूँ तो अप्रासंगिक नहीं होगा।

अति अभिमान

मैं धार मेरे सहपाठी उस समय के हैं जिन्होंने परतंत्रता में स्वतंत्रता का युग देखा है। जब भारत परतंत्र था तब हम अपनी प्रत्येक कमी के लिए जपेड़ा की ही दोषी ठहराते थे और इसमें यह भी भावना काम करती थी कि भारतीय धर्म मत धीरे-धीरे जा भी है तब श्रेष्ठ है। अपना योग्यता में पूरी हर्षणनाम पारदा जगत्संग की रचनाओं के अध्ययन में वह आत्म-वीर्य मुगल देखा गया था। मरे भीतर अपनी ससृष्टि के प्रति अभिमान तब तक भरा था कि मैं हमारे शिल्प विज्ञान और वास्तुकला आदि का गौरव जमानों में मुने जल, पत्थर जमा विज्ञान की पुस्तक से ही महायता मिली, माय ही एक मित्र ही लखन सात-दशकवार ग्रामी की लिखी पुस्तक में। एक लखन की पुस्तक ही मरी भाषा का पिबित्त करने में विविध प्रयाग की प्रेरणाएँ बनीं। उन्हें ही अत्र देगा की शिल्प वास्तु विभवता के बारे में जमान का प्रयाग किया। जब मैं 'यात्रा प्रपत्र' लिख रहा था उस समय एक विद्वान पर पढ़ना अनिवार्य हो गया था।

बाहर का जगत

तब बाहर भी एक सुन्दर जगत है, कलाप्रणाम, सस्कृति के बारे में जीवन्त लोग हैं यह विचार पैदा हुआ। प्राचीन नागरिक सस्कृति के बारे में मैं जब ममझना शुरू किया तब इण्डोनेशिया, इण्डोचीन, चीन, जापान, मिस्र, ग्रीस, रोम आदि की पुरातन युग की महान साधनाओं का बाधहोन लगा। यूरोप की चित्रकला तथा शिल्प का ज्ञान मुझे केवल पुस्तकीय था। उन मूल चित्रा और शिल्पा के बारे में और जानने का कौतूहल बढ़ चला। तब मुझे लगा कि हम उदा क्षेत्रों में इतना आगे नहीं बढ़े हैं। चित्रकला में पश्चात्यो के बाद चीन और जापान भी हमसे आगे है। इससे सम्बन्धित उद्योग और व्यवसायो में भी यही बात है। चीनियों के चीनी मिट्टी के बतन वनशियन काँच के सौदय के बारे में मुझे जानने की बहुत इच्छा हुई।

मैं अपनी वास्तुकला के बारे में पढ़कर दूसरों के मुकाबले यही महान है समझा था। इस धारणा के कारण अबतक कूपमण्डूक ही बना हुआ था। पर जब मैंने बेबीलोन, सीरिया, ग्रीस, मिस्र, रोम के राजाओं द्वारा ईसा से पूर्व निर्मित अदभुत इमारतों और चित्रा के बारे में पढ़ा तो मुझे अपन कला गौरव के बारे में जरा नरम होना पड़ा। साथ ही यह इच्छा भी हुई कि क्या कभी अबसर नहीं मिलेगा कि भारत से बाहर के जगत को कभी चार दिनों को देख सकूँ। जापान, जावा, बाली आदि पूर्वोप देशों ने भी मेरे मन को आकर्षित किया। यूरोप देखने की मेरी मन में प्रबल लालसा हुई। पर उन दिनों इच्छा जितनी बनी थी जेव उनकी ही खाली थी। चार बच्चों का परिवार मैं बड़ी कठिनता से चला पा रहा था। दश में मेरा नाम, कीर्ति खूब फल चुकी थी पर उससे नाम का चोपाई पसा भी नहीं मिलता था। कज भी हो गया था। उन्ही दिनों यूरोप में रुस और अन्य पश्चात्य देशों के बीच द्वेष बढ़ रहा था। मुझे लगा कि यदि दूसरा महायुद्ध छिन्न गया तो मेरी यह इच्छा कभी पूरी नहीं हो पाएगी। इसलिए कज लकर मैं यूरोप की यात्रा की योजना बनाने लगा।

मित्रों की प्रेरणा

मेरा एक बड़ा भाई और एक छोटा भाई सन् 1951 में यूरोप घूम आये थे। भर कलाकार मिन हेन्वार भी एक दो वर्ष परिम में बिताकर लौटे थे। इसी बीच भर बड़े भाई चुनाव के अघाडे में भी उतर पड़े। उनके ससद स्थान की सहायता दन को मैं अमम्बली सीट के लिए खड़ा हुआ। मुझे गाँधीजी के बाद की काँग्रेस पर तनिक भी आस्था नहीं रही थी। उसी अनास्था को जताने का अबसर दध में उस चुनाव में उतरा था। हम दोनों भाई हार गये लेकिन मेरा आत्मविश्वास यही

नहीं मानता था कि मेरी हार हुई। वह एक बटवा घूट था।

उम चुनाव के बाद सन् 1952 में मैं फिर एक बार यूरोप जान का निश्चय किया।

पाश्चात्य देशों में

बड़-बड़ करके आठ हजार रुपये के भीतर ही मुझे प्रवास पूरा करना था। वान तान का खर्च ही तीन हजार रुपये थे। बाकी के पैसे मुझे अपनी मारी दृष्टाएं पूरी करनी थीं। इसलिए तीन मास से अधिक का भ्रमण सम्भव न था। मरी अभिरुचियां चाह जितनी भी रही हों, पर मैं कुछ ही विषयों को लेकर प्रवास का निश्चय किया। मेरे प्रवास का मुख्य उद्देश्य ललित कलाओं का परिचय और योग्य वस्तु प्रकृति सौंदर्य देखना भी था। उमीचे अनुसार, यूरोप के कुछ देशों के भ्रमण का कार्यक्रम बनाया। कला आराधना के प्रिय इटली और फ्रांस में मैं एक पत्रवाला बिताया। इंग्लैंड में कुछ मित्र थे अतः वहाँ भी दो दिन बाटे। शेष दिना में नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क जर्मनी बल्जियम हालैंड और स्विट्जरलैंड में घूमता रहा।

इस प्रवास के दौरान यूरोप को प्रसिद्ध चित्रशालाओं को मैं एक-एक कर देखा। मेरा सारा समय वास्तुशिल्प और चित्रकला के क्षेत्र में बीता, वह भी पुरातन कला समग्रता में। उनका बार में मैंने अलग ही एक पुस्तक 'अपूर्व पश्चिम' का नाम से लिखी है।

प्रकृति प्रेमी लोग

मुझे अपने जिले पर बहुत अभिमान है। गाँव का जान-नाम के पहाड़ नहीं समुद्र, वर्षा ऋतु की हरियाली और आवाज जब नीलना में भर उठता तब वह सब मुझे स्वर्ग-सा दीखता। तब मुझे अपना मलेनाट छाँडकर मनाली जाना में जान में उतरी चुकी नहीं होती। मेरा विचार था कि यूरोप में ऐसा साँदर क्या? पर मुझे वहाँ यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। यह कि बात एकदम लगी नहीं है, वहाँ के समशीतोष्ण समय जसा मौसम हमारे वहाँ भाँना है। जब मैं वहाँ की भूभाग पढ़ना उठा तो वहाँ के दिन थे। तब इंग्लैंड में हमारे पहाड़ और चाना में हरियाली का साँझा था। इटली के कुछ भूभाग छाँडकर यूरोप में वहाँ की प्रकृति का सौंदर्य का अवात गही है। मीना का देश म्बान्त बऊ मरोवर जगत और पयता से फिरा नार्वे तथा स्विट्जरलैंड काँदिना का ता कहना ही क्या। ए तो मुझे अचानक मनाली मरी ल।

एक और मुख्य अंतर है। उन देशों में लोग प्रकृति का प्रति भाँ है उन पहाड़ानों की समता है। लगी बात क्या मैं अचानक मने म देख पाऊँगा? ली लई

के किसी स्थान पर जाकर छुट्टी का समय गुजारने की उनकी आदत सी है। व जहाँ जाते हैं वह स्थान गंदा नहीं करते। लगता है, हममें एक सौंदर्य का भूख ही नहीं है।

गव की बात

इससे पहले मैंने अजंता, सांची और एलोरा के बारे में कितने अभिमान से नहीं लिखा। ऐसा समय भी था जबकि मैं यह समझता था कि आकार और भव्यता में एलोरा का गुहालय अद्वितीय है। परंतु इस यात्रा में गीजा के पिरामिड स्प्रिंग्स की मूर्ति देखकर गामटेश्वर को भी भूल गया। रोमनगर व कार्ति सियस जैसे प्रेक्षागृह देखने पर एलोरा पीछे रह गया। सुग्रा का महल, बसले का महल, डोगे महल सेंट पाल कथेड्रल जैसी वास्तुकला को देखने पर लगा कि मनुष्य जब तक दुनियाँ का भ्रमण नहीं कर लेता, तब तक उसका ज्ञान अधूरा ही रहेगा।

चित्रकार और शिल्पी

यूरोप में ग्रीको के समय से आज तक कितने शिल्पी ही चुने हैं, चित्रकार ही चुके हैं। उ होने क्या किया जनता उनको क्यों सम्मान देती है यह बात वहाँ जान के बाद ही समझ में आ सकती है। उनके बारे में हम दूर रहकर मात्र पढ़ सकते हैं। उनमें जिस प्रकार कला स्मारकों को देखने की इच्छा बनी रहती है उसी प्रकार स्मारकों की रक्षा करने का प्रयत्न भी वहाँ दिखाई देता है। ठीक इसके विपरीत है हमारा यहाँ। अमूल्य स्मारकों के बारे में ऐतिहासिक दृष्टि से या सौंदर्य शास्त्र की दृष्टि से यदि हम कुछ जानना चाहें पढ़ना चाहें तो ढंग की चार पुस्तकें भी नहीं हैं। ऐसे अभाव को हमारा झूठा अभिमान पूरा कर देगा ?

‘वाह ताजमहल ! ओह सांची ! अहा हलेबिड के क्या कहें !’ यह सुनते ही हम में विजली-सी दौड़ जाती है। पर इससे हमारा ज्ञान नहीं बढ़ता, हम में अभिरुचि नहीं बढ़ती। उ-ह समझने का हम में कलाशास्त्र का ज्ञान ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और आलोचनात्मक बुद्धि भी होनी चाहिए। यूरोप के कुछ देशों में इस हिनाइ में विशेष काम हुआ है। हम लोग तो केवल बातों से ही पेट भर लेते हैं।

नाटक और नृत्य

मैं अपने जीवन का अधिकांश भाग नाटक और नृत्यों के प्रयोगों में बिताया है। इसलिए वहाँ व नाटक और नृत्य देखने की बड़ी इच्छा थी परंतु ऐसे प्रयोग देख पाना चार दिनों के प्रयासों के लिए सम्भव नहीं। वहाँ ऐसे बहुत से नाटक गह होने पर भी प्रसिद्ध थियेट्रों में तो महीने दो महीने पहले ही टिकट

बिबू जाते हैं। यदि मुझे अपने मित्र में सहायता न मिली होती तो कुछ भी दण्ड पाना संभव न हो पाता। लन्दन पहुँचते ही स्टैफोर्ड में चल रहे शेक्सपीयर के एक नाटक का टिकट हासिल किये। लन्दन में ही सडलरवल्स द्वारा निर्देशित बल भी देखा।

इसी प्रकार पेरिस में यूयाक से आया एक बल तथा स्पेन से आया एक बल दण्डन का अवसर मिला। ऐसे नृत्य-नाटक तथा संगीत-नाटक दण्डन अच्छी तरह परिचय प्राप्त करने के लिए भरपूर समय ही नहीं था। यह भी कहा जा सकता है कि उसके लिए अपेक्षित पूरा सस्कार भी मुझ में नहीं था। पर मैं गुप्त मन से यूरोप गया था अतः व सारी बातें मुझे अच्छी लगीं।

वहाँ के लोग

दूसरा महायुद्ध समाप्त होने के बाद ही मैं यूरोप गया था। युद्ध समाप्त हुए केवल सात वर्ष बीत चुके थे। उस युद्ध का कितना प्रभाव पड़ा होगा यह दण्डन की मुझे बहुत इच्छा थी। मैं यही कल्पना लेकर यूरोप गया था माना घायल होकर अस्पताल में पड़े व्यक्ति को दण्डन जा रहा होऊँ पर वहाँ का विश्व एकदम कुछ और ही था। हवाई विमानों में आकाश लन्दन, हम्बर्ग, मिलान आदि चाहते बड़े नगर हो गए थे—जिस समय मैं वहाँ गया तब तक, जैसी मरी कल्पना थी, वस नहीं होगी। जहाँ-तहाँ नयी नयी इमारतें उभर रही थीं। यहाँ सचमुच 'युद्ध हुआ होगा?' यह सन्देह हीन लगता। इतनी घाटी-भी अवधि में यहाँ के लोग 'तब तक युद्ध का घाव भर चुका था' अर्थात् नयी चेतना और स्पर्धा से अपना नित्य का जीवन सवारन में लग गए थे—यह देखकर मुझे महान आश्चर्य हुआ। उन्होंने शिष्टाचार दिया कि मानव में 'जीना चाहिए, अच्छी तरह जीना चाहिए' यदि यह सत्य है और उम्र सन्तान के अनुकूल श्रम करने की शक्ति है तो क्या कुछ किया नहीं जा सकता। जय भी मैं अपने देश के यागवीरा और वदान्तियों को दण्डता हूँ तो मुझे उन देशों के लोगों की भाव्य क्षमता की मात्र आय बिना नहीं रहती।

एक और मुख्य बात है। उपयुक्त उदाहरण में यह यह स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ के लोग आत्मसी नहीं हैं। अब यह देखना है कि 'सावजनिक जीवन में भी उनका व्यवहार अनुकरणीय है?' पौराणिक सभ्यता की महात्मा और उमर का में जब आत्मश्लाघा की बातें गुनता हूँ मुझे और भी आश्चर्य होता है। नित्य जीवन में, व्यापार और अन्य व्यवहारों में भी विशेष प्रामाणिकता उन लोगों में दिखाई दी। चोर दाजारी और छोटेबाजी बहुत कम है। मैंने अपने प्रवास के दिनों में अनेक अनुभवों का कुछ उदाहरण दिए हैं। दूसरा मैं सादर भी उनका व्यवहार बहुत आशीर्षक और सहायी है।

मित्र

मेरे मन में यह डर था कि केवल इंग्लैण्ड में ही अंग्रेजी से कम चल पायगा परन्तु मुझे दूसरे देशों में भी कुछ लोग अंग्रेजी जाननेवाले मिले। अतः इटली और फ्रान्स इन दो देशों के अतिरिक्त मुझे वही भी भाषा की दिक्कत नहीं हुई। मैं यहाँ से जाते समय कुछ लोगों के नाम परिचय पत्र लेकर गया था। यह डर था कि आपत काल में कोई न कोई सहायता तो चाहिए ही। पर ऐसे कुछ ही पत्रों का उपयोग किया गया। अधिकांश पत्र वहाँ के विद्वानों के नाम पर लकर गया था।

मर मित्र डा. आर्नाल्ड बाके लंदन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। लंदन जाने पर मुझे पुनः बाके दम्पती का स्नेह मिला। उनके कारण ही उनकी बहिन और उनके अन्य मित्रों के परिचय ने मेरे इंग्लैण्ड प्रवास को सुगम बनाया। सन 1960 में वे हमें मदद के लिए छोड़कर चल दिये—यह समाचार सुनकर मुझे बहुत आघात लगा।

उसी लंदन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. हाइमन डाफ के लिए मैं डा. एम. एन. श्रीनिवास से परिचय पत्र ले गया था। वे मानवशास्त्र के पंडित थे। डा. और उनकी पत्नी बट्टी को भारत के प्रति बहुत लगाव था। उन्होंने भारत में काम भी किया था। मैंने उन्हें औपचारिकता से भारत आने का निमंत्रण दिया। चार वर्ष बाद वह दम्पती पुनः आये और मेरे साथ एक सप्ताह रहे। मैं उन्हें अपने मलेकुडी (एक विशिष्ट पहाड़ी जाति) के पास ले गया। उस महान् विद्वान और सरल व्यक्ति से परिचय होना यूरोप में मेरे प्रवास की एक उपलब्धि थी।

इस प्रकार यूरोप में मेरा कई लोगों से परिचय हुआ। पर बाद में उनसे मेरी भेंट नहीं हो सकी। पुनः जिनमें भेंट हो सकी उनमें जान ब्राउंस का नाम लिया जा सकता है। मैं जिन दिनों पेरिस देखने गया, व मुनेस्की में शिक्षा विभाग के अध्यक्ष थे। उनसे परिचय हुआ। बाद में वे अपनी समस्या की ओर स. भारत भी आये। ममूर में यज्ञशाला के पास उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी एक कार्यशाला चलायी। उस समय मैं उनसे कभी कभी मिला करता था और कुछ पुस्तकें लिखने में भी उनका सहायक रहा। तब मुझे ऐसा लगा कि बचपन घातचीत की मित्रता की अपेक्षा समान दृष्टि के विषयों में एक साथ काम करने का अवकाश मिले तो मित्रता और स्निग्ध होती है।

धार्मिक विचार

वदिक वातावरण

मैं गाँव का हूँ, यहाँ के लोग परम्परावादी हैं। उनके लिए 'कोट' ही एक अलग दुनिया है। घम में उनकी अधिष्ठा श्रद्धा है। उस अधिष्ठा भी वह ता गलत न होगा। उसका एक उदाहरण देता हूँ। हमारे गाँव में सोमायाजियों का एक घराना है। यज्ञ करने से ही उस कुलवाले का यह नाम पड़ा है। यँ ही नहीं आया यह नाम। इस सोमायाजी घराने के पूजार्थ ने कई पीढ़ियाँ से यज्ञ किया है। हमारी पीढ़ी के एक सोमायाजी ने अपने कुल को सायब करने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने 'अज यज्ञ' करने की योजना बनायी। वृष्णवा के समान आटे का बकरा नहीं, एकदम चलते फिरते बकरे की बलि देने की सभी प्रकार से तैयारियाँ की जाने लगी। जब उस यज्ञ के लिए सामान जुटा रहें थे, हम भाद्रपद में उमका विराघ किया। "ब्राह्मण भी वही बकरी करते हैं?" यह बर मजाब भी उजाया। पर सोमायाजी ने अपना इरादा नहीं बदला, यज्ञ सम्पन्न करवा ही छाया। एक बकर की बलि दे टाली। उन्होंने उसका मुँह बस कर बाँध दिया था। खून की एक बूँद तक गिरन नहीं दी और इस विधि से एक बकर की हत्या कर टाली। इस प्रकार आदि देवताओं की तृप्ति करायी गयी। इतना ही नहीं, सात-आठ दिन तक मकान लोगों को रोख अनदात भी किया गया। एमा बढ़िया खाता मिसल पर गाँव के लोग छोड़ देते क्या? हम तो केवल मजाब कर ही रह गये। गाँववालों का विश्वास था कि वह बकरा सीधा स्वर्ग गया है। मुष्टि प्रहार में उम मारत बान खोर का नाम 'अडिग' था। शतायु होकर ही मरा वह व्यक्ति !

अधिष्ठा

हार्दिक पढ़ते-पढ़ते छुआछन, साध्या-बदन, आदि एक-एक करके मुझ में छूटने लगे। पर जाने पर ही बड़ा की आँखा में धूल झाँकने की लताब व पानी में घड़े होकर नाक दबाकर स्मृति में बंध-गुंथे मात्र बोला करता था। (कौटिल्य का मन में मारने के बाद भी छूट गया। उसके बदले, गंधीजी की बापों का अंगारण

माना की एक और अ धरुद्धा ने मरे भीतर ज म लिया। अत्र साचता हू तो ये साफ दिखायी देता कि जय लोगो म अपनी विवचना शक्ति नही हाता तब एक परम्परा का छाडकर दूसरी एक अ धरुद्धा म फस जात है। यदि धार्मिक अ धरुद्धा छूट जाय ता उसकी जगह राजनैतिक विचारधारा हावी हो उठती है। आज खुलन स पहने ही हम किसी न किसी वाद स चिपक जात हैं। लगता है य बात मदा ऐसी ही रहती है।

गीता की उलझन

गाव के नियम, आचार विचार मुझसे छूट जाने पर भगवान, आत्मा कम, मोक्ष आदि विचार जो पूवजो म दत्तक रूप मे मिले थ, मुझसे चिपके ही रह। आमतौर पर ऐसे विचार हमार खून म आ जाते हैं। हम बडे हाते हैं। विचार करत हैं। ऐसी बातें तो वातावरण म रहनी ही हैं, उही को लेकर हम चलत हैं। इस प्रकार भाग्य भक्ति मोक्ष, परमात्मा आदि ऐसी श्रुद्धाएं आरम्भ से मुझम पदा हुई, मुझे समाज से मिली। गांधीजी के प्रभाव स यह श्रुद्धा और विकसित हुई। रामकृष्ण परमहंस की रचनाएँ पढन के बाद मरे भीतर भक्ति भाव और अधिक जास्या हो गइ। उन दिना मैं बहुत पुस्तकें तो नही पढी, पर भगवान गीता कण्ठस्थ किया करता था। अनुवाद के द्वारा उसे समझने का प्रयास करता था। एक दिन थोड़ी सी सस्कृत जानने पर भी मुझे गीता का कानड अनुवाद करन की इच्छा हुई। उसका मुख्य कारण यह था कि हमारे देश क सभी आचार्यों न गीता की अरने अपने ढंग स व्याख्या की थी। शंकराचार्य ने गीता स अद्वैतवाद का प्रचार किया, तो मध्वाचार्य ने द्वैतवाद का, किसी और ने ता उसम विशिष्टाद्वैत का ही अर्थ निकाला। यदि इतना ही होता तो पर्याप्त पर गांधीजी तो तक शिरोमणिया मे भी एक कदम आगे निकल गये। उन्होंने कहा कि गीता न अहिंसा का उपदेश दिया, इससे मुझ जैसे की बुद्धि को भला क्या पलन पडता ?

पता नही सस्कृत किस युग म बोलचाल की भाषा थी। गीता भी कितने और काल की थी। उममे प्रक्षिप्त अध्याय भी बीच-बीच मे मिलते गये। काल की एक भाषा को लेकर, उस जमाने के शब्दा का प्रयोग जब समझ पान सम्भव न हा, ता लगभग दो हजार वष पुरानी चिकित्सा करनवाल लोग ब्याह कर चन सकता है। जब गीता का सही अर्थ नही सूझता तब अपना ही अर्थ लगा लिया जाता है। बात केवल इतनी ही होती ता कोई बात न थी। मन का एक धार्मिक नियम मिड करन के लिए प्राचीन कृति को सारी के म घसीटन का प्रयास अत्यन्त अत्यायपूर्ण है। अपने मन सुताविक अर्थ लगा बना आसान है। जो अश ठीक नही बठत इह प्रभित्पास कह दिया जाता है।

हमारा एक धमधाम हान हुए भी यह सब उनके नकारने का प्रयान है न ?

बुद्ध सशोक का कथन है—उस युग के शत्रियों की निर्दोषता का छण्डन करने के लिए ही इसकी रचना हुई। उसी भगवद्गीता की दूसरे अनुवादों की सहायता में मैं कान्ह म भट्टी उतारी। उनका उद्देश्य यही था कि कम-कम मुझे उसका जय ही स्पष्ट हो जाय। पता नहीं क्या क्या अथ समझा और जा समझ म आया वह लिया। उसकी अनेक बातें मर मन को स्वीकार नहीं हुई और ना ही समझ में आयी। एक बात तो बहुत पसंद आयी 'कर्मण्यवाधिकारम्न मा फनपु बदाचन'। आपको लगेगा कि परिश्रम करने के बाद व्यक्तित्व का एक मित्रांत को स्वीकार कर लेना सहज है, कौन जानना है। शायद इसीलिए मैं उस तत्त्व का स्वीकार किया। परंतु आज जिन बातों में मुझे सफलता मिली है केवल वह सफलता सत्ताप का विषय नहीं हो ऐसी बात नहीं। मैं समझता हूँ जाकाम हम करने है हमें उसीसे सतोष मिलना चाहिए। जीत ही आपको सन्तोष दे यह बात भी नहीं। हजारों में एक व्यक्ति इतना भाग्यशाली हो सकता है।

गीता के कृष्ण

जो भी हो गीता के मरे मन में कृष्ण के प्रति अभिमान पैदा हुआ। भागवत की कहानों में वचन में सुनी थी। महाभारत के चतुर कृष्ण के बारे में भी पढ़ा था, उन दाना व्यक्तित्व के प्रति ज्यादा अभिमान पैदा नहीं हुआ। मेरा कृष्ण मरा ही जाकर रह गया। इतिहास में यदुवश का राजा वह कृष्ण पता नहीं क्या व्यक्ति था। शायद चंचल के समान रहा होगा। गीता इस कृष्ण न था ऐतिहासिक कृष्ण न कहीं हागे या शायद न भी कहीं हो। परंतु वह हमारे हाथ तक पहुँची है ता इसका कोई व्यवस्था भी होगा। उसी के मरी कल्पना के कृष्ण का जन्म दिया।

कीन-सा भक्तिभाव ?

रामकृष्ण परमहंस के भक्तिभाव की पाँच माघनाएँ यानी वात्सल्य भाव, मधुरभाव, मद्यभाव, शांतभाव आदि के बारे में पढ़ा था। उससे मैं भक्ति-भाव में प्रेरित हुआ। वात्सल्य और मधुरभाव मुझे ज्ञेय नहीं। शेष किम भाव म दर और मानव के बीच सम्बन्ध हो सकता है ? पर मन में यह डड्ड अक्षय पण हुआ कि मरा और कृष्ण का सम्बन्ध क्या होगा चाहिए।

माधु वागवानी

मन में सम्बन्ध हुए एक राष्ट्रीय काँग्रेस के 'भारत युवक सम्मेलन' में माधु वागवानी भाव था। उनमें मरा परिचय था। उन्होंने मन्मूर आन को कहा था।

वे तीन दिन के लिए आये थे। उनके साथ रहते मैंने यह अनुभव किया कि भक्ति संप्रेरित एक जीव कैसे रहता है। साधु वासवानी तब पचास के थे। सामान्य बाटी के व्यक्ति थे। बड़ा तंजस्वी मुछ, माना आँखों में सदा सपने भरे हो। व जब बात करने या भाषण देते एक विशिष्ट कीमलता सी छाई रहती। कृष्ण की 'बौंसुरी' आदि कुछ पुस्तकों उन्होंने लिखी थी। व रहस्यवादी थे। व आस पास क आवरण पत्थर मिटटी, लोण जीव ज तु सभी म भगवान् की छाया दखत थे। मानो वासवानी व वाना में सदा कृष्ण की मुरली सुनाई देती हागी। मैं आज तक किसी व्यक्ति के व्यवहार में ऐसी मद्दुता और भावुकता नहीं देखी। मानो वह रहे हा प्रेम ही जीवन है। उनका स्वभाव, उनका जीवन, उनके गुण, सब कुछ इतना सरल और नय पूण था। एक दिन उनके भाषण का समय हो चला था मैंने कहा "चलें।" उन्होंने पूछा 'क्या समय है?' मैंने कहा, 'अभी पंद्रह मिनट बाकी हैं।' व बोले, 'तब तक जरा आराम कर लू?' मैंने कहा, "ठीक है। मैं ठीक समय पर बुलाने आ जाऊँगा।" उस दिन 'रघुनाथय्या मिमोरियल हाल' में भाषण होनेवाला था। उसके पास ही ब्रह्मा मंदिर था जिसमें वे ठहर हुए थे। समय होते ही मैं उन्हें बुलाने गया तो वहाँ मैंने देखा व उधरे वदन धूल भर फज पर लेट हुए थे। लम्बी यात्रा से कितने थक गये थे व। उनके स्नेह न भरे भीतर का भक्तिभाव जगा दिया। बाद में वे आगे राजकोट गये। और फिर राजकोट से और करौंची से उाव और मेरे बीच पत्र व्यवहार चलता रहा। मैं उनमें असली साधुपना देखा था।

साधक

अपनी लम्बी यात्राओं में मैं भक्ति की साधनाएँ करता रहा। मन की एकाग्रता के लिए प्राणायाम का अभ्यास किया। चाहे किसी भी गाँव में जाऊ, प्रातःकाल या आधी रात में उठकर गाँव से बाहर जाकर कहीं बैठकर ध्यान मग्न हो जाता। कुछ वर्षों तक ऐसे ही भटकता रहा। मुझे कृष्ण में आस्था थी। पर मुझे से निकलनेवाला गीत राम मन्थ धी होने थे। राम और कृष्ण की मूर्तियाँ मर मन में एक क बाद आया करती थी। भगवान का ध्यान करने बैठें तो क्या ध्यान करें? उनके रूप का, गुण का अथवा उसके चरित्र का? चाहे कितना भी प्रयत्न करू, भगवान पर चाहे कोई रूप आरोपित करें उसमें मानव के गुण ही आरोपित हो पाते हैं। मैंने जिस सत्य को, दया को प्रेम को क्षमा को देखा उसी का ता मैं भगवान में आरोपित कर सकता हूँ। ऐसे गुणी व्यक्तियों के चित्र में ही मैं अपने चलना के कृष्ण को देख सकता हूँ। यदि रूप की कल्पना करू तो मरी अपनी सीमाएँ ही आड़े आती हैं। मनुष्य का रूप ही भगवान पर आरोपित हाता है। साध्य में वर्णित नीलमध श्याम मुरलीधर मानव बनकर रह जाते हैं। जब उस

भगवान के रूप की याद करता हूँ तब जिस कृष्ण के रूप को मैंने देखा था वही रूप मेरे सामने आता है। दूसरा कृष्ण दिखाई ही नहीं देता। कुछ सागा के लिए राजा रवि वर्मा का कृष्ण ही दिखाई दे सकता है। नन्दलाल बसु का कृष्ण मुझे दिखाई दे सकता है। एक बार मेरे लिए राने का मौका ही आ गया। जब मैंने देखा कि मरी इतनी साधना के बाद मेरे मन के सामने जो कृष्ण का रूप आ खड़ा हुआ वह किसी नाटक कम्पनी में देखे एक बाल बलाकार का रूप था।

अपना सा ही भगवान

यू कहना चाहिए कि उस एक घटना से मर सारे ध्यान, चिंतन समाप्त हो गया। तब मुझे लगा कि मानव जिस दवता की कल्पना कर सकता है या दवत्व के गुण दाय़ सकता है वह उसकी कल्पनाशक्ति पर तो निर्भर होता है। जीवन में जिन महान गुणों का नहीं दखा, नहीं अपनाया क्या वे गुण हमारे ध्यान में आ सकते हैं? दखत समय भी वही सीमा रहती है। मानव के लिए भगवान विश्व का भगवान होने पर भी उसका रूप मानव का ही रहता है। भारतवर्ष के भक्तों के लिए कृष्ण भारतीय हैं। उनका वही सौंदर्य है जो सौंदर्य हम बच्चा में दखत है। उसी को आराधित करते हैं। रही उसके रंग की बात, प्रकृति में हम उस आराधित करते हैं। इसलिए ऐसा लगा कि जब तक मानव महान नहीं बनता तब तक उसका भगवान महान् नहीं बन सकता।

समृद्धि की सीमा

विश्व के इतिहास के पाठकों को यह स्पष्ट हो जाता है कि किंगी बाल के दवता और उनकी समृद्धि उस यातावरण की सीमाओं में प्रभावित रहती है। विश्व के भगवान का मानव का आकार भला क्या धारण करना चाहिए? भारत में ही विष्णु नाम के भगवान को दस अवतार क्या धारण करने चाहिए? इसका कारण यह है कि भारतीय भगवान का निर्माण भारतीयों ने किया। वह भगवान हमारे बराबर ही उत्तर होता है। वह हमारे जितना ही कामी है और हमारे जितना ही प्रेमी है। जब मेरे मन में एक विचार विकसित होने लग तब मुझे धर्म के बारे में दूसरा ही दृष्टिकोण अपनाना पडा। इस संसार का पाहूँ निम्न बनाया है। भगवान ही भगवान न ही इसका निर्माण किया है, या हम दुनिया का ही भगवान मानें पर हमारा भगवान तो हमारे मन की कल्पना, बुद्धि और इच्छानुभूति का जन्म है। गीता की एक बात यहाँ सटीक लगती है। भक्तों के लिए भगवान का ध्यान करता है मैं उसी रूप में उस दखत दना हूँ।' चित्तनी गह्वर है यह बात। अपने भीतर ही हम जिन भगवान का गुण्य करते हैं अथवा सम्कार के अनुभवा

ही हम उस रूप देते हैं। उसका अर्थ रूप भला कैसे आ जाएगा? अपनी ही सृष्टि का सदा ध्यान करते हुए उसी के साक्षात् दर्शन पाने का प्रयत्न सदा भक्त करता है। बलाकार व सौंदर्य दर्शन का मार्ग भी ऐसा ही है। अतः मुझे भगवान् न जीवन ही प्रमुख लगा। शायद इसलिए गौतम बुद्ध ने भगवान् का नाम उगाया ही नहीं। उगाने जीवन के बारे में ही कहा। वे न आस्तिक थे न नास्तिक। उन वाद का सार है—जब तक जीवा तब तक विश्व के जीवन के साथ एक होकर जीओ। तब जाकर जीवन के मृत्यु दुःख दद और सुख दुःख के अर्थ पूर्ण हान है।

पहुँच से परे

इस वाद से भिन्न भगवान् की व्याख्या का एक मार्ग और भी है जिसमें भगवान् का निगुण और निराकार रूप देने का प्रयास है। हमारे मन बुद्धि और इन्द्रियो की शक्ति सीमित है। उनसे सगुण और साकार की कुछेक बातें समझी जा सकती हैं। निगुण और निराकार की कल्पना तो पहुँच से परे की बात है। वहाँ तो हम उह नाम भर दे सकते हैं।

जीवन मुख्य है

मेरे लिए जीवन ही मुख्य है अतः जीवन को समझने के साधन भी उतने ही मुख्य हैं। इन्द्रियो हमारी बरी नहीं। उनसे विकसित होनेवाली बुद्धि और मन भी हमारे बरी नहीं हो सकते। वे हमारे जीवन के प्रमुख साधन हैं। ऐसे विचारों के कारण हम जगत, जीवन और जीवा के बारे के मेरे मेरा दृष्टिकोण ही बदल गया। बालवेप वेळकु' (जीवन ही प्रकाश है) पुस्तक में मैं इसकी विस्तार से चर्चा की है।

अपने जीवन में अपनी शक्ति और स्वभाव को पहचानकर उसी से, जितना विशाल जीवन जिता पाना सम्भव है उसी में मुझे तृप्ति है। मुझे बल की परवाह नहीं। मेरा ध्यान आज पर ही रहता है। ऐसा निष्णय करने से पूर्व मैंने 'बसन्त पत्रिका में एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था 'मुझे मोक्ष नहीं चाहिए'। मैंने लिखा था कि 'यह जगत के इतने जीवा का माया में फसकर छटपटाना सत्य है तो भला अनेक का स्वतंत्र हान का प्रयास स्वाभाविक ही है। आज भी ऐसा ही लगता है। आज मुझे माया आवश्यक नहीं लगता। लेकिन जो यह मोक्ष है—मुझे दूसरा व लिए बँडे रहना चाहिए—यह इच्छा भी मुझे स्वाभाविक ही लगती है।

निसर्ग ही भगवान् का मन्दिर है

मेरा भक्ति भाव ही मुझे कुछ यात्रा स्थलों पर ले गया। काशी-यात्रा के बारे

मे मैंने पहले बताया है। अपने मन के समाधान और असमाधान के कुछ और प्रश्नों का यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ। लोगो की भीड़ से खचाखच भरे मन्दिर में मन में जुगुप्सा पैदा करत हैं। उसमें भी जब उस क्षेत्र के पण्डे पीछे पड जात हैं तब रही सही भक्ति भी अदृश्य हो जाती है। हम लोगो में भक्ति एक व्यक्तिगत भाव न होकर प्रदर्शन की वस्तु बन गयी है। शापद इमीलिए अधिवांश मन्दिर ध्यापार क्षेत्र बनकर रह गये हैं। मन के लिए अपेक्षित शांति ऐसी जगहों में बस पायी जा सकती है? प्रकृति के नदी समुद्र पहाड, आकाश से जो शांति प्राप्त मिला वह मैंने मन्दिरों में नहीं पायी। फिर यात्रा-स्थल तो ध्यापार क्षेत्र बन चुके हैं। कई मन्दिरों में विग्रह भी सुन्दर नहीं हैं। यदि मूर्तियाँ की भक्ति की प्रेरणा बनना हो तो उन मूर्तिकारों को भी भक्त होना चाहिए। ऐसे विग्रह तो हम दशकियों के वस्तु सभालयों में ही मिल जाते हैं। जो प्रतिमाएँ हैं उन्हें हमारी भोली जनता अनकारों से विकृत कर देती है। लोगो को शिल्पी के सपने में विश्वास नहीं होता, चाँदी, हीरा, मोती ही उनके मन का आर्क्षित करत हैं। ऐसे अनुभवों ने हमें 'गमगुडी' नाटक लिखने को प्रेरित किया।

मन्दिरों को सबके लिए नहीं

भक्ति से प्रेरित होने पर भी, एक और मुख्य कारण रहा आया जिसमें मन्दिरों में जाना छोड़ दिया। एक बार मैं अन्न जिले के घमस्थल नाम के स्थान पर गया। मेरे साथ जानेवाले मेरे वापस आते तब बाहर ही पड़े थे। पूछने पर पता चला कि वहाँ हरिजनो और वर्याओं के कुत्तवालो को प्रवेश नहीं मिलता। उम बात से इतना दुःखी हुआ कि वहाँ भोजन के लिए भी नहीं ठहरा और वहाँ से तीन बौस पैदल चल बेसतमड़ी पहुँचा। उम दिन भोजन भी मुझ अच्छा नहीं लगा। उसके बाद से मैंने सभी प्रकार के मन्दिरों में जाना बन्द कर दिया।

अज्ञानता और काल के परिवर्तनों में पड़े होने पर जो मन की शांति मिलती है वह साधारण नहीं। एक दो बार दूसरी जगहों पर भी गया। एक बार मैं मथुरा बुदावन गया था। तब मेरे साथ मेरे कुछ मित्र थे। पिछले अनुभव ही मन में जुगुप्सा पैदा कर रहे थे। मथुरा रेलवे स्टेशन पर ही एक पण्डे पीछे पड गया। मैं वहाँ भी गया वह मेरे पीछे-पीछे आता। दुकान से दूध पीने पर उम दयाली सिनी। हम जितनी जगहों पर बठ उम जाँचवाले में भी उमने दयाली माँगी। भोजन के नाम से सूटकर ही उनका जीवन चलता है। यमुना घाट पर भी वह हमारा पीछे पीछे रह गया। उपेक्षा करने पर भी हमारा पीछे लगा रहा। हम वहाँ से बठ भीत दूर बुदावन गए। वहाँ एक की बगल में पण्डे इकट्ठे हुए थे। वहाँ का मन्दिर बड़ा वैभव सम्पन्न था लेकिन उम देखकर भक्ति की प्रेरणा नहीं

मिलो। 'पण्डा का हम पैसे नहीं देंगे' कहकर फटकारा और हम बादावन से बल पडे। पास ही चमेली का एक बगीचा था। वहाँ जरा शांति थी। मनाहारिता न होने पर भी हमारे मानसिक सस्कारा के कारण कृष्ण की स्मृतियाँ जगने पर मन को सन्तोष हुआ।

इस सिलसिले में सांस्कृतिक दृष्टि से यदि कोई और स्थान प्रिय लगा तो वह था कलकत्ता का दक्षिणेश्वर मंदिर। रामकृष्ण के जीवन के प्रति मेरे मन में आस्था होने से हुगली नदी के किनारे पर वन उस मंदिर को देखकर मुझ बटून ही सन्तोष हुआ। वहाँ ज्यादा भीड़ भाड़ भी न थी। वहाँ की काली की मूर्ति के सम्मुख खडे होकर तनिक ध्यान लगाने का प्रयास किया। पर उस मूर्ति ने मेरे मन में कोई विशेष आकर्षण पैदा नहीं किया। साधारणतः काली के प्रति मेरे मन में कोई भक्ति या प्रेम की भावना पैदा नहीं हुई। मूर्ति ऐसी होनी चाहिए कि हमारा मन उसमें रम जाय।

मंदिर के पास का पचवटी वन भी देखा। वह राम कृष्ण की साधना की ही भूमि है न। एक ओर निसर्ग और दूसरी ओर उसके प्रति गौरवभाव—इन दोनों के हान से मुझे वहाँ बड़ी शांति मिली।

यह ग्रामीद्धार

स्वतंत्रता

अपने पुराने कजें मुझे पिताजी की सहायता से चुकाने पड़े। मैंन जा बमाया, वह रनयात्रा, पुस्तकें और फोटोग्राफी आदि में ही उठ गया। आगे से बमाने के लिए कोई उद्योग शुरू करना चाहता था। पर अपनी अभिरुचि के विरुद्ध अपना व्यक्तिगत स्वतंत्रता बचकर पैसा बमाने की इच्छा न थी। यदि ऐसा कोई काम कर भी जाता तो तीस चालीस रुपये मामूली सब बमा सकता था। मैट्रिक पास करनेवाले बहादुर को उमर जमाने में इसमें ज्यादा और क्या मिल सकता था? इसलिए अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की ही रक्षा करता था। मैं अपना मासिक आय था यह तपित तो थी न।

अनचाही सगति

मगलूर में रहने समय बेनरा हार्डस्वूल में एक-दो थप सब पाँचवीं छगी बगा था। हिन्नी पडाया करता था। बच्च मुझे हिन्नी मास्टर कहकर (हिन्नी मान मुझर हाता है) बजाव उठात थे। एक ढग में यह बात सही थी। क्या मुझ इतना भी समझना नहीं चाहिए था कि उन बच्चों को हिन्नी पसाद नहीं थी। उनमें अधिकांश सटकी की मातृभाषा ब्राह्मणी थी गाँव की भाषा तुलू थी और स्कूल में ब्राह्म और अंग्रेजी पढ़ायी जाती थी। उमर पर हिन्नी का बपार सगया जाता तो क्या करता बने सह पाते? इतना ही नहीं उमर स्कूल के मुख्याध्यापक ससूत्र भी आदना चाहत था। चाहे जो भी हो, मुझे यह अवैतनिक अध्यापक का साथ पसाद नहीं आया। बच्च एक भाषा सीखन के बाद यदि दूसरी भाषा सीखें तो उनके लिए अच्छा रहता है। अलग अलग भाषा-ब्याकरण बानो तीन चार भाषाएँ यदि उनका मन में ठुँगी जायें तो उन्हें भी भाषा नहीं आ सकता। तब ग मैं बबदागी हिन्नी सीने जान का विरोधी हो गया। बच्चों को अपने प्राण की भाषा अपनी प्रचार आन के बाद में चाहें तो ब राष्ठीभाषा या अन्तर्राष्ट्रीय भाषा सीख सकता है। उन दिनों मैं बासबानीकी टाउ रपारित बिने गे 'भारत दुबक सप'

का मंत्री था। मैंने मंगलूर में एक 'कर्नाटक सभ' स्थापित करने का भी प्रयत्न किया। हम लोगो में चार दिन हर काम का उत्साह रहता है। जैसे चीनियाँ को पर निकल आते हैं। 'आरम्भ शूर खलु दाक्षिणात्य' यह कथन एकदम सत्य है। जो भी हो व दोना सस्थाए अधिक दिन चल नहीं पायी।

भाषा प्रशिक्षण के बारे में यहाँ एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है। छोटे बच्चे नित्य सुनाई पड़नेवाली भाषा को आसानी से सीख लेते हैं। लेकिन उसी प्रकार से वे पुस्तक से नहीं सीख पाते। हमारी भाषा शिक्षण की विधि ही दोषपूर्ण है। किसी भी भाषा को सिखाते समय, बोलकर, बुलवाकर और प्रयोग के द्वारा सिखाना चाहिए।

और फिर शिक्षा में भाषा ही सब कुछ नहीं। कभी कभार जिस भाषा की आवश्यकता पड़े उसे बचपन से ही लादने की आवश्यकता नहीं। जिन चार भाषाओं को हमें सीखना है, उनमें एक के भली प्रकार आने के बाद दूसरा को लेना चाहिए। एक की ओर ठीक ढँग से ध्यान न देकर कि एक एक भाषा को हम कितना समय दे सकते हैं उसके साथ तीन चार भाषाओं की पुस्तकें लादन पर बच्चा का किसी भी भाषा पर अधिकार नहीं हो पाता। ऐसी बुरी स्थिति पैदा हो गयी है।

चलो पुत्तूर

बाद में मंगलूर में मेरा कोई काम ही नहीं रहा। पत्रिका बंद हो गयी। उसमें बन्द हो गया। मेरी कुछ पुस्तकें भी बिक नहीं पा रही थी। ऐसी परिस्थिति में मंगलूर में बैठे रहने में कोई अर्थ नहीं दिखाई दिया। शहर में मुझे कभी मोह नहीं रहा। मंगलूर की भीड़ भाड़ भी मुझे पसन्द नहीं थी। फिर अनुयायियों से अधिक मज्जा नेताओं की थी। इसलिए यहाँ से पुत्तूर चला आया।

नया वातावरण

आज समय ही मैं नयी-नयी तरह का पागलपन लेकर आया था। वे वे फोटो ग्राफों का पागलपन, चलचित्र का पागलपन, ग्रामीण जीवन के अध्ययन की इच्छा। पुत्तूर में माळ्ळिळ शिवराय जैसे एक दो बुजुर्ग मित्र थे। मेरी एक बहिन का घर भी पुत्तूर में है। मंगलूर से पुत्तूर आ गया। यहाँ आकर सबसे पचास वर्ष हो गये। यहाँ आज पर भी मेरा प्रवासी जीवन चलता ही रहा। फिर भी एक स्थायी डाक के पत्र की जगह बन गयी। मेरा नाम लिखकर डाक खाना पुत्तूर या कुत्तूर (दक्षिण कर्नाटक) लिखना काफी है पत्र मेरे पास पहुँच जाते हैं।

शुरू में पुत्तूर हाईस्कूल का मुख्याध्यापक रामन नम्बियार के घर डरा जमाया। उन्होंने रत्ने को एक धमरा दे दिया। दो जून का खाना भी वे दे ही देते थे।

मरी ही तरह उनको भी फीका पाने की आदत थी इससे लाभ ही हुआ। उन दिना हम दाना आदशवादी थे।

शिवराय

मोठळिळ शिवराय यहाँ बकालत करत थे। उनकी बकालत तो नाम मात्र की थी। व अपना मारा समय गाँव के लोगों की सवा में बितात थे, वही उनका मुख्य व्यापार था। जब मैं आया तब व तालुका बोर्ड के प्रेसिडेण्ट थे। जिला पचायत के भी प्रेसिडेण्ट थे। लगभग सत्तर बप पहले ही इस प्रांत में सहकारी सघ का जन्म उनके द्वारा हो चुका था। दस आदमियों के लिए काम करने वाला म उनमें बढ़कर मैं कोई नहीं देखा। जब तालुका बोर्ड था तब पता नहीं जिले में कितने स्कूल खुले। प्रत्येक गाँव के लिए सड़कें बनीं। वे प्रत्येक स्कूल में जाया करता था। बच्चा के प्रत्येक कायक्रम में व रुचि लेते थे। बच्चा के द्वारा खेलायी जानवासी हस्तलिखित पत्रिकाएँ भी व देखा करते थे। व जो भी काय करत उसकी हर बारीकी को अच्छी तरह समझते और ध्यान देत। बच्चा के जीवन को सुदूर खाने में उनकी विशेष रुचि थी। उनकी इस रुचि से शिक्षा सम्बन्धी कामों में मुझे बहुत प्रेरणा मिली। उस बारे में अपना जो भी काय करता उसमें व मेरे मुख्य सहायक बनते। मेरे जीवन में बड़े भाई का स्थान उहाँ का जाता है। बाद में वे पुनूर छोड़कर मद्रास में रहने लगे। उनके बाल का पुत्तूर मेरे लिए बोरान हो गया। एक व्यक्ति के बचस्व से जनजीवन जितना गुधारा जा सकता उतना उहाने किया। मुझे कर्नाटक में दूगरा शिवराय दिखायी नहीं दिया।

शिवराय और राम नम्बियार के कारण ही मेरा पुत्तूर से निकट का परिचय हुआ। नवयुवका, ग्रामीणों तथा संबन्ध गरीब स्कूल अध्यापका का परिचय मुझे मिला। वहाँ के कई अध्यापकों के कारण ही मुझे अनेक कुछ प्रयोग करत में सहायता मिली। ऐसे कुछ प्रयत्न के बार में मैं बाद में लिखूंगा।

गम-गम पिचडी

दो म जब दूगरा राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ तब मैं पुनूर में था। तब मेरा मन ग्राम-गुधारा के सान देखा करता था। आत क्या काम करना पड़ेगा वह अभी समझन की बात थी फिर भी मेरा मन उतनी म रमा था। मन्तूर में जब नवक मर्यादा शुरू हुआ तब मैं मानसिक उलझन में पड़ गया। मैं पढ़ा अन्त्या आन्दोलन में भाग ले चुका था। अब खुप रहना उचित था? पर जग में आकर गीधे इस ज्ञान की भी मेरा मन न था। मैं मन्तूर के मित्रों म एक विद्या क्लब गाँव चलेते, वहाँ कुछ काम करेंगे। बाल में जन्म जा सकता है। तब एक दलभक्त न बहा, अब गम पिचडी मिन तब ग्रामी खान की क्या उम्मीद है। मैं निराश

होकर लौट पड़ा। पर चुप होकर बैठ न सका। यहाँ वहाँ जाकर शराब के ठका का विरोध किया। उन दिनों मंगलूर में बीच-बीच में लाठीचाज हुआ करता था। उस लाठीचाज में सीधे सादे बलमावर के मुकुन्द राव भी मार खा गये। जब मैं उन्हें देखने गया तो मैंने उनसे कहा, "इस तरह जेल के बदले कहीं और जाकर आन्दोलन को आगे बढ़ाएँ तो बसा रहें?" उन्हें यह बात पसन्द आयी। उन्हें पुलिस की आँख से बचाकर मोटर में बिठाकर कोडग की सीमा पार कराया। आगे उस आन्दोलन में मैंने अप्रत्यक्ष रूप से भी भाग नहीं लिया। मैं अपना अलग ही रास्ता खोजने लगा। सिर्फ जेल भरने की बात मुझे अच्छी नहीं लगी।

शान्ति शिविर

पुनरुत्थान के पहले वर्ष मैंने साक्षात् कि कुछ लड़कों को समाज सेवा का प्रशिक्षण देकर तैयार करना चाहिए। गर्मियों की छुट्टियाँ में एक मास के लिए शान्ति शिविर नाम से एक शिविर पाँच छ वर्ष तक चलाया। रामन नम्बियार और शिवराय की सहायता से वह सम्भव हो सका। उस समय गाँव में जाकर एक जगह ठहरना और आस पास के गाँवों की स्थिति का अध्ययन करना, ग्रामवासियों और शिविरवालों को कुछ शिक्षण देना हमारा उद्देश्य था। तब भी गाँधी का जीवनदर्शन ही मेरे दिमाग में भरा था। हमारे शिविर का कार्यक्रम कुछ इस प्रकार था—सुबह चार बजे उठकर सावरमती के आश्रम के समान ही हम एक घण्टा प्रायश्चित्त करत, बाद में व्यायाम होता पश्चात् शिविरवालों नाश्ता करके, कुशल और सब्जियाँ आदि लेकर कुएँ आदि साफ करने जाते। कुछ लोग बोर होकर पाखाने भी तैयार करते। साँझ तक वही काम रहता। दोपहर को किसी-न-किसी विषय पर प्रवचन हुआ करता। साँझ को ग्रामवासियों के मनोरंजन के कार्यक्रमों-कोई कार्यक्रम और भोजन हुआ करता। ठीक सूर्यास्त के समय भोजन और बाद में प्रायश्चित्त होती। इस प्रकार का कार्यक्रम प्रतिदिन ही हुआ करता था। भोजन आदि भी गाँधीजी की पद्धति पर हुआ करता था। बहुत से अध्यापक शिवराय की नज़र में चढ़ने की खातिर हमारे शिविर में आने और अनुमति देना मरी ही हुई पीडा सहन करत।

मास्त्रुतिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर बाहर के लोगों से हम भोजन कराने थे। जब कोई न मिलता तो वह काम भी मुझे ही सम्भालना पड़ता। सेवा-दल के एक निरक्षर हमारे शिविर में आते थे और शिविर निवासी और गाँव के लड़कों का लाठी चलाना, लेजिम, जिमनायम आदि सिखाया करत थे।

हमारे भोजन और प्रायश्चित्त के समय थकान या निद्रा से जाग्राई लनेवाले निरक्षर निवासी भी हात थे। शिविर का भोजन पसन्द न आने के कारण चोरी

चोरी होटल में भोजन करने आनेवाले शिविर निवासी भी थे। अपने भाप स्वीकार किये नियमाओं तोड़नेवाले व्यक्तियों पर मुझे बहुत गुस्सा आता था। पर क्या किया जा सकता था। लेकिन इस बात की तसल्ली थी कि आनेवाले पात्रों की संख्या में चार छत्ता श्रद्धा से भाग लेंगे हैं। गुरुवायनवेर के शिविर (1931) के समय उस गाँव में हमने दो पाखाने तैयार किये। एक बाजार भी बनाया। पुत्र के शक्ति गुहू ग्राम में हम लोगो ने दस दिन रहकर वहाँ के आर्थिक जीवन का अध्ययन किया। जब शकर नारायण गाँव में ठहरे तब उस गाँव का तालाब का हम लोगो ने साफ किया। गाँव के लोग उमर बढ़ी उदासीनता से देखते रहते। हम लोग भले ही उनके घर भी साफ करते तो भी वे उदासीन ही बन रहने वाले लोग थे।

जल की पूर्ति

बेल्तारी के शिविर के समय हम एक विषय अनुभव हुआ। उस वक़्त मैं पुत्र तानुव का काफी सम्बन्ध दौरा किया था। तालुके की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना मेरा मुख्य उद्देश्य था। गाँव का होल्य (अछूत) लोगो के घर देखे थे। वहाँ एक भी घर को ठीक से पीने का पानी नहीं मिल रहा था। गले और छोटे छोटे पोखरा जहाँ गड्डे से जा पानी मिलता उसी से बर्छा को शौचान और पीने के लिए भी प्रयोग में लाते थे। यह देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ। शौच-लोग पीट की गहराई में पानी मिल जाने की सम्भावना होना पर भी वे कुआँ खाने का कामसे में नहीं पटना चाहते थे। इस लोगो को पसंद देकर कुआँ खुदवाने का प्रयास किया। पर उनकी उदासीनता आठ आधी। एक-दो गाँवों में जब ऐसा प्रयास किया तो उनके मालिकों ने उनको "तुम लोगो को भी कुआँ चाहिए।" कहकर मजबूत उदासी, जिससे चलता काम भी बन्द हो गया। हम लोग गाँव घूम लकिन एक में भी कुआँ न खुदवा सके।

जहाँ विदवासे पैदा न हो

एक निराशा के समय के लिए बेल्तारे के शक्ति शिविर के समय, उस गाँव के अछूतों की बस्ती में हम लोगो ने स्वयं कुआँ खाने का सबल किया। कुआँ खाने को हम जो मजबूत, कुशल आदि बर्छा खाने के काम लगे थे। उनका कहना था बाहर के लोग हमारे लिए कुआँ नहीं, बरिच बनाए लिए गड्डा खाद रहे हैं। जहाँ-जहाँ कुआँ में पानी के खाने हुए। पर आश्चर्य कि उस वक़्त के लोग उमर नए कुएँ के काम ही नहीं करते, हमारे परोपकार के काम के प्रति अपनी अविश्वास और भय था गाँव के लोगों में। शायद जीवन में एक-दुसरे को लड़ने में बालन का प्रयास प्रायः अविश्वस्यता था। इसलिए मजबूत की

ईमानदारी में उनका आपस का विश्वास उठ गया था ।

एक बार मैं नये प्रकार की खाद उपयोग में लाने का प्रचार करते समय पुत्तूर गाव में लैम्प की रोशनी में भाषण दे रहा था । गाव के मुखिया शिवराय वहाँ पधारे थे । मेरे उस भाषण सुनने के बाद एक गाँववाले की कही बात अभी तक याद है । उसने कहा था, ' इसमें शिवराय जी और इनका कुछ लाभ होगा, इनकी खाद की कम्पनी की एजेंसी होगी । ' शिवराय जी ने अपने जीवन के लगभग पैंतीस वर्ष पुत्तूर की सेवा में लगा दिये थे । जब उनके बारे में लोग ऐसी बात कह सकते थे तो मैं तो नया था, मेरी क्या गिनती ? अथवा ग्रामसुधार करने के लिए गाँव में जानेवाला का काम शायद ऐसे ही चलता होगा । 'गाँवों का उद्धार करो' आदि बड़ी-बड़ी बातें कहनेवाले प्रायः बड़ी लोग हैं जिन्होंने गाव देखे ही नहीं और केवल माटर-कारा में धूमा करते हैं । उन्हें हम कैसे बतायें कि लोगों का विश्वास जीतने के लिए ही गाव में काम हो सकता है । और ऐसे विश्वास जीतने में ही हमारी जिंदागी बीत जाती है । गाँव के झगड़ों में न फसकर, उनके साथ कुछ दिन रहकर, उन्हें आश्वस्त कर दें कि हमारा भागदशन उपयोगी है तभी ग्रामोद्धार की बात साध्य हो सकती है ।

पर्वत प्रवास

शांति शिविर के समय हम करीब करीब दस दिन प्रवास में ही बाटा करते थे । एक बार, अभावस्थ बल गाँव से चलकर जंगल लाँघकर, थक थकाकर कुटुम्बिका पर्वत पर चढ़े । वहाँ से पदल ही सागर, इक्केरी, जोग गेरसोप्पा और बटवल भी गये । इस यात्रा की कठिनता और प्रकृति का सौन्दर्य चिरस्मरणीय हैं । शिविर के शुरू में हमारे साथ लगभग बीस लोग थे, पर अन्त में दस ही रह गये थे ।

और एक बार हम 'गुहवायनकेरे से कुदरमुख' पर्वत की चोटी पर गये । हमारे साथ वाटर से भाषण करने को बुलाये गये एक-दो सज्जन भी थे । रामकृष्ण मठ के प्रियनाथ महाराज (दिवंगत स्वामी अलक्षय चतुर्थ) आदि भी साथ थे । वहाँ पहुँचने का रास्ता तीस मील था । तीस मील आना तीस मील जाना, उसमें उनीस मील तो चढ़ाई ही थी । उस तीन चार दिन की यात्रा में प्रकृति के प्रकोप का सब रूप हमने देख लिये । हम पहाड़ की चोटी पर चढ़े आधा घण्टा भी नहीं बीता होगा कि अघट्ट शुरू हो गया । साथ में बादल गरजन और बिजली चमकने लगी । हवा के साथ तीपी सर्दों । गाँव लौटते समय हवा के तेज झकोरा से पेड़ों के तने और टहनियाँ टूट टूटकर गिर रही थी । इस हालत में उनीस मील भागकर ही पार करन पड़े । आगे के नौ मील तो वर्षा में भीगते हुए ही पार हुए । प्रकृति जब इस प्रकार पागल हो उठती है तो हमारे भीतर डर तो होगा ही पर ऐसे दृश्य मन

पर निश्चित ही विशेष छाप छोड़ जात हैं।

इसी प्रकार एक बार हमें कुमार पवत पर चढ़ना पड़ा था। एक बार और हम साग पैदल हलविड़ बलूर होकर आए। इस प्रकार यह शिविर हमन चार-पाँच वर्ष तक चलाया। शिविर के इन अवसरों पर भाषण करने आये अनक लोगो स हमारी मित्रता हो गयी। उनमें प्रियनाथ महाराज का व्यक्तिगत्य भुलाया नहीं जा सकता। कोई भी ऐसा काम न था जो उन्होंने हमारे साथ नहीं किया था। हमारे साथ पाखान व गड्ढे खो, भगी का काम किया, सबल और कुदाल भी उठाये, गव कामा में व अगुआ रहे। सन् 1908 में बंगाल के विभाजन के समय व टेरिस्ट दल के सम्बन्ध थे। उनके शरीर पर गोलिया के दाग भी मौजूद थे। उन्हें सुदरवा में बंदी बनाया गया था। सरकार से आँख बचाकर उहान नेपाल के जंगल में कुछ समय बिताया था। उनका उस्ताह और उनकी काय पटुता का क्या कहना! उनके लिए काम ही भगवान था। शान्ति शिविर ने भल ही मुझे कुछ न दिया हो पर एस लोगो की मित्रता पान का सौभाग्य अवश्य दिया। अपन और दूसरों के स्वभाव की गहराई और छिछलापन मुझे ऐस अवसरों पर ममशन का अवसर मिला। याद में धीरे धीरे हमारा शिविर छुट्टियाँ बाटने के सरल उपाय खाजनवाले सहकों से भर गया। इसमें अनुशासन का पालन न हो सका। अतः, शिविर को आगे चलाये रखने का मन न होने से उसे बंद कर देना पड़ा।

कुदापुर के शान्ति शिविर ने समय ही, मैंने 'देयदूत' उपन्यास लिखना आरम्भ किया था। बेल्गार के शान्ति शिविर के समय गभगुडी और 'रक्त काणिके' नाटक लिखकर उनका अभिनय कराया। 'बोडियाने' नाम का नाट्यरूपक बल्गार में ही लिखा और अभिनीत भी कराया।

घोर दरिद्रता

मुझे लगा कि 'शान्तिगुडु' के शिविर में घामा के बार में किसे अध्ययन का और आन बढ़ाना चाहिए। प्रामोदर चाहनवाला व्यक्ति यदि गाँवा का मुख्य दुग्ध न जान तो वह काम करना भला कैसे सम्भव होगा! इस प्रयाजन से एक सम्भव प्रयोग का कार्यक्रम बनाया। उसके लिए शिवराय जी की प्रेरणा और सहयोग दाना मिले। हम दोनों न मिलकर एक प्रश्नावलि तयार करने का विचार किया। सोना से किम किम विषय से सम्बन्धित अक्षरों इकट्ठा करना चाहिए। यन्त्रो-वाह्य, मनोरंजन, सहायक वृत्ति विद्या अध्याय आदिक विषय, स्वास्व— इन सबके बारे में प्रश्नावली तयार करके कुछ गाँवा के इमन का निश्चय किया। हमने निश्चय किया कि एक-एक गाँव में तीन-तीन दिन टहरकर प्रश्न गाँव में पाँच भूनासिक पाँच बटाईदार, पाँच मजदूर अथवा पाँच अन्य पेशवाला में प्रश्न

पूछे जाय। करीब चार मास के प्रवास म पुत्तूर जिले के ततीस गाँवो का भ्रमण करके यह काय पूरा किया। मेरे साथ नाटक खेनने के लिए पाँच छ लडके भा थ। पर्दे, बतियाँ आदि सारा सामान सिर पर उठाये पैदल चलकर यह काय बहन करना होता था। इस प्रवास के दौरान गाँव के जिस किसी व्यक्ति को साथ लेकर घर घर भटकता फिरा। इतना सब होते हुए भी लोगो से पूछताछ करके उनसे उत्तर लना कठिन था। बहुत स लोगो को अपनी आमदनी और खर्च का पता ही नहीं था। उह तो आम व्यय जैसी चीज मालूम ही नहीं थी। जिह पता था व छिपाना चाहते थ। बहुत से लोगो के घरों म खाने को नहीं होता तो भूखे हा रह जात हैं जब होता है तभी खाते है। ऐसे लोग भला क्या हिसाब बतात ?

जसे लोग वैसे ढोर

हमने हर जाति के घरा के भीतर जाकर देखा। हरिजन, मुसलमान ब्राह्मण सभी के जीवन को निकट से देखने का अवसर मिला। हमारे प्रयत्न से गाँववाला को लाभ हुआ कि नहीं, पर हमारी आँखें अवश्य खुल गयी। वह सन 1933 का वष था। लाग आर्थिक मंदी के कारण बहुत दुखी थे। निधनता का कोई ठिकाना न था। पुत्तूर तालुक म एक व्यक्ति की औसत आमदनी छत्तीस रुपये वार्षिक मात्र थी और बज रुपये मे पैसठ पैस। गाव म तो आमदनी अटठा इस रुपये वार्षिक तक पहुँच गयी थी और बज एक-सौ पच्चीस प्रतिशत था। खेतीवाड़ी के द्वार म बहने को कुछ था ही नहीं। दस बीस लोगो के खेतों मे पानी की नातिर्या प्राय मिट्टी से भरी रहती थी जिसस खेती के काम म अटचन पन्न होनी थी। ढोरा की स्थिति को तो अत्यन्त शोचनीय थी। चार के अभाव और जगली जानवरो क उत्पात से खरीये हुए पशु भा मर जात। उनके पालन पोषण की स्थिति भी उतनी ही निवृष्ट थी। दुधारू पशुओ का औसत दूध उत्पादन एक दिन मे एक आस से भी कम पडता था। ऐसी हालत म लाग भला कर्म जीते हागे। दूध का उपयोग दवा के रूप म होता था। वह भी कितन से घरा म। मासाहारी लोग तो मुर्गे आदि पाल लेत थे पर उनस उह विशेष लाभ नहीं मिल पाता था। उनका उपयोग व प्राय भून या भानत के लिए करले थे।

भाग्यवादी

लोगो का स्वास्थ्य बहुत ही दयनीय था। मृत्यु की दर का कोई अन्दाज नहीं था। अधिकतर लोग मलेरिया के शिकार होते। अछूता से यदि पूछा जाता कि अमुक कैसे मर गया तो व यह नभी कहने थे कि बीमारी से मर गया। व तो यही कहन थ कि भूत के प्रकोप स मरा। इस तरह अत्यन्त शोचनीय था उनका जीवन। एक सन्तोष की बात यह थी कि कई दूसरी जातिया के घरा की अपना इनक घर

साफ-सुपरे थे। साधारणतः लोगो के हुए खेतों के पास होते हैं। वसाग साफ पानी की आवश्यकता समझते ही नहीं थे। उनमें खेती क्या होती है यह उन्हें मालूम ही नहीं था। कुछ किसान उबरक और चली आदि का खाद इस्तेमाल करने अच्छी फसल उगा लेते थे। पर यदि उनमें पड़ोस के खेतवालों से पूछा जाय कि आप वैसा क्यों नहीं करते तो उत्तर मिलता, 'यह तो भाग्य की बात है। हमारे भाग्य में वहाँ?' यह बात ध्यान में रख कर हमने 'त्यापणान ह्ययं वरुण (त्यापणान का भाग्य) नामक नाटक रखा। वह नाटक देखने के बाद लोग न पूछा, 'क्या यह सच है?'

मेरा यह ग्रामीण स्थिति का अध्ययन सन् 1933 में हुआ। आज स्वास्थ्य आदि की स्थिति बसी नहीं है। युद्ध के बाद मलेरिया के प्रकोप से बचने के लिए ६०० डी० टी० जैसी कृमिनाशक दवाओं का प्रयोग सब जगह बढ़ गया है। इसी लिए पुस्तक जो सदा, 'बीमारी का घर' नाम से बजता था वह अब बीमारी में मुपन हो चुका है। कहना चाहिए कि यह एक बड़ी सफलता है।

एक जगह मैं एक अछूत के घर गया था। वहाँ एक बूढ़ा बठा था। उसमें तीन चार बेटे पास खाने गये थे। मरे यह पूछने पर कि बल उठाने क्या खाया था, उसने उत्तर दिया, 'कुछ नहीं।' आज क्या करोगे? पूछने पर उत्तर मिला 'मालिक के घर पास पहुँचाने के बाद यदि धान मिला तो उसका भाग बनाकर खा लेंगे।' ऐसी लोग तो यदि यह पूछा जाता कि तुम्हारी रोज की आमना क्या है तो उत्तर मिलता 'जो मिल जाय।' कुछ जगहों पर उनसे बात करने की गलती से दुखी होकर मैं ही चावल आदि खरीदकर उन लोगों के पास भेज दूँ।

गाँव में हमारे पशुवालों की यही दशा थी। चाहे कुम्हार हो चूँ या बौद्ध गार्डवान। सब बड़ी कठिनाई से जीविका पाने रहे थे। यदि किसी के पास थोड़ी बहुत गतीबाड़ी या पेगा होता था, वह जिस किसी प्रकार से जीवता था। उरी जानि के लोग मजदूरी पर नहीं निकलते, अवकाश का समय यही बिता देते थे। गरीबी का कुछ दिन दोनाम से कोई-न-काई गिर पर गवार ही रहा। बार बार तो दाना से उनको जान नहीं छूटती थी।

आलसी वीर

मुहल्लय के गाँव कुछ दारुणा के घर गया था। उन्होंने अपने घरों में लार केने के पीछे भी नहीं उगा रगे थे। सबकी बमरा नहीं लगा रगी थी। जब मठ में मुक्त में गाँव मिने तो ऐसी जदता आ ही जाती है। उनी गाँव में मजदूरियों के परा में भा गया था, उन्होंने अपना घरों के लिए बाढ़ खुद बनकर बना कर रखा सगा रगा थी। एक और सबकी-सबकी पतिवारी भी बा रगी थी। दिन पूरा उनमें आर लाग बना करन है। बसोकि उनको अपनी-बिका गिबार रगी है। उपा का

ली हैं पर पता नहीं उसका क्या करना चाहिए। मालिक के घर दे द्ये।” उनका यही उत्तर था। स्वयं न खाने पर भी आलसी न बनकर दूमरा के लिए सब्जी बानेवाले मलेकुडिय एक ओर थे और यूसू ही समय बरबाद करनेवाले ब्राह्मण दूमरी ओर। एक बार मैं कोडग ग्राम गया। वहाँ ब्राह्मण का केवल एक ही घर था। उन्होंने भी कोई सब्जी आदि नहीं लगा रखी थी। मुझे लगा कि हाथ के पान पानी हाने पर भी शरीर झुकाकर श्रम न करनेवाले आलसीवीर थे वे।

लतें

मैं न यह भी अध्ययन किया कि ये लोग अपना अवकाश कैसे बिताते हैं और उनका व्यसन क्या-क्या है। ब्राह्मणोंतर वग म शराब और तम्बाकू की लत थी। उंची जानियो म तम्बाकू क विविध प्रकार से उपयोग करने की लत रही आयी। अछूतों की बात क्या कहूँ वे तो लकड़ी बेचकर चावल खरीदने के बदले, लकड़ी शराब की दुकान म डालकर उसी से शराब पीकर लौटते थे।

प्रचार

हम प्रत्येक गाँव म दो नाटक खेलते थे। हमारा नाटक देखने के लिए चटारि साय लकर लोग आधी रात तक बठे रहते थे। हमारे एकाकी नाटक के समाप्त होने का भला कितना समय चाहिए था? वह देखने के बाद निराशा से ‘बस इतना म का देखने के लिए आना था क्या?’ कह उठते। नाटक शुरू करने से पहले मैं भाषण देता था। मैजिक लालटेन की सहायता से मैं उन लत खती के बारे म बताता था। उसी के साथ मैं अपने देश की सम्पत्ति और उन लत देशों की सम्पत्ति की तुलना करके उन्हें समझाता था। दूसरे दिन स्वास्थ्य के बारे म बतलाता। तीमर जिन उस गाँव के अध्ययन से जो निष्कल्प निकलता उसकी चर्चा करता। इन सभी शिवरो म थी शिवराय जी एक-न एक दिन आकर अवश्य भाग लेते थे।

अवकाश

हमारे ये लोग अपना अवकाश कैसे बिताते हैं इसका उत्तर एक ही वाक्य म यह है— एकदम आलस्य म। एकाध जगह कुछ लोग मक्षगान खेलते। कुछेक मुग्गे बाजो, भसादोड म समय काटते। दूसरे मनोरजन बहुत कम हैं बल्वि एकदम मट्टा क बहना चाहिए। साधारणत हरिजनो म रोज डोल बजाकर गान और नाचने की आत्त है। खान-पहनन को न होन पर भी व अपना अवकाश खुशी-खुशी बिता लते हैं। यह उनका संस्कार है सम्पत्ति नहीं।

विकराल समस्याएँ

इस प्रवास से मैं यह अनुभव किया कि 'पुत्र तालुक' में जो समस्याएँ हैं वह दूसरे तालुकों में भी पर्याप्त मात्रा में हैं। लगा कि अज्ञान, गरीबी, आलस्य, अश्रद्धा का कारण हम इस स्थिति तक पहुँचे हैं। इसलिए उसका इलाज भी प्रयत्न की पहुँच से परे हो चुका है। स्वास्थ्य का प्रश्न भी ऐसा ही है शिखा का प्रश्न भी ऐसा ही है, गरीबी का प्रश्न भी ऐसा ही है। कौन-सा प्रश्न सरल है और कौन-सा कठिन है यह विस्तार से बताना मुश्किल है। ज्यादा से ज्यादा हम जैसे लोग गाँव जाकर गला सुपा सकते हैं। कोई कारगर सुधार करना हो तो सरकार को ही चेतना चाहिए। गाँवों की समस्याओं में परिचित लोगों को चाहिए कि वे सरकार को बताएँ। लगता है कि आलस्य को भगाने के लिए पाबुल सखर छोड़े होनेवालों की आवश्यकता है।

इस प्रवास के फलस्वरूप ही मेरा 'बोमनदुडी' (बोमा) उपवास लिखा गया। इस प्रवास से मेरी आँखें खुल गयीं। उसमें मैं कई बातें सीधी। बिना दिव के घर और बिना भाग के चले देखने का मौका मिला। तब ऐसा लगा कि मैं ही स्वराज्य आ जाय पर इन लोगों का जीवन सुधरने में मुग बीत जाएंगे।

वार्षिक योजना

इनना सब देखने के बाद कुछ करना चाहिए ऐसी इच्छा पैदा नहीं होगी? यह जानन हुए भी कि सारे प्रयत्न व्यर्थ हैं, कुछ कर गुजरने की इच्छा हुई। उहाँ 'मैं, मास्को हैज ए प्लान' नामक रचना पढ़ी थी। मा निधराय जो को सूचित किया कि भले ही पंचवर्षीय योजना न गही, पर एक वर्ष की योजना बना न बनायी जाय। उन्होंने कहा, 'अच्छी बात है करो।' मैं अपनी कल्पना के अनुसार छ मास तक सात ग्राम क्षेत्रों में घूम प्रचार करने की योजना बनायी। सांगा में विभिन्न प्रकार की रचियाँ जापत करने के लिए सीम विषयों पर भाषण मासा की तयारी की। विश्वशिक्षा का जन जीवन, प्रवास, उद्योग, श्रृष्टि, पशुपालन, मुर्गीपालन पत्र सरलण ऐम ही रोचक विषयों की सूची तयार की। कई जगह जाकर उनका लिए आवश्यक विषय और चित्र आदि संग्रह कर साया। मद्रिब सभ्य के आवश्यक चित्र भी मैं बनाये फोटो आदि गीचें। पुगूर तालुक के गात हडार गलिमटरी स्कूला का भाषण कक्षा के रूप में चुना। निधरायका पर वहाँ के अध्यापका को अछण्ट विश्वास था। ये जो भी कहन अध्यापक करा को तयार हा जात। इसलिए उत प्रचार की जिम्मेदारी वहाँ के अध्यापक उदान का तयार हो गये। एक भाषण और एक चित्रमाता का प्रदान एक मामवार को एक गाँव में होता तो दूसरे सोमवार को दूसरे गाँव में, तृतीये अक्षरका की। माय ही

हमने यह भी निर्णय किया कि भाषण के साथ एक नाटक हरिकथा या यज्ञगान आदि का प्रदर्शन या मनोरंजन का प्रबंध भी रहे। और यह भी प्रबंध हुआ कि प्रत्येक केन्द्र में वर्षा ऋतु में निश्चित मछियाँ में फला के पेड़ लगाने चाहिए और उसके लिए बडिया बीज भी लाने चाहिए। इस अंतिम काम में कृषि विभाग से सहायता भी मिली। सभी स्कूलों में हम ही मैजिक लैंप की व्यवस्था करत थे।

हमारा प्रचार तो चला। फला के पौधे तथा बीज भी दिलवाये। पर उसका पसा बसूल करना मुश्किल हो गया। अध्यापकों की सहायता से प्रचार काय जोरो से चला। शुरू शुरू में भाषण सुनने को बहुत जनता आयी, बाद में लोग का आना कम हो गया। स्कूल के बच्चों के सामने ही भाषण देने पड़े। इसलिए आपको भी लग रहा होगा कि हमारा भाषण का कार्यक्रम शीघ्र समाप्त हो गया।

चलचित्र से प्रचार

मैंने सुना था कि रूस में चलचित्रों की सहायता से जनता में महान् जागृति पैदा हुई है। प्रथम महायुद्ध के समय रूसी गाँव के लोग हमारे देश के गाँववालों की तरह आलसी अनामी और गरीब थे। वहाँ सिनेमा के द्वारा शिक्षा और मनोरंजन दोनों साथ साथ दिये गये। लोग बच्चों के नाटक और मैजिक लैंप से प्रभावित होकर अधिक दिन तक नहीं आयेगे, इसलिए मैंने सोचा यह काम चलचित्र द्वारा क्या न किया जाय। मेरे मित्र एम आचार्य तब बर्लिन में थे। उनमें कहकर रूस की शिक्षा सम्बन्धी बहुत सी सामग्री मँगवायी। रूस की चित्र निर्माण सम्बन्धी पुस्तकें भी मंगाकर पढ़ी। प्रसिद्ध सिने निर्देशक पुडाविक की फिल्म टेक्नीक की पुस्तक पढ़ी। एस-मस्टिन की चित्र निर्माण रीति किताब भी पढ़ी। मुझे भी उस ओर जान की इच्छा थी। पैसे की किल्लत पदा नहीं हुई। साथ ही, मुझे लगा कि व्यावसायिक चित्रों से जो लाभ मिलेगा उससे हमारे प्रचार सम्बन्धी चित्र भी तयार हो सकत हैं। मैंने शिवराय से अपनी पगली कल्पना की चर्चा की। उन्होंने कहा 'ठीक है, आगे बढ़ो।' तब मेरी आयु केवल तीस वर्ष की थी। चित्र तयार किया गया।

चलचित्र का निर्माण

काम करके सिने कमेरा खरीना। मैं फोटोग्राफी जानता था। इसलिए सिनेमा के चित्र बनाने में कठिनाई नहीं हुई। आवश्यक सामग्री जुटाकर अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी अपनी लिखी कहानी डामिया पर सीनरिया तयार की। फ़िल्म मगवायी। मैंने अपने मित्रों से अभिनय कराया और फ़िल्म तयार की। उस फ़िल्म

को गाँव में ही धोकर मुद्रण के लिए बम्बई भेजा, प्रिंट देखने पर डर-सा लगा। फोने ता ठीक ही खिंचे थे। हमारा गाँव की हवा के कारण उसे धोने समय फ़िल्म में धूल के कण लग जाने से चित्र दिखाते समय तितलियाँ-सी उड़ती दिखायी देती थी। दुबारा से वही चित्र धीचकर बम्बई भेजन पड़े। वही से उस प्रिंट कराकर जाकर लाया। बाद में व्यावसायिक चित्र तैयार करने के लिए एक स्टूडियो बनाया और आठ अंका का एक और चित्र तैयार किया। उस की बात में बाद में लिखूंगा।

इससे पहले खींचे गये चित्रों के धराब होने के कारण दुख हुआ। भाग में एम। न. हो, सोचकर बम्बई गया। बाइंग कम्पनी के मनेजर चकर और चित्रशाखा के मनेजर सेन जिनियन मुझे सहायता दी। उनकी सहायता से मैंने फिल्म प्रोसेसिंग सोखने का निश्चय किया। परल की स्टेण्डर्ड सेबोरेट्री में जाकर वहाँ कुछ दिन रहा और आवश्यक जानकारी प्राप्त की।

खींचे गये चित्रों को दिखाने के लिए एक प्रोजेक्टर चाहिए था। शिवरायजी ने जिला बोर्ड से कहा। जिलाबोर्ड के अध्यक्ष ने आवश्यक सामान खरीदने के लिए एक हजार रुपये की स्वीकृति दी। केवल एक हजार रुपये से उतने लिए आवश्यक साधन, इंजन और प्रोजेक्टर तीनों खरीदना बाँटन था। केवल एक नये प्रोजेक्टर की कीमत एक हजार थी। अतः मैं किसी से दोस्ती करके एक अमीर धनिक के कमरे पर एक प्रोजेक्टर खरीता। बाकी उपकरण भी जुटाए। अब चित्र प्रदर्शन का काम ही बाकी रह गया था।

चित्र-देहन

बल्लनगढ़ी में 'मक्कल कूट' (बच्चों की मञ्चा) नाम से एक सम्मेलन किया। तब मैंने माना कि उह मेरा पहला तैयार किया गया चित्र दिखाया जाय। उगरे लिए जिलाबोर्ड का प्रोजेक्टर मँगाने उसमें अपना चित्र भरवा। तबिन बम्बई में सात मसय वह चित्र धरा धराब हो गया था उस इमलिन दिखाया नहीं जा सका।

उसके साथ ही, एक और अनप हो गया। मरा एक चित्र मञ्चा के मसय पेट्रामञ्च जसा रहा था। उसमें पाम ही फिल्म के रिस्के पड़े थे। उधार में ला गयी फिल्म के रिस्के भी वही थे। पेट्रामञ्च की सपट ने उन्हें छू लिया और कमरे में भाग लग गयी। कमरे के सामने एक बड़ा छत्तर पटा हुआ था। भाग देकर मैं गिटकी से भीतर हुआ। हाथ लग फिल्म के रिस्के बाहर पड़े। छत्तर ऊँची पान में मसान बच गया। फिल्म के रिस्के बाहर पड़े दन से भाग भा हुआ गयी। अतः मैं जो रिस्के बच उठी मैं सुख होता पडा। पर द्वारा निर्मित चित्र ही भाग में लाया

हुए थे। उधार की फिल्म अगर जल जाती तो पता नहीं मुझे कितना दण्ड भुगतना पड़ता। आग लगने से न जाने कितना नुकसान हुआ होता। खर, लगता था कोई शक्ति मुझे हर बात में रोकना चाहती थी लेकिन उस साहस को आगे बढ़ाने की जिद्द मुझे भी थी। एक व्यावसायिक चित्र तैयार करके उस हाति को पूरा कर पाऊंगा यह एक झूठा साहस मुझ में समा गया था। उसकी निष्पत्त कहानी फिर कभी बताऊंगा।

शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग

पुतूर म मोलहल्लि शिवरायजी गाँव के स्कूल के बारे मे बहुत अभिन्वि सेत थ । अध्यापका को प्रोत्साहित करने और केवल 'स्कूल की लिखा पढ़ी म ही शिधा समाप्त नही हो जानी चाहिए' कह कर, उसके साथ कई तरह के कायक्रम चलाने की प्रेरणा देत । स्काउट से लेकर लाठी चलाना, सेक्षिम जैत व्यायाम कोई मासिक त्योहार, हस्तलिपित पत्रिका, बच्चो का सप्तवारी सभ, याल मभा आदि कायक्रम के प्रति आसक्ति पैदा करते । मैंन कितनी ही बार उनक साथ स्कूलों मे जाकर यह सब देखा था । एक बार उहान पुतूर म अध्यापका का सम्मेलन कराया था । उनकी आर से मैं भगूर के शिधा विभाग के डाइरेक्टर एन० एम० गुठाराय को अध्यक्ष पद के लिए आमन्त्रित करन गया था । गुठाराय आवे । जिस सम्मेलन म शिवरायजी का हाथ होता था उसमे गडबडी क लिए कोई अवकाश ही नहीं होता था । धान-पीन, और सभाभा की धय धय बसाए भी मुचारू रूप से चलतीं । थ बडे व्यवहार-कुशल थे । किसी भी बजार की बात को मोका नही देत थे । जितना काम उतनी बात । जुवान की ग्रन्थी मिटानेवाला के लिए वहाँ जगह ही नहीं थी । उस सभा को देखकर मर मन म दयाल थाया कि एक बात सम्मेलन क्यों न बुलाया जाय । यह बात मैंन शिवराय ओत कही । उहानि तुरत स्वीकृति द ही । हम दोनों जानन थ कि बच्चा क कायक्रम म प्रस्ताव और मसौदे आदि की उकरन नहीं । हमनिग उहान मुस म यह योजना बनाने की कहा कि यह आयोजन बंग चलाना होना । आयोजन वाली बच्ची की सभा होनी चाहिए, पर एक मस की तरह ही होनी चाहिए । हमारा भी यही विचार था । उसकी भूमिका के रूप म मैंने कुछेक प्रयोग भी किए ।

नियम निति

हम साथ की भूमिका के रूप मे १) कुछ नियों म गया और वहाँ बच्चा को इकट्ठा करके कुछ प्रयोग किए । मैंने यह परीक्षण करन दया कि उन्हें मोकनीन आदि बात है कि नही अथवा कोई बिनादि बना सकत है या नहीं । स्वयं म का

चित्रादि बनाना सिखाया जाता था मुझे उनकी आवश्यकता न थी। मैं चाहता था कि बच्चों को आस पास के वतावरण में मिलनेवाले फूल पत्ते मिट्टी आदि का विषय बनाकर चित्र बनाना सीखें। एक जगह मैंने बच्चों से पूछा, 'यह बताओ, तुम्हारे गांव में कितने प्रकार की मिट्टी है?' एक अध्यापक का कहना था कि पाँच छ रण ही नकन है। पर एक लड़का दोपहर को स्कूल आते समय उसी रंग की मिट्टी ला आया था। पता नहीं उस लड़के को उस मिट्टी से कितना मोह था और उसमें वह कितना खेल चुका था। इन प्राकृतिक वस्तुओं से बच्चों ने धरती पर रंगोली बनायी पशु-पक्षियों के चित्र भी बनाकर दिखाये। कुछ ही समय में एस कुछ प्रयागों का फलस्वरूप बाल सभा का कार्यक्रम तैयार हो सका। जिले के सात आठ हायर एलिमेंटरी स्कूलों में से दस दस बच्चों का चुनाव कर एक सप्ताह एक साथ रखकर उनकी सृजनात्मक अभिरचि का अध्ययन करने का यत्न किया। एकत्र छोटे बच्चे सम्भालना मुश्किल होने से लगभग बारह से सोलह वर्ष के बच्चों का ही प्रतिनिधि चुना।

व्यवस्था

हमारी पहली बाल सभा (मकलकूट) नदी किनारे के उष्णिनागड़ी नामक एक ग्राम में सन् 1930 में हुई। उसमें लगभग साठ बच्चे आये थे। उनके साथ प्रत्येक स्कूल से एक अध्यापक और कुछ प्रेक्षक भी आये थे। इतने लोगों के भोजन का प्रबंध करना था। वहाँ आनेवाले कुछ अध्यापकों को शिक्षा का नया पद्धति बनाने के लिए भी कुछ लोगों की बुलाया गया था। पैसे की व्यवस्था के लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। वह सब शिवराय जी के जिम्मे था। एक सप्ताह पहले हम दोनों उष्णिनागड़ी गये। शिवरायजी ने भी अपनी जान-पहचान के आठ दस आश्रमियों को बुला लिया। आपको इतने पैसे देने हैं, इतना चावल दना है—यह कहकर ताकीद की गयी। उनके प्रभाव से सब कुछ जमा हो गया। वहाँ के स्थानीय अध्यापकों का बुलाकर और कामों की व्यवस्था सम्भलवायी। अध्यापकों को मिलकर एक छप्पर तैयार कर दिया। लगर चलाया। आनेवालों को भोजन कराया। सो० पी० सो० बस कम्पनीवाले रियायती दर पर बच्चों को उनके गाँव में उष्णिनागड़ी लेकर आये और छोड़कर भी आये। मुझ पर बच्चों के कार्यक्रम की जिम्मेदारी थी जो कोई मुश्किल काम न था।

मुक्त शक्तिर्षा

शिविर के दिनों में हम सुबह दो घण्टे और शाम को दो घण्टे बच्चों को इकट्ठा करने थे। वहाँ रहने समय शांत रहना पूणत अनिवार्य है प्रतिबन्ध हमने बना लगाया। ऊँ जान पर बाहर जाने की छूट थी। इसी कारण सभा में शांति रहती। एक दिन सुबह कुछ बच्चों ने अपनी अपनी भाषा में कहानियाँ सुनायीं। और एक बार साकगीत गाये। फिर एक बार अपने-अपने

बनाये गीत मुनाये वैंम ही उहनि अपना नाच भी दिखाया । आगु नाटक छले । इतिहास से सम्बन्धित नाटक भी छले । चित्र भी बनाय । इम प्रकार अनेक मञ्चनामक शक्तिदा का प्रदर्शन किया । कुछ अध्यापका का ध्याल था कि जो बच्चे इम मभा म आये है उह अपनो पढाई म रचि नही है । उनके विचार मे पुस्तका से चिपके रहन से ही विद्या आती है । जो बच्चे पढाई लिखाई म एकत्रम बंकार मान जान थे उहनि भी अपन म कोर्द न कोई प्रतिभा होन का परिचय दिया । पाँच छ वष तक ऐसी सभाओ का कार्यक्रम कुछ परिवर्तन के माय चलता रहा । अंत मे सौ बच्चा की जगह दो-दो सौ बच्चे सभाओ मे आन लग । पुस्तुर तालुक स बाहर की शालाओ क लोग भी उस सभा को दखन आने लग ।

बडो के काम

अध्यापका के लिए आवश्यक भाषाणा की व्यवस्था के बारे मे बाहर के विशेषज्ञा न हमे सहायता दी । मसूर और बेंगलूर क विद्वान प्रनिवय आमा करत थ । पत्र मगशारायजी स मरा निकट का परिचय तभी हुआ । शिगा के बारे म उनकी असाधारण लगन थी इसलिए बीच-बीच म व अपन मित्रा को साथ लाकर हमारा काम दिखाया करत थ । साता दिन शाम का बडे साग बच्चा की नाटक मनकर दिखात थे । नाटका मे व इतिहास क कुछ अंग, किसी देश की वष भूया आदि प्रस्तुत करने का प्रयास करत । हम इमम भारत क इतिहास क कुछ अंग नाटक द्वारा लिखान म मफनता मिसी । नवम्ब मे बयानक गाव जान और मच पर उगस सम्बन्धित इतिहासिक पात्र आकर अभिनय करन जाते । प्रथम वष एका नाट्य रूपक 'परिवर्तित भारत प्रस्तुत किया गया । उसम भारत क परिवर्तन क मूल कारण सभी महापुरुष मच पर स मुखर । द्रविड, आर्य, ईग, प्रोक और अंत म अंग्रेज तक हमन दिखाय । डेढ़ घण्टे क इतिहासिक दृश्य म गाठ-गतार बलाकारा न भारत म परिवर्तन क दृश्य दिखाय । और एक बार बौद्ध धम की यात्रा का इसी प्रकार दिखाया । बुद्ध की अहिंसा का गन्दगा अणोव म लकर गोधी तक कस चलता यह सब उस नाटक म प्रस्तुत किया गया था । और एक बार साम्राज्य के समाधि-स्वन दहसी का इतिहास हमने दिखाया । दग सबका उद्देश्य यह था कि इतिहास की पढाई का किस तरह से गरम बनाया जा सकता है । अध्यापका न विविध दंग क प्राचीन और अर्थाचीन जन-जावन का नाटक के रूप मे अभिनय क द्वारा प्रस्तुत किया । जानानी साया का जावन, जुनु सागा का जीवन, एस्वीमो सोगा का जावन, आदि क दृश्य भी लिखाय ग्य । इन सब दिखाना भी सम्भव हा गया कि भूगोल का इतिहास, एक सारा विषय मग है ।

समाज और समता

बाल सभा के दिना म हमारे गाँव के बच्चे ऐसा महसूस करते थे माना कोई मेला है। सक्डा बच्चा के साथ, छान खेलन का मुयाग उह और कहीं मिलता था ? मास्प्रदायिक वातावरण म पलेन पर भी बाल सभा' म सभी बच्चे बडा के नामन भी जाति भेद छोटकर एक साथ मितकर भाजन करते थे। हिंदू, मुसलमान, ईसाई और हरिजन सब का एक जगह बठकर भोजन करना उन दिनों एक बहुत बडे साहस की बात थी। हाँ, जन जाति का एक लडका गप्पा नहीं कर सका। वह आकर लौट गया। अंतिम वष जन सम्प्रदाय का एक और लडका आया था। वह पुराने विचारों का छोडने म समय रहा।

व्यक्ति का प्रभाव

सूल्या म बाल सभा हागी यह पता चलते ही बहा के बच्चा और अध्यापकों ने स्कूल म पास के टीले को छोड कर समतल कर डाला। बडा मा छप्पर डाल लिया। सभा होने से केवल एक दिन पहले में और शिवरायजी बहा पहुँच पाय। मुझे डर था कि द्रतनी जल्दी शिविर म सबके खान की व्यवस्था हो पायगी या नही। शिवरायजी के गाय के चार आदमिया को बुलाकर कहन ही चौबीस घण्टे के अंदर ही सखियाँ अनाज दाला आदि क ढेर लग गय। जनता क साथ उनका स्नेह ही इसका कारण था। उस शिविर म सक्डा रुपये लगान देनेवाल श्रीमंत भी कमर बसकर घाना पकान और परोमने आदि की व्यवस्था म लगे हुए थे। इसम पता लगता है कि शिवरायजी का उन पर कितना प्रभाव था। व्यक्तित्व के प्रभाव से ही ऐसे काय सफल हो पाते हैं। जो काम नहीं करत, कबल बातें करत हैं उनम ऐसा प्रभाव पदा हो ही नहीं सकता।

अधिवारियों की आयो मे

यह बालसभा कहीं पाँच वष चली। इस बीच पाठशालाए तालुका बोर्ड क अधिवार से हट कर जिला बोर्ड क अधीन हा गयी। आरम्भ म उन्नत हम पर्याप्त सहायता दी। पहल बालसभा म भाग लेनेवाल अध्यापका को ड्यूटी पर माना जाता था। अंत म एक नय डी० इ० आ० साहब जाय। व शिवरायजी क चार छात थे। उन्होंने यह एतराज उठाया कि बालसभा का शिक्षा की निति म कोई उपयोग नही। उसम भाग लेनेवाल अध्यापका को ड्यूटी पर नही माना जा सकया। यहाँ नहीं उताम भाग लेनेवाल अध्यापका पर भी उनकी बक्र दृष्टि गन्न लगी। एक दिष्टी इन्स्पेक्टर ऐमे अध्यापका का तग करन लग। तब हमारे लिए बालसभा का अंत करन क मिला कोई चारा न रहा। इही एजुकेशन आरिस्तर न जब मैं कनिज म अमहयाग आदानन म भाग लेन का विचार कर

रग था, मुन मे पूछा था, 'इत विरोध शिवा मे कोई लाभ भी है?' बात ता मच है विद्या के प्रतीक यदि ऐम लोग हा तो यही बहना चाहिए कि इम विद्या म काइ लाभ नही।

चुनुगों का मज्जारु उचित नहीं

बाल म मैं बँतूर आदि कई स्थाना पर जयिल कर्नाटक और अजित भारत नाम की सम्वासे थी। उनम बच्चा क लिए बहा की गने अस्थीय भाषण मगोर आदि मुनन पर लमा लगा कि व बच्चा की पादिया भी बनी करा दालेंग। बंगलूर की एक 'बाल सभा मे पारित एक प्रस्ताव बहुत मज्जारु था। वह प्रस्ताव था कि बच्चा म मे जन प्रतिनिधि सभा म एक सदस्य का चुनाव होना चाहिए। बच्चा क मिया और किमम ऐसी अकल हो सकती है? यह मुनकर बुजग टी० धी० गुण्डणाजी ने हमकर मुगम कहा था, अब इमी प्रकार अघे, उगडे, पागल आदि के प्रतिनिधि भी चुनकर बाउसिल म भेजना चाहिए।'

तो तार वप बाल हमारे यहाँ एक और शिवा अधिकारी आय। उन्होंने मुताम क। 'आपन यह बात-मभा क्या बाल कर दो? उमे कितने अल्प वायवम श्रा करन थ।' तय मुग कहना पडा, "अफमरा की मर्गों पर जब बाल सभा चुनाव और जब चाहे बाल कर नना कम सम्भव है?"

पजे ममेशराय

हमारी बालसभा और शांति विविरा म परिचित मगरावजी मुगम आग भी ऐम काम करन क लिए अ ग्रह करने लग। उन्होंने एक बार मुगम बाल चुम्पारा यह उपाय पुनूर तक खनम हा गया क्या? हमार मगनूर म लमा कुछ तय हा मकना 'इत पर दिन कहा, 'बाल ता यही भी विद्या जा मकना है। पुनूर म ता विविरावजी है मगनूर म लमा की है यतादर? उमका अफमरा की शिवा मारी गामे व मकना हें पर उाक लिए जब खाली करानाता भी ता कोई जाना चाहिए।' तो प बाल विविरा पाहिए मित कहा, 'नीत भी राज।' उीन विरोध होकर कहा अच्छा, दाना ता मी दे रकना हू।'

मार्च 1932 की शिवा की श्रुति म लम लुगनूर और का भाग्य कर। की हमने यात्रा बनायी। अफमरा क लिए तात निन क एक विर कर काग की गरह क भाषणा की अदरवा की। बाल क कई मिन ता मच्छा विद्या पर अफम देन आद। मीने तो दामा बरकर ल राज काम क एक मारजन के कावकम का तवारी करायी। यहाँ भा पुनूर क मग पुनुरो एक मिन ने हर काम म मरा हाव बनाया। सभी मीने मुगम शर मरक विविरा

अभिनीत कराया। तब वी सीतारामराजी द्वारा उन नाटक की बड़ी तीखा आलाचना का मैं शिकार हुआ। नाटक एम्ब नाटक' (नाटक म नाटक) तिमम्पन वगरणे (तिमम्पा का वधार) आदि नाटका का मैंने तभी मचन कराया। बौद्धयात्र' (बौद्धयात्रा) का दुवारा मचन भी किया। जापान, प्राचीन मिस्र आदि दशा पर नाटय रूपक लिखकर उनका प्रदर्शन किया। वही क सार काय बडे सुचारु ढंग से सम्पन्न हुए। श्री पजेजी का विचार था कि उनका इस काय म कोई-कोई आर्थिक सहायता देगा। पर वही स घाटे की पूर्ति नहीं हो पा रही थी। पजेजी ने हसते हुए पाँच सौ रुपये का चक काट कर दे दिया। शेष राशि का दशमांश मरे सिर पर पडा। मुझे उनसे कहना पडा 'दख लिपा आपके मगलूर वाली का उत्साह!' व हँस पडा। उनकी हसी कभी न भूल पान वाली हँसी थी, मोनी जसी।

जसे मालिक वैसे नौकर

जब बालसभाओं के प्रयोग चल रहे थे तो मुझे लगा कि ये प्रयोग ही त्योहार जमे बन रह हैं अतः शिक्षा का क्रम क्या न इस ढंग से चलाया जाय। उसा लिए काफी पस की आवश्यकता तो पड़ेगी पर शिक्षा सरस बन जाएगी। उनका लिए मैंने कई तरह के और भी प्रयोग किये। भाषा मित्रान व कुछ उचित खेल तयार किये। सिपाने के योग्य कई तरह क काड और चित्र भा छपवाय। पर उनका प्रयोग वही किया जाता? क्या मेरा कोई अपना स्कूल था? शिवरामजी यदि तालुक बोर्ड म हात ता कुछ किया जा सकता था। जब सारे स्कूल जिला-बाजार के अधीन हो चुके थे। पर मैं निराश होकर चुप रही बठा। कुछ परिवर्तित अध्यापकों पर विश्वास करके उनके स्कूला म गया। मैंने उह अपना पाठम क्रम समझाया। आवश्यक साधन तयार करके सिये। ताश के पत्ता जम काडों की सहायता स गणित, अर्थ विषय और भाषादि का शिक्षण दिया जा सकता है यह भी बताया। दा मास बाद जाकर दखा तो मेरे दिव उपकरणों का प्रयोग ही नहीं हुआ था। तब मुने लगा, शिवरामजी अतः जिलाबाड के अध्यापक नहीं है अतः अध्यापक भी उनका मित्र क कहन क अनुमान क्या चलें?

मन म बहुत अमनोप हुआ। मर साथ शिक्षा म आसक्ति रखनेवाल एक ने मित्र भी था। उन मित्रा म व अपन घर तक बचकर तय ढंग क स्कूल क लिए पग जुगान की तयार था। मैंन और उहाने मिलकर थोड़ी सी जगह तयार क। अतः म मरी ध्यया शिवरामजी तक पहुँच गयी। उहाने कहा, 'उसक लिए ता पानिए करेग।' पुनूर म ही मैंन एक जगह चुनी। वह एक पहाने के पास जगह म तयारी थी। दफ्तर म बहुत रमणीय थी। मैंन उस पट्ट पर स लिता। शिवरामजी त स्कूल तयार क लिए रुपयथा तयार करा दी। तब मेरा जगान

आना जाना मगलूर और पुत्तूर के बीच ही था। 'बाल प्रपंच' के छाने का काम शुरू हो चुका था इसलिए इस दोटघूप स मुझे आराम ही नहीं मिलता था।

बाल-वन

अब जिस घर में रह रहा हूँ वह किसी जमान में स्कूल के लिए चुना गया था। बिडर गाडन के अर्थ के रूप में हमने उस शाला का नाम 'बाल वन' रखा। इमारत का काम शुरू हुआ। शिवरायजी ने अपने तीन चार मित्रों को लकड़ी खपरेल और कुछ नगदी भी दिलायी। मैं और मेरे मित्रों ने कुछ पत्तों और अधिक पत्तें जुटाई। निर्माण काय के साथ-साथ कुछ भी बढ़ चला। शिवरायजी की सहायता के अतिरिक्त और कोई सहायता नहीं मिली। मेरे मित्र भी पीछे हट गये। इस प्रकार आगे स्कूल के लिए जितने पैसे की आवश्यकता थी वह सब मैंने जिम्मे पटी। उन दिनों 'बाल प्रपंच' में घाड़ी बहुत आमदनी थी। वह मारी-की मारी उमम लगा दी तो भी मकान पूरा करने और स्कूल खोलने को वह पूरी न हुई। जब तबसे मैंने 1935 में हमारी शाला का शीर्षणण हुआ। पाँच छ विद्यापिया की एक बड़ी-गी शाला। मैंने यह निश्चय कर लिया था कि वह जब तक अपने-आप बटकर लागू को पगद न आयें कि किसी में भीय नहीं मागूंगा। शिवरायजी को बार-बार तग करता जैचा नहीं। अब शाला का एक सही रूप देना और पैसा इकट्ठा करने के दाना काम मैंने अपने ऊपर ले लिया।

एक बी० ए० तब पडे मित्रों को मैंने अपनी रचनाओं की प्रतिनिधित्व कराने के काम पर रगड़ रखा था। उन्होंने ही अध्यापन का काम स्वीकार कर लिया। उनकी काम में बहुत श्रद्धा थी। स्वभाव में भी वे विनयशील व्यक्ति थे। उनका नाम तारायण राव था। उन्होंने इस काम की जिम्मेदारी तीन वर्ष तक बड़ी ईमानदारी से निभायी। मैंने उन्हें विविध प्रकार का पाठ्यक्रम का ईंग समझाया। बसाइ शिक्षण विधि में सम्बन्धित पुस्तकें भी साबर दीं। हर विषय में की तरह सब दूसरे लिए आवश्यक सामान जुटाया। वर्षों पढाई में पाठ और अप का पाठ कराने को आवश्यक विषय और पाठ साबर दिये। बच्चा; प्रकृति और पशु पक्षियों के प्रति रसि उत्पन्न करता है लिए जाना के जीवन में ही एक छात्रों का विद्ययापर बताया। हर गाँव, मोर हिरण बालू मीर अन्नगर वहाँ साबर रगे। बच्चा के विनयन का उतर पीड़ी, रत आदि भी बनवादी। उतर लिए पात्राकाम की आवश्यकता थी। तारायणराव मरुम्य थे। वे एक दूसरे घर में रहे थे। दूसरे बच्चा के साथ रहता है लिए एक छात्रों का आवश्यकता था। इसलिए एक और बच्चा को तिमि रत किया। वे त्रेनिग पत्र हूँ बूट थे। उनकी स्कूल की मोहरी भी खरी लयी थी। वे एक में मशारत भी लराइ ली बचा था। साथ ही कुछ में भी लरे थे। उन्हें बीरपुर भद्रवत नरवा नवाइ करकर टिके लाने

पर अपन छात्रावास म बुला लिया। कज के बाझ से कही उनके काम म बाधा न पड़े यह सोचकर कही और से कज लेकर उनका कज चुकता करवा दिया। अब विद्यार्थिया की कमी थी। शाला तो उही से चलनी थी। पहले तो उत्साह सिखान वाले मित्रा ने भी अपन बच्चा के लिए वह जगह उचित नहीं समथी अथवा इस सस्या की जिम्मदारी से बचने की ऐसा किया होगा। खर उनके बच्चा के लिए यह सस्या दूर पडती थी। यह जगह प्रतिदिन सध्या के समय बच्चो का यात्रा स्थल बन गयी। बच्चे यहां खेलन जानवर देपन और सोट पीट करने को इकटठ होने लगे। आस पास के चार गरीब बच्चे इस शाला म पत्ने आने लग। व एकत्र निम्न स्तर की बुद्धि के बच्चे थे। पाचवी तक क यदि पचास बच्चे भा हान तो पलाके द्वारा पाठ सिखाने का प्रबन्ध किया जा सकता था। हमारा शाला म बच्चा की सख्या तीन जोर दस के बीच ज्ञाने या रही थी। एक एक कथा म दा दो बच्च लेकर कौन सा प्रोजेक्ट चलाया जा सकता था? सरकारी करावयुलम म मेरा विश्वास नहीं था इसलिए मैं अपनी शाला के लिए सरकारी सहायता का प्रयत्न भी नहीं किया। तब प्राइवट म पढकर सरकारी स्कूना म चौथे फाम म दाखिला लेने की सुविधा थी। बच्चो की वहाँ तक तयारी करान क लिए मुझे सरकार से स्वीकृति लेनी आवश्यक नहीं लगी। अब समझ म आया कि लाग तो बिना सरकारी माहर के स्कूल को महत्व ही नहीं देत।

सदावत

खर जा भा हा, जगह जगह स अनाथ और भूखा का इकटठा किया। मेरे छात्रावास म सात आठ सडका की भोजन व्यवस्था हुई। उनके साथ हायर एलिमेटरी तक पढे एक सडके को भी स आया। उस भी कोई ध धा सिखान का विचार था। स्कूल छोड छाडकर गांव म आवारा भटकते उस सडके को लाकर हामूरू कृष्णराजपुर म भजकर मुर्गी पालन का प्रशिक्षण दिलाया। उसकी छातिर सगभग पांच तो रुपय सगाकर मुर्गीखाना खोला। बिडियाघर के साथ-साथ सगहान, टर्की मुर्गिया जादि की दपभाल करना भी उमका काम था। वान म जरूरी दाने और चाडे आदि बनवा दिया। मैं बाब-बीच म गांव आकर निरा राण किया करता था। शाला क पूर खच की जिम्मदारी मरी थी। इस समय लिए हर मास इढ़ तो रुपय की जरूरत होती थी। अपनी आय बढाने क लिए कुछ पाठय पुस्तके एक प्रकाशक को लिखकर दा। जो भी आमदनी होती वह शाला क खच म सगा दता बाहर किसी के पास भिगा मागन नहीं गया। विश्वास अपन बच्च शाला भज दन मेरे लिए तो यही बहूत था। उनस खच का पग मागन का मरा मन नहीं हुआ।

ई गाँव में रहूँ या न रहूँ, स्कूल की रजारी का जब दिन बटता था। उनकी दृष्टि भाव का एक अन्वेषक महाशय अपने बड़े बच्चे को मुरत हाँ ही दूसरा काम पाने का मरी अनुभव्यिनि में चयन बन। धारा मीजन पाया सटका कुछ और ही मैंने काम करने लगा। उनकी दृष्टि भाव में मुर्गियाँ करने लगी और अन्वेष भी कम हान था। फिर भी हमारी पठोर मर्गियाँ साधारण रूप से सात भर में डेढ़ गो आँड देती थी। चार पजार मुर्गियाँ और टर्की मुर्गियाँ लस-मसात गो अण्डे मिलन चाहिए थे। तिसावत, एता या पर पट्टह मुर्गियाँ में तान वष में कुल चार रह गयी। नाचिए कम सटका की दृष्टि भाव भना बितनी बडिया रही हारी! दूसरा जनायरा की दृष्टि भाव भी उगत एत ही की थी। तिसावत पर की भी यही दुगती हुई। हवन में जय भी यहाँ पट्टेचना ता मुने यही मुनन की मिलना कि हम गप्ताह यह प्राणी मरा उस सप्ताह यह प्राणी मरा।

पन चाहिए काम नहीं

उस सटका के कुछ सटपाठी गाँव के हार्ड-स्कूल में पढा था। उमिना न उनका पाग आकर मडाक उडाया "अर, तुम मुर्गी पालन जसा काम कर रहे हो।" अग्रेजी पढ़न के बच्चे मुर्गी पालना उट्ट पटिया काम लगा हारा। वह मुर्गी न पालने या न पानवान परिवार से सा था गही। एक दिन जब मैं गुरुम में आया तो वह बोला 'क्या मुझे हार्ड-स्कूल नहीं जाना चाहिए?' मैंने कहा, 'जाना चाहिए मना बिमन किया।'

मैंने समझा कि आप यतन देकर एक नौकर के रूप में रहेंगे। एता आपन अब तक भी नहीं किया। वहकर उत्तन अपनी निगना धरन की। तब मैंने कहा 'मैं मुर्गी पालना वाला हूँ और अण्डे भी नहीं छूता। तुम्हें एक घण्टा निगान के लिए मैं यह सब किया। तुम्हें काम में रुचि नहीं। कबसे यतन चाहिए। तीन घण्टे में सारी मुर्गियाँ तिसावत देवान खीर हो मुम। जहाँ भी मीघने आमाग वहाँ एत ही पन कामान के बार में सोचोगे? मुर्गियाँ मारकर पन मीघने कामान के त हुआ मुम्हें?' यह मनोवनि हमार यहाँ अधिबान सोगे में पायी जाती है। तिसावत में रुचि नहीं। यतन और नौकरी की ओर ही हमारी भाँग गया रहती है। मुझ के आराम में बर्न स्थाना पर 'बार टेक' मोल्डिनाम तदार करन एत है। तिसावत समस्त एत पक्षीम रूप प्रतिमाग मिलन है। पर मैंने दया कि तिसावती मुझ के काम तक गन-बूना में ही समस्त मुजाराय उतावाधान काम की भार मी रहता था नौकरी की भार हो रहता था। एक हटार एत वपन पानवने नौकरी की दृष्टि भी एमी ही है। हम बिगो भी उदात्त में अधिबर्न नहीं। रुचि देवत देवत

मे है। उसकी नीव हमारे विद्यालयों में ही पड़ जाती है। विद्यार्थी ज्ञानवृद्धि के लिए पुस्तकों नहीं पढ़ते। वे तो परीक्षा पास करने का एक साधन मात्र हैं। उनके लिए जितनी आवश्यक हो उतनी ही पढ़ाई होती है, उनकी आँख उसके बाहर नहीं देखती। पढ़ाई समाप्त होने के बाद लगता नहीं कि उन्हें उस शिक्षा का कोई अर्थ याद भी रहता हो। काम मरुचि लेने की मनोवृत्ति कितने लोगों में हाती है ?

छुटकारा

तीन घण्टे तक यह पाठशाला चला कर मैं थक गया। एक-दो मित्रों से जरा सहायता करने को कहा पर उनसे कोई उत्तर नहीं मिला। अध्यापक नारायण राव अकेले मेहनत कर-करके थक गये थे। बच्चे केवल भोजन की सुविधा के कारण ही आये लगते थे। किसी भी कक्षा में तीन से अधिक विद्यार्थी न हो पाये। नारायण राव ने बड़ी निराशा से पूछा "क्या किया जाय, साहब ?" मैंने भी सोचना शुरू किया। कक्षा सिर पर लदा था। केवल छ लड़कों के लिए मेरे एक सौ पचास रुपये खर्च करने से क्या मिला ? लगा कि शिक्षा का कोई महत्त्व नहीं और न ही मेरे पतन का। नारायण राव को मैंने उनका घर भेज दिया। बच्चा का भी अपना-अपना घर भेज दिया। चिड़ियाघर में बच्चे छुड़े प्राणियों को स्वतंत्र कर दिया। एक दो प्राणी जो केवल हम पर आश्रित थे, वहाँ रह गये। वह स्कूल बन्द करने से पूर्व ही मैं गृहस्थ बन चुका था। मन में यही निणय किया कि चलो रहने का एक जगह बन गयी। उस दशा में यही एक सक्ति की बात थी।

शान्ति नहीं मिली

मगलूर के एक स्कूलवाला ने मुझे उनके यहाँ आकर शिक्षा देने को धार्मिक प्रेरणा दी। उनका कहना था कि पुस्तकें जहाँ छोटे गाँव में भली क्या किया जा सकता है ? हमारे यहाँ आकर कोई नया प्रयोग क्या नहीं करते ? चुपचाप पढ़ रहने की अपेक्षा उमीकी बहतर समझकर मैंने वही काम स्वीकार कर लिया। वह एक ह्यापर एलिमेंटरी स्कूल था। वहाँ मध्याह्न दो-तीन दिन जाया करता था। अध्यापिकाओं को नयी शिक्षण पद्धति सिखाने लगा। देश का इतिहास को अपनी सभ्यता के रूप में सिखाने का प्रयास किया। उसके लिए आवश्यक चित्र और पुस्तकों का प्रबंध किया। भूगोल, गणित, विज्ञान भाषा आदि को नये ढंग से समझने के समान बच्चों को सिखाने के प्रयोग किये। उन प्रयागों के लिए मुख्य रूप से अध्यापकों का धर्म और उत्साह अपेक्षित था। पाठ्य पुस्तकों मुख्य नहीं विषय तो यही था। परन्तु विषय से सम्बन्धित अन्य साधनों की जुटाकर, बच्चों में ज्ञान के प्रति बतुहल जगह कर शिक्षा देने का माग दिघाया। इस काम के लिए एक-दो

अध्यापिकाओं ने बड़ी लगन से आवश्यक वस्तुओं का निर्माण किया। उन्होंने यह अनुभव किया कि इस शिक्षण पद्धति से बच्चा भी रूचि बढ़ती है। और एक दिन नवल के व्यवस्थापकों की दृष्टि दुःखकर थोड़ा बहुत काम किया। लगभग तीन वर्ष तक मैं अधिक-अधिक उन पाठों का नया ढंग से सिखाने का प्रयत्न किया। अध्यापिकाओं को तो यह डर था कि पता नहीं इन्स्पेक्टर क्या कह दें। परन्तु कुछ इन्स्पेक्टर उनका काम देखकर घड़े गुम हुए। बाहर के अध्यापकों का भी यहाँ बुलाकर वह काम सिखाने लगे।

प्रतिवर्ष अप्रैल मास में पाठ्यक्रम का बाहर के विषयों को सिखाने का एक दिन प्रदर्शन किया। उस काम में बच्चों का साथ लेकर अध्यापकों का कई प्रकार की वस्तुएँ तैयार करके प्रदर्शित कीं। कुछ समय बाद यह स्कूल हाई स्कूल बन गया। उसी में हमारे काम की इतिश्री हो गयी। बी० ए० एल० टी० उत्तीर्ण अध्यापकों को न केवल एक प्रयोग के लिए लगे अपितु भरे जैसे विश्वविद्यालय की विधि रीति व्यवस्था का मासिक नमूना काम करना बतई पसन्द नहीं आया। उन्हें यह सब एक पागलपन सा लगा। इतना ही नहीं, जब कुछ लोग उनके लिए श्रम कर रहे हैं। तब स्वयं पीछे हटना ठीक नहीं महसूस करने का काम करना। वे पान मरते शुरू किए। धीरे धीरे वे भी पीछे हटना लगे। मरते तीन चार वर्षों का परिश्रम व्यर्थ ही गया। इसी प्रयोग का आगे चलते रहने का मासिक स्वयं के प्रबंधकों में था। ऐसी काम से छुटकारा मिलने पर काम करने वालों का भी मातापिता होता है। कम-से-कम महत्त्व करने विद्यार्थियों का शिक्षित करने नाम बमाने का अर्थ है जब ही और काम से जब कोई प्रतिपत्न न हो। एक काम में निरत रहने भला कोई क्यों जाएगा? उसी परिस्थिति में मैं भी माया की अगता समय और परिश्रम व्यर्थ गवाना पागलपन है। आगे धीरे-से यहाँ में सम्बन्ध तानने लगा। अब मरने लिए एक ही काम बचा था। इन कामों के लिए तब तक को कोई और काम करने पड़ना था।

दसहरे का उत्सव

पुनः का मरने और विनाश काय था, दसहरे के उत्सव में भाग लेना। धारणा आदि प्रयोगों में एक उत्सव दस था। अब जहाँ भी दसहरे का मीठ पर हम निरन्तर भाग्य आदि का कार्यक्रम मुझे रूप में हुआ करता था। मुझे उत्सव में ही नहीं न हुई। मरने में ही दसहरे हुए कि इस उत्सव का ताप एक प्रकार का मासिक शिक्षण भी हो ता और भी अच्छा है। यह विषय निवाराओं के लिये प्रकट करने पर उन्होंने उत्साह बढ़ाया। सन् 1931 में सम्पूर्ण बाहर के विषय पर दसहरे पर यहाँ हमें दिन का एक बड़ा उत्साह हुआ। निवाराओं के अनेक वर्षों में निरन्तर उत्सवों के लिए हमारे सम्बन्ध पर ही था।

की व्यवस्था, पैसे का प्रबंध और अन्य व्यवस्था म मुझे मिर खान की ज़रूरत नहीं थी। व सब शिवराय और उनके मित्र सम्भालते थे। मेरा काय ता साथी की भाषण और मनोरंजन के काय देखना था। इसमें विद्यार्थी, मित्र और गाँव के अध्यापक सहायता का को सदा तयार थे। पूरे दस दिन का कार्यक्रम रहता। सुबह के समय स्पर्धाएँ चलती। शाम को कर तरह का याम्य प्रदर्शित किया जाता। हर दिन शाम को छ बजे किसी न किसी का भाषण और उसके बाद मनोरंजन का कार्यक्रम होता। कर्नाटक के दूर दूर के गाँवों से कुछ मित्र आकर भाषण देते थे। भाषण का विषय हम ही सुझाते थे। साहित्य के बारे में भाषण देनेवाले तो बहुत थे पर कला राजनीति विज्ञान, धर्म प्रत्येक की चर्चा हम चाहते थे। गुप्त लोगों के द्वार में भी हमने भाषण करवाया। चलचित्र भी दिखाया। नवरात्रि के दिनों में आस पास के गाँवों से लोग पुत्तूर जाकर उन भाषणों को सुनते। श्री क० बी० अय्यर का व्यायाम प्रदर्शन और भाषण, श्री एम० आचार्य के उनके प्रवास के अनुभव डा० आनारट बाँक के संगीत के बारे में भाषण मौरिस फ्रिश्मन का धर्म के बारे में भाषण श्री डी० बी० गुडप्पा की धर्म चर्चा—उन सब लोगों से जिन जिन विषयों पर चर्चा हो सकती थी भाषण कराये। दशहरा निबटने के बाद भाषण देने आये मित्रों का साथ लेकर मैं उन्हें दक्षिण कन्नड़ जिने का प्राकृतिक सौंदर्य दिखाता। लगता है कि मगर ऐसा कोई मित्र नहीं जिसने दशहरे पर पुत्तूर आकर भाषणों में भाग न लिया हो।

दशहरा आने के दो तीन माह पहले से ही उसकी तैयारियाँ शुरू हो जाती। दस दिन के लिए हम नये मनोरंजनों का कार्यक्रम होना होता था। किसी भी कार्यक्रम को दोहराया नहीं जाना चाहिए था। यह कार्यक्रम मेरे लिए कला की एक प्रयोगशाला थी। विविध प्रकार के नये नाटक और दृश्यों पर प्रयोग करने का अवकाश मिला। प्रतिव्यय गाँव का यज्ञगान हमारे कार्यक्रम का एक अंग होता था। पढ़े लिखे और अनपढ़ दोनों को दृष्टिकोण में रख हम ये कार्यक्रम बनाने होते थे। इस काय में मेरे मित्रों की सहायता का तो हिसाब ही नहीं था। कला के बारे में अलग ही लिख रहा हूँ। अतः यहाँ एक ही कार्यक्रम का उल्लेख करता हूँ। एक बार प्राचीन मानव का जीवन दिखाने का प्रयास किया। वह एक दृश्य-शाला ही थी। पुरातन मानव के हिसाब से अभिनेता की सज्जा करके प्राचीन काल के लाल जगली भोजी आदि का शिकार करके उस जीवन विताने थे इसका प्रदर्शन किया गया।

एक अनक मनोरंजन, अतिथि मत्वार और भाषणों में कोई पाँच सौ रुपये ही पक्ष होते थे। हमारे आठ-दस नाटकों के लिए कुल पचास साठ रुपये का खर्च पर्याप्त था। वेप नूया कागजात ही तयार करने की मितव्ययता से काम लेते थे। आगे सन 1942 में मन्नी का दौर आया। इसके आलावा, इतने वर्षों तक यह

बाय एक सघ की तरह एकता से चला पर उसमें अब घेसुरा सुर निकलन लगा । एक दो ने मेरी उपेक्षा करके मेरी पीठ पीछे, दशहरे का कार्यक्रम तैयार किया । मुझे बहुत दुःख हुआ । अनचाही जगहा में नाक घुमेडन की मरी आदत नहीं । सघ और सस्याआ में मुझे कभी विश्वास नहीं रहा । मर उत्साह के सजनकद्र दशहर म भी जब मित्रा न उपेक्षा की ता मैं उससे सरक कर दूर छडा हो गया ।

अनचाही सगत में नहीं रहना चाहिए

मित्रो की सहायता से यह उत्सव हुआ करता था, पर लागाने समया कि मैं अपन आपको आगे बटा रहा हू । मुझे इस बात से असहनीय दुःख हुआ । अगल वष दशहरे के समय कार्यक्रम आरम्भ करन के लिए मैं आगे नहीं बडा । दूसरे लोग म-दी की बात कह कर आगे नहीं आये । स्वयं को कला के महारथी कहने वाले मरे ही मित्र इस फूट का कारण बन । मैं साधारणत सावजनिक कार्यों में कम ही भाग लेता था । जहाँ गया वहाँ अनक जगहा पर निराशा ही हाथ लगी । दशहरे का यह उत्सव भी उन्ही की श्रेणी में जा मिला ।

गाव के लोगो के लिए तो दशहरे का उत्सव जाता रहा । दशहरे के उत्सव की हर वष प्रतीक्षा करनेवाले आबाल वद्ध का अपने नीरस जीवन में केवल दस दिन को जो सत्तोप मिलता था वह हमारे कारण जाता रहा । यह ध्यया मुझे कचोटती रही । आगे कुछ वष तक गाव वाला न किसी प्रकार उत्सव चलाया पर पहले जैसा आकषण उसमें नहीं रहा । वह उत्साह भी गही रहा । वह प्रयत्न भी अधिक समय तक नहीं चला ।

शिक्षा और भाषा

अपूर्ण इच्छाएँ

विद्वानों का कथन है कि बच्चा की सुप्त प्रतिभा को जागृत करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। परन्तु वास्तविकता यह है कि शिक्षा की पद्धति तब यात्रिक हो चुकी थी। उसमें बच्चा की सदबुद्धि सजन क्रिया, विचारशीलता के विकास के लिए कोई स्थान ही नहीं रह गया था। मुझे ऐसा लगता था कि इसे आधुनिक ढंग से विकसित किया जा सकता है। बालसभाओं का आयोजन करके मैंने यह अनुभव किया था कि हमारे बच्चा में भी बहुत सी प्रतिभाएँ हैं। उनके प्रकटन के लिए खेल भी शिक्षा का एक साधन बन सकता है। उन खेलों को हमारे उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बनाना हो तो, शिक्षकों को बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा। यह काम कितने ढंग से किया जा सकता है उन सबका प्रयोग करके देख चुका था, उससे क्या लाभ हुआ? मेरी शाला ही नहीं चल सकी। पाठ्य पुस्तकों को ही सब कुछ समझनेवालों आम शालाओं में पाठ्य पुस्तक को भी बच्चा के लिए आकर्षक बनाकर पढ़ाने की विधि प्रयोगों से दिखाने पर भी अधिकांश अध्यापकों का वह बेकार का परिश्रम लगा। कोई भी बच्चों की शिक्षा के लिए परिश्रम करने को तैयार नहीं। पाठ्य पुस्तक से पहले आप पढ़ लेने या उनके साथ पढ़ाने का काम सरल है। उन पुस्तक में लिखे प्रश्नों को ही पूछा जाय तो बच्चा को कोई भी लाभ नहीं होता। पर इस प्रकार के सरल साधन ही अध्यापक पसंद करते हैं। बेकार परिश्रम करने के बदले जो वतन मिलता है उसके लिए यही काम ज्यादा है ऐसा कहने वाले भी मेरे ध्यान में हैं।

कुछ पुस्तकें

मैंने कई विषयों में बच्चों के पाठ्यक्रम के बारे में विस्तार से सोचा था और प्रयोग भी किये थे परन्तु उस पर आम लोगों का अन्याय देखकर खूप हो गया। अपने बालवन में ऐसे प्रयोग करने के लिए धन की आवश्यकता थी। वह भी मुझे अलग से परिश्रम करके कमाना था। तब मैंने सोचा कि भाषा, विज्ञान और

भूगोल जैसे कुछ विषयों पर कुछ पुस्तकें क्या नहीं लिख डालूँ ।

पाश्चात्य भाषा शिक्षण में बहुत ही अधिक संशुद्ध करने से ग्रहण शक्ति को सुवृद्धि मिलता है । इसलिए वाक्यों से पढ़ाना आरम्भ किया । बेल्ट की पद्धति से मैंने भी वाक्य बोधन के क्रम को ही अपनी शाला में अपनाया । उसके साथ परोक्ष ढंग से अक्षर पान भी करना पड़ता है न । यह ध्यान आने पर कि कन्नड में दा सौ से ज्यादा अक्षर संकेत हैं अतः वाक्य बोधन कठिन कार्य है । इसलिए शब्द बोधन को कनिष्ठ गुण के रूप में इम्फोर्मल करना ठीक लगा । उसी क्रम का तत्कालीन मद्रास के शिक्षा विभाग के निदेशक श्री मन्नूर राम राय ने भी वहाँ के पाठ्यक्रम में सूचित किया था । इसलिए मैंने भी उसी को अपनाया । उसी क्रम को अपना कर 'सिरिगन्नड पाठमाले' शीपब से सात पाठ्य-पुस्तकें तैयार कर उनमें भाषा सौंदर्य और नाद सौंदर्य की ओर विशेष ध्यान दिया । वह पाठ्य की तरह का गद्य था । शिक्षा में रुचि रखनेवाला मैंने कुछ लोगों को उसे पसंद किया । विषय शब्दों के भ्रम को भगाकर भाषा का सुन्दर मुहावरा का प्रयोग की ओर विशेष ध्यान दिया । उन पुस्तकों के प्रकाशक मित्र को ऐसा लगा होगा कि लेखक भारत को इतना पारिश्रमिक देना मूर्खता है जबकि संस्कृत में लिखकर दान वाले कई अध्यापक हैं । इसलिए हमारा करार टूट गया ।

मैंने और एक पाठमाला पहले के क्रम में लिखकर प्रकाशित की । परन्तु प्रकाशकों का अच्छी वित्तवै प्रकाशित करने में काम नहीं चलता, उन्हें शालाओं में लगाने के लिए अधिकारियों के दरवाजे भी पटखटाने आवश्यक था । मैं वह काम कर नहीं सका । चुप हो गया । अध्यापकों को भी उनका भाग देकर पुस्तकें बेचने का एक तरीका है ।

भाषा की शिक्षा के योग्य आकषक बनाने का मेरा प्रयास यहाँ आकर रुक गया ।

और एक द्वार

इस बात को भूल बैठे बहुत समय बाद मुझे एक और अवसर मिला । प्रौढों के लिए किस शिक्षण क्रम को अपनाना चाहिए इस पर यूनेस्को ने कुछ प्रयाग करने का एक कार्यक्रम बनाया । सन 1953 में उनके द्वारा नियोजित अनुसंधान कर्त्ताओं का एक शिविर मैसूर के पास यलवाल में हुआ । उसके मुख्य निदेशक जान बॉक्स से मेरा परिचय पहले ही पेरिस में हो चुका था जिमकी चर्चा मैंने पहले भी की है । युनस्को वह अनुसंधान कार्य जब मैसूर में कर रही थी तब उमका एक अर्थ कन्नड में करना था । उसके लिए वाक्य न मरी सहायता मांगी ।

उस दल में देश विदेश से आये शिक्षाविद् मानव शास्त्रो, रसायन और चत-

चित्र के प्रचार के साधना के विशेषज्ञ और अध्यापक भी थे। इनमें नावें, डेनमाक जर्मनी, फ्रांस बल्जियम आदि देशवासियों के साथ कुछ परिचित भी थे। भारत सरकार के आमंत्रण पर यह काय हमारे देश में चल रहा था इसलिए कुछ भारतीय भी उसमें थे।

अनुसंधान का दृष्टिकोण

उाके अनुसंधान का विषय था कि किसी सामाजिक प्रश्न का लेकर उस भाषा, चित्र रेडियो सिनेमा व द्वारा किस प्रकार दिखाया जा सकता है। उनका द्वारा तैयार किये गये शिक्षण के साधना को ग्रामीण लोगों के सामने रख कर और यह परीक्षण करके कि उनका उन लोगों पर क्या प्रभाव पड़ता है और उनमें क्या परिवर्तन आवश्यक है, वे लोग यह देखना चाहते थे।

यलवाल के आस पास पेड़ पीछे बहुत कम हैं। पेड़-पौधा का अभाव क्या और फसल के लिए हानिकारक है इस विषय को उन्होंने अपने प्रचार के रूप में लिया। मैंने उनके लिए रेडियो से प्रसार करने के लिए पद्य रूप में एक कथा तैयार की। मेरा मुख्य काय प्रौढ़ों के लिए पाठ्य पुस्तक तैयार करना था। भर वहाँ पहुँचने से पहले उन्होंने एक पाठ्यक्रम तैयार कर रखा था। उसका पहला पाठ गाँव के कुएँ के बारे में था। वह साधारण स्वास्थ्य विषय के पाठ के समान ही था। इस पर मैंने उनसे एक प्रश्न पूछा, 'आपकी पुस्तक का मूल उद्देश्य उपदेश है अथवा पढ़ने में पहले अभिप्रेरणा पदा कर बाद में पाठक को अपनी दृष्टानुसार ज्वलित विषय पढ़ने में सहायता करना है?' वे मेरा सकेत समझ गये। उन्होंने मुझे पूरी स्वतंत्रता दे दी और यह कहा कि प्रौढ़ों के लिए आकर्षक ढंग से राचक विषय चुन कर बसल सी जयवा डेड सी शब्दा में एक पाठ तैयार कर दें शब्दा की पुनरावृत्ति होनी चाहिए।

वाक्यों द्वारा पढ़ाने की पद्धति के लिए यह एक चुनौती थी। उस उद्देश्य से यलवाल जस गाँव की हरियाली को लेकर मैंने एक कहानी लिखने का विचार किया। उसीके अनुसार एक पाठ भी तैयार किया। 'जोगी कडउरू' शीर्षक बनाकर लगभग बीस पाठों में एक मूल गाँव की कहानी तैयार की। उसी का दूसरा भाग 'देव ओलिद उरू' (भगवान का प्रिय गाँव) लिखी। उसमें एक जोगी के उपदेश से प्रभावित होकर गाँववाले पेड़ पीछे लगाकर मुँही जीवन बिताने हेतु यह दिखाया। लेखन पर यहाँ कई प्रकार के प्रतिबन्ध थे। जैसे—

- 1 बहुत छोटे छोटे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।
- 2 व शब्द पाठकों के लिए परिचित होने चाहिए।
- 3 उनका बार बार प्रयोग होना चाहिए।

4 वाक्य दाद रखने लायक होने चाहिए ।

5 क्या म र्चि और प्रवाह हाना चाहिए ।

6 शब्द 100 120 से ज्यादा नहीं हाने चाहिए ।

मर त्तिये पाठो को शिविर की अध्यापिकाएँ ग्रामीणां म ल जाकर, उह दिखा कर उनक परिणामो का अध्ययन करती । शब्दा की पुनरावृत्ति कम हो तो—जम एक शब्द जा एक मे लेकर आठवें पाठ तक नहीं आया था—व उम पर मेरा ध्यान दिलाती । इन सब शर्ता को पूरा करने के लिए मुने एक ही पाठ को कई बार लिखना पडा । उम कहानी को पाठको के लिए सरल बनाकर लिखना था । पाठका म कुतूहल और अभिरुचि पदा करनी थी, उसके प्रति ममत्व पदा करना था । मुझे यह अश सबसे ज्यादा पसंद आया । इस काय म हमारी भारतीय अध्यापिकाओं की अपेक्षा परिस की एक नोग्रो अध्यापिका की रुचि ने मुझे आश्चर्य म लाल दिया । यहीं के वसु नाम के एक बगाली अध्यापक ने भी उम पाठ मे विशेष रुचि ली । यह काय मुस्ताक अहमद के नेतृत्व मे दो बप तक चला । मैं उनके लिए कुल पांच पुस्तकें तैयार की । मैं स्वयं कभी-कभी यलवाल जाता था । म भी अकमर मरे घर आ जाया करत थ । पुस्तक प्रकाशित करा कर उसके शिक्षण के लिए अपेक्षित मारी सामग्री जुटाने तक सभी ने परिश्रम किया । उस पुस्तक के लिए चित्र बनाने के लिए चित्रकार हेदमार का यलवाल निमणित किया गया था । उस प्रशिक्षण शिविर को समाप्त करत समय उम अवधि मे जा चीजें उपयोग म आयी थी, उहने व सब मसूर के प्रौढ शिक्षा केन्द्र का दान कर दी थी । पता नहीं उसस क्या कितना लाभ हुआ ।

मेरा मन ऐस किया कनाप म बहुत कुतूहल रखता था । परंतु शिक्षा जगत् के लिए म एकदम परकीय था । जब तक नवीन संशोधन के लिए हमारा शिक्षा विभाग अधा बना रहेगा तब तक सब कुछ व्यय है । शिक्षण क्रम म बच्चा की अभिरुचि बनाए रखकर, उसको विकसित करने की इच्छा उत्पन्न हाने स पहन ही, राष्ट्रीयकरण का नशा हमारे लिए प्रमुख हा गया । तब तक गर-मरकारी संस्थाना द्वारा प्रकाशित पुस्तका का आलाचना करना आसान था । अब तो दरयकार सरकार पर टीका टिप्पणी का कोई असर ही नहीं होता है । शिक्षा राजनीति के अधीन हो गयी है । उन पाठ्यक्रम मे चाह जसी अवाछनीय दाता के घुस आन पर भी किसी का उस ओर ध्यान ही नहीं जाता ।

भाषा शिक्षण

यह सब प्रयोग करने हुए मुझे अपन दश की पाठ्य-पुस्तका की विशेष कमियाँ दिखायी दी । हम पाठ्य पुस्तका के निर्माण म कोई निश्चित पद्धति नहीं अपना रहे । कानड की पुस्तकें लिखनेवाला को भाषा पर अधिकार चाहिए । शर्तों का

प्रयोग क्या किया जाता है, उनकी पुनरावृत्ति का क्या कारण है किस प्रकार की शैली भाषा को शक्ति प्रदान करती है, भाषा शिक्षण के विषय कस होने चाहिए, विज्ञान में और उसमें क्या सम्बन्ध है, आदि जनेक बातों के बारे में हम लोग सोचते ही नहीं। लोगो की बाल चाल की जा भाषा है उस, और मातभाषा सिखात समय हम व्याकरण की साहयता लनी चाहिए? यदि लें तो किस तरह? यह प्रश्न भी उठता है। भाषा तो सुनकर सीखन की चीज है। व्याकरण भी अपने आप आ जाना चाहिए। कन्नड व्याकरण सिद्धान्त समय वह सश्रुत अथवा अश्रेणी व्याकरण का अनुवाद नहीं हो इसका भी हमें ध्यान होना चाहिए। प्रकाशका का ध्यान पाठय पुस्तका से मिलनवाले लाभ पर ही रहता है। आजकल यही मनो-वृत्ति काम कर रही है। पाठय पुस्तको का स्तर एकदम पटिया स्थिति में पहुच चुका है।

अपन मन की तसल्ली के लिए पाठय पुस्तका की बात में अपने को दूर कर लिया। पर तु छोटे बच्चो के लिए सात आठ कहानियाँ और कविताएँ लिख कर प्रकाशित करायीं। बडों को उह खरोदकर बच्चो को देना चाहिए न? बच्चा का अपना ही एक अलग जगन हाना है। उसके बारे में जानने के लिए उपयुक्त पुस्तके हमारे यहाँ नहीं हैं। इस दिशा में कोई विशय प्रगति भी नहीं हुई है।

बहुत दिनों बाद

बाल सभा और बाल वन आदि मेरे क्रिया कथाएँ इस शताब्दी के चौथ दशक तक चल। उसके पन्द्रह वष बाद मैंने प्रौढा के लिए पुस्तके तैयार करने का काम शुरू किया था। दस वष बाद उन प्रश्ना की ओर मेरा मन फिर से उस बार मुडा। जिन दिना मैं बच्चो के लिए बज्ञानिक विषया के बारे में छोटी छोटी रचनाएँ आकषक ढग में तैयार करने में लगा हुआ था उही दिना दक्षिण भाषा सस्था वाला ने यूनेस्को की सहायता से एक विचार गोष्ठी जून 1963 में आयोजित करने का निश्चय किया। उनके द्वारा मुझे निर्देशक रूप में आमन्त्रित करने पर आश्चय हुआ। इसके लिए मुझमें कोई गव या अहकार नहीं था। इस बीच सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तके देख चुका था। इससे पहल भी बहुत सारे साहित्य का निर्माण हो चुका है। अब तो विज्ञान के बारे में अम्भुन और आकषक पुस्तके प्रकाशित हो रही हैं। उनके आकषण से प्रभावित हाकर मैं वसी ही पुस्तको की रचना करना चाहता था। उस आमन्त्रण ने मुझे उसी विषय पर काम करनेवाला स परिचय करने का अवसर प्रदान किया।

दक्षिण के कन्नड, तलुगु तमिल और मलेयाल प्रांतो की बाल पुस्तको के सखक चित्रकार, प्रकाशक और मुद्रका का एक सम्मलन बैंगलूर में हुआ। उसके

संचालन का सर्वाधिकार दक्षिण भारत संस्थान ने मुझे सौंपा। वह काम बड़ी जिम्मेदारी का था।

वहाँ आये प्रतिनिधिया से पता चला कि इस बारे में हमारे यहाँ अब तक हुआ काम बहुत कम है। पहल की लिखी कथा कहानियाँ अब दृष्टिगोचर ही नहीं होती। नय प्रयत्न करनेवाला की पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिलता है। काम करनेवाले लोग भी कम हैं। बच्चा के लिए आवश्यक पुस्तकें और विषय बहुत आकर्षक होने चाहिए इस बारे में दो मत नहीं थे। परन्तु ऐसी रचनाएँ बसे लियी जाएँ इस बार में विस्तार से विचार विमर्श हुआ। उसमें अधिक रुचि रखनेवाले हम ही लोगों को ऐसा लगा कि अब तक जितना काय हुआ है और जो विभिन्न क्षेत्रों में रहा है सबका ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है।

यदि इस काय को सफल करना हो तो उसे ऊँचे स्तर पर और बड़ी मात्रा में शुरू करना होगा। बच्चा का मानसिक स्तर, आयु और अभिवृत्ति देख कर हज़ारों की संख्या में पुस्तकें प्रकाशित होनी चाहिए। ऐसी प्रकाशित पुस्तकों का तुलनात्मक अध्ययन भी आवश्यक है। जो काय किया गया है उसमें यदि कहीं सफलता नहीं मिलती है तो उसके कारणों का परिशीलन करना होगा। उस सम्मेलन ने हमारे काय की गहराई और विस्तार का समझने में हमारी विशेष सहायता की।

शिक्षण की स्वायत्तता को अपने हाथ में लेकर सरकार ने पाठ्य पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण करके अपनी सङ्कुचित बुद्धि का परिचय दिया है। उसने स्वतंत्र रूप से लिखनेवाले लेखकों और प्रकाशकों को दूर रख कर शिक्षा-क्षेत्र में एक गलत कदम उठाया है। लेकिन आजकल सब पर राजनीति का नशा सवार है। बुद्धि को नियंत्रित करने का काम भी हमारे नेताओं ने शुरू कर दिया तो कोई आश्चर्य नहीं। हम तो प्रजातन्त्र का माग पर चल रहे हैं, परन्तु हमारा काम तो मन को दासता की ओर ले जा रहा है।

शिक्षा और अन्य विषय

पढ़ने में आसक्ति

शुरु में ही मरी पढ़ने की आदत सीमित थी। मैं कभी भी पुस्तक का बोझ नहीं रहा। विद्यार्थी जीवन में तो कहानियाँ की किताबें खूब पढ़ना था। वे भी अधिकांश अंग्रेजी की हुआ करती थी। बाद में कन्नड़ साहित्य में विहार किया। हाई-स्कूल के बाद कानपुर में प्रवेश पाने पर वहाँ के पुस्तकालय का यथासंभव उपयोग किया। मेरे प्राफेसर ने अंग्रेजी उपयाम पढ़ने का कहा था पर मैंने तो अपने देश में सर्वप्रथम किताबें ही अधिक उलट पलट कर देखीं। आगे पत्रिकाकारिता में काम रखने तक यानि असहयोग आन्दोलन में भाग लेने तक मैंने बहुत कम किताबें पढ़ी थीं। यद्यपि यह कहें कि वह पढ़ाई गाँधी साहित्य तक ही सीमित थी ता गहन न होगी। लेकिन जब मैं स्वयं पत्रिका का सम्पादन करना तो अपनी जिम्मेदारी समझने के बाद मुझे बहुत सी पुस्तकें पढ़नी पड़ीं। मरी रुचि कला विज्ञान और राजनीति में थी। अधिकतर मैं सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित पुस्तकें पढ़ने लगा। कहानी उद्योग पढ़ने का अभ्यास कम हो गया। नाटक लिखने शुरु करने के बाद मैंने अनेक पाश्चात्य नाटककारों की रचनाएँ पढ़ीं। बाद में मरी पढ़ाई अधिकतर अंग्रेजी पुस्तकें तक ही रह गयी। विविध विषयों के पान के लिए लालायित हाना मरा स्वभाव बन गया तो कहानी जानने के लिए कहाँ से पढ़ पाता ? उपयामकार हान पर भी मैंने दूसरे देशों के उद्योग उद्योग नहीं पढ़े। मुख्य कहानी का स्वाद ही नहीं जान पड़ा। जहाँ मानव का चरित्र भलीप्रकार विभिन्न हुआ है। एसी रचनाएँ पढ़ने लगी। मनोरंजन अथवा समय बचाने को मैं कभी नहीं पढ़ना था।

अंग्रेजी भाषा में विविध विषयों पर लिखी पुस्तकें न विशेष कर प्रभावित किया। विषय कोई भी हो, मुझे पसंद आता। मनोविज्ञान जिज्ञासा सम्बन्धी विचार विज्ञान के विविध अंग, मानवशास्त्र राजनीति आदि सभी तो चाहिए थे मुझे। मैं जिस सप्ताह में हूँ वह कस नित्य बदलता है यह जानने का कुतूहल मुझमें

सदा बना रहता है। आज भी ऐसे विषय जानने के लिए अनेक विदेशी पत्रिकाएँ और पुस्तकें मंगाकर पढ़ा करता हूँ।

पढ़ने के बाद ?

पढ़ाई से विशेष सम्बन्ध रहने से कन्नड भाषा का ज्ञान-सारिद्रघ्य देख कर बड़ा दुख हुआ। एक ओर पुराने साहित्य पर भरौसा रख कर बठे लखक, तो दूसरी ओर केवल कहानी कविता, उपन्यास आदि शुद्ध साहित्य से खुश होनेवाले, कदम-कदम पर अधिकचरे ज्ञान रखनेवाले या ज्ञान का दिखावा करनेवाले लोग के दशन होत हैं। समाज उन्नति तभी कर सकता है जब चतुमुखी ज्ञान वद्धि हो। हमारा सीमित ज्ञान और धाड़े से प्रयत्न समाज को कितना मजबूत कर सकते हैं ?

वचन से ही शुरू करना चाहिए

हम जो भी करते हैं वह मन में स्थिर हाता जाता है। बाद में जब मन में कोई बात स्थायी रूप से बठ जाती है और मन उसे बदलने का तैयार नहीं होता, तब चाहे जो भी यत्न किया जाय वह व्यर्थ ही जाता है। वचन में ज्ञान की लालसा जागत हा जाय तो आगे का माग सुगम बन जाता है। परंतु कर्नाटक में बच्चों को पाठ्य पुस्तक से बाहर झाँकने का अवकाश ही नहीं है। और विषय की बात तो दूर रही उनके लिए अच्छी कहानियों की पुस्तकें भी नहीं हैं।

अध्यापकों की हालत भी ऐसी ही है। अंग्रेजी में अभिन शाला में अध्यापकों को अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए आवश्यक साधन नहीं हैं। बच्चों का पढ़ाने की पाठ्य पुस्तकें मात्र ही उनके ज्ञान का भण्डार हो ता उसमें क्या उपलब्धि हो सकती है ?

हमारे यहाँ की पाठ्य पुस्तकें हो या बाल-साहित्य सबका सब एकदम नीरस है। उनमें बच्चा की लालसा जगाने या कल्पना का विकसित करने का या मनो विज्ञान समझने का प्रयास कही दिखायी नहीं देता। भूगोल जम मरस विषय को भी नीरस रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मैं अक्सर माँचा करता हूँ कि क्या परिस्थिति को बदलना नहीं चाहिए।

चित्रमय दक्षिण कन्नड

मर जिने पर मुख्य रूप से उसके प्राकृतिक मौल्य पर मुझ बड़ा अभिमान है। परंतु यहाँ के भूगोल पर लिखी पुस्तकें तो एकदम नीरस लगती हैं। इतने सुन्दर इलाक की कहानी लिखने गमय उमे मरम बनाकर नहीं लिखनी चाहिए थी ? इसलिए मैंने वहाँ का सचित्र भूगोल लिखने का एक प्रयत्न किया। मैं अपने

जिले क नदी, पहाड प्राणी घम व्यापार, बाहन, उद्याग, कुटीराद्या आदि को चित्रा द्वारा प्रस्तुत करन की बात सोची। उसके लिए कुछ फोटो एकत्रित किये। उनम से एक सौ चित्र चुनकर यात्रा विवरण के रूप म उह तयार किया। चित्र आदि अच्छे हा तो फिर छपायी भी बढ़िया होनी चाहिए। इसीलिए बासल मिशन सस्था द्वारा जमनी मे उस पुस्तक के चित्रा के पछा को ग्रन्थूर स छपवान का प्रबंध किया। पुस्तक तो सुंदर बन पही पर अध्यापकाने उस इस्तमान नही किया।

दक्षिण भारत

ज्यादा खच न करके, पर्याप्त चित्र इकट्ठ कर एक चित्रमय दक्षिण भारत का भूगोल लिया। उसके लिए विशाखापट्टण स लकर कयाकुमारी तक चक्कर लगा आया। वसे सहल द्वीप भी दख आया। श्रीलका एक सुन्दर द्वीप है। वहा साल भर हरियाली का साभ्राय बना रहता है। वहा का समुद्र तट भी मालबार (कन्नड जिले) के समान नदी और खाडियो स भरा है। मै सीलान म दस दिन घूम कर निगाम्बो कोलम्बो कडी, यू आर इलिया आदि नगर देख आया। कडी अति सुंदर पवतीय नगर है। नगर क बीच एक मनमोहक सरोवर है। बुद्ध क दांत के स्मारक क रूप म देवालम भी है। कहते है कि वह दांत हाथी क दांत जितना बडा था। कडी के समीप फडॅनियाँ नाम का एक प्रसिद्ध सस्योद्यान है। वह तीन ओर स नदी से घिरा है। बीच म दस विदश के अनेक पेड पौधे उगा राखे हैं।

श्रीलका मलय जाति क हमार समिल लोग और मलबार क मापिल्लो स भरा है। यहा के नगर के लोग आलसी हैं। इसके अलावा यहा रहनवाले यूरोपीय लोगों की नकल भी करने लग है। यह नकल दिने दिने बढ़ती जा रही है। आजकल श्रीलका भारत क समान स्वतंत्र है। वहाँ क जन जीवन म भी परिवर्तता होने लगा है।

जो भी हो इस घुमक्कडपन से काफी चित्र एकत्रित करके उपयुक्त पुस्तक लिखी। तब स मरा मन एक और बडा साहस करने को उतावला हो गया।

बाल प्रपंच

अंग्रेजी भाषा म सामान्य ज्ञान रखने वाला यक्ति भी अपना ज्ञान बढ़ाना चाह तो उस प्रत्येक विषय पर पुस्तकें मिल सकती हैं। बच्चों क लिए भी सक्डा पुस्तकें हैं। कन्नड म प्रौढों क लिए कुछ भी नहीं है। विद्यार्थी अपन आप भल ही न सही, अध्यापको की सहायता स भी कुछ पढना चाह तो नाम का भी पुस्तकें नहीं हैं। यदि एक भी विश्वकोष जसी पुस्तक क नड म होती ता ज्ञानवधन की इच्छा रखने वाला क लिए एक साधन बनता यह विचार मर मन म आया।

अब मैं क्या कर सकता था ? मपन देखना मेरा स्वभाव है । मैंने वह काय करने का निश्चय किया । वह दूसरा के लिए भले ही न सही, अपन लिए तो पानवधन का एक साधन होगा ही । जो विषय मैं नही पढे थ उह पढने का एक मौका मिलेगा मैंने सोचा ।

पहले मैं यह विचार किया कि उमम क्या क्या विषय लेने चाहिए । एने काम के लिए मैं ही पहला व्यक्ति नही था । अंग्रेजी मे आधार ने भी चिल्ड्रस साइक्लोपीडिया' (Children's Encyclopedia) की रचना की । जाज न्यूस (George Newns) कम्पनी वालो न पिक्टोरियल नॉलेज (Pictorial Knowledge) नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की थी । एसे अनेक ग्रंथ हैं । मुझे अंतिम पुस्तक पसंद आयी । उमम एक ही विषय को लेकर चलनेवालो का जो सुविधा है वह दूसरो मे नही है । दूसरो मे पान को ठूम-ठूस कर भर दिया गया लगता है । उनमे बच्चो के लिए अलग अलग प्रश्ना के उत्तर हैं । एक ही विषय धारावाहिक रूप से अध्ययन करने की उनमे सुविधा नही है ।

परंतु मुये यहाँ भी एक कमी दिखायी दी । उहाने भौतिक विज्ञान के बारे में जितना लिखा है उतना समाज विज्ञान के बारे मे नही । राजनीति, मत, धर्म, अयशास्त्र आदि पर वहाँ चर्चा नही हुई है । मेरा तो कानड मे यह पहला काय था । अत मैंने उन विषयो का भी इसम समावेश करने का विचार किया । मेरा अगला काम बडा विस्तृत था । उम कैसे पूरा किया जाय ? क्या मैं ही खुद को सबन समयकर सब विषयो पर लिखू या प्रत्येक विषय के विशेषज्ञो के पांव पकडकर विषय संग्रह करूँ ? दूसरा रास्ता ही मुझे ठीक लगा । परंतु मैं कर्नाटक मे रहता था । यह बात नही कि वहाँ विशेषज्ञ नही हैं पर उत काय के लिए आवश्यक व्यवस्था लिखने का संकल्प और उस्ताह तो दुलभ है । कर्नाटक का तो मुझे अच्छा परिचय है । एक पत्र का उत्तर छ मास के बाद देने वाला पर विश्वास करके मैं काम कैसे शुरू करता ? यदि उन पर विश्वास करके काम शुरू करता तब मरन के दिन को भी एक हजार बार आगे बढ़ाना पडता, तो भी पूरा नही होता । आज भी वही विश्वास अपन लोगा पर बचा है । मैंने सोचा चलो मैं अपना काम आप ही शुरू कर दूँ । आन ममय का मालिक मैं आप हूँ । मुये लगा कि काम पूरा न हो ता बहान की जरूरत नही पड़ेगी ।

विषय-संग्रह

चित्रमय दक्षिण कानड के एक को बनने से लगभग एक हजार रुपए मिले । उसमे से अधिकांश भाग पुस्तकें खरीदने के लिए इस्तेमाल किया । बात्री को टाक खच के लिए मुरतिन गया । जिन जिन विषयो की पुस्तकें चाहिए थी उ हें खरीद लेना पुस्तकालया की ओर भागने की अपेक्षा सरल है । वाम नगानार

दुनिया भर के कुछ साइंस म्यूजियम, चिडियाघर, और सरकारी औद्योगिक क्षेत्र और अनुसंधान संस्थाओं को पत्र लिखने लगा। अमरिका की अनेक संस्थाओं ने मुझे साहित्य और चित्र भिजवाए। आस्ट्रेलिया की सरकार (तब की चीन सरकार) और अफ्रीका की सरकार तथा कुछ संस्थाओं ने मुझे इसमें सहयोग दिया।

यदि मुझे किसी से कोई सहायता नहीं मिली तो हमारे ही देश की औद्योगिक संस्थाओं और बाहर की भारतीय संस्थाओं से नहीं मिली। पत्र लिखने पर भी बतवस्थ बनी रही। उन्हें हिलाया नहीं जा सका। अंत में मुझे ही सबकुछ पास जाना पड़ा।

काम शुरू करने के बाद आरम्भ में प्राकृतिक विज्ञान के बारे में कुछ अध्याय लिखे। आगे ऐसा लगा कि उससे काम नहीं बनेगा। वहाँ से बच गया जिसका मैंने 'मुनियद युद्ध में वृष्णन किया है। वहाँ कई अध्यापक मित्र थे। वहाँ मुझे यह विश्वास था कि यदि मैं बुद्धार में पड़ जाऊँ तो वे लोग सँभाल लेंगे। आवश्यक पुस्तकें मरा एक लिपिक और एक कमरा, यही भर साथ थे। इतना लेकर मैं वर्षों आरम्भ होने से पहले वहाँ पहुँच गया। वर्षों हान ही उस गाँव के चारों ओर नदियाँ हान से संचार ठप्प हो जाता है। वह मरे चातुर्मास के लिए अच्छी जगह थी। वहाँ एक डाकखाना हान से रोज़ डाकखाने पहुँचने में कोई दिक्कत नहीं थी।

चित्रों के लिए

एक एक विषय से सम्बन्धित पुस्तकें पढ़ कर लिखने लगा। लिखने के दिन ही उसे फिर से ठीक करके अपने लिपिक को उसकी प्रति बनाने को दे दता था। प्रतिदिन दस घण्टे काम करके चार मास तक धीरे धीरे मुख्य विषयों पर लिखकर काम पूरा कर सका। अगला काय था आवश्यक संशोधन। इस प्रकार छपवाने का काम समीप आया। लिखते समय ऐसा नहीं लगा था कि पुस्तक छप पाएगी। क्राउन एक चौथाई आकार के छह सौ पृष्ठों के तीन भाग। मरा यह काम मरी शक्ति से बाहर का था। उन्हें मैं यदि पाश्चात्य ढंग से प्रकाशित करता तो लगभग पचास हजार रुपये चाहिए थे।

मेरे मंगलूर के एक मित्र त्रिविगत वामन कुड्डुव एक भाग छाप कर देने को तयार हो गये। इसलिए पुस्तक के लिए आवश्यक चित्र संग्रह में लग गया। विशेषاً वे अनेक सघा और संस्थाओं से चित्र मँगवाय। कई एजेंसियाँ से उसे देकर चित्र मँगवाय। फिर भी लक्ष में बहुत सी जगहें भरनी थीं। हमारे ऐतिहासिक, भौगोलिक औद्योगिक विषयों के लिए अपेक्षित चित्रों की आवश्यकता थी। कुछ विशेष संस्थाओं की सहायता भी उसी भारत शाखा ने रोक रखी थी। इसके लिए कैमरा बगल में लटकाए मैं फिर भारत भ्रमण पर चल पड़ा।

भारत भ्रमण

गाँव स चलकर बम्बई दिल्ली, काशी, सारनाथ, बलकत्ता, जमशेदपुर, मद्रास, कायाकुमारी, मंटटूर हात हुए मसूर पहुँचा। इस यात्रा मे लगभग तीन हजार चित्र इकट्ठे हुए। मैं एक हजार से ज्यादा चित्र खींचे थे। अनक इजी नियरिंग काय और उद्योगो को प्रत्यक्ष देखने के बाद, पाण्डुलिपि प्रकाशन के लिए भेजने से पहले और भी सुधारने का मौका मिला। यहाँ फिर म मरी उस यात्रा की कहानी कहने की जरूरत नहीं है। विदेशी संस्थाओं की भारतीय शाखाओं स मिलकर ऊपरवालो से आये पत्र दिखाकर जरूरी जानकारी प्राप्त की। तब जाकर मुझे भह सातोप हुआ कि मैंने अपन हिस्से का काम पूरा कर लिया।

अब मैंने जो लिखा था उसे दूसरा को दिखाने का काम बाकी था। पाण्डुलिपि को ढोकर अपने विशेष मित्रों के घर गया, उनक साथ बैठ कर, उनस चर्चा करके, उन्हें बोर करके, आवश्यक सुधार करवाये। यह काम एक साल म पूरा हो गया। तब मैंने यह अनुभव किया कि जो रास्ता मैं अपनाया था वही ठीक था। यदि मैं कश्यो को मिलाकर यह काम शुरू करता तो अपनी आशा का तिलाजलि दनी पडती।

प्रकाशन का प्रयास

मउसे पहन मैं अपन इस प्रयास क बारे म मसूर के शिक्षा विभाग के निदेशक एन एम मुबराय स चर्चा की। मेरे कागजात के पुलद का देखकर उसम कया है यह भला वे कया समझ पात? कोई भी कया समझ सकता था? फिर भी उन्होंने कहा, "यदि आप उस प्रकाशित कराये तो हमारा विभाग कुछ प्रतिर्दा खरीद सकता है। इसका प्रबन्ध मैं कर दूंगा।" मुझे इतना ही भरोसा चाहिए था। मद्रास और बम्बई प्रांतो स भी मिलने वाला सम्मान और सहायता इतनी ही थी। मैं सोचा यदि पुरान मसूर म सहायता मिल जाती है तो छापन का साहस किया जा सकता है।

ठीक उसी समय बैंगलूर क निट्टूर श्रीनिवाम राय (संय शोधन मुद्रणालय के मालिक न इममे बहुत अमिरचि दिखायी। उन्होंने प्रकाशन क म्च क अनुमान के बारे मे मुझस पूछा। उन्होंने कहा ' यदि तुम मुद्रण, चित्रण, सम्पादन का ध्यक वहन कर लो तो मैं प्रकाशन का भार उठा सकता हू।' मैं वहाँ स मगलूर गया। धम प्रकाश छापाखाने की सहायता लकर काम शुरू किया। निट्टूरवा ने लो बेवस पसा का जिम्मा लिया था। छापाखाने वाला का, बर्बादवाला का दायित्व मुझ पर ही था। उस सब म हजारो का ध्यक था। मैंने जल्दबाजी की। श्रीनिवास राय ने भी ध्यक का अदाय किय बिना ही जल्दीबाजी की। पग का राज्य बडा निट्टूर होता है। अत निट्टूरजी मुझ स बट्टु हो गये। फिर भी,

दोनों की मित्रता में कुछ अनबन होने पर भी, सुदब से पाँच वष की अवधि में मेरी पुस्तक तीन भागों में प्रकाशित हो ही गयी ।

मुद्रण के समय मैं अधिकतर मगलूर में ही रहा । अतः मे ब्लॉक्स तैयार कराने की व्यवस्था भी मैंने की । चित्र बनाये । मूल प्रति धार धार ठीक करते करते थक गया था । श्रीवी सीतारामय्या भी उसे ठीक करके भेजते जाते थे और अपनी अमूल्य सलाह देकर पुस्तक की उपयुक्तता को बढ़ाते जाते थे ।

मेरा प्रयास पूरा हुआ । मेरा उससे जानाजान तो हुआ ही, धन की सहायता न हुई हो यह बात नहीं । प्रकाशक शुरु में कुछ वष तो अवश्य तग रहे । चाहे कसा भी भला "यक्ति क्या न हो उसे यह अवश्य महसूस हुए बिना नहीं रहा होगा कि हज़ारा रुपये के चक्कर में वह क्यों पड़े । पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इतनी लम्बी अवधि तक कष्ट उठाने से उन्हें यश मिला और लाभ भी ।

खर जो भी हो कम-से कम एक प्रकाशक ने इस साहित्यिक काम में आगे आने से मेरा सपना सफल हुआ । वे दिन थे कि बासल जसी बड़ी सस्या भी पीछे हट गयी थी ।

पूर्णता की बात

यह समझ नहीं कि ऐसी पुस्तक अपने आप में पूरा है । उस पर मेरी सीमाओं का भी प्रभाव था । शुरु में यहाँ के लोगों ने भी उसके बारे में कोई सम्मान नहीं दिखाया । एक कानड प्रेमी ने तो यहाँ तक कह दिया "जब मसूरवाले इस पर पसा लगा रहे हैं तो मगलूरवाले से ही किताब लिखवानी थी ? यहाँ क्या लिखनेवाले नहीं ?" एक और मित्र का कहना था 'एक आदमी ने लिखने पर क्या पुस्तक पूरी हो सकती है ?' एक और सुर निकला, 'इसका नाम वाल प्रपत्र क्या रख दिया ?' उनका आशय शायद यही रहा होगा कि जो पुस्तक बड़ा की समझ में नहीं आती उसे भला बच्चे क्या समझ पायेंगे ? इस बारे में मैं एक-दो समाधान की बात कह सकता हूँ ।

यदि किसी को एक भाषा का ज्ञान हो तो उसे यह नहीं समझना चाहिए कि उसे उस भाषा की हर पुस्तक समझ में आ जायेगी । अंग्रेजी में मद्रिक पास करने वाला अंग्रेजी साहित्य पढ़ तो सकता है पर समझ नहीं सकता । और उतन से ही वैज्ञानिक साहित्य को पढ़कर बिनकुल ही समझ नहीं सकता । विषय प्रवेश करते समय व्यक्ति का मान स्कोली ज्ञान पर्याप्त नहीं होता है । उस विषय की रूपरेखा भी कुछ पता हो तभी कुछ पल्ले पड़ेगा । एक तो हुई यह बात, दूसरी यह है कि अपने वातावरण में उससे सम्बन्धित वस्तुओं से तो उसका परिचय होना ही चाहिए । इन दोनों के न होने पर हाथ लगी किताब पढ़ते ही बात समझ में

वा जाएगा—यह केवल भ्रम और वरपना है। अंग्रेजों की चिल्ड्रन इन्सायरी-पेडिया (Children's Encyclopedia) बच्चों के लिए ही लिखी गयी है। पर वह इतनी सरल नहीं कि बच्चे उसे एकलम समझ लें। विज्ञान कहानी की तरह सरल नहीं। ज्ञान प्राप्ति के लिए तत्सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का परिचय भी आवश्यक है। परस्पर सम्बन्धित विषयों की जानकारी भी होनी चाहिए। यह बात नहीं है कि कन्नड जाननेवाला प्राथमिक शाला का छात्र 'बाल प्रपञ्च' पढ़कर उसे सहज ही समझ लगा। विषयों का पढ़ कर उन्हें समझने की गारंट रखनेवाला के लिए कन्नड में कोई प्रयत्न नहीं था। ऐसी परिस्थिति में मैंने विषयों का स्थूल परिचय देने के लिए एक प्रयास मात्र किया था। सामान्य कन्नड जानने वाले एक अध्यापक के लिए वह पाठ्य बहूत सहायक हो ही सकता है। बच्चा के समझने और पढ़ने की बहूत-सी सामग्री 'बाल प्रपञ्च' में है। वह ज्ञान की बाल्यावस्था है उसकी प्रौढावस्था नहीं। यह तो एक विषय में प्रवेश करने का साहममात्र है। 'बाल प्रपञ्च' को इसी दृष्टि से देखना चाहिए।

दूसरा संस्करण

'बाल प्रपञ्च' के प्रकाशन का काय 1938 तक समाप्त हो गया। उसके प्रकाशक की उम हिन्दी में भी प्रकाशित करने की इच्छा थी पर वह प्रयास सफल न हुआ। उमका प्रथम संस्करण केवल दो हजार का था। उसकी विप्री में आठ दस साल लग गये। उन दिनों में भी तीन भागों का काम छत्तीस रुपये में केवल स्कूल, सभ और शालाएँ ही खरीदती तो भी उम संस्करण की विप्री में इतना समय नहीं लगना था। परंतु हमारा तो कर्नाटक प्रदेश है, यहाँ तो दस वर्ष बीत जाने पर भी पुस्तक का पहला संस्करण नहीं बिक पाता हम यही मोच कर तसल्ली कर मनी पढी।

ऐसी परिस्थिति में पहला संस्करण बिकत ही दूसरा संस्करण निवास्त पाना एक कठिन काय है। कभी-कभार कुछ प्राहक उसकी प्रतिर्या मंगा करते हैं। फिर पुरान संस्करण का पुन संशोधन परिवर्धन करना हागा। जो ब्लॉक खराब हो गये हैं उन्हें दुबारा बनवाना पड़ेगा। कागज की कीमत भी तब से तिगुनी हो चुकी है छपाई का खर्च भी तिगुना बढ़ चुका है। इसलिए उमके प्रकाशक दूसरे संस्करण के चक्कर में नहीं पडे।

विज्ञान प्रपञ्च

इस दीप अवधि में 'बाल प्रपञ्च' के बहाने मैंने विज्ञान का जो अध्ययन शुरू किया था वह आरम्भभूति के लिए जारी रहा। इंग्लैण्ड और अमरिका में जन-सामान्य को विज्ञान का परिचय कराने के लिए हजारों पुस्तकें प्रकाशित हाती

हैं। हमारा देश भी आगे बढ़—यह इच्छा होने हुए भी स्वतंत्र भाग प्रवृत्ति अभी कम दिखाई दी। हमारा स्थिति ऐसी रही मानो पाषाण युग बाद विमान का युग आ गया हो। बेकार म बढबडाते हुए बैठे रहने की ही बंधो न प्रयत्न कर, साच कर मैंने एक योजना बनायी। बवल बनानि को ले कर पाच पाच सौ पृष्ठा की पाँच पुस्तकें लिख कर प्रकाशित प्रयत्न किया। वही मेरा विमान प्रपच है। इस बार लेखन और चित्र करने का ही नहीं छपाइ जोर प्रकाशन का भार भी मैंने अपन ऊपर लि उसके एक एक भाग पर अठारह स बीस हजार खच होने का अंजाज का भाग तयार हाते होते दूसर भाग के लिए भी पना जुटाना था। जो भी पहला भाग यह जगत प्रकाशित हाते-हाते जितनी भी निराशाए सकती है, धिर जायी। साय ही, सिर से पाँच तक बज से लद गया। ने घर कर लिया था और चारो ओर कष्ट मुह बाय छडे थे। मेरा ही ए खाना था जिमम बवल छह आदमी काम करत थ। व भी अस्त-तुष्ट थ। कर मुझे बडा दुख हुआ और बहुत चुरा लगा। उनम एक भावना दिखाई मैं उन्ही क कारण जी रहा हू। तब मैंन मोचा, उनकी सहायता की मुझे नहीं। तभी मरी पत्नी का स्वास्थ्य खराब हा गया। मन म शान्ति न भी उसे भूलने क लिए म अपन काम म डूब गया। सन 1939 मे 'विश्व का प्रथम भाग छप कर आ गया। दूसरा भाग दूसर थप के अंत म हुआ। मर कुछ मित्र दस बीन प्रतियाँ खरीदन को आगे आय। एक 7 बि का कड भी दिया। तब तक मैं बज म गल तक डूब चुका था। क विचार स ही डर लगन नगा, इसलिए अपना टापाखाना बच डाता। छ काम बाहर स करान लगा।

शासकीय सहायता

कनाटक विश्वविद्यालय वाला न बहुत महत्वानी करके पहल भाग भारत सरकार क बनानिक और शिक्षा मंत्रालय स सिफारिश की। क सरकार की राम मांगी। ममूर सरकार ने केवल पचास प्रतियाँ खरीदन कही। शायद क ड्र भी उतने स हाथ थी नता। पर अंत म उसने प दूसरे भाग क लिए पाँच पाँच हजार रुपये की सहायता क लिए अपनी द दी। मित्रा के कहन पर मैंन ममूर सरकार की भी सहायता के लिए पत्र लिखा पर काइ उत्तर तक न मिला। सरकार क मान घहा के सबम स्वतंत्र अधिकारी ही होत है न ? मैं उाक अनुग्रह की याचना करने नत उस अवधि म लागी ने मेरा काम बवल पम द ही नहीं किया बल्कि कुछ खरीदन भी आगे आय। मैंने अपनी सीमित आर्थिक स्थिति देख कर पाँ

की मूल योजना छोड़ दी। उसके बदले चार खण्डों में काम पूरा कर डाला। सितम्बर 1964 में चौथा खण्ड भी प्रकाशित हो गया। पुस्तकें भले ही धीरे धीरे बिकी लेकिन यह विश्वास होने लगा कि लोग मेरा साथ नहीं छोड़ेंगे।

प्रथम-मूल्यांकन

‘विज्ञान प्रपञ्च’ का मेरा साहस ‘बाल प्रपञ्च’ से भी बढ कर था। उसके लिए मैं जितना पन्ना बढ कम था। जो बात समझ में न आती उसे बार-बार विशेषज्ञों से समझनी पड़ती थी। उस पुस्तक को लिखने की अवधि में ही बहुत सी वैज्ञानिक धारणाएँ बदलने लगीं। लिख कर जो छपने को भेज दिया जाता, उसे भी बदलना पड़ता। यह काम अतन्त में मरी अपेक्षा के अनुसार उतनी तेजी से नहीं हो पाया। लिख कर छपने के बीच की अवधि में मैंने इसे कहीं पढा था यह याद भी नहीं रहता था।

इस पुस्तक में मैंने एक नया ही रास्ता पकडा था। पहले तीन खण्डों में शुद्ध विज्ञान के ही बारे में लिखा। चौथे में विज्ञान से सम्बन्धित अनेक कार्यों पर लिखा। उनमें चिकित्सा भी एक महत्वपूर्ण साधन है इसलिए चिकित्सा शास्त्र को भी उसमें जोडा। यह सब कुछ मेरे लिए नया था अतः सोच समझ कर लिखना था। फिर भी उसमें कुछ गलतियाँ रह जाना स्वाभाविक था। मेरे इस काय में आदि से अतन्त तक मेरे एक मित्र सहायक रहे। उडुपि के प्रोफेसर यू० एन० आचार्य ने मेरी सारी पाठ्यलिपियाँ और मूल लेखन को ठीक करने में अथक परिश्रम किया। केवल इस काय के प्रति मोह के कारण ही उन्होंने मुझे इतनी सहायता दी। ‘बाल प्रपञ्च’ लिखते समय स्वयं विद्वानों के पास जा कर उन्हें मुना कर ठीक कराकर लाता था। इस बार ऐसा नहीं किया।

परन्तु

मेरा उद्देश्य केवल यह था कि लोग में आधुनिक विज्ञान के प्रति रुचि पैदा की जाय और उस के बहुमुखी विकास का परिचय कराया जाय। इसी कारण से मैं उस काम में जुटा था। अपनी शक्ति और सीमाओं के अनुसार, मोसल्ले ब्रठा रह बच के नवयुवकों और प्रौढों के लिए मैंने यह प्रथम लिख था। आज का विज्ञान दिन प्रति दिन विकास के पथ पर बढ रहा है। नय-नय परिणामों के कारण पुरानी मान्यताओं को भूलना पड़ता है। इसीलिए अब अपनी इस पुस्तक को यदि मुझे उपयोगी बनाना है तो हर पाँच बच में एक बार पुनरीक्षण करके इस प्रकाशित कराना होगा। ऐसा करने पर प्राहक कहीं? उमर बढकर मुझे एक और प्रश्न सग कर रहा है।

यदि बचपन से बच्चा में पढाई के प्रति कुतूहल और अभिरुचि पैदा न की

हैं। हमारा देश भी आगे बढ़—यह इच्छा होन हुए भी स्वतंत्र भारत में वह प्रवृत्ति अभी काम दिखाई दी। हमारी स्थिति ऐसी रही मानो पापाण युग के एकदम बाद विज्ञान का युग आ गया हो। बेकार में बड़बड़ाते हुए बैठे रहने की अपेक्षा मैं ही क्यों न प्रयत्न करूँ, साच कर मैंने एक योजना बनायी। केवल वज्ञानिक विषयों को ले कर पाँच पाँच सौ पृष्ठों की पाँच पुस्तकें लिख कर प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया। वही मेरा 'विज्ञान प्रपंच' है। इस बार लखन और चित्र एकत्रित करने का ही नहीं छपाई और प्रकाशन का भार भी मैंने अपने ऊपर लिया। पर उसके एक एक भाग पर अठारह सौ बीस हजार खर्च होने का आँदाज था। पहला भाग तयार होते होते दूसरे भाग के लिए भी पैसा जुटाना था। जो भी हो उसका पहला भाग 'यह जगत प्रकाशित होते होते जितनी भी निराशाएँ संभव हो सकती हैं, घिर जायीं। साथ ही सिर से पाँच तक कज सलद गया। विज्ञानों ने घर कर लिया था और चारों ओर कष्ट मुँह बाये खड़े थे। मेरा ही एक छापा खाना था जिसमें केवल छह आठों काम करते थे। व भी अतंतुष्ट थे। यह देख कर मुझ बड़ा दुख हुआ और बहुत बुरा लगा। उनमें एक भावना दिखायी दी कि मैं उन्हीं के कारण जी रहा हूँ। तब मैंने मोचा, उनकी सहायता की मुझे जरूरत नहीं। तभी मेरी पत्नी का स्वास्थ्य खराब हो गया। मन में शान्ति न हान पर भी उसे भूलने के लिए मैं अपने काम में डूब गया। सन् 1939 में 'विज्ञान प्रपंच' का प्रथम भाग छप कर आ गया। दूसरा भाग दूसरे वर्ष के अंत में प्रकाशित हुआ। मेरे कुछ मित्र दस बीस प्रतिपाँ खरीदने को आगे आये। एक ने बिना ब्याज का कज भी दिया। तब तक मैं कज में गल तक डूब चुका था। कज लन के विचार से ही डर लगन रागा, इसलिए अपना छापाखाना बेच डाला। छापायी का काम बाहर से कराने लगा।

शासकीय सहायता

कर्नाटक विश्वविद्यालय बाला न बहुत महत्वानी करके पहले भाग के लिए भारत सरकार के वैज्ञानिक और शिक्षा मंत्रालय से सिफारिश की। केन्द्र न मसूर सरकार को राम मांगी। मसूर सरकार ने केवल पचास प्रतिपाँ खरीदने की बात कही। शायद केन्द्र भी उतने से हाथ धा लेता। पर अंत में उसने पहल और दूसरे भाग के लिए पाँच पाँच हजार रुपये की सहायता के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। मित्रों के कहन पर मैंने मसूर सरकार को भी सहायता के लिए अलग से पत्र लिखा पर कोई उत्तर तक न मिला। सरकार के मान वहाँ के सबसक्तिमान स्वतंत्र अधिकारी हो होने हैं न? मैं उनके अनुग्रह को याचना करन नहीं गया। उस अवधि में लोणा न मेरा काम केवल पस द ही नहा किया, बल्कि कुछ प्रतिपाँ खरीदन भी आग आय। मैं अपनी सीमित आर्थिक स्थिति देख कर पाँच पण्डों

की मूल योजना छोड़ दी। उसके बदले चार खण्डों में काम पूरा कर डाला। सितम्बर 1964 में चौथा खण्ड भी प्रकाशित हो गया। पुस्तकें भले ही धीरे धीरे बिकी लेकिन यह विश्वास होने लगा कि लोग मेरा साथ नहीं छोड़ेंगे।

प्रथम चरण

'विज्ञान प्रपञ्च' का मेरा साहस 'बाल प्रपञ्च' से भी बड़ा था। उसके लिए मैं जितना पढ़ता वह कम था। जो बात समझ में न आती उसे बार-बार विशेषज्ञों से समझनी होती थी। उस पुस्तक को लिखने की अवधि में ही बहुत सी वैज्ञानिक घटनाएँ बतलने लगीं। लिख कर जो छपने का भेज दिया जाता, उसे भी बदलना पड़ता। यह काम अतः मेरी अपेक्षा के अनुसार उतनी तजी से नहीं हो पाया। लिख कर छपने के बीच की अवधि में मैंने इसे कहीं पढ़ा था यह याद भी नहीं रहता था।

इस पुस्तक में मैंने एक नया ही रास्ता पकड़ा था। पहले तीन खण्डों में शुद्ध विज्ञान के ही बारे में लिखा। चौथे में विज्ञान से सम्बंधित अनेक कार्यों पर लिखा। उसमें चिकित्सा भी एक महत्वपूर्ण साधन है इसलिए चिकित्सा शास्त्र को भी उसमें जोड़ा। यह सब कुछ मेरे लिए नया था अतः सोच समझ कर लिखना था। फिर भी उसमें कुछ गलतियाँ रह जाना स्वाभाविक था। मेरे इस कार्य में आदि से अंत तक मेरे एक मित्र सहायक रहे। उडुपि के प्रोफेसर यू० एन० आचार्य ने मेरी सारी पाठ्यलिपियाँ और मूल लेखन को ठीक करने में अत्यंत परिश्रम किया। केवल इस कार्य के प्रति मोह के कारण ही उन्होंने मुझे इतनी सहायता दी। 'बाल प्रपञ्च' लिखते समय स्वयं विद्वानों के पास जा कर उन्हें सुना कर ठीक कराकर लाता था। इस बार ऐसा नहीं किया।

परन्तु

मेरा उद्देश्य केवल यह था कि साधारण आधुनिक विज्ञान के प्रति रुचि पैदा की जाय और उस के बहुमुखी विकास का परिचय कराया जाय। इसी कारण से मैं उस काम में जुटा था। अपनी शक्ति और सीमाओं के अनुसार सोलह अठारह वर्ष के नवयुवकों और प्रौढ़ों के लिए मैंने यह ग्रन्थ लिखी थी। आज का विज्ञान दिन प्रति दिन विकास के पथ पर बढ़ रहा है। नये नये परिणामों के कारण पुरानी मायाताओं को भूलना पड़ता है। इसीलिए अब अपनी इस पुस्तक को यदि मुझे उपयोगी बनाना है तो हर पाँच वर्ष में एक बार पुनरीक्षण करके इसे प्रकाशित कराना होगा। ऐसा करने पर ग्राहक कहीं? उससे बढ़कर मुझे एक और प्रश्न तय कर रहा है।

यदि बचपन से बच्चा में पढ़ाई के प्रति कुतूहल और अभिरुचि पैदा न की

जाय तो क्या ब बाला छोड़ने के बाद आग पढ़ेंगे ? कितने लोग पढ़ सकते हैं ? ऐसे लोग क्या पढ़ेंगे ? पढ़ने के लिए भी कानड म भला है भी क्या ? सबडा विपणों और सबडा लागा क मन और अभिरुचि को छू पानवाली पुस्तकें प्रकाशित करनेवाले हैं ? दस पाच कहानी उपयासा के अलावा कानड-मुस्तकालया में रहता ही क्या है ? खाली पढ़ रहते हैं । तीन अलमारिया म हमारी सारो काड को पुस्तकें भरी जा सकती हैं । हमारे यहाँ किमी पुस्तक का पहला सस्करण निकलने के बाद दूसरा निकलता ही नहीं ।

लोगो मे पढ़ने की रुचि अकुरित करनी हो तो उनके अनुमार लिखने वाला को आवश्यकता है । कम मे कम मात आठ बप के बच्चो मे यह इच्छा जगानी होगी । उनका कौतूहल बढ़ाना होगा । इसी उद्देश्य स मु दर-मु दर किताबें छापनी हांगी । बुढाप मे दूसरा बचपन शुरू होता है । एमे बचपन की इच्छा अब मेरे भीतर जाग रही है । आजकल मेर मन म दस बारह बप के बच्चों के लिए पुस्तकें प्रकाशित करने की इच्छा है । उनमे सुदर-मुदर बण बिद भर कर कम दामो म बचना हा तो कम से कम दस हजार प्रतियाँ एक बार म छपानी हांगी । तब जा कर कही आउन चौथाइ आकार की 48 पंठा की एक पुस्तक तीन रुपये मे बिक सकती है । तब यह समस्या है कि क्या ऐसे काम म सहयाग देन हमारी कानड जनता अपन बच्चा के लिए इतनी कीमत दे कर पुस्तक खरीयेगी ? खरीदे या न खरीदे पर यह काम करना था अत इस दिशा में एकाग्र पुस्तक छपवाकर उमका भविष्य देखने का प्रयास किया । अत्यन साहस करके इतना खच उठा गर उसक दो भाग प्रकाशित भी किये । लेकिन फिर उसका तीसरा भाग प्रकाशित नहीं करा सका ।

नाटक की दुनिया में

सपनों के सागर पर

चाहे साहित्य का क्षेत्र हो या कला का, सपनों के सागर पर नौका विहार का एक अपना आनंद है वहाँ आगाध सुख शांति होती है। परंतु लोग जसा समझते हैं, वसा वह केवल कल्पना का राज्य नहीं है। उसे जीवन की पृष्ठभूमि में विकसित होना चाहिए अनुभव के आहार का अंतःकरण में विधिवत पाक होना चाहिए। जीवन का भूलनेवाला सपने या अनुभवा की मरदण्डहीन कल्पनाएँ बहुत दिन तक नहीं चलती। कई लोग रोजक काम में अपना जीवन घिसकर तपित पा जाते हैं। मन में सपने बुननेवाला व्यक्तित्व को भी जीवन द्वारा प्रदान किये जानेवाले अनुभव से ही मानसिक सृष्टि का सजन करना चाहिए। शरीर परिश्रम भूल ही न करे, मन को तो करना ही पड़ता है। प्रेम से कोई भी काम किया जाय, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, उससे आंतरिक सन्तोष तो मिलता ही है। मैं स्वभाव से शारीरिक श्रम की दृष्टि से 'आलसी' रहा हूँ। भ्रमण करने पर भी आलसी बना रहा। फूला का बगीचा देखकर आनंद अनुभव किया है। बाग को फूलत फलन देखने में सहायक बना हूँ। पर शारीरिक श्रम दूसरा का होता रहा है। मेरे अधिकतर काम मानसिक व्यापार से सम्बन्धित हैं। मैं स्वतंत्र मनावृत्ति का हूँ। अतः जो काम मेरे लिए प्रिय नहीं, उन्हें जबरदस्ती कर नहीं सकता। इसलिए मेरा श्रम ही मेरे आनंद की सामग्री है। उसमें श्रम नहीं मानता। श्रम पूर्वक लिखने की याद भी मुझे नहीं है। जिस काम को करते समय तत्प्रीण हूँ, मैं अपने आपको न भूल जाऊँ तो उस काम में मैं हाथ नहीं लगाता। एक घुट बिच जानवाले काम में श्रम का अनुभव कहाँ हो पाता है? साधन ही विषय अपने आप आ जाता है, कल्पनाएँ घुसती चली जाती हैं। उसमें महज आनंद भी मिचता रहता है हाँ, इसने लिए उस विषय का विशेष अनुभव होना चाहिए। दिन मध्य करने जो अनुभव प्राप्त किया उसकी सहायता से विविध क्षेत्रों में प्रयोग करने का साहस भी किया है। पर्याप्त अभ्यास के बिना कोई भी साहस काय करना

नहीं होता। सफलता के लिए अभ्यास की बहुत जरूरत होती है। यह अभ्यास जब प्रिय हो जाता है तब उसमें थक दिखाई ही नहीं देता। हम अपनी सुप्त शक्ति का ज्ञान काम करते समय पता चलता है। मुझसे यह बन पड़ेगा या नहीं, यह सोचते बठे रहना मेरा स्वभाव नहीं है। चाह हो या न हो, कर डालना ही मेरा स्वभाव है। होगा कि नहीं होगा, सोचने बठे रहनेवाले का यह कसे पता चल सकता है ?

मेरा बहिष्कृत क्षेत्र कोई नहीं है। मैंने सब में हाथ डालकर देखा है। साहित्य के विविध अंग कला के विविध रूप मेरे कवि स्वभाव के शिकार बन चुके हैं। कुछ में यदि यश मिला है तो बटूती में अपयश भी मिला। तो उससे क्या हुआ ? मेरा सीखना व्यर्थ तो नहीं गया। अगले अध्याय में अपने मन की इन वीटाओं के बारे में लिखूंगा। पहले नाट्य-जगत के बारे में कुछ कहना चाहूंगा।

अभिनय की बातें

मैंने सबसे पहले गडकरी के मराठी नाटक 'एकच प्याला' का कानड में अनुवाद किया था। उसके मंचन होने का अवसर मिलन से अभिनय का मौका भी मिला। उसके एकदम बाद 'सती सयुक्त' नाम का पांच अंकों का नाटक लिखा। उसके उपरांत सात आठ नाटक घसीट डाले। यहाँ घसीटना शब्द ही ठीक है। इसका कारण यह है कि मन में जो आता है उस घसीट डालना मेरा स्वभाव है। बातें और विचारों के रोक टोक आन रहने चाहिए। मैं अपने आप को विविध पात्रों में ढालकर अपने मनोराज्य में अभिनय करते हुए बट कर लिखता चला जाता हूँ। सिर खुजलाते हुए सोच-सोचकर लिखन की बात ही नहीं उठती। एक दिन में कम से-कम एक अंक तो लिख ही डालना चाहिए, एक विचार पूरा हो जाना चाहिए। पाँच छ अंकों का नाटक पांच छ दिन में पूरा हो जाना चाहिए। जब मैं नहीं लिख रहा होता तब भले मैं बठा रहूँ साया रहूँ या चलता रहूँ मेरे नाटक का पात्र मेरी आँखा के सामने नाचते रहते हैं और कथा की आग बढ़ाते रहते हैं। नाटक की स्थूल रूपरेखा या उद्देश्य मन में होना आवश्यक है। उसका सूक्ष्म विवरण अपने आप आ जाता है। वही सज्जन की समाधि है। पात्रों का वार्तालाप सहज ढंग से अपने आप आते जाना चाहिए। केवल शब्द के मोह के लिए वार्तालाप नहीं चलना चाहिए। इतना होने पर भी एक नाटक लिखन के बाद उसके अभिनय के समय कलाकार के मुख से जब शब्द निकलते हैं तब कई बार लिखन की कम जोरी पकड़ में आती है। गडकरी के नाटक का जब अभिनय प्रारम्भ हुआ तो उसकी कई कमजोरियाँ दिखायी देने लगीं। उसमें एक अध का स्वगत कथन उनीस पन्नों में था। उसके वार्तालाप में पुनरावृत्ति बहुत थी और वह अनेक उपायों और अलंकारों से भरा था। जब हम उसका अभिनय करने लगे तब

लेखन की कमजोरी दीखने लगी। एक ही बात पाँच उपमाओं द्वारा कहनी हो तो प्रत्येक उपमा को उचित स्वर भार और स्थायित्व देना पड़ता है। मद्र और मध्यम और तारक—इन तीनों स्थानों का उपयोग कर लेने के बाद यदि और भी उपमाएँ हो और उन्हें बार बार उसी रीति से कहा जाय तो चीज पसन्द नहीं आयेगी। ऐसे प्रयोगों के कारण मुझे श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य का अन्तर स्पष्ट हो चला। स्पष्ट कहना चाहूँ तो नाटक में 'श्रव्य' और 'दृश्य' के कोई अर्थ नहीं है। नाटक है या नाटक नहीं है यही अंतर है। श्रव्य नाटक लिखन की अपेक्षा सीधे उपयोग लिखा जा सकता है। नाटक के लिए भावपूर्ण अभिनय की आवश्यकता हाती है। प्रयासपूर्वक लाये गये चमत्कार उमम काम नहीं देते। नाटक शब्द ही अपना अर्थ स्वयं स्पष्ट कर देता है। अभिनीत नहीं पानवाला शब्द यदि नाटक में आये तो वह बाध हो जाता है, नाटक नहीं।

सत्य का अनुभव

मेरा शुरू के नाटक 'सेवा सदन', 'सुख बेतिल' (सुख कहीं), 'होणे याहूँ' (कौन जिम्मेदार) आदि में अभिनेता एक प्रकार का उपदेशक होता था। वह उदात्त तत्त्व का प्रस्तुत करनेवाला अथवा निन्दनीय विचारा का चण्डन करनेवाला एक व्यक्तित्व मात्र होता था। सज्जन और दुजन पात्रों के सघषक अवसर देकर 'सत्यमेव जयते' नानतम जैसे नाटक से मैं दूसरा रास्ता पकड़ा। स्त्री पात्रप्रत्य, दशप्रेम पूजावाद की समस्याएँ सत्य अहिंसा—इन्हीं जनप्रिय विषयों का लेकर नाटक का मुख्यपात्र चलत था। मेरे ये नाटक नये जमाने के विध्वंस विजय के समान थे। मेरे प्रिय आदर्शों के लिए उनमें भावातिरेक गुंता था। भावुक दशा का जो ऐसे नाटक आज भी पसन्द आते हैं। उसके लखन नाटक के पात्रों का मनुष्य के रूप में दिखात अवश्य पर वे पात्र वास्तविक मानव से नहीं लग पाते। जीवन में मानव गुण दापा का पुतला होता है। उनके पात्र अपने यानावरण में आकषण में पड़ते नहीं। आदर्श चाहे जो रह यदि हम उसी यानावरण में बढ़ें तो हम भला कितने खराब या अच्छे हो सकते हैं हम यह पान होना चाहिए। तब जाकर नाटक जीवन का सहज प्रतिबिम्ब हाता है नहीं तो नाटक वास्तविकता से हटकर कल्पनालोका की वस्तु बन जाता है। वह कल्पनालाक सागा के अनुभव के अनुकूल हो तभी वह उनमें ममवदना पदा कर सकता है। जिन मुख्य पात्रों का हम अनुभव नहीं कर सकते क्या उन्हें हम दूसरे में प्रयोग कर सकते हैं? क्या वे स्वरा और कृत्रिम पात्रों की रचना से हमें इस प्रकार का आकषणता पान कर सकते हैं पर मत्त और मौल्य की अभिव्यक्ति नहीं दे सकते। बड़ा जाता है कि सत्य ही मौल्य है। मरने अनुभव को जा गत्य छू नहीं सकता वह दूसरे का सत्य होने पर भी अपने अनुभव का सत्य नहीं बन सकता।

नाटक के प्रयाग क रास्ते में अपनी वाता की माहकता का शिकार नहीं हुआ। पर अभिनय के पागलपन का शिकार जवश ही गया। कठिन प्रसंगों का चित्रण मुझे प्रिय था। उसके लिए उपयुक्त स्थान में अपने नाटकों में अवश्य देता। इस पात्र का सजन और सनिवश दाना जीव त ही उठत है।

विदेशी नाटककार

इन प्रयागों के समय मेरा मन दूसरे दशों के नाटकों की ओर विशेष रूप से गया। जेक्सपियर, शेक्सपियर, शॉ, समरसेट मारम, गाल्सबर्दी, मटरलिन, पिरडला, युजिन-ओ-नील आदि की कृतियाँ पढ़कर मुझे नाट्य रचना का पर्याप्त ज्ञान हुआ। जेक्सपियर कवि और नाटककार थे। उन्होंने प्राचीन इतिहास के बारे में बार-बार लिखा है। उन्हें मानव के स्वभाव का अगाध परिचय था। मैं उनको हमलट नाटक का मंचन की दृष्टि से अनुवाद किया। वह नाटक 'हमलट' नाम से सन् 1982 में छपा।

सामाजिक नाटककारों में इनमें का अलग ही ढंग है। जन जीवन की मूल-भूत समस्याओं को वह लागू के सामने रखता है। उसके पात्र और वातावरण अत्यंत वास्तविक होते हैं। वार्तालाप बहुत ही प्रभावशाली होता है। बर्नाडशा महान मध्यावी है। वह जितना तीखा है उतना तीखापन उसका नाटक में भी है। उसके पात्र वास्तविक जीवन के प्रतीक होने पर भी वे मनोविज्ञान के विश्लेषण में सहायक होते हैं। जिन चीजों को साधारण लोग देख नहीं सकते वह उन्हें देख लेता है। उसके नाटक उसी के द्वारा सभव हैं। मानव के अमंगल गुण चरित्र भिन्न भिन्न व्यक्तित्वों को वह जिस तरह प्रस्तुत कर सकता है, वैसा दूसरा नहीं। पिरडला का और ही अदभुत व्यक्तित्व है। वह हमारे सम्मुख चार राह चलनेवाला को खड़ा करके वाता में लगा देता है, बाद में नाटक को स्वाभाविक रूप से गति देता है। अमुक व्यक्तियों में अमुक प्रकार की घटना हो गयी यह कहने के बजाय अमुक घटना हो सकती है यह दिखा देता है। वह मनोविज्ञान का जादूगर है। आनील और एक मध्यावी नाटककार है। पुलित्जर पुरस्कार पानवाले मध्यावी ओ-नील ने स्वाभाविक चित्रण उपस्थित करने के लिए मनोवैज्ञानिक ढंग से सहज पात्रों का सजन किया है। उसकी 'विषाद द हारिजन' एक बहुत श्रेष्ठ कृति है। यह कवि नहीं केवल नाटककार है। उनका एक अपना माग है। परन्तु लाडलमनि मटरलिन, टालमटाय जस लागू ने दूसरा ही माग अपनाया। वे आदर्श वादी हैं। वास्तविक जीवन का विम्व प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य नहीं। इसकी अपेक्षा शाश्वत मानवीय समस्याओं का समाधान उनके लिए मुख्य है। इसलिए उनके नाटकों के पात्र राजा, देवता, पशु पक्षी चाह तो भी वस्तु ही मानव जीवन के साथ का ही प्रस्तुत करते हैं। कला में 'सत्य' और 'वास्तविकता' शा

को सीमित अर्थों में प्रयोग नहीं करना चाहिए। जो दीखता है वास्तविकता उससे भिन्न होती है। वह भ्रमवृत्तियाँ हैं, वह दिखावा है उसमें भीतर जाकर देखने पर भ्रम उत्पन्न होता है। पर उस पर विश्वास कम किया जाय? प्रत्येक कलाकार को अपने स्वभाव के अनुसार माग और शैली पसन्द आती है।

भास के नाटक

इन सबको पढ़ लेने के बाद मुझे हर ढंग को आजमाने की इच्छा हुई। लगा कि एक उद्देश्य के लिए अलग-अलग रास्ता अच्छा रहता है। मैं भावना प्रधान नाटक लिखने का रास्ता छोड़कर नये रास्ते आजमाने लगा। पाश्चात्या में प्रचलित एक अंक और एक दृश्य वाला ढंग अत्यन्त प्रभावशाली लगा। कई बार नाटक में काल की एकता को बनाय रखना कठिन होने पर भी नाटकों में आने वाले असम्बद्ध प्रलाप और असंगत प्रसंग तथा अनावश्यक पात्रों के लिए वहाँ स्थान नहीं होता। नाटक के उद्देश्य में सहायक न बननवाली सभी चीजें असंगत होती हैं। लोगो को केवल हँसान के लिए ही विदूषक को या वैसा ही दूसरा काम करनेवाले दूसरे नामवाले व्यक्ति को भी उसमें साने का अवकाश नहीं रहता। मैंने समझा था कि यह पाश्चात्य पद्धति है। परन्तु भास के एकांकी नाटक पढ़ने पर मेरी आँखें खुल गयीं। उनके कई एकांकी हैं और 'स्वप्नवासवदत्तम्' जैसे अनेक अंकों के नाटक हैं। भास के नाटकों में हमें वातालाप में मितव्ययता, पात्रों में औचित्य तथा प्रसंगों में गम्भीरता—ये तीनों गुण मिलते हैं।

अब तक मैंने तीस एकांकी नाटक लिखे हैं। विषयों में भी विविधता साने का प्रयास किया है, वे भले ही नवरस युक्त न हों। ('नवरसयुक्त—यह भी एक अधीन बात हो चुकी है। मुख्य रस के लिए जा भी रसपोषक न होता वह रसदोष हो सकता है।) कुछ रसों का चित्रण करने के कुछ प्रश्नों का प्रतिपादन भी किया है। 'मूर्तिमदवे' (मूर्ति का विवाह) नाटक में बंकार का आडम्बर, तिमिमप्यन वग-रणे' (तिम्मप्या का छौंक) नाटक में अनावश्यक वाचालता, 'नालकनय पिशाचो' (पीया पिशाच) नाटक में गुप्तरोग का बहिरंग चित्र दिखाया है।

सरल रंगले

'सरल रंगले' (एक नाट्य रूप) लिखने समय मैंने विचार किया कि यदि समय के ऐक्य को परे रखकर नाटक लिखे जायें तो सुविधा रहेगी। नाटक खेलते समय मैंने अलग प्रसंग माग ढूँढ़ने का प्रयास किया, इसलिए नयी-नयी शक्तियाँ अपनायीं। एक रंगले में मैंने अज्ञान के परिणाम को लेकर लिखा। विषय को उपमेय के रूप में 'रक्त बलि' में दिखाया है। स्त्री पुरुष के दाम्पत्य जीवन के स्थान मान को 'देवि देहि' में चित्रित किया। मानव ही अरुण भगवान् का

निर्माता है। यह भाव 'हिरिय देवरू' (महान भगवान्) में चित्रित किया है। उनका मैंने छाया-नाटक के रूप में प्रदर्शन किया। हैमलेट' का अनुवाद भी इसी शैली पर किया।

कुछ और नाटकों में अनुप्रासयुक्त, चरणों में बीस मात्राओं के पद्या की रचना की। इस प्रास की हास्यात्पादक अवस्था के लिए कुछ व्यंग्य नाटकों में प्रयोग किया। दूसरे माध्यमों से भी व्यंग्य को मुख्य उद्देश्य रख कर कुछ कल्पना प्रधान नाटक लिखे। दूसरे महायुद्ध की कहानी का गेह्वर सत्य (जीतनेवालों का सत्य) नामक नाटक में चित्रित किया। उसी प्रकार चूहे धूम, सियार घुत्ते आदि को मुख्य पात्र बनाकर आधुनिक प्रजातंत्र पर 'निम्न वाट यारिरो' (आपका बोट किसका) नामक नाटक लिखा। मैंने कुछ ऐसे प्रयोग किये हैं जिनमें प्रास का विशेष प्रयोजन और विविध छटा की उपयोगिता स्पष्ट है। ये अप्रैज़ी के हास्य नाटक (Burlesque) जैसे हैं। इनका छोटे बच्चों द्वारा प्रदर्शन कराया। बच्चा को यंग्य भले ही समझ न आये हाग परंतु उनके प्रास और बेटुके वार्तालाप आदि से बच्चे प्रसन्न हुए यह मैंने देखा। बच्चों के लिए यह माध्यम अत्यंत सरल और उपयोगी है।

गीत नाटक

आशवादी नाटक में भावुकता का प्रमुखता देकर कुछ गीत नाटक लिखने का साहस किया। हमारे यहां 'अपेरा नहीं हैं। संगीत और गद्य दोनों को मिलाकर उन्हें बिगाड़ने की अपेक्षा उन्हें अलग अलग ढंग से प्रयोग करना अधिक अच्छा लगा। ऐसा पहला प्रयत्न मैंने सन 1931 अथवा 1932 में किया था। 'मुक्त द्वार' नाटक भी उसी का फल है। वह एक आशवादी नाटक है। उसमें ऐतिहासिक और भिन्न भिन्न समय के पात्र होने पर भी एक ही समय पर लाने का प्रयत्न किया है। यह नाटक लगभग माग शैली पर है। संगीत के लिए यह नाटक सही धटता है। आग चलकर ऐम ही कुछ गीत नाटक लिखे, जिनमें 'किस्सा गीतमी', 'सावित्री सत्यवान', 'बदुक्बहुदु' (जो मकत है), 'सबकुण', 'बुद्धादय' आदि प्रमुख हैं। इसी बीच साकगीना में भा परिवर्धन पा लिया था। उसी गीत शैली के आधार पर ग्रामीण पात्रों का सहज चित्रण किया गया है। उनके प्रेम का चित्रण करते हुए 'सावित्रिय सप' और 'यारो एदरू (किसने कहा?)' नामक दो नाटकों की रचना की।

गीत-नाटकों में छ वष पूर्व लिखा कीचक मरघी नाटक ही मेरा अन्तिम नाटक है। उसका मंचन हुआ है। उस नाटक का मंचन करके समय यह जानकारी रखना आवश्यक होता है कि मूल पद्य अमुक राग में सम्बन्धित है। क्वल राग जाननवालों के गा दन से ही काम नहीं चलता, उसमें अभिनय भी रहता है।

अभिनय में शब्दों का उतार चढ़ाव, वेग विरति, आकषण आदि का भी ध्यान रखना पड़ता है। यदि यह न हो तो नाटक एक संगीत-सभा हो जाता है। कुछ ऐसे नाटक भी हैं जिनमें सभी पात्र एक ही श्रुति में गला मिलाकर व दगान गाते हैं। ऐसे नाटकों का मैंने अलग अलग ढंग से प्रदर्शन करने का प्रयास किया। व आवाशवाणी द्वारा भी प्रसारित हुए। ऐसे नाटक लोकगीत की लय पर भी लिखे हैं। वे गद्य-नाटकों से अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए। जहाँ बाह्य यथाय आवश्यक न हो और जहाँ भाव और रस सूक्ष्म होते हैं वहाँ गीतों का माध्यम प्रभावशाली रहता है।

यक्षगान गीत-नाटक

यह कहना चाहिए कि हमारे यक्षगान (प्रबन्ध नाटक) हमारे आदि गीत नाटक हैं। उनमें एक एक गीत एक-एक पूरा पद्य है। सभी ताल बद्ध हैं। फिर भी भागवतर द्वारा कथामूत्र जोड़ने वाला वणन गीत हटा कर उसके स्थान पर छोटे छोटे गीत प्रयोग में लाकर उसका प्रदर्शन करना संभव है। एक बार यक्ष गान का 'गय चरित्रे' को एक घण्टे के गीत नाटक के रूप में प्रदर्शन करने का भी प्रयत्न किया परन्तु इस माध्यम को सही प्रदर्शित करने का यत्न नहीं किया गया। वह नाटक रेडियो द्वारा प्रसारित करने हेतु तयार किया गया था। रगमच पर उसके और भी प्रभावशाली बन सकने की संभावना है।

नाट्य-रूप चित्र (नाटक)

दशहरे के अवसर पर लगभग मेरे सारे नाटक खेले जा सकते थे। गलन के उद्देश्य से ही वे लिखे गये थे। परन्तु कई बार पात्रों के लिए वार्तालाप रट कर नाटक करना संभव नहीं होता था। प्रत्येक दशहरे के अवसर पर आठ-दस नाटकों का प्रदर्शन होता था अतः उसके लिए आवश्यक कलाकार तथा रिहसाल दोनों कठिन काय थे। इसलिए पाँच छ दिन बलाकारों को मूल अभिनय सिखा कर और नेपथ्य गीत द्वारा नाटक के प्रदर्शन का रास्ता निकाला। ऐसे नाटकों को मैंने नाट्यरूप चित्र (नाटक) नाम दिया। मुझे अपने गल पर विश्वास था। नेपथ्य गीत में ही गाता था। कई बार अगले दिन के नाटक की बधावस्तु पहले ही लिखकर पूरी कर लेता था। फिर भी रगमच पर उन्हें सरलता से यश प्राप्ति हो जाती। प्रेक्षकों का ध्यान नेपथ्य के संगीत पर मग्न रहता था। पात्रों के अभिनय में उनकी कल्पना शक्ति जाग्रत हो उठती। नाटक के वास्तविक ढंग से यह ढंग अधिक सरल और प्रभावशाली होता। इसी तरीके को अपनाकर मैंने 'शाहजहान कीन (शाहजहाँ का अन्त) बौदयाने' 'देहलीय दोर्भाग्य आदि सीमा-सीमा प्रयोग कर डाले। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं लिखने में भी बहुत

जल्दी करता था। आगे मैंने ऐसी रचनाएँ बचाकर नहीं रखीं। एक बार खेले जा चुके नाटक को दुबारा खिलवाने की इच्छा भी मुझे नहीं रह गयी थी। मैं तो सदा नये नये सपन साकार करने के प्रयास में लगा रहता था।

चीनी नाटक

मेरे पहल के लिखे 'कृष्णार्जुन' और 'गभगुडी' नाटक ही मेरे अंतिम गद्य नाटक हैं, यह कहना चाहिए। बाद में बहुत दिन तक मुझे छोटे नाटकों में ही आसक्ति रही। बड़े नाटकों को सीखने लायक घय हम लागा में बहुत कम है। अपना पाठ याद किये बिना ही अभिनय करने को कूदनवाले वीरों की सख्या भी कम नहीं। इसलिए लिखन का उत्साह ही नहीं हाता। एक बार मैंने एक चीनी नाटक ना का कानड में अनुवाद किया। उसका अंग्रेजी अनुवाद 'लेडी प्रेशियस स्ट्रीम' था। मैंने चीनी रगमच को समझने के लिए यह काम किया और नाटक का अभ्यास भी शुरू करा दिया। पर खेलन के अंतिम दिन तक पान अपना पाठ याद नहीं कर सके इसलिए उनका अभिनय ही छोड़ देना पडा।

उस नाटक में प्रत्येक पात्र अपना परिचय आप देता है। मेरा विचार था कि उसका अच्छा मचन हो सकता है। परंतु उसके प्रदर्शन में मुझे तीस वर्ष बाद सफलता मिली। चीनियों की वेपमूपा तयार कराकर, उस नाटक को मैंने बच्ची से रिहसल कराकर प्रदर्शित किया। वह नाटक बहुत सफल रहा।

आलोचना

मैंने एक गद्य नाटक 'वित्तिद वेले' (बोयी फसल) शीर्षक में लिखा। इस नाटक के बारे में बड़ी विचित्र प्रकार की आलोचनाएँ हुईं। नाटक पढ़न के बाद एक ने कहा 'यह तो उपयास जसा लगता है नाटक नहीं। इसका अभिनय संभव होगा?' तब मैंने कहा, आप अभिनय करना जानते हैं? कभी रगमच पर कदम रखा है?' रगमच के अनुभव के बिना ही हम आलोचना करने लगे तो कैसे काम चलेगा? कल्पनालाक में बैठकर लिखने का स्वभाव मरा नहीं। एक अभिनेता के रूप में मैं फलम पकड़ता हूँ। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि 'वित्तिद वेले' का सफल मचन ही हो, उसमें बीच-बीच में कुछेक कमियाँ हो सकती हैं। ऐसी कमियाँ कहाँ हैं यह अभिनय करनेवाले और अभिनय जानने वालों को ही पता रहता है। आराम कुर्सी पर बैठकर आलोचना करनेवाला को नहीं।

इस हिसाब से दो शा के नाटक रगमच पर आने ही नहीं चाहिए। तब

युजिन ओ नील तो उप-यासकार बनकर रह जायेगा । लम्बे-लम्बे सभापण लिखने के अपराध म शेक्सपियर का शायद रगमच से दूर ही रहना चाहिए था ।

मेरा आशय यह नहीं कि आलोचना होनी ही नहीं चाहिए । मैं स्वय एक कटु आलोचक हूँ । पर आलोचक का भी अपना एक सस्कार होना चाहिए । मेरे नाटको मे अभिनय के अनुपयुक्त कई अशा को हटाने के प्रसंग भी आये हैं ।

अभिनय के समय

रगमच पर

व्यावसायिक रगमच मैंने अच्छी तरह देखा है। उनके साथ हाथ-पांव भी मार हैं। बचपन में देखे ए० वी० वरदाचाय और शिरहट्टी बकोरराय के कम्पनी नाटक कंस चलत थे यह भी याद है। मर अपने जीवन के रगमच पर पदापण करने के बाद देखे रगमचा का तो बहुत अच्छा परिचय है। कई जगह अभिनेताओं का रग पोत कर नृत्य करना भी देखा है। इन लोगों को देखने के बाद मुझे लगा कि हमारा अभिनय और हमारा रग निर्देशन बहुत ही निम्नस्तर का है। लगता है हमारे यहाँ लोग नाटका में लोगों को आकर्षित करने वान दृश्य, वेपभूषा और संगीत की सहायता से कुछ अभिनय दिखाकर समझते हैं कि अपना काम पूरा हुआ गया। प्रक्षका की मूछता के अनुकूल एक नाटक प्रस्तुत करके अपना काम पूरा हुआ गया सोच लत है। नाटककार का दृष्टि प्रक्षका की अभिरचि को परिष्कृत करने की आर भी जानी चाहिए।

मराठी अभिनेता

पहली बार जब मैं बम्बई गया था तब मैंने 'बालगंधर्व' के कुछ नाटक देखे थे। तब ऐसा नहीं लगा कि वहाँ के दृश्य रगसज्जा हमसे कुछ उच्च स्तर की हैं। हमारे अभिनेता से वे कुछ ज्यादा रग पोतते थे। हाँ, उनमें एक दो का अभिनय विशेष अच्छा होता था। 'बाल गंधर्व' राजहंस नाम के चितपावन बाह्यण को बाल गंधर्व तिलक द्वारा दिया गया खिताब है। बालगंधर्व प्रतिष्ठ संगीतकार थे। वे रगमच पर लम्बे समय तक एक ही आलाप लिया करते थे। उस जमाने के सारे नाटक संगीत प्रधान हुआ करते थे। उनमें गंधर्व स्त्री पात्र की भूमिका निभाया करते थे। उनके गान में कोई विशिष्टता नहीं थी परंतु वे उत्तम दर्जे के अभिनेता थे। सभी रसा का स्त्री सुलभ सहज भाव से अभिनय कर सकने वाला बलाकर थे वे। उनके साथ 'रानाडे' नाम का एक व्यक्ति भी स्त्री पात्र की भूमिका किया करता था। उस का अभिनय भी बढ़िया होता था। उस स्तर के

अभिनेता या अभिनेत्री मैंने कानड रंगमंच पर नहीं दखे। गंधर्व की कम्पनी अथवा दूसरी मराठी नाटक मण्डलिया व अन्य अभिनेताओं के बारे में ऐसी बात नहीं कह सकता। उनमें कई गद्य अभिनेता प्रसिद्धि पा चुके थे पर उनका अभिनय मुझे तो सामान्य ही लगा। कुछ लोग तो नाटक व वार्तालाप का चिल्ला चिल्ला कर बोलने में ही अपने को बटिया बलाकार मानते थे। ऐसा लगता था कि उनमें प्रत्येक भाव की अनुकूल मुखमुद्रा दिखाने की अथवा वार्तालाप व अनुसार उतार-चढ़ाव लाने की शक्ति थी ही नहीं। मुख भावों में रस का वैविध्य नहीं होता था। मुँह पर एक ही प्रकार का दुखी भाव अथवा रोद भाव बना रहता। इसका अतिरिक्त अधिकांश अभिनेता बात समाप्त होते ही खम्बे की भाँति टड्ड हा जाते। बात करते समय ही वे अभिनय करते शेष समय में वे जीवन्त शिला की तरह बने रहते। अच्छे अभिनेता का गुण उसका सुनते समय भी दिखायी देता है।

बाह्य के अभिनेता

उन दिनों बोलते चलचित्र नहीं थे बल्कि मूक चलचित्र हुआ करते थे। विशेषी मिनेमाओ में जर्निंग, "हीट", गत्रियल भन्ना गार्वो आदि कुछ उच्च काटि के अभिनेता और अभिनयियाँ थे। हमारे यहाँ के अभिनेताओं पर एक बलाकारों का शायद कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता था। आज भी एक सामान्य विशेषी अभिनेता में जितनी अभिनय की माँगता है वह हमारे दिन रात व थथ अभिनेता में भी दिखायी नहीं पड़ती।

1925-26 के लगभग मैं बम्बई गया था तब यहाँ व ऊपेरा हाउस में सदन की शेरिफ कम्पनी का जर्नीज एण्ड (Journey's End) नाम का तीन अक्टों का दो घण्टे का नाटक मैंने देखा। उन दो घण्टों में रंगमंच में जगह हटाने का प्रश्न ही नहीं उठा। उसमें किसी प्रकार का बाह्य आडम्बर नहीं था। उत्तम घाता की चतुरता और अभिनय की कला ही प्रधान थी। प्रेक्षकों का ऐसा अनुभव नहीं होता था कि वे एक नाटक देख रहे हैं। वे उसमें एकात्मक हो उठते थे।

कृष्णमूर्ति से कलाशम् तक

कानड रंगमंच पर कभी-कभार एकाग्र व्यक्ति थथ अभिनय करते हुए भी दृश्य है। शेष विशेष सहारा न मिलने से मतप्राय रहें हैं। अपने बुझाये में भी कृष्णमूर्ति और लक्ष्मीवती शास्त्री की हास्य भूमिकाएँ निभाते मैंने देखा है। उहाँ अपने पात्र का अत्यन्त महत्त्व और स्वभाविक अभिनय करते दिखाया था। उनका अभिनय अभिनय जगता नहीं प्रतीत होता था बल्कि जीवन्त अनुभूति होती थी उनका अभिनय सदा और भी कुछ प्रगल्भ अभिनेताओं का मैंने देखा है। उनमें अधिकांश एक से ज़्यादा प्रयत्न से अभिनय कर पाते थे। उनका ध्यान और

अभिनय में आवेश तो रहता था पर सहजता नहीं। हमारे राजा मन्त्रीगण, देवगण तथा जनता रगमच पर आते ही एक दूसरा ही स्वर अपना लते हैं। यक्ष-गान में गद्य की अपनी ही एक शैली है। हरि कथा में भी अपनी ही एक शैली है। इसी प्रकार नाटकों के गद्य की भी एक शैली ने जन्म लिया है। इस क्षेत्र में प्रसिद्ध अभिनेता श्री राघवाचार्य और कैलाशम् का भी मैंने देखा है। राघवाचार्य बहुत ही गम्भीर अभिनय करते थे। वह गम्भीरता सभी पात्रों में समानरूप से दिखायी देती थी। स्वर में उतार चढ़ाव रस के अनुसार परिवर्तन दिखायी नहीं पड़ता था। पर कैलाशम् ऐसा नहीं थे। उनकी बातें दिल से निकलती थीं। पात्रों की कल्पना को भी समझते थे। पर तु उनकी जबान ज़रूरत से ज्यादा तेजी से भागती थी। उनकी मुख भंगिमा कभी भी न बदलती। लगता था कि उन्होंने एक विकृत मुखौटा पहन रखा हो। उनका कोई भी विचित्र बयान देखें उसमें एक स्थायी विकृति दिखायी देती थी। उसे हटाकर उनकी मुख मुद्रा में अपने मन की बात को स्पष्ट कर पाने की शक्ति नहीं थी फिर भी उनके स्वर के कारण उनका अभिनय अधिकांश प्रभावशाली रहता था।

यह सब तो मैंने बाहरी अनुभव की बात कही। जब अपने ही प्रयास की बात कहता हूँ। विद्यार्थी अवस्था में मैंने नाटक में भाग नहीं लिया। बाद में अपने नाटक 'निशा महिमा' का प्रदर्शन करते समय मुझे अभिनेता और निर्देशक बनना पड़ा। काम करते-करते सीख लेता मेरी आदत है। इसलिए यहाँ भी अपना गुरु और शिष्य आप ही था। निशा महिमा की तयारी कराते समय मैंने अनुभव किया कि उसमें कई बातें अभिनय के लिए उपयुक्त नहीं हैं। कारण इतना ही था कि नाटक में जो बातें बुद्धि के बल पर लिखी जाती हैं उसे उन्हें अभिनेता सदा अभिनीत नहीं कर सकता। परंतु जब नाटककार स्वयं को उस पात्र में ढाल कर लिखता है तो वही बातें अभिनय के लिए उपयुक्त हो जाती हैं।

दर्पण ही गुरु है

नाटक के सवादों को सामान रखकर, एक ही सुर से क्या करने से उच्च पदा हो और हर शब्द अक्षरगूण न हो तो वह बात व्यर्थ होती है। अभ्यास करते समय मन उसमें रम जाने पर स्वर का उतार चढ़ाव समझ में आ जाता है। अधिकांश लोगों का तो सही सही उच्चारण भी नहीं आता था।

नाटक लिखाने से पहले मुझे स्वयं यह देखना था कि मेरे मुख पर ही अपेक्षित भाव भंगिमा व्यक्त होती है कि नहीं। यदि मन में दुःख का भाव या कष्ट है तो यह आवश्यक नहीं कि वह मुख पर भी फूटकर दीखे। अपने जीवन में आनेवाले अनेक सुख-दुःख और उत्सर्जन होने से बहुधा हम मन की बात भूलने का प्रयास

करते हैं। कई बार, जीवन में ही अभिनेता बनकर मन की बात को दूसरे ढंग से बाहर निकालने का स्वागत करते हैं। ऐसा मुख प्रत्येक भाव बिम्बित करने के बदले एक ही भाव व्यक्त करता है मानो मुछोटा पहन रखा हो। हमारी आँखें, गाल और होठ सब को मन के कहने के अनुसार चलना चाहिए। सामान्य नट भले ही यह समझे कि उसने सब कुछ कर दिया है पर दर्शक का वह दिखायी नहीं पड़ता। यह बात नटों को भी पता नहीं चलती, यदि पता चल जाय तो पता नहीं कितने नट आत्महत्या कर लेते। अभिनय में यदि विविध प्रकार के रस प्रदर्शित न किए जा सकें तो क्या हम अभिनेता बन सकते हैं? इसलिए मुझे अपने लिए एक गुरु खोजना था। जो जैसा है वसा ही दिखानेवाला गुरु चाहिए था। बसिहाज दपण ही उसके लिए मुझे योग्य गुरु लगा।

मुझे कोई भी भूमिका करनी हो या सिखानी हो दपण के सामने बैठकर मैं बात को भावपूर्ण ढंग से कहना सीखने लगा। तब मुझे अपनी एक एक कमी आँखों के सामने स्पष्ट दिखायी देने लगी। दपण के सामने अभिनय के अभ्यास ने ही मेरे मन में अभिनय के प्रति आत्मविश्वास जगायी।

साधारणतया दुखद भूमिकाओं में ही मेरी रुचि रही है। मन की गहरी भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर उसमें जितना मिलता है उतना अत्यंत नहीं। इसलिए कण और काश्यप भूमिका जैसी कई भूमिकाओं का अभ्यास किया करता था। दूसरे पात्रों की भूमिकाओं को मैंने शिक्षण भी दिया है। उन सब का अंतर मुझे अच्छी तरह मालूम है। लघु भूमिका में काम करने के बाद, वह हम प्रायः उसी तरह भूल जाते हैं जिस तरह लघु कथाएँ पढ़कर भूल जाया करते हैं। बड़ी और गम्भीर भूमिकाओं की बात ऐसी नहीं है। कुछ दिन तक उन पात्रों का व्यक्तित्व हमें याद रहता ही है। एम. पागलपन से ही मैंने 'हैमलेट' का अनुवाद किया और हैमलेट की भूमिका का अभ्यास भी किया। कुछ कठिन भूमिकाओं के अभिनय की तयारी भी की है। अभिनय भी श्रियात्मक कला सृष्टि के समान ही मन को शांति दे सकता है। हम जिस पात्र का अभिनय करते हैं उससे सम्बन्ध और गहराई का हमें बोध होना चाहिए। एक का दुख दूसरे का नहीं होता, एक का रोष भी दूसरे का नहीं होता, एक की हँसी दूसरे की नहीं होती। व एक-एक काम में एक-एक सन्निवृत्त में अलग-अलग ढंग से व्यक्त होते हैं। मेटेनिलेवस्की नाम का एक नाटककार रहा है। वह नाटक का अभ्यास कराने के लिए अपने कलाकारों को अलग-अलग जाकर शांत वातावरण में रखता था। प्रत्येक का उसकी भूमिका समझाने के बाद, पात्रों से समानता रखनेवालों को छोड़ कर कलाकारों को उनमें पास भेजा करता था। नाटककार के मन में क्या रहा होगा वह बात भी अभिनय को समझनी चाहिए। उस नाटक के पात्र का जीवन क्या रहा होगा, उसका स्वरूप क्या होगा, वह किस संस्कार में पला होगा, किस-किस मोड़ पर वह

किस प्रकार का व्यवहार कर सकता है, इन सबकी कल्पना कर सकने की सामर्थ्य अभिनता में होनी चाहिए। नहीं तो अभिनय शब्द का भला अर्थ ही क्या है? चाहे हम महाभारत की कहानी उठाएँ या जीवन की कोई कहानी व्यक्ति और संस्कार का पयापन परिचय न हान से हम उनका सही अभिनय नहीं कर सका।

इसीलिए मरे मन में अभिनय का प्रति आदर उत्पन्न हुआ। किसी भी नाटक का अभिनय करने से बहुत दिन पहले से ही वह पात्र कण ही या हैमलेट या कोई और—आधा का सामने नखता रहता और उमरे साथ एक स्वप्न लोक की मण्टि सी ही जाती। उस पात्र का सुख दुख और अनुकम्पा मरे भीतर जागृत हान लगती। उम अनुकम्पा से अभिनय सफल हा जाता। रग लगा लेने के बाद रगमच के बाहर रह या भीतर उसी भूमिका का नशा हम चढा रहना चाहिए। नस्य नाटक सिखात समय में बडा कठार निर्देशक उन जाता था। मा की तमयता में विघ्न डालनेवाली किसी बात या शब्द से मैं आप में बाहर हो जाता था। अभ्यास के समय में भी वही बान थी। अत मेरे स्वभाव से परिचित मित्र मरे साथ कभी अथवा अन्वहार नही करत थे।

कला-मृष्टि, विस्मृति

एक अभिनता का अभिनय करत समय एकदम अपन आप को भूल जाना संभव है अथवा वह आधा हाश में रहकर अपन अभिनय को देख कर प्रश्न होता है? यह बात पश्चात्य कलाविदा में चर्चा की विषय रही। उस बारे में अपन अनुभव का कुछ बाने कहना चाहूंगा। एक वार मैं कण की भूमिका कर रहा था। कु तो ओर कण का वार्तालाप समाप्त होन के बाद स्वगत भाषण का प्रसंग आया। उस घटना के अंत में बेहोश की भांति नीचे गिर पडा। कलाशम् नाटककार और अभिनता सामने बठे थे। उन्होंने जापोचना की कि यह बहुत अति हा गयी। उनको आलोचना को ध्यान में रखकर मैंने साधना शुरु किया। और एक वार वहां अभिनय करत समय यह निश्चय करके मैंने रगमच पर प्रवेश किया कि अंत में भुव मूर्छित नहीं होना चाहिए पर फिर भी पहले ही जसा हुआ। उस पात्र की बाने और उनमें छिपा रमावण मरे मन पर पूरी तरह छाया हुआ था जिसके कारण मुझमें ऐसा हुआ होगा। उसका मुख्य कारण कण के विषय में और उस प्रसंग में मेरा अपना लिखा नाटक ही था। कण के दुख में पश्चात्ताप और उद्वेग था। अपन ही भाई की पत्नि द्रौपदी के प्रति अपनी कही कट्टु बात के लिए यह पछता रहा था। उमके पश्चात्ताप में एसी तीव्रता आ गयी थी। अत्र प्रश्न उठता है कि क्या वास्तव में कण न एना किया हागा? कण ने चाहे जो किया हा अभिनता का कल्पना के कण में वसा परिणाम हुआ था।

फिर वह तब की बात है जब मैं सत्ताईस वष का था। मरी भावुकता का शायद यह भी एक कारण रहा होगा।

एक बार मैं अपने नाटक 'कठारी भैरव का अभिनय सिखा रहा था। भरव विजयनगर के साल्व तिममा का प्रतीक था। वह बुढ़ापे में अपने राजा के व्यवहार से अत्यन्त दुखी और क्रुद्ध हो उठता है। ऐसी मानसिक स्थिति से वह गुजरता है। मैं एक कलाकार का उसका अभिनय सिखा रहा था। उसका एक प्रसंग सिखाने के बाद आधा घण्टे तक मैं अपने स्थान से हिल न सका। हाथा और मुख की शिराओं में रक्त का तनाव बढ़ जाने से मैं आवेग में अपने को भूल गया था। जब तक स्थिति ऐसी रहती है व्यक्ति अपनी प्राना में नहीं रह पाता। इसलिए मुझे ऐसा लगा कि एक व्यक्ति अपने अभिनय में पात्र की अवस्था में एक्दम तल्लीन हो उठता है।

इसी प्रकार एक बार मैं अभिनय के विविध दृष्टान्त दे रहा था। अलग अलग प्रकार की मानसिक अवस्थाओं को दिखाने का प्रयास कर रहा था तब भी ऐसी ही अवस्था हुई थी।

शुरु शुरु के सन्दर्भों में अभिनेता का अपने को भूलकर अभिनय करना एक्दम स्वाभाविक है। वह परिणामकारी भी होता है। वहाँ नट अपने व्यक्ति में नहीं रहता जिस पात्र का अभिनय करता है वही बन जाता है। एक बार मैं 'सिड्नु मिचु (गर्जन और बिजली) नामक अपने ही एक नाटक का अभिनय कर रहा था। उसमें मैं पहन आँखें खा कर आँधे हो जानवाले का अभिनय किया। उसमें बटे की आवाज सुनकर उस गल लगाने को, अंध पिता के भागने का प्रसंग आया। मेरी आँखें थी फिर भी मैं अंधा हुआ हूँ—ऐसी मानसिक स्थिति में पहुँच गया था। तल्लीनता में एसा ही होता है। बाद में बार-बार उसी भूमिका के करने पर वह तल्लीनता नहीं रही।

नृत्य में भी मैंने एसा ही अनुभव किया। नृत्य में पहली बार जो तादात्म्य रहता है वही बार-बार करने में कम हो जाता है। धीरे धीरे वह यात्रा हो जाता है। जितना वह यात्रा होता जाता है कलाकार को उससे उतना ही कम सुख मिलने लगता है।

अभ्यास न करनेवाले

मैंने प्रशिक्षण देते समय कठिन भूमिका निभाने वाले दो-तीन छोटे आधु के कलाकारों का दग्ग है। आमतौर पर सफल भूमिका का निवाह करने के लिए अपनी भूमिका का भला प्रकार समझ लेना चाहिए। उसे कष्टग्र्य कर लेनी चाहिए। इससे लिए कभी समय अभ्यास करना पड़ता है। मुना है जमनी में एक नाटक के प्रदर्शन से पूर्व कलाकार उसका पाँच छ वष अभ्यास करने है। हमारे यहाँ

अदि चार मास भी थढ़ापूवक सीख लिया जाए तो नाटक एक 'कला' बन सकता है। मंच पर आने तक भी यदि कोई कलाकार अपनी भूमिका याद न कर सके और प्राम्पटर के भरोसे बेप भ्रूपा पहनकर रगमच पर उतर अने की जल्दी मचाये तो इसस तो यही अच्छा है कि वह जाकर मुद्दरम में हिस्सा ले ले। उसके लिए रगमच की आवश्यकता ही क्या है?

मैंने छाया नाटक, गीत नाटक, हास्य नाटक—सब पर प्रयोग किया है। इनके अभिनय अलग अलग ढंग के होते हैं।

छाया-नाटक

छाया नाटको में सहज रूप से खड़े होने और सहज अंग विन्यास को ध्यान नहीं होता। कलाकार को पर्दे के पार्श्व में खड़ा होना होता है। शरीर और मुख की रेखाएँ छाया द्वारा व्यक्त करनी होती हैं। उनके स्थान मान से ही अभिनय छाया के द्वारा प्रेक्षकों को दिखायी देता है। मुख व भावा की सूक्ष्मता उसमें दिखायी नहीं जा सकती। इसके अतिरिक्त प्रकाश के सामने खड़े कलाकार की आकृति छाया में और बड़ी हो जाती है। इसीलिए अंग संचालन की गति और वेगवान हो जाती है। अतः उस अपनी गति ऐसी विकसित करनी चाहिए जिससे वह प्रेक्षकों को स्वाभाविक लगे। उसका समस्त शरीर भाव प्रदर्शन का साधन होने से वह हाठ आँख गदन और हाथ के संचालन पर जितना ध्यान देता है उतना ही उसे पद संचालन और अंग भंगिमा पर भी देना पड़ता है।

गीत नाटक

गीत नाटको का अभिनय आसान होता है। पर उसका वार्तालाप गीतबद्ध होता है। भाव जैसे मुख से व्यक्त होते हैं वैसे ही रागालाप से होने चाहिए। इस रागालाप में जैसे वाद्य में उत्तर चढ़ाव, तार, मन्द्र प्रवाह पर ध्यान देना होता है वैसे ही इन नाटको में भी देना होता है। खुशी में हँसी की जैसे फुलपट्टियाँ छूटती हैं वैसे ही यहाँ आलाप में आनी चाहिए। दुःख रोप आदि प्रमुख भावा में गद्य-वार्तालाप का नियम ही चलता है। इस का कारण यह है कि नाद मले ही गीत से निकले या गद्य से, मानव के संस्कार में भावना और वान के स्वर में आसन्तुलन रहता है वही संतुलन यहाँ भी रहता है। भाव्य गीतो में भी यही बात लागू होनी है।

पृष्ठभूमि

हास्य नाटकों में अभिनय प्रहसन की अपेक्षा कृत्रिम होता है। उसमें वास्त-

विकता नहीं हाती । उद्देश्य के अनुकूल अभिनय होना चाहिए । उद्देश्य यदि व्यग्य हो तो अभिनय भी व्यग्य ही होता है । वार्तालाप भी व्यग्यपूर्ण हाता है । नाटक केवल अभिनय पर ही निर्भर नहीं होत । पृष्ठभूमि पर काफ़ी निर्भर होत हैं । पृष्ठभूमि भी नाटक के अनुकूल होनी चाहिए । नाटक यदि यथाथवादी हो तो पृष्ठभूमि भी यथाथपरक हानी चाहिए । ऐतिहासिक नाटक हो तो पृष्ठभूमि इतिहास के अनुकूल होनी चाहिए । वैसी ही मुयसज्जा, वेष भूषा और प्रवाश व्यवस्था हानी चाहिए । नाटक में यथाथ चित्रण के बदल भगवान, रामस या और ऐस किसी का चित्रित करनवाली फण्टसी हो तो उम कल्पना के अनुकूल ही पृष्ठभूमि होनी चाहिए । यदि हम अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार नहीं कर सकत तो बिना पृष्ठभूमि के ही रहना भला है ।

सुखान्त नाटक

यह अंग्रेजी के 'कॉमेडी' शब्द का स्थूल अर्थ है । परन्तु शैक्स्पियर की कॉमेडी केवल सुखान्त नाटक नहीं हैं । वे तो समाज के वास्तविक नाटक हैं । उनमें अति हास्य और बिडम्बना छिपी रहती है । शायद इसी कारण द्रगलैण्ड में एम नाटक चलत समय वास्तविकता से जरा दूर हो जात हैं । कॉमेडी नाटक के सभी पात्र अत्यन्त हास्य का अभिनय करते हैं । ऐसा करत पर नाटक के अभिनय का माध्यम मदा एका-सा दीघता है । 1964 में बंगलूर आयी इगलण्ड की एक नाटक मण्डली ने 'टेमिंग ऑफ द श्रू' (Taming of the Shrew) नाटक को इसी पद्धति में अभिनीत किया । पूरे नाटक के माध्यम की कल्पना न हो तो उसके अलग-अलग भागों का अभिनय अलग-अलग ढंग से किया जा सकता है । इस दृष्टि से हमें कॉमेडी और सुखान्त नाटक को अलग अलग मानना चाहिए ।

मुद्र-सज्जा

काल एक दो-चार, मकअप में मैन अतिमानव और अमानव व्यक्तियों को भावात्मक रूप में दिखाने का प्रयास किया है । शूणपटा के मुख का मेकअप करत समय क्यूबिज्म (Cubism) के ढंग से मुख को त्रिकोणाकृति में चित्रित करके अलग-अलग रंगों का लेपन करने अद्भुत-सा दिखाने का प्रयास किया परन्तु मेरे ये सार प्रयत्न व्यर्थिनके ही थे । ऐसे प्रयास प्रायः अपन नाश में ही भरता रहता था । उसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह आती थी कि ऐसी कल्पना को माकार करने का और विकसित करने के लिए परिश्रम करनेवाले साग नहीं मिलत था । एक बार काम करनेवाला व्यक्ति दुबारा नहीं मिलता था । अगली बार दूसरे ही लोगो की तलाश करने पड़ती थी । हर बार नये नये ऐसे नये परिश्रम करना

पढता था। पुराने थम से लाभ उठाकर उसे आगे बढ़ाने की वजाय, हर बार शुरू से चलना पड़े तो रगभूमि का मुधार भला कैसे सम्भव है? मैं अपने ही प्रयत्न से रगभूमि की अपार सभावनाओं के सपने दमे हैं। कई बार मन म यह आशा भी जागी है कि विश्वास म जिस प्रकार प्रयोग चल रहे हैं उसी प्रकार हम भी करना चाहिए पर मेरी आशा केवल आशा ही बनकर रह गयी। प्राप्त अनुभवों का प्रयोग कर, कला का जीवन का रूप देन का अपक्षित वातावरण मिल ही नहीं पाया।

9405
 —————
 3.487

सगीत मे भी

राष्ट्रगीत

गीत-नाटका के बारे में लिख चुका हूँ। अब जरा सगीत के बारे में लिखूँ ? कुदापुर में पढ़ने के समय ही उसमें मरो रुचि जागृत हो गयी थी। विद्यार्थी जीवन में नाटकों में आनेवाले गाने सीखे थे। बाद में उमी शर्मा ने गद्यात्मक कविताओं पर प्रयोग किया था। शरद्वि शयन परम पावन 'यह गीत एक नाटक कम्पनी वालों के नारद के मुँह से सुना था। उसी तर्ज पर एक गीत 'सुदेशन यह मुझे' की रचना की। इसी ढंग का एक पद्यसंग्रह बनाकर 'राष्ट्रगीत सुधाकर' शीपक से प्रकाशित भी कराया था। उन दिनों तो कर्नाटक में राष्ट्रगीतों की बाढ़ सी आ गयी थी। राष्ट्रगीतों की हवा भी उमी में बही। आज यदि कोई मुझे बतलाए दिखाए तो मुझे उन्हें अपना कहने में शर्म आयेगी। अगर मान जाऊँ तो आत्म हत्या ही एक रास्ता रह जाएगा। फिर भी तसल्ली की बात यह है कि आज भी भरे जैसे कवि-कुल बुटार बहुत से हैं। मरा मन कहता है कि नमाज में एना नियम होना चाहिए था कि कवियों को जेल में डाल दिया जाय या फिर पागलखाने भेज देना चाहिए। तब पता नहीं किन्तु लोग बाहर बच पाते !

चीप-पुकार

शुरू शुरू में स्कूल के एक विद्यार्थी ने मुझे चीखना सिखाया यानी गुर में चीखना। उसने वह गुर सीखा। अपने घर के पास के मजान में जाकर पी चूट या आधी रात को बैठकर गुर चीखा करता था। यह स्थान गाँव के बाहर था। कितनी ही हवा, सियार प्रशंसा करने पास भी आयें। एक बार तो एक सियार ने बेयम दम गज की दूरी पर खड़े होकर स्पर्धा के लिए लतकारा भी। दम मजदूर नहीं वास्तविक घटना है। आज भी मरा जान्य बैसा ही है। सगीत के अर्थों की उम्र समय गाँव से बाहर हो रहना चाहिए। हम अन्धकार में मुझे एक गाने का रूप देना। मरा गाना गूना गया। अब तो बेरोक-टोक गाना बनता है। पर जब मैंने गाना सीखना आरम्भ किया तो मुझे पता नहीं था कि ताल क्या देना है।

धीरे धीरे कुछ सामान्य रागा का ज्ञान मुझे हाँ गया था। सजीवराय नाम के एक सहपाठी ने मुझे गाना सिखाया। बाद में रामकृष्ण नाम के एक सज्जन ने रोज घर आकर श्रुति रख कर गाना सिखाया। उन्होंने सा आ-आ-आ-आ मि इ इ इ शकराभरण आदि रागों को आलाप पद्धति बनायी।

बहु हिंदुस्तानी संगीत के अच्छे नाता थे। अतः उन्होंने अपनी शली मखमाज बसन्त भैरव कानड आदि रागा का परिचय कराया। बाद में उनका स्वगवास हो गया। फिर कुछ दिन बाद मैंने भी कुदापुर छोड़ दिया।

पश्चात् कुछ समय तक मैं नाटक-मण्डलियों के साथ घूमता रहा। तब ताल भल ही ठीक न रही हो, राग के अनुसार गान का प्रयास करने लगा। बाद में मुझे कम्पनी के लोगो के लिए गीत लिखकर देने का दायित्व मिला। तब मैं मराठी, हिन्दुस्तानी में प्रचलित गीतों की नकल पर जसा वे चाहते थे वसा ही कानड में गीतों को पूरा करके देता गया।

बाद में मैंने स्वतंत्र नाट्य रूपक लिखे। मुक्त द्वार' जैसे गीत नाटक लिखने समय एमी नबला से काम नहीं चला। तब अपनी भावनाओं के अनुकूल रागों को चुनकर मुझे ही गीत लिखने पड़े। मैं साहसी था, व्यावसायिक संगीतकारों से डर जाता क्या? मैंने अपनी आवश्यकतानुसार सफ़ा गीत लिख डाले। उस पर भी मैं स्वयं गाने वाला था इसलिए मुझे किसी का डर नहीं था, कोई शिक्षक नहीं था।

मोतीसिंह

'शोल भग' नाम की एक नृत्य नाटिका के लिए मुझे एक गीत की रचना करनी थी। इसके लिए एक उपयुक्त अवसर भी मिल गया। सन 1932 के बाद, मैं महीने में पंद्रह दिन पुत्तूर और पंद्रह दिन मालूर में गुजारने लगा। इसी बीच एक गुरु मिल गये। वे अब्दुल करीम खान के प्रथम शिष्य थे। उनका नाम था मातीसिंह। वे प्रायः एक टाल पर बठा करके थे इसलिए उनका नाम लकड़ी बुआ' पड़ गया था। लगभग तीन वर्ष तक मास में दस पंद्रह पाठ के हिसाब से मैंने उनसे शिक्षा ली। उनका कण्ठ की खूबी और गाने का कमाल भला मैं कहीं पा सकता था। मैं सीघ्र से अधिक सुनने में ही लगा रहता। वस पहले में ही मैं अब्दुल करीम खान के संगीत का प्रशंसक था। उनकी शिष्या हीराबाई बडो देकर का गाना धारवाड में सुना था। बहुत अच्छा लगा था। इसीलिए मुझ में मातीसिंह के प्रति बड़ा गौरव था। वे बूढ़े ही चुने थे, पियककट भी थे। अब उनका गा गाने की शक्ति नहीं रह गयी थी। एक दिन मैंने उनसे अब्दुल करीम खान माहब का जमुना के तीरे गाना सुनाने को कहा। वे एक दम गुरु की तरह ही गाने लगे। पर बीच में ही गाना रोककर रो पड़े। मैंने कारण पूछा। वे बोले-

ताकत नहीं रही जी !' और रो पड़े। गुरु की योग्यता याद करके अपनी शारीरिक दुबलता पर उन्हें रोना आ गया था। हमारे संगीतकार भले गव से फूले हुए क्यों न हों, अपने गुरु के प्रति उनमें अपार श्रद्धा होती है। मोतीसिंह उसके अपवाद नहीं थे। जब वे सिखाने आते थे तो कभी-कभी देर हो जाने पर वे व्यावसायिक संगीतकारों की तरह, दूसरे घराना के गायक की निन्दा में ही अपना समय बिता देते थे। संगीतकार कहीं-कहीं गलतियाँ करते हैं इसका भी ज्ञान कराते। एक अच्छा गुरु मिल जाने से मैंने काफी सीख यह कहने का साहस भी मुझ में नहीं है। वे मेरे लिए गुरु थे, पर उनके लिए मैं 'कार्त महाराज' था। यही बहुत था। कम-से-कम एक ने तो मुझे 'महाराज' कहा। बेचारे वे बढ सन् 19-9 के आस-पास घोर दरिद्रता में ही गुजर गये। मोतीसिंह पियबकड होने पर भी गुणी और विद्वान थे। उनसे शिक्षा न पाता तो मेरे गीत-नाटक कभी जन्म ही न ले पाते। उनके कारण ही मुझे उस क्षेत्र में कदम रखने का साहस हुआ। बाद में मैंने कई नयी रचनाएँ लिखने का उपक्रम किया। इस काय में डॉ० बाबे भी मेरे जानवधन में महापक बने।

नृत्य का अभ्यास करते समय मुझे बढिया पार्श्व संगीत की आवश्यकता महसूस होती थी। पर मेरे भाग्य में तो केवल हारमोनियम ही बढा था। लगता था कि संगीत की साधना के लिए वही एक 'यमुना' है। इसलिए मैंने कुछ मित्रों को दिसम्बा, हाप, बसर फ़ोल्ड जैसे वाद्य मँगवा कर दिये। वे मुझसे भी ज्यादा कामचोर थे। उन्होंने कुछ भी करके नहीं दिया। और इस तरह पार्श्व संगीत रचने की कल्पना पूरी नहीं हो पायी।

फिर भी मन में संगीत निर्माता होने की लालसा बनी रही। एक बार बगतूर में मुझे अपना नाटक 'लव कुश' खेलन का अवसर मिला। उसने लिए पार्श्व संगीत की व्यवस्था करनी थी। तब आकाशवाणी के संगीतकार श्रीनिवास अम्बेगार को घर बुला कर मैंने अपनी सारी पगली कल्पनाएँ एक-एक करके समझायी। मुझे राग तो आते थे पर उनके लिए स्वर देन की योग्यता नहीं थी। आवाज आने पर कल्पना उठान भरन लगती, उस स्वरों में बाँधने की योग्यता कहीं से जुटाएँ ? एक बार एक तरह काता सो दूमरी बार दूमरी तरह। श्रीनिवास अम्बेगार ने मेरे आश को बीच-बीच में बाँध लगाकर, एक मूतरूप दिया। भर कथनानुसार कौन-कौन-सी चीज कहीं-कहीं होनी चाहिए यह निश्चय करन के बाद उनके लिए आर्केस्ट्रा तयार किया। बगतूर के 'फॉर्क आट फस्टिवल' के अवसर पर हमन यह नाटक गलकर दिखाया। पता नहीं उस देयनवालों का अनुभव क्या रहा ? मेरे अन्य गीत-नाटकों के अभिनय के समय मैं तरन मित्र श्रीनिवास उडुप, मेरे मेरे पागलपन में सहायक रहे।

कभी पूरी न होनेवाली आशा

तब से मुझे 'ऋतुसंहार' (Song of the seasons) जती एक कल्पना को केवल संगीत में ही रूप देने की इच्छा हुई। वह पूरी न हो सकी। जिस कला का निर्माण केवल एक आदमी पर निर्भर न हो उसमें एसी अडचनें आती ही हैं। सही साथी नहीं थे। और फिर उनका जुटा पान की शक्ति भी मुझ में नहीं थी।

डा० बाबे

मेरे गीतों को निश्चित रूप लोकगीतों के अभ्यास से ही मिला। हलसंगी में मैंने पहली बार उत्तम कानड का लोक संगीत सुना था परंतु उनका सही परिचय बाद में मिला। मेरे गाव में तुलु और कानड का लोक साहित्य पर्याप्त मात्रा में है। शुरु में मुझे इसका पता नहीं था, केवल यक्षगान ही सुन रखा था। इन सब का परिशीलन करने की अभिलाषा एक मित्र के कारण हुई। केरल के उस मित्र ने डब्लू डा० अर्नाल्ड बाबे दम्पती को मेरे पास आने की सलाह दी थी। उनके आने का उद्देश्य भी उस पत्र में लिखा था। बंगलूर जाते हुए मडकेरी में मेरी उनसे भेंट हुई। डा० बाबे मेरे परिचित महान् विद्वानों में एक थे। मेरा उनसे परिचय सन् 1937 में हुआ था। वे हालण्ड के निवासी थे। लंदन के आक्सफोर्ड विद्यालय से हमारे यहाँ आये थे। मेरा परिचय हान से पूर्व ही व दस साल यहाँ बिता चुके थे। पति-पत्नी दोनों यहाँ संगीत पर शोधकार्य कर रहे थे। श्रीमती बाबे बहुत बढ़िया पियानो बजाती और गा भी सकती थी। उन्हें यूरोप के समस्त प्रांतों के लोकगीत, मध्ययुगीन संगीत और अर्वाचीन संगीत का अच्छा अभ्यास था। हमारे देश में आकर उन्होंने शांति निवेदन में हिन्दुस्तानी संगीत का परिचय प्राप्त किया। सारे भारत का भ्रमण कर उन्होंने लोकगीतों को रिकार्ड किया था। व जहाँ जाते वहाँ के गीत गानवालों को बुलाकर उनसे गीत गवाकर उन्हें टेप कर लेते थे। तब तक उस यंत्र का विकास हो चुका था। इस प्रकार व गीतों का संग्रह करने उन पर शोध कर रहे थे। उन्होंने हमारे देश के संगीत और मध्य युगीन यूरोप के संगीत का तुलनात्मक अध्ययन किया था। उन्होंने बताया कि गीतगोविंद की शली टर्की, हंगरी, स्पेन में भी पायी जाती है। उनका कथन है कि यूरोप में भी हमारे देश के समान ही मलाठी गान पद्धति प्रचलित रही। बाद में समरख (हारमोन) पद्धति विकसित हुई। इसके बाद में उनकी ओर हमारी पद्धति अलग अलग दिशाओं में चल पड़ी। फिर भी जापान और यूरोप के गीतों में आज भी मलाठी ही प्रधान है।

काय की लगन

डा० बाबे एक मध्य व्यक्तित्व थे। दासों साठ पौंड के भारी भरकम देहवाले

आदमी थे। मुझे पास खड़ा करके 'सी लिस बेबी' (See this baby) कहकर मेरा परिहास करत। उनकी पत्नी भी उन्हीं के अनुरूप ही थी। शारीरिक दृष्टि से वह दाना जितना भारी भरकम थे, मन से उतना ही उदार थे। उन दोनों को कई म्याना पर ल जाकर यहाँ के लोकगीता के संग्रह कराने में मैंने उन्हें सहयोग दिया। जब वह गीत संग्रह कर रहे थे तब मैं उनके लिए लोकगीतों का साहित्य लिख कर सही उच्चारण और अर्थों का भी संग्रह करके देता रहा। उनमें अपना काय के प्रति कितनी लगन थी। उनके साथ अपने जिले का भ्रमण करके मैं बीजापुर भी गया। हलसगी के मित्रों के गीत भी उन्हें संग्रह करके दिये। बाद में चम्बई में भी उनसे भेंट हुई। उस दम्पती ने पियानो बजा कर मुझे पश्चात्य संगीत का विधान बताया। बाद में वे काश्मीर और लद्दाख भी गये। अपने इस शोधकाय के लिए उन्होंने उन दिनों लगभग पाँच-सौ मील की तो पैदल ही यात्रा की थी।

स्वर्गीय

दूसरे महायुद्ध की समाप्ति होते-होते डॉ० बाके सपत्नीव यूरोप लौट गये। उसके तुरंत बाद वे वास्तफोर्ड गये और प्राध्यापक बन गये। जब मैं लंदन गया तब भी वे वहाँ प्राध्यापक थे। उनके अनुरोध पर मैं लाईडन नगर भी गया था। वहाँ मैं उनके सम्बन्धियों के साथ ठहरा था। जब मुझे डॉ० बाके के स्वर्गवास की बात पता चली तो मुझे मेरे एक आत्मीय के छो जाने के बराबर ही दुख हुआ।

गीत साहित्य

डॉ० बाके के साथ काय करते हुए एक तरह से मरी आँखें खुल गयी थी। उस काय से यह पता चला कि लोकगीतों में और गीतरूपका में कितनी निकटता है। मुझे लगा कि यदि संगीत को कला का रूप देना हो तो हम उस उद्देश्य की पूर्ति करनी होगी। हमारे संगीत में शास्त्रीय पद्धति का विकास तो हुआ ही है, विविध वाद्यों का भी चमत्कार दिखायी देता है। लेकिन इस विकास में साथ कला शायद उनी प्रमाण में विकसित नहीं हो पायी। इसका मुख्य कारण यह है कि हम शास्त्र को ही कला मानकर उल्टे रास्ते पर चल पड़े।

हमारी मांग पद्धति के गीत प्रबन्धकारों में अनेक मत थे। एक सागाने रागा का परिचय देने को प्रबन्धों की रचना नहीं की। अपनी भक्ति और वराग्य का ध्वस्त करने के लिए ही वे गाया करत थे। मूरदास और मुनसीदास की अनेक कृतियाँ इसी श्रेणी की हैं। ऐसी कृतियों में साहित्य और संगीत का गुंदा समन्वय हुआ है। यह बात नहीं कि दक्षिण के पण्डितों ने ऐसा काय नहीं किया। अधिकांश

प्रबन्धो म राग और ताल का चमत्कार दिखानेवाली रचनाएँ भी अनेक हैं । कइयो ने अनेक स्तुतियाँ और भक्ति सम्बन्धी पदो का ही सक्लन किया है । कोई भी गीत लिया जाय उसके पल्लवन और उठाव से पता चल जाता है कि उसकी स्फूर्ति वहाँ से आयी । वंसी स्फूर्ति के भाव के बिना केवल 'गिरिधर ब्रजधर, मुरलीधर' कह देने से राग का परिचय हो सकता है क्या ?

एक बात और है हमारे 'माग पद्धति' वाले उत्तम प्रबन्धकार भक्त ही थे । उन्हीं ज्यादातर भक्ति और विरक्ति के गीत गाय । उनके गीतों को यदि भाव-पूर्वक गाना हो तो क्या हममें उनकी थढ़ा का सौवाँ हिस्सा भी नहीं होना चाहिए ? इसलिए हमें सफल 'प्रबन्धकार' और गायक बनने के लिए अपने मनोनु-कूल गीत गाने चाहिए । दैनिक जीवन में देखने वाले सुख-दुख, क्रोध आदि सब गीतों के द्वारा व्यक्त हो सकते हैं । ऐसी कृतियाँ अधिक क्यों नहीं दिखायी देती ? मानवीय शृंगार के लिए क्या हम दूसरा का ऋणी होना चाहिए ? हमारे शृंगार भाव को प्रदर्शित करने के लिए राधा की विरह भावना ही क्या प्रतिबिम्बित करना चाहिए ? फिर उसके जसा मधुर भाव का बोध हममें कहीं से आयेगा ?

क्या हमारी अपनी भावनाएँ नहीं हैं ?

इतना ही नहीं, हमारा जीवन सबडो सुख-दुखों से भरा है । तब उसमें निहित विविध रसों को संगीत द्वारा अभिव्यक्त हान क्या हम देख पाते हैं ? हास्य, रोद्र, सत्तोष, वीर आदि अथ रस गीतों में व्यक्त हो रहे हैं ? कृतिकार क्या इन भावों का विधिवत् सज्जन कर पा रहे हैं ? इतना शास्त्रीय ज्ञान होने से उसका लाभ क्या होगा ? सात आठ वष के बच्चों को, जिनका भक्ति से सरोकार नहीं यदि हम दासों की शृनिया सिखाने लग जायें तो क्या उनका कला सिद्धि हो पायगी ?

देशी गीत

इन विविध विचारों के परिणाम को और उस क्षेत्र में अपनी अपेक्षाओं को मैंने अपने उपमास 'मरलि मणिग' (माटी की ओर) के राम व द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है । उसके बाद का चित्रण 'मोग पडेद मन में किया है । लोकगीतों का समझने के बाद भारी अदर (किसने कहा) और 'सोमिय सौभाग्य' नाम के दो गीत-नाटक लिखे । पहला प्रहसन है दूसरा दुःखान्त है । दोनों सामान्य जीवन के ही चित्र उपस्थित कर रहे हैं । इन दोनों के निरूपण में मैंने दिव्यता का प्रयास किया है कि दासों गीतों को क्या भूमिका है । हमारे मन्थन के कवियों ने इस क्षेत्र में बहुत काम किया है । परंतु हिन्दुस्तानी, दक्षिणात्य संगीत के माह में जैसे कुछ भागवत उल्लेखों से ही नष्ट करके, मन्थन का पुनरुद्धार यहाँ

के जिलों में कर रहे हैं। हमारे जिले में यशगान के कुछ प्रसिद्ध भागवत ऐसे अभ्यास कर कर इतना बड़ा नुबसान कर रहे हैं जो शायद कभी पूरा न हो सकेगा। मौमाम्य से उत्तर बानड, मलेनाड क्षेत्र में यह अनर्प नहीं हुआ। बोलार और चित्रदुग में दानिणात्य के प्रभाव ने वहाँ के बयलाट के गीतों को यशगान रहने ही नहीं दिया। यदि कोई सुधार करना हो तो पहले उसमें पूर्वरूप विकसित करके सुधार करना होगा। पर एक और पद्धति का समावेश करने पहले वाली पद्धति को हटाने में ही काम नहीं चलता। हम इस बात का भी गान होना चाहिए कि यह अलग है और वह अलग। प्रत्येक पद्धति में अपनी अपनी छूबी होती है। केवल नवीनता का मोह कला की सृष्टि में सहायक नहीं होता। मैं इस बात का पक्षपाती नहीं कि जो पद्धति जैसी है उस जैसी रूप में बना रहना चाहिए परंतु अपनी परम्परा को बदलते और विकसित करने समय, जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम परिवर्तन कर रहे हैं, यदि यह ज्ञान नहीं रहा तो हानि ही होगी।

यशगान

मैं पुत्तूर में दशहरे के अवसर पर नटा प्रदर्शन का विविध प्रयाग कर रहा था। उस जमाने में साल में एक बार यशगान की एक कथा नृत्य के द्वारा प्रदर्शन करने का प्रयास किया करता था। उसने गीत नृत्य का हित्ताव सख्य जाते थे। मेरा विचार था कि 'भाग पद्धति' में केवल भक्तिपरक गीत होते हैं। पर पता चला कि उनमें भी हास्य, अदभुत शृंगार, नाय आदि के भवना गीत हैं। धीरे धीरे जब यशगान पर आश्रय करने लगा तो पता चला कि उनमें पुराने प्रयाग में सबका राग हैं। उनमें न केवल हिन्दुस्तानी कर्नाटकी पद्धति के नाम से अपितु दुधरी, पचागति बानड, हूबु और मेचु, मेचाली जस नय अवया यशगान के विशिष्ट राग भी मौजूद हैं। यह मेरे लिए आश्चर्य की बात थी और हृष का भी। मैंने पुराने यशगान के भागवतरो को मामन बिठाकर, गवाकर अनुगृहण कराया आरम्भ किया। गाय-पद्धति से परिचित मित्रा को भी गाय बिठाकर यह काम कराया। हमारे भागवत तो पहले से चले आये रागों को जम भूल ही गये हैं। रागों का उहोंने अभ्यास करना ही छोड़ दिया है। केवल उम गौली को सबर गत भर गाने की परिपाटी को चलाते रहे हैं। बिना जानकारी के एक राग में दूसरा राग उठाते हुए मैंने उन्हें देखा। उनके साथ तीन चार गय का अनुगृहण मैंने लगभग नव्य यशगान का रागों का पता लगाया। मैं इनके बारे में यशगान बयलाट में विस्तार से लिखा है। यद्यपि, जगत मुझे यह समझना आ गया कि यशगान केवल लोकगीत की एक शैली नहीं है अपितु एक स्वतंत्र गान गायी भी है। कई बार नृत्य निष्ठात समय मैंने भी भागवतरो के गाने का साथ गुरगिताकर और कभी-कभी उनसे भी ऊँचे गुर में गाया है।

सगीत-सृजन

आजकल अवकाश और अभ्यास न होने से मुझे अब तक जितना हिन्दुस्तानी सगीत आता था वह भी भूत चुका हूँ। अपने गीत-नाटक 'बीचक सर धी' की रचना करते समय काफी परिश्रम करना पड़ा। बीच-बीच में हिन्दुस्तानी सगीत के जानकारों से पूछ कर सुधारना भी पड़ता था। इतना होना पर भी पाश्चात्या की भाँति भाषा और साहित्य के बंधनों में न पड़कर, गीतों द्वारा ही हमें कुछ भाव और कल्पनाओं का सृजन करने की इच्छा होती थी। परन्तु ऐसे प्रयोग के लिए आवश्यक पोसाहन कहाँ ?

एक बार बैंगलूर आकाशवाणी में नदी साहब निदेशक बनकर आये। मैं भी वहाँ सलाहकार था। उन्होंने मुझ से कहा, "आप हमारे लिए कोई नई कृति दीजिए।" तब मैंने 'द मॉडर्न म्यूजिक' (The modern music) बनाने की अपनी पुरानी इच्छा प्रकट की। वे बोले "ठीक है आप आरम्भ कर दीजिए।" मैंने कहा "आपका आग्रह है तो मैं द्रम और प्रयाम करता हूँ और अगर सफल रहा तो आपको सूचित करूँगा।" वहाँ से मैं पूँतर लौट आया। मन में वही बात चक्कर लगा रही थी कई दिनों तक गुनगुनाता रहा।

नदी-यात्रा

हमारा जीवन भी एक प्रवाह है यह नदी के रूप में क्या न दिखाया जाय, यह विचार मर मन में उठा। हवा, बादल, अंधड़, बाद में बूँदावादी, निरंतर वर्षा, उससे पानी का प्रवाह, उन प्रवाहों का मिलकर छोटी नदी बनना, नदी का काँटा भरना, जगह-जगह पर बग से गिरना वहाँ से मैदान में बहाव का जीवन, फिर उसका आग गमन और समुद्र में मिलना। इन कल्पनाओं को लेकर, हर एक स्तर का एक-एक गीत का रूप में गुनगुनाता लगा। सब के-सब ऊँकार और 'आकार' में थे। मुलतानी राग में आँधी का आलाप निकाला, स्वर जान पर्याप्त न होने से आलाप की स्वरलिपि बना नहीं सकता था इसलिए एक मित्र से वह काम कराया। मुलतानी, पटदीप, भालकास आदि अनेक रागों में मरा 'आ, आ, आ' गीत प्रबंध निर्मित हुआ। मेरे एक मित्र वामुदेव नायक मेरे घर आते और मर द्वारा सी गयी ताना का मुनकर स्वर पहचानकर स्वयं दोहराते तब जाकर मैं उन्हें अंतिम रूप दे पाता था। उन तानों की गति, स्वर साहित्य और उतार चढ़ाव का द्वारा नदी का जीवन का चित्रण करना था। इतनी तयारी कर लेना था, मैं बैंगलूर आकाशवाणी पहुँचा। नदी साहब ने अपने बचन का अनुसार आठ दिनों के लिए दस बारह चायबारा का मर सुपुर्द कर दिया। कौन कौन-सा वाद्य और कौन-कौन सा गीतांश कहाँ इस्तमाल करना होगा और स्वर प्रमाणात्कस हागा यह सब समझाकर, वह सब उनसे बजवाया।

ऐसा करते समय स्वर का उतार चढ़ाव कैसा होना चाहिए, यह सब मुझे ही गा कर समझाना पड़ा। जा भी हो, गीत तयार हो गया। उस समय तो वादवा स पूरा सहाय्य मिलता, पर उह तो अपनी-अपनी घली ही पसन्द थी, उनको मरा यह प्रयोग भाया कि नहीं, वह नहीं सकता। किन्तु उनमें एक-दो मरा आशय समझ कर, मैं जो नाद-तरंग चाहता था, उह बजा पाने में सफल रह।

मेरे इस प्रयोग के लिए हमारा सामान्य वाद्य की भी अपनी एक सीमा थी। हमारे वाद्य दिलरवा, बेला और वांगुरी आदि मध्यम तार सप्तक निवालन का तो पर्याप्त हैं पर मन्द्र के लिए उनकी उपयोगिता उतनी अधिक नहीं। मन्द्र निकालने का मैंलो, सेक्मोफोन जैम वाद्य चाहिए।

पर मैं इन प्रयोगों को और आगे तक नहीं चला सका। यह मेरे अक्ल का काम भी नहीं था। अक्ल बढकर स्वर लिपि तैयार कर किसी चौड का सजन करने पर भी उसे सही रूप देने को बडे-बडे वाद्य वादा की आवश्यकता पडती है वह सब मुझे कहीं मिल सकते थे ?

खैर, वह एक इच्छा कमी पूरी न हो पान वाली इच्छा ही बन कर रह गयी। फिर भी आशा बनी रही कि एक बार फिर स अनुकूल परिस्थिति मिल तो यह काम और आगे बढाया जा सकता है।

दूसरी कलाओ मे

चलचित्र के लिए

मैंने अपनी सिनेमा व्यवसाय की कहानी आगे न चलाकर वहीं रोक दी थी। अब शेष बात कहना चाहूँगा। प्रचार के लिए एक लघुचित्र तैयार करके अग्नि की भट चढ़ाने के बाद एक बड़ा चित्र बनाने का मन हुआ। इसी बीच पाँच छ मीनरीड लिख डाली थी। परन्तु अधिक दृश्यवाले और अधिक कलाकारों वाले चलचित्र बनाने में पता अधिक लगता है। चार छह कलाकार इकट्ठे करके, कम खर्च में होने वाले काम में ही मैं हाथ डालता हूँ। इसीलिए 'भूत राज्य' नाम की एक कहानी लिखी। कहानी अद्भुत प्रसंगों से भरी थी। उस ओर भी अद्भुत बनाने की दृश्य निर्माण के लिए मेरे पास पैसा न था। पौराणिक कहानी का चलचित्र बनाने में यही दिक्कत आती है। विचित्र कूट' और 'भूत' उप-यागों के समान ही 'भूत राज्य' की कहानी है। वह एक साधारण स्तर की प्रणय कथा है। अधिकांश दृश्य उसमें प्रकृति के ही हैं। पूतूर के आसपास कुछ सुन्दर स्थान हैं। समूचे में भिन्न-भिन्न प्राकृतिक सौन्दर्य छोटने को मन न हुआ। उस कथा में पुराने पात्रों की भाँति नृत्य के लिए स्त्री कलाकारों की आवश्यकता थी। स्त्री कलाकार का मिलना तब एक कठिन काम था। केवल एक चित्र के निर्माण के लिए बाजारू माल खान से भला कला की सेवा हो सकती थी? इसके अतिरिक्त बम्बई के स्टुडियो में मैंने देखा था कि वहाँ कहीं-कहीं नर्तकियाँ थीं। इस सिनेकला की तृप्ति के लिए अपने परिचितों को उस विचित्र वातावरण में दखेसन की मेरी इच्छा न थी।

निष्पत्त उद्योग

इस सिने-कथा का निर्देशक मैं स्वयं ही था, अभिनेता भी मैं ही था। साथ ही कमरामन भी मैं ही था। स्वयं अभिनेता होने के कारण जब मैं अभिनय के लिए खड़ा होता तो मेरे आटोमेटिक कमरा का बटन दबाने के लिए मैंने एक मित्र को चुना। यह सब साथ लेकर मैं एक मास के लिए पञ्ज गाँव में डेरा डाला। वहाँ के पहाड़ों और जगलों में, कथा में काम आनेवाले दृश्यों की

तस्वीरें उतारी। उतारे हुए इन चित्रों को मैं घुलायी के लिए बम्बई भेजता रहा। वहाँ से मुझे तार द्वारा उत्तर मिलता रहता। उसके पश्चात् एक मास के लिए पुत्तूर में ही एक स्टुडियो बना कर भातरी दृश्यों की शूटिंग निबटाकर बम्बई गया। वहाँ उन्हें भी प्रिण्ट कराया। फिर आडिट करने के काम में दो महीन लग गये। इस प्रकार लगभग आठ हजार फीट सम्बा एक चलचित्र तैयार हुआ। फोटोग्राफी का काम अच्छा हुआ था। प्राकृतिक दृश्य भी बहुत अच्छे बन पड़े थे पर कहानी कमजोर लगी। लेकिन अब और अधिक पसा खच करने की स्थिति नहीं थी। दूसरा चलचित्र भी तैयार करने की हिम्मत नहीं थी। इतने सबके लिए साढ़े तीन हजार रुपये खर्च हो चुके थे। यह सारा खच बज्र लेकर ही किया था और थोड़ा बहुत घर वालों से भी खसोटा था।

चित्र की एक प्रति के लिए कलकत्ता से ग्राहक आये। उसी बीच बम्बई की इम्पोरियल कम्पनीवालों ने 'आलमआरा' नाम का सबाब चित्र प्रदर्शित किया तो चलचित्रों की माकिट में हलचल शुरू हो गयी। अब मूक चलचित्रों के खरीदार ही न रहें। ऐसी हालत में मुझे निराश होकर गाँव लौट आना पड़ा। मंगलूर में ही मैंने अपना चित्र प्रदर्शित किया। लोग बड़े उत्सुकता से आय लकिन लोगों को पसन्द आनेवाले देवी देवता उस फिल्म में नहीं थे और मारघाड भी कम थी। इसी कारण से बाहर के नगरों में भी यह फिल्म नहीं चली। मरा एक मित्र इस फिल्म को लेकर एक नतक दल के साथ सारा दक्षिण भारत घूम आया। एक वर्ष बाद मेरा वह चलचित्र मेरे पास लौट आया। उह मेरी दी हुई पेशगी और आमदनी दोनों उही के पास रही आयी।

चित्रोद्यम

बाद में मैंने वह फिल्म दिल्ली के एक फिल्म वितरक को दी। एक वर्ष तक उगने मुझे कोई हिसाब नहीं दिया इसलिए मैं दिल्ली गया। हिसाब की बात तो अलग उमने वह चलचित्र भी कही गिरवी रख रखा था। गिरवी का पसा अपने हाथ से देकर अपना चित्र छुड़ा कर मैं घर लौटा। तब तक दो वर्ष बीत गये। देश में बोलते चलचित्र शुरू हो चुके थे। चलचित्र का क्षेत्र ज्यादा ग़र्चीला हो उठा। तब मैंने चलचित्र की आशा छोड़ दी। अब भी चित्र बनाने की मात्सा गयी नहीं। पर लगता है जब तक अपना स्टुडियो न हो और पर्याप्त परीक्षण न हो उस काम में, चाहे वह कला की दृष्टि से हो अथवा ध्यापार की दृष्टि में, बन्द रखना बेवकूफी है। बाद में एक दिन दो-तीन मित्र दस-बीस हजार रुपये इकट्ठे करके उसे खरबाद करने मेरे पास आये। 'कम-से कम एक लाख रुपये ही तो यह काम करने की हिम्मत की जा सकती है।' कह कर मैंन उन्हें लौटा दिया। सगा कि कानट्रोलों को कम-से-कम ध्यापार की दृष्टि में तो इस उद्योग में आना

ही चाहिए।

मुझे चलचित्र की कला पर बड़ा अभिमान है। उसकी शक्ति अपार है। उसका रास्ता स्वतंत्र है। उसके द्वारा पाश्चात्या ने जो काम किया उसको देखकर मुझे भी इच्छा हुई। पर जब भी मैं देशी चित्र देखता हूँ, सिर दब हुए बिना नहीं रहता। हमारे यहाँ लागे न सिनमा की मोहकता तो पहचान लिया, व्यापार के गुणा से लाभ भी उठाया है। अब अभिनता निर्देशक को नचाने की तरीका सीख चुका है और निर्देशक भी अभिनेता को झासा देन का ढग जान गया है। व दाना पैसा लगानेवाले को, और पैसा लगानेवाला इन दोनों को गडढे में ढकेलने का ढग सीख चुके हैं। साथ ही पैसे की शक्ति समीक्षा का मुह बन्द किय है। विन्नापना के लिए मुह बाय खडे पत्रकार भला निर्भीक समीक्षा कर सकत हैं? परतु वाल्ट डिस्ने जैसे महान व्यक्ति की पुडोवूकिन, कोडी, पालरोता आदि की कृतियाँ देखन और पढ़न के बाद लगता है कि हमारे देश में यह उद्योग बहुत पिछडा हुआ है।

विद्याभिरुचि

कहावत है—ऐसा कोई पौधा नहीं जिसे बकरी न चरा न हा अथवा 'जक आफ आल टूडेस'। उसी प्रकार मेरी इच्छाएँ और अभिरुचियाँ बहुत-सी हैं। मेरे बहुत से मित्रों का कहना है कि मैंने कोई भी काम पूरी तरह नहीं किया। यह सब भी हागा। एक चीज स ही चिपके रहने का स्वभाव मरा नहीं रहा। अगर ऐसा ही चिपका रहता तो मुझे अपने भीतर की शक्तियाँ का परिचय भी न मिल पाता। एक छोटी-सी घटना सुनाता हूँ। जब मैं घर के बड़ा बँ साथ काशी गया तब वहाँ एक श्राद्ध का प्रबंध हुआ। हम लोग आगत वदियों के लिए तरह तरह का भोजन बनाकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। चार आदमियाँ के लिए आठ के बराबर खाना पकाया गया था। पर आनेवाले भोजनकला दस थे। उनमें प्रत्येक एक एक विद्या का विशेषण था। एक केवल मिठाई खान म लगा रहा, दूसरा घोर मांगे जा रहा था तीसरा एक और चीज मांगे जा रहा था। जो पकवान बन थे उनमें कुछ तो कम पड गय और कुछ खूब बच गये।

चित्रकारी

अब चलचित्र स आ चित्रकला की बात कहता हूँ। मैं चित्र बनाता हूँ यह सुनकर शायद पाठकों का आश्चर्य हाँ पर क्या किया जाय। मर भाग्य म तो चित्र, शिल्प वास्तुशिल्प सब कुछ लिखा हुआ है। बचपन म कागड पर रंग बिरंग चित्र बनाया करता था। वरदाचार्य के सुयोग्य सख्ये नाटक की चित्रा के द्वारा दिवाया। पाठशाला छोडन के बाद पिताजी की आज्ञानुसार उनक स्कूल के नाटकों क पर्दों पर चित्र बना कर दिया जाता था। आज भी अपनी पुस्तकों का

सौंदर्य विभाजन के लिए मैं अपने बनाये चित्र और फोटो को छपवाता रहता हूँ। कम से कम यह तर्क तो रहती है कि दूसरों को देना का पैसा बच गया। 'बाल प्रपंच' के लिए बहुत कुछ चित्र तो मुझे ही बनाने पड़े थे। बड़े चार 'कुमार धारा' जैसी नदियाँ के तट पर बठकर प्रकृति के चित्र बनाये हैं। बाटर बलर और पोस्टर बलर का मैंने खूब बेडा गक किया है फिर भी इग क्षेत्र में अभी शिशु ही हूँ। मनोबुद्धि चित्र बनाने की शक्ति का विकास नहीं ही हो पाया। उससे लिए आवश्यक ज्ञान, या स्वतंत्र शैली मुझे प्राप्त नहीं हुई। मैंने अपनी साधना भी नहीं की।

मेरे पसंद न करने पर

एक समय दसों चित्रकारों में फज्जी, रहमान, चुगतायी, शरद और रणदा उकील आदि लोगों की रखाआ का कौशल मुझे बहुत पसंद आता था। उनके मूल चित्र भी मैंने देखे हैं। उसी पागलपन के कारण शांतिनिवेतन जाकर नदलास बसु से मिलता था। उन्होंने तब बहुत से चित्र दिखाये थे। उनके एक चित्र की अब भी याद है। चित्र का विषय कुम्भेश्वर था। कुम्भेश्वर के मैदान में, एक हाथ भर जगह में छडे मजबूत और धृतराष्ट्र के केवल पाँव ही दिखायी देते थे, पर उनमें ही बुद्धि के विनाश की दारुण वेदना उठाने उसमें व्यक्त कर दी थी। शांति निवेतन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बनाये कई चित्र भी देखे। उन्हें देखकर कुछ लागा न पूछा भी था कि उनका कोई अर्थ भी है। मैं भी कह सकता हूँ कि मर पल्ल भी कुछ नहीं पडा। यदि मरे पल्ल न पता था क्या इससे उनके चित्रों का काइ अर्थ नहीं होगा? इस प्रकार की समीक्षा ठीक नहीं। राफेल एबिस, रेञ्जाट आदि पाश्चात्य चित्रकारों के चित्रों की फाटा देखी है। लन्दन म्यूजियम में चीनी और जापानी अनेक चित्रकारों के चित्रों की प्रतिलिपियाँ मंगाकर अभ्यास किया है। उनमें कितनी समानता है? बलाकार अपनी पसंद की काइ भी शली अपना सकता है। यदि हम उनकी शली या उद्देश्य का पसंद नहीं करते तो बला अक्षय नहीं हो जाती।

एक और पागलपन की घान कहना चाहता हूँ। वह है—बला' बहन से क्या कह सकेगी समझ में ही आनी चाहिए? क्या सब को एक ही तरह का आहार पसंद आ सकता है? भला बोन सी चीज सब का पसंद आणी? बला समझने का उचित संस्कार की आवश्यकता होती है। बला ममी ता के लिए भी एक विषय शिष्य चाहिए विषय योग्यता चाहिए।

अवनीन्द्रजी

शांति निवेतन जाते हुए मैं बलबता गया। यहाँ के डॉ० अवनीन्द्र नाथ

ठाकुर से मिलना चाहता था। उनके घर पर गगनेंद्र ठाकुर भी थे। अबनी बाबू तब खूब बूढ़े हाँ गये थे। हमारे देश में भारतीय चित्रकला को पुनर्जीवन उन्हीं से प्राप्त हुआ था। नदलाल बसु, बेंकटप्पा और असित कुमार हालदार आदि को उन्होंने ही सिखाया था। उनके घर में अजन्ता के चित्रों की कुछ प्रतियाँ देखीं। अबनींद्र बाबू और गगनेंद्र बाबू ने बनाये कुछ चित्र देखे। गगनेंद्र बाबू अपनी ही एक स्वतंत्र शली में चित्र बना रहे थे। लगता था उनमें क्यूबिज्म था। मुझे उनसे मिलने की बहुत इच्छा हुई। मैंने पूछा, 'क्या व घर में है?' तब पास बड़े एक लडके ने कहा, "हाँ। पर वे बात नहीं कर सकते।" पता चला कि बात रोग के कारण उनकी वाक शक्ति जाती रही थी। उनको देखने से मेरा मन दुःखी होगा सोच कर मैं यूँ ही चला आया।

चित्रकार की दुनियाँ

एक बार जब मैं दम्बई गया तब वहाँ के टाउन हाल में एक चीनी चित्रकार 'जान यू कू' के चित्रा की प्रदर्शनी लगी थी। उसकी शली में बहिष्प्य था। वह चीनी शली थी। उसके चूने मुख्य विषय ने मेरा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। एक घायल शेर का चित्र था क्रूर पशु होने पर भी रोग से तड़प रहा था। इसका चित्रण चित्रकार ने बड़ी अनुकम्पा से किया था। कुछ और भी पशु और पक्षियों के चित्र थे। अघड में फँसी एक मक्खी का चित्र भी था। मक्खी का अघड में फँसकर पच पटपडाना पानी में डूबते आदमी की छटपटाहट से भी अधिक दुःख होता है यह दिखाया था। साहित्यकार की भाँति ही चित्रकार की दुनिया भी बहुत विशाल है। उस अपने सारे अनुभवों को केवल दबताआ के विषय बनाने में या सुन्दर रूपा की आराधना में ही नहीं गर्वाँ देने चाहिए।

कलाविद्

मेरे मन में धीरे धीरे चित्रकला के प्रति जो प्रेम बढ़ रहा था उसने आरम्भ में मुझे भारतीय चित्रकला की ओर ही आकर्षित किया। राजा रविवर्मा के और बलेष्टरी के चित्रों की अख्यरत मेरी आँखों को दूसरा दृष्टिकोण समझान में उरा समय लगा। बसत पत्रिका में लेख भरना अनिवार्य होने के कारण मैंने दस विषय में भी प्रवेश लेना शुरू कर दिया। उन दिनों में बिक्रामो-मुख बगाली चित्रकला में मुझे पर्याप्त आकर्षित किया। आगे चलकर मेरा मन पाश्चात्य चित्रकला जानने का उत्सुक हुआ। अंग्रेजी में चित्रकला के बारे में बहुत-सी पुस्तकें हैं। यूरोप के चित्रकारों और उनके चित्रों के बारे में अनेक सुन्दर पुस्तकें प्राप्त होती हैं। 'आल प्रपच' लिखत समय उन्हें एक-एक करके मगाकर पढ़ने लगा। राफन माइक्स एजेना द विती रेम्बा आदि चित्रकारों की आर मेरा ध्यान गया। उसके

आगे यूरोप में हुई चित्रकला की क्रांति के बारे में जानने का प्रयास किया गया। सजान, फानगफ, लौट्टे आदि अनेक चित्रकारों के चित्र देखे। उनको प्रशंसा करना भी सीखा। हुकुशी, हिरोशिगे जैसे जापानी चित्रकारों की शैली पश्चात्य चित्रकारों की शैली से भिन्न होने पर भी मुझे साचन पडा। यदि मैं यह बूझू कि मेरी इसी इच्छा के कारण मैं यूरोप की हर एक चित्रशाला देखने को उद्यत हुआ तो कोई गलती न होगी। लन्दन, वुसेल्स अमस्टर्डम, पेरिस, फ्लोरेस, वनिस रोम आदि नगरों की प्रसिद्ध आर्ट गलरीज देखने गया। इसमें मुझे बहुत लाभ हुआ।

चित्रकला के मायने केवल वस्तुओं का बाह्य रूप तथा रंगों की कलाबाजी नहीं है अपितु चित्रकार द्वारा स्वतंत्र रूप से सजने की गयी नवीन सृष्टि है— यह बात मेरे मन में भली प्रकार बैठ गयी।

चित्रकार

हम लोग अपने देश की प्राचीन चित्रकला की परिपाटी को भूल गए हैं। अतः रूपांतरण करनेवाले रवि वर्मा के चित्र ही हम भटान लगे तो इसमें आश्चर्य क्या है? जब तक यह गलत धारणा हमारा दिमाग पर से नहीं हटती तब तक हममें अच्छी चित्रकला पसंद करने की योग्यता नहीं आ पाएगी। रंग रेखा की सृष्टि करनेवाला यह माध्यम अपना एक अलग वैशिष्ट्य रखता है अतः एक चित्रकार की तरह का दूसरा चित्रकार नहीं होता। अपने जीवन के आरम्भ में मैं बैकटप्या जस चित्रकार के पास जाया करता था और उनसे बहुत प्रभावित भी हुआ था। पश्चात्य चित्रकला देखने के बाद यह अनुभव हुआ कि वहाँ एक-एक बटकर कलाकार हैं। वहाँ के चित्रों में मेरा मन बरबस चित्रकार और उनकी चित्रकारिता की ओर आकर्षित हुआ।

माग्दा नाचूमन

इस शती के चौथे दशक में मेरे मित्र एम आचार्य बम्बई में आकर रहने लगे। यूरोप में उन्होंने बहुत गरीबी से जीवन काटा था। वहाँ के गण अपने राजनीतिक चिन्तन पर लिखा करते थे। बम्बई में भी वह वसना ही जीवा चलाने लगे थे। उनके आने के दो वर्ष बाद उनकी पत्नी माग्दा नाचूमन अपने गरीब पति के पीछे पीछे भारत आकर साध रहने लगी थी। आचार्य ने अपनी पत्नी के बनाए चित्र दिखाये। उन्हें जीव-जंतुओं के चित्र बनाने का बड़ा शौक था। बम्बई आने के बाद भी किसी की सहायता न लेकर उन्होंने अपना चित्रकारी का यह शौक जारी रखा। तब वह करीब पचास वर्ष की होगी। उनकी दृष्टि मूढ़ थी और पति से उन्हें अत्यधिक प्रेम था। उनका गरीब घर मर लिए एक ठिकाना बन गया। मैं साल भर में चार-पाँच बार बम्बई जाया करता था और

ठाकुर से मिलना चाहता था। उनके घर पर गगनेन्द्र ठाकुर भी थे। अवनी बाबू तब खूब बूढ़े हो गये थे। हमारे देश में भारतीय चित्रकला को पुनर्जीवन उन्हीं से प्राप्त हुआ था। नदलाल बसु वैकटप्पा और असित कुमार हालदार आदि को उन्हीं ही सिखाया था। उनके घर में अज्ञात के चित्रों की कुछ प्रतियाँ देखीं। अवनीन्द्र बाबू और गगनेन्द्र बाबू के बनाये कुछ चित्र देखे। गगनेन्द्र बाबू अपनी ही एक स्वतंत्र शैली में चित्र बना रहे थे। लगता था उनमें क्यूबिज़्म था। मुझे उनसे मिलने की बहुत इच्छा हुई। मैंने पूछा, "क्या वे घर में हैं?" तब पास बैठे एक लड़कें ने कहा "हैं। पर वे बात नहीं कर सकते।" पता चला कि बात रोग के कारण उनकी वाक शक्ति जाती रही थी। उनको देखने से मेरा मन दुःखी होगा सोच कर मैं यूँ ही चला आया।

चित्रकार की दुनियाँ

एक बार जब मैं बम्बई गया तब वहाँ के टाउन हाल में एक चीनी चित्रकार 'जान् पू कू' के चित्रों की प्रदर्शनी लगी थी। उसकी शैली में अविद्य था। वह चीनी शैली थी। उसके चुने मुख्य विषयों ने मेरा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। एक घायल शेर का चित्र था, 'दूर पशु हाने पर भी रोग से तड़प रहा था। इसका चित्रण चित्रकार ने बड़ी अनुकम्पा से किया था। कुछ और भी पशु और पत्तियों के चित्र थे। अघड में फँसे एक मक्खी का चित्र भी था। मक्खी का अघड में फँसकर पक्ष फड़फड़ाना पानी में डूबते आदमी की छटपटाहट से भी अधिक दुःखदायक है यह दिखाया था। माहित्यकार की भाँति ही चित्रकार की दुनियाँ भी अत्यन्त विशाल है। उस अपने सारे अनुभवों को केवल देवताओं के चित्र बनाने में या सुन्दर रूपा की आराधना में ही नहीं रखा देने चाहिए।

कलाविद्

मेरे मन में धीरे धीरे चित्रकला के प्रति जो प्रेम बढ़ रहा था उसने आरम्भ में मुझे भारतीय चित्रकला की ओर ही आकर्षित किया। राजा रविवर्मा के और कलश्रद्धा के चित्रों की अभ्यस्त मरी आँखों को दूसरा दृष्टिकोण समझान में जरा समय लगा। बसंत पत्रिका में लख भरना अनिवार्य होने के कारण मैंने दम विषय में भी प्रवेश देना शुरू कर दिया। उन दिनों में विक्रमोद्भूत बंगाली चित्रकला ने मुझे पर्याप्त आकर्षित किया। आगे चलकर मेरा मन पश्चात्य चित्रकला जानने को उत्सुक हुआ। अंग्रेजी में चित्रकला के बारे में बहुत-सी पुस्तकें हैं। यूरोप के चित्रकारों और उनके चित्रों के बारे में अनेक सुन्दर पुस्तकें प्राप्त होती हैं। 'बाल प्रवच' निश्चिते समय उन्हें एक एक करके मगाकर पढ़ने लगा। राफेल, माइकल एंजेलो, द विनी, रेम्ब्रा आदि चित्रकारों की ओर मेरा ध्यान गया। उसक

आगे यूरोप में हुई चित्रकला की क्रांति के बारे में जानने का प्रयास किया गया। सजान, फ्रान्कफ, लोट्टे आदि अनेक चित्रकारों के चित्र देखे। उनको प्रशंसा करना भी सीखा। हुकुशी, हिरोशिगे जैसे जापानी चित्रकारों की शैली पाश्चात्य चित्रकारों की शैली से भिन्न होने पर भी मुझे सोचना पड़ा। यदि मैं यह कहूँ कि मेरी दृष्टि इच्छा के कारण मैं यूरोप की हर एक चित्रशाला देखने को उद्यत हुआ तो वाद गलती न होगी। लन्दन, द्रुसेल्स, अमस्टर्डम, पेरिस, फ्लोरेंस, वेनिस, रोम आदि नगरों की प्रसिद्ध आर्ट गैलरीज देखने गयी। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ।

चित्रकला के मायने केवल वस्तुओं का बाह्य रूप तथा रंगों की कलाबाजी नहीं है अपितु चित्रकार द्वारा स्वतंत्र रूप से सजने की गयी नवीन सृष्टि है— यह बात मेरे मन में भली प्रकार बैठ गयी।

चित्रकार

हम लोग अपने देश की प्राचीन चित्रकला की परिपाटी को भूल गये हैं। अतः रूपानुकरण करनेवाले रवि वर्मा के चित्र ही हम महान समझे तो इसमें आश्चर्य क्या है? जब तक यह गलत धारणा हमारे दिमाग पर से नहीं हटती तब तक हममें अच्छी चित्रकला पैदा करने की योग्यता नहीं आ पाएगी। रंग रेखा की सृष्टि करनेवाला यह माध्यम अपना एक अलग बहिष्कृत रक्षता है अतः एक चित्रकार की तरह का दूसरा चित्रकार नहीं होता। अपने यौवन के आरम्भ में मैं बैकटिया जैसे चित्रकार के पास जाया करता था और उनसे बहुत प्रभावित भी हुआ था। पाश्चात्य चित्रकला देखने के बाद यह अनुभव हुआ कि वहाँ एक-स-एक बढ़कर कलाकार हैं। वहाँ के चित्रों से मेरा मन बरबस चित्रकार और उनकी चित्रकारिता की ओर आकर्षित हुआ।

माग्दा नाचूमन

इस शती के चौथे दशक में मेरे मित्र एम. आचार्य बम्बई में आकर रहने लगे। यूरोप में उन्होंने बहुत गरीबी से जीवन काटा था। वहाँ वे गदा अपने राजनीतिक चिन्तन पर लिखा करते थे। बम्बई में भी वयसा ही जीवन चलाने लगे थे। उनके आने के दो वर्ष बाद उनकी पत्नी माग्दा नाचूमन अपने गरीब पति के पीछे पीछे भारत आकर साथ रहने लगी थी। आचार्य ने अपनी पत्नी के बनाये चित्र दिखाये। उन्हें जीव-जंतुओं के चित्र बनाने का बड़ा शौक था। बम्बई आने के बाद भी किसी की सहायता न लेकर उन्होंने अपना चित्रकारी का यह शौक जारी रखा। तब वे गरीब पंगाल वय की हाथी। उनकी दृष्टि स्पष्ट थी और पति से उन्हें अत्यधिक प्रेम था। उनका गरीब पर मर लिए एक ठिकाना बन गया। मैं साल भर में चार-पाँच बार बम्बई जाया करता था और

उनके चित्रों को देखकर आनादिता हुआ करता था। भारत में आकर बसने पर भी यहाँ के लोग ने उन्हें भारतीय नहीं माना। उन्होंने यूरोप की महिलाओं के साथ अधिक सम्पर्क नहीं बना रखा था। अपना सारा समय दृश्य चित्र बनाने में ही लगाती रही। फिर भी उस आय से घर नहीं चल पाता था। सन 1938 में उन्होंने मरा भाव चित्र बनाया। उन्हें गरीबी के चित्र बनाने बहुत पसंद था। उनके चित्रों में आँखा का रूप दर्शन योग्य होता था। मैं उन्हें बहुत देखा देखा करता था। उनके चित्रों को एक प्रदर्शनी सन 1950 के बाद बम्बई में आयोजित की गयी थी। उस प्रदर्शनी के उद्घाटन के दस दिन पूर्व ही वह परम धाम पहुँच गयी थी। आचार्यजी पहले से ही फेफड़ों की बीमारी में ग्रस्त थे। पत्नी के गुजर जाने के बाद उसकी याद में तड़प-तड़प कर उसकी ही राह पर चले गये। कलाकार की सिद्धि और गरीबी से घिरी माग्दा मेरे लिए कभी न भूल पाने वाली एक याद बनकर रह गयी।

हेन्ड्वार

माग्दा जब बम्बई में थी तब भलवार हिल के बहुत पास हमारी तरफ के ही श्रीकृष्ण हेन्ड्वार रहा करते थे। उनसे परिचय के बाद, जब भी मैं बम्बई जाता उनसे अवश्य मिलता। आजकल के पद्मश्री सम्मान पा चुके हैं और एक अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त चित्रकार हैं। इस दीर्घकालीन परिचय और उनके सरल स्वभाव से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। जब तब उनके चित्र बनाते समय मैं उस चित्र को देखता उस पर टीका टिप्पणी करता। हँसता, चर्चा तो करता ही था, पर उस माध्यम को समझने में उनसे बहुत सहायता भी प्राप्त की। उन्होंने, पता नहीं, उन माध्यम से कितने प्रयोग किये। नित्य नये-नये तरीके अपनाकर चित्र बनाने हेन्ड्वार सा का रंग और रखाओं की इतनी सिद्धि हो चुकी है कि देख कर आश्चर्य होता है। उन्हीं जस कुछ कलाकार आधुनिक भारतीय चित्रकला में प्रतिपदा कर रहे हैं। इस प्रतिपदा यह डर भी लगता है कि आधुनिक चित्र बनाना पता नहीं किस आर जाएगी। इसका विचित्र परिणाम हम यूरोप और अमेरिका में दशा में देख सकते हैं। 'अमृत चित्रकला' कई बार हम आश्चर्य में डाल देती है। कई अज्ञानता 'तबनीक' ही कला बन जाती है। मैं इतनी दूर जा नहीं सकता। कोई भी माध्यम क्या न हो, कोई भी शक्ति क्या न हो, भल ही कोई शास्त्र क्या न हो, वह चित्रकार के अंतरंग को, विचारों और मन की गहराई का नियात में समय होना चाहिए। उसके मनाभावों में गहराई नहीं होनी चाहिए? भाव क्या केवल रंग से ही चित्रों में रहने की चीज है अथवा जीवन से बिपन्नने वाली चीज है? चित्रकार का चित्र यदि दर्शक के मनोभाव नहीं जगाता, और सव्यन उत्पन्न नहीं करता तो वह सायब नहीं कहा जा सकता। यह

चात तभी मभव है जब वह चित्र जीवन से सन्निधत हो ।

कला की सृष्टि से मन पर पडन वाला प्रभाव जितनी लम्बी अवधि तक रहता उतनी ही वह कला महान् कहलाती है । उत्तम माहि य का दखन का भी मरा यही मापदण्ड है । किमी कलाविद के महान् ान मे यत् काम नही हा जाता । उसके साथ गहृदय भी होना चाहिए । उस सृष्टय को इस विषय म आकषण हो सकता है पर उससे अनुकम्पा या सवदना पत्ता नही हाती । उनय लिए माध्यम के प्रति सम्बार भी चाहिए । कइया को यह कहन मुना है 'भला इन चित्र म क्या रखा ?' इनम एम भी लोग हैं जो यह कहन हैं कि उह चित्र की भाषा' भाती है, पर यह पता नही कि कितन लोग म वह सस्वार है ।

नाचता मन और थिरकती देह

नृत्य की ओर

मैंने मुक्तद्वार नाटक मचन के लिए लिखा था। इसकी कथा में युग तरो में याज्ञवल्क्य बुद्ध कृष्ण, ईसा आदि के उपदेश धीरे धीरे कैसे बदले और झुला दिये गये यह दिखाने का प्रयास किया था। उसमें काल एक पात्र है। वह 'काल-पुरुष चंद्र, अग्नि, साधारण व्यक्ति, पत्नी, सप आदि के अलग अलग रूप धारण करता है। इन सब को मुझे नृत्य द्वारा ही प्रस्तुत करना था। वह नृत्य भी मुझे ही जिसे नृत्य की विशेष जानकारी न थी, सिखाना पड़ा। अपने एक मित्र की पुत्री को नृत्य करने के लिए बुलाया और उसके लिए उपयुक्त पद्धति चुन कर उसे सिखाने लगा। मेरे उन विचारों के लिए नृत्य ही उपयुक्त था। मैंने प्रकृति में यह देखा था कि ताल गति रेखा किस प्रकार बढ़ती जाती है। यह बात वहीं से मेरे मन में उठी थी। नृत्य में वही प्रमुख है। इसलिए ताल की थाप पर सहज बंदम रखने हुए हाथ से मुख मुद्राओं से काल के एक एक भाव का सजन करने लगा। इन सब का मूल मन की भावना ही थी, कोई शास्त्र ज्ञान नहीं। इसलिए मरी शिष्या भाव पकड़ नहीं पायी। वह पद संचालन जानती थी लेकिन वह काय निभा नहीं पायी। मैं स्वयं वह काय आरम्भ कर दिया। सात-आठ दिनों के अभ्यास से अपना भावा का शरीर की भंगिमा से, अंग संचालन से प्रदर्शित करने लगा। यह 1932 की बात है। तब से मुझे नृत्य भी प्रिय हो गया। मैं भाव में कितना अधिक तल्लीन होना गया उतनी ही सफलता मुझे नृत्य के सृजन में मिलती चली गयी। मैंने 'मुक्तद्वार नाटक' का प्रदर्शन बैंगलूर, मंगलूर और पुत्तूर में किया। त्रिवण्ट श्रीरङ्गा के भाद्रपद पर रायचूर में भी उसका प्रदर्शन किया। तब ऐसा लगा कि आम लोग न भी उम बढ़ते पसंद किया। इसका कारण था यह रहा हागा कि उनका नृत्य का ज्ञान मुझ से भी कम रहा होगा। 'अधो में जाना राजा पद कहावत ही सही लगी।

तरंग

पुत्तूर में दशहरा के अवसर पर मित्रों की साथ लेकर नृत्य-भेद में भी प्रयोग

करने लगा। पाँच मेरे थे, अग विद्यास मेरा था, मुख मुद्राएँ भी मेरी थी, इसलिए यह कहना चाहिए वह नृत्य शास्त्र भी मेरा ही हुआ। अपनी समझ के अनुसार मैं उसे विकसित करता गया। 'मेघ मयूर' नाम से एक नृत्य की योजना बनायी। दो मोरनियाँ एक मोर की उपेक्षा करती हैं। यह भाव प्रधान विषय था। इस सरल नृत्य को विविध तरंगों और विद्यासों से प्रदर्शित करने में आसानी हुई। तरंग के विषय में मेरे और दूसरों के विचार एक ही होंगे, ऐसा मैं नहीं सोचता था। वस, मेरे पागलपन को वहीं पसंद था।

शीलभग

एक बार और, बंगलूर के एक मित्र के स्नेह ने ही मेरे भीतर की विचार लहरी को छोड़ा। मेरे मित्र श्री तिप्पय्या, जब भी मैं बंगलूर जाता तब, अलसूर के सरोवर में मुझे नौका विहार को ले जाते थे। एक बार जब मैं वहाँ गया तो मुझे फूल पर स्नह के कारण उहान वहाँ सगे सुनहर कमल तोड़कर दिये। मुझे फूल बहुत प्यारे लगते हैं। पर उस ताड़नेवाले या तोड़कर बालों में लगानेवाले अच्छे नहीं लगते। पौधे पर लगे फूल का जो सौंदर्य है वह बालों में लगाने पर नहीं दीखता। तिप्पय्या ने दिये स्वर्ण-कमल घर लाते लात मुरझा गए थे। वैसे फूलों का जीवन एक ही दिन का होता है। वह भी पौधे पर ही दीखता है। मुरझाये फूल देखकर मुझे बड़ी व्यथा हुई। जनसाधारण में फूलों के प्रति दीखनेवाली रचि को फूलों का शीलभग ही कहना चाहिए। मैं इसी विचार को 'शीलभग' नाम से नृत्य-नाटिका में व्यक्त किया है। फूल के स्थान पर एक कन्या रूपी फूल को देखकर प्रशंसा करनेवाले व्यक्तियों की कवि और सूर्य से तुलना करके, शीलभग करनेवाले को पुजारी के रूप में आरोपित करके उसने लिए उपयुक्त गीत लिखकर एक बँले तैयार किया।

और एक बार रात दिन का सौंदर्य, विश्रान्ति, गम्भीरता, श्रान्त, उत्साह को, निद्रा देवी और सूर्य की सरल त्रीडा के एक दृश्य में निरूपित किया। उस नृत्य को केवल गीत की पृष्ठ भूमि दी। उस 'शीलभग' के समान साहित्यिक पृष्ठ-भूमि नहीं दी। इसी प्रकार बार-बार कई प्रयोग करने अनेक नृत्यों का सृजन करना सम्भव हो पाया।

मनोगति ही शरीर की मति

इस प्रकार काम करते समय एक और बात मेरे ध्यान में आयी। चाहे नृत्य हो या साहित्य का निर्माण, उसमें तल्लीन हो जाना मया स्वभाव है। यह तल्लीनता जितनी बढ़ती जाती, नृत्य के भाव उतन ही रूपन और बिबसित होते पाते हैं। मैंने यह भी देखा कि नृत्य में भाव-समर्पण के लिए एक और सहज

सुविधा रहती है। उसकी गति जैसे तीव्र होती जाती है वैसे ही तन्मयता बढ़ती जाती है। उसका कारण है नृत्य व्यापार का मानसिक होने के साथ-साथ शारीरिक भी होना। शरीर-संचालन बढ़ने के साथ रक्त का वग भी बढ़ जाता है। खून जैसे-जैसे दिमाग में अधिक पहुँचता है वैसे-वैसे मन में भावोद्रेक होता है। तन्मयता और भी बढ़ जाती है। मूल में उत्पन्न कल्पनाएँ ताल और गति से और भी तीव्र हो उठती हैं। हमारे गाँव में हालेय (अस्पृश्य जाति के) लोगों के नृत्य—भूतनृत्य से परिचित होने से मुझे इस बात की सचाई का अनुभव हुआ कि ऐसी सुविधा उन कलाओं में नहीं जिनमें शारीरिक संचालन कम होता है।

अलीबाबा

अपने इस प्रयोग-काल में नृत्य नाटिकाओं पर प्रयोग करने का साहस भी मुझे हुआ। इसमें मैंने दो पद्धतियाँ अपनायीं। यहाँ उनके बारे में बतता हूँ। एक के लिए मैंने हिन्दुस्तानी सगीत की भूमिका अपनायी। मुझे लगा कि कल्पना-सोक में जहाँ काम करता जाता है नृत्य केवल यथाथ चित्रण के काम में नहीं आता। इसलिए मैंने अद्भुत और रम्य कहानियाँ चुननी आरम्भ की। अरेबियन नाईट्स कहानियाँ में से 'अलीबाबा चालीस चोर' की कहानी चुनी। उस कथा के सभी पात्रों को नृत्य द्वारा ही सारी कहानी प्रदर्शित करनी थी। कहानी भी उसमें अनुकूल थी। अरबा की विशिष्टता भी दिखायी जा सकती थी। इसके अलावा चालीस चोरा का दल और उनके घोर घे पर नृत्य में तो एक ही घोड़ा और एक ही सवार रखा था। इसमें गति होने के कारण मुझे प्रयोग को पुट देने में बहुत सहायता मिली। चोरो का गुहा का दरवाजा खोलना, तेल के ढोसों में छिपकर बैठना, मोची का काम, मरजीना का नृत्य चोरो की हत्या—यह सब त्रिया के ही अंग हैं। इसलिए थोड़े से प्रयत्न से ही मैंने इस बले का सज्जन किया। वेधमूपा उसी के अनुकूल रची। दो घण्टे तक इस मुद्दर कहानी को बिना धीरे नृत्य के द्वारा प्रदर्शित करना संभव हुआ।

हसन परवीन

और एक बार बेंसट स्कूल की दमक लड़कियाँ में 'हसन परवीन' कहानी को नृत्य के द्वारा ही प्रदर्शित कराया। फिर मैंने एक बार पुस्तुर में 'अलादीन और जादू का चिराग' कहानी नृत्य-नाटिका में दिखायी। जब चिराग के जिन द्वारा रातमहम का उठाकर दूमरी जगह रखने का प्रसंग आया, मैं स्वयं उसकी कल्पना में संलग्न था। मर अनजान में ही विचित्र गति से उस भाग्य का नृत्य द्वारा प्रदर्शित करना संभव हो गया। इन सारी कल्पना के लिए एक-दो नहीं दस पात्रहनकों की आवश्यकता थी। स्कूल के बच्चों का लेकर दा-दीन महीन तक अभ्यास करा-

अगर एक नाटक दिखाना संभव हो सके। वह भाव कुछ ऐसे विशिष्ट नहीं थे।
उनके लिए बाना की और काव्य-कल्पना की आवश्यकता नहीं थी। वे जनसाधारण
की कल्पना और अनुभव की पहुँच के विषय थे।

हाव-भाव

मैंने कत्यक पद्धति के नृत्य देखे थे। बचपन में भरत-नाट्यम् भी देखा था।
यक्षगान के नृत्य से तो परिचित था ही। यदि नृत्य पर्याप्त तरंगबद्ध हो तो गति-
विन्यास, ध्वनि विन्यास, अंग विन्यास सभी प्रेरक बन जाते हैं। प्रवृत्ति में नित्य ही
हम पक्षिया के उड़ने में, बादला के तैरने में, नदियों के बहने में यह देख सकते हैं।
उनकी गतियाँ हम पर अपने आप प्रभाव उत्पन्न करती हैं। भावा के साथ-साथ
सामान्य सचेता को विकसित करना सरल है परंतु भाषा का मारा काय नृत्य
नहीं कर सकता। एक शब्द साहित्य में जो काय करता है यदि उमी का हमें हाव-
भाव द्वारा दिखाना हो तो एक कला का दूसरी कला की विशिष्टता के अनुकरण
के समान होगा। कथकली, ओट्टु कत्यक, भरतनाट्यम् शब्दा की एक भाषा की
ही सामने रखकर हाव-भाव द्वारा व्यक्त करके अनुवाद करने के समान है। 'अनु-
वाद एक कला है' कहने पर भी उसमें स्वतंत्रता नहीं है। विचारा को, वस्तुओं
का, वस्तुक्रिया के गुणों को, स्वभाव को प्रेरित करने का काम भाषा का होता
है। क्या नृत्य उसे सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त कर सकता है? संस्कृत काव्यों में
आनेवाली उपमाओं, अलंकारों को नृत्य के हाव भाव द्वारा व्यक्त करने पर यह एक
बहुत दुबल भाषा होगी। कुछ आदिवासियों में हाव भाव की ही भाषा है। क्या
उसे हम नृत्य की सजा दे सकते हैं? उसे समझने के लिए हर हाव भाव को जानना
होगा। उसमें उतनी ही कठिनाई होती है जितनी कि एक भाषा जाननेवाले को
दूसरी भाषा समझने में। भरतनाट्यम् में अभिनय के अंग के रूप में, वार्तानाय के
साथ-साथ नाट्य की आवश्यकता रहती है। नाट्य अलग है, नृत्य अलग है।
नृत्य ताल और गति में बद्ध रहता है जबकि नाट्य अभिनय के क्षेत्र से सम्बंधित
है। भरतमुनि ने प्रत्येक बात के लिए एक सकेत निश्चित किया और उन्हें 'मुद्रा'
नाम दिया। एक ही मुद्रा का कत्यक में अलग अर्थ और भरतनाट्य में कुछ
और। कथकली में उतना कुछ और ही अर्थ है। एक शब्द के चार भाषाओं में
अलग-अलग अर्थ निकलते हैं। मांग पद्धति में नृत्य नियमों में बंधकर हाव भाव
की 'भाषा' मुख्य रूप में रखकर नृत्यांग की उपयोग करती हैं। वे पद-संग्रहण
करती हैं, यह सच है। वे तालबद्ध भी होती हैं यह भी सही है। पृष्ठभूमि में वाद्य
बद्ध भी रहता है। उनके वाद्य के अनुसार नृत्य नाचता है। उगकी पद्मनि और
और गीत में भाव की एकता नहीं आ पाती। उनके द्वारा संगीत की आवाज
पर यह तरबिट, तद्गिन के अनुसार चल ही दुख रहे या सत्तीय अथवा रोप,

नतक नृत्य करके दिखाता जाता है।

केवल ताल, गति क चमत्कार की ओर वादको का ध्यान जाता है उसी प्रकार नतकी का मन भी अनिवाय रूप में उसी ओर जाने का विवश हो जाता है। तब का मुख्य काय भाव सृजन करना है पर उसके लिए यह पृष्ठ संगीत अडचन पदा करता है। वह एक प्रकार की यात्रिक गति सी लाती है। सभी नतक स्वयं सजन कर पानवाले नतक नहीं होते। इसमें अलावा बत में आठ-स व्यक्ति एक साथ नृत्य करते हैं। तब उन्हें एक निर्देशक की कल्पना व अनुसार नृत्य करना होता है। तब संगीत बवल पृष्ठ भूमि भर बनकर रह जाता है। नतक का निर्देशक का उद्देश्य समझकर आग बढ़ना होता है। हम प्रायः जसाकि दिखाई पड़ता है, नतक को मदगवाले की तिरबुश प्रवृत्ति का शिकार नहीं होना चाहिए।

स्थित मुद्रा, सचारी भाव

चाहे कोई भी कला क्यो न हा वह कलाकार के मनाभावा के विम्बो की प्रकट करनवाली होनी चाहिए। वह किसी का अनुवाद नहीं होनी चाहिए। इसका अभिप्राय यह नहीं कि सारी नाट्य पद्धतियाँ अथशून्य हैं। उम अथ बोधक भाव है। उनमें हमारी ससृति के लोग के द्वारा प्रयुक्त होन वा सकते हैं। जैसे हाथ जोडो से नमस्कार की सूचना मिलती है अथवा हाथा के आकार से कली का संकेत मिलता है। ससृति स हा या आकार अथवा क्रिया स व्यक्त होनेवाले अथ से ज्यादा भावो का यदि हम मुद्रा में व्यक्त करें तो वह भावा के पण्डितों के अतिरिक्त दूसरा को समझ में नहीं आयेगा। हाँ, भावो को चित्रित करके के लिए भरतमुनि ने अभिनय के अशो का, मुख मुद्राओ का सूत्र प्रयाग किया है। हास्य, दुःख, रोष आदि की अभिव्यक्ति के समय नृत्य का अतिरेक स्थिर करके दिखाना होता है। इससे लाभ भी है और हानि भी। नृत्य की एक भंगिमा में छडे होकर अतिरेक की मुद्रा दिखात समय प्रेक्षक पर भाव का परिणाम होता है। नतक के अगसचालन में उस समझना कठिन होता है। इससे वह सरल ही जाता है। परंतु यहाँ नतक के ही स्वतंत्र रूप से भावोदीप्त होने पर मुख-मुद्राएँ उनके अनुकूल होनी चाहिए अर्थात् उसका शोध, दुःख, आनंद जगुप्सा आदि प्रसंग के अनुसार व्यक्ति के सस्वार के अनुकूल मुख पर व्यक्त होन चाहिए। तब वह मुद्रा स्थित होन की अपेक्षा मन के वेग के समान ही स्फूर्ति से दिखानी होगी। इस दृष्टि से नाटक में अभिनेता के द्वारा दिखाया गया मुख भाव और भी सहज हा जाता है।

एक और मुख्य विषय है। प्रायः नृत्य में शरीर के निचले भाग में रखा-तरंगे (Rhythm in body lines) कम प्रदर्शित हो पाती हैं। ऊपर के छडे के अंगो

को जा स्वतंत्रता है वह परम्परागत पदगति से मेल नहीं खाती। नृत्य के लिए सदा शरीर की चलन रेखाएँ मुख्य हैं। आरम्भ के दिनों में मैं सरल ताला की चाप अर्थात् एक दो तीन, एक-दो-तीन चार, एक दस—इन नियमों का अनुसरण करता था। तब एक विचित्र प्रकार की अटचन स्वतंत्रता का अभाव-सा शरीर में महसूस होने लगता था। जब मैं दूसरे प्रकार के प्रयोग करने लगा तब वहीं मैं इस अटचन से मुक्ति पा सका।

मसगान और किन्नर नृत्य

मसगान के गीतों को विकसित कराकर उही कहानियाँ पर नृत्य करने का निश्चय करके आगे बढ़ा। अब तब चुन गये गीत गाय जाते थे। इसी के लिए उनका निर्माण हुआ करता था। गीत और वाद्य दो यक्षगान की मुख्य शक्तें हैं। इन दोनों का प्रयोग नृत्य के लिए होता है। उनकी नादांग (Sound rhythm) नृत्य के लिए अत्यन्त अनुकूल होती है। उनमें सभी रसा की अभिव्यक्ति करने की शक्ति होती है। रीढ़ और स्नायुत्व के लिए आवश्यक सभी गुण उनमें होते हैं। इसलिए उन गीतों पर नाचते हुए भाव प्रदर्शन सरल होता है। इतना ही नहीं, भरे पद संचालन में पहले जा अटचन मैंने अनुभव की थी वह यहाँ नहीं रही। हाथा और ढह का जो स्वतंत्रता मिली वह पाँवों को भी देने लगा। इसीलिए समस्त शरीर की रेखा-तरंगों में एक प्रकार से सन्तुलन दीखने लगा।

यहाँ अभ्यास करते-करते कुछ नये तोड़ों (पद संचालन) की खोज करना सम्भव हुआ। रंगमंच पर पद-संचालन में दृश्यन हान वाले प्रत्यक्ष रूप से भाव प्रदर्शन में सुविधा दिखायी दी। लगा कि भाव के अनुकूल पद-संचालन की रीति भार और लघुता, दूरी और सामीप्य सभी काम में आन लगी। एक ओर काम भी करने लगा—पूरा तलवा रख कर नाचते हुए उमनी रखाआ में शरीर और पाँव की रेखाओं के साथ कई बार सन्तुलन दिखायी पड़ा। तब एही न लगाकर पर्जों पर नाचने का अभ्यास किया। लघुत्व और मादव के प्रदर्शन के लिए ही वह रीति अनुकूल लगी। रीढ़ भाव उत्पन्न करने के लिए एही लगाकर नारन की परिपाटी सहायक हुई। इस प्रकार मैंने यक्षगान के बीच-बीचे 'इ इ कीलक', 'पंचवटी' आदि सात-आठ नये नाटक का प्रदर्शन किया। गीत भी यक्षगान के ही थे पर नृत्य तो भर-भरन ही ढग का था। उसमें अलग से किन्नर-नृत्य नाम दिया। उस नृत्य के प्रति हमारे गाँव के लोग ने बड़ी अभिरुचि दिखायी।

पंचड में आने वाला भाव

यह नये साधारण लड़क-लड़कियाँ द्वारा प्रदर्शन किया गया था। जो बात

उनकी समझ से बाहर हाती और मैं उसे नाच कर दिखाता तो वयांत्रिक रूप से भर नृत्य का अनुकरण करने लगते उनसे अपना निजवा 'भाव प्रदर्शन' असाध्य हो जाता। नृत्य निर्देशक भी एक सष्टिकार हाता है। उसके नियंत्रण में रहते हुए भी प्रत्येक नर्तक का व्यक्तिगत रूप से भी सजक होना चाहिए। उसे भी उससे आत्ममन्ताप मिलना चाहिए। यदि हम छोटे बच्चों से कृष्ण, राधा, शिव ताण्डव आदि नृत्य करा कर उनकी कल्पना से पर की चीज की आशा करें तो वह कृति कभी कला का रूप धारण नहीं कर सकती। एस काय मेंन करा कर भी देख है और उनकी समझ की भूमिका भी देख देखा है। मोर, हिरन, खरगोश आदि सरस विषया में बच्च जितना उत्साह दिखाते है उतना दूसरे विषया में नहीं।

बच्चा के लिए भी मैं कुछ नृत्या का सृजन किया। पतंग फूलों का हँसना, जुगनुआ का खन—एम सरल गति क नृत्यों को बड़ प्रभावोत्पादक ढंग से दिखाया जा सकता है। नाटक क अभिनय में यही बात है। अपरिचित जीवन को अभिनय कस दिखा सकता है? बिना अनुभव क भाव और कल्पना को केवल लख स बड़ कस समझ पायगा? छोटे बच्चा से नृत्य में रास फ्रीडा, शिव ताण्डव कराये ता वह नृत्यन हाकर केवल नवल हागी। शृ गार क जीवन में पदापण करने क बाद ही उनमें वह बात आ सकती है। प्रलय की कल्पना मन में आने के लिए विशेष प्रकार की विनाशकारी घटनाओं का वास्तविक जीवन में परिचय होना चाहिए। अबाध प्रवाह, तूफान, दावाग्नि, इनसे किसी न किसी भूमिका से गुजरनेवाला ही थोड़ा बहुत असली ताण्डव दिखा सकता है। बसल चिन्म्वर की नटराज मूर्ति की अथवा एलिफण्टा के नटराज की मूर्ति को नवल करने से ताण्डव हो जाएगा क्या?

अपने प्रयोग में कितने नृत्य क अलावा दूसरे नृत्या के बारे में वह ही चुका है। उन दाता में बड़े प्रकार के प्रयोग किये हैं पर नृत्य कला का पारस संगीत और नर्तकों के द्वारा पूरी होने की चीज है। काई किता कीन में बठकर सब मुविधाए चाह तो कस हो सकता है? पागलपन बढ़ने पर चार छोटे बच्चे इकट्ठे कर के अपनी कसा की इच्छा-मूर्ति मान कर लना होगा।

कलाविद

मैंने कुछ पारचाय कलाकारों के जीवन और काय को समझने का प्रयास किया। अमेरिका की ननकी इसाठारा डबन न नृत्य में बहुत नाम कमाया था। यह पढ़ा था कि प्राचीन यीक किल्ला का दख कर उमक मन में कस इच्छा जाग्रत हुई थी और उगकी क्रिया शक्ति के स्वेच्छद होकर काय करने लगी थी। एक बार उगका कायक्रम मास्का में था। उम दिन का कायक्रम पहल ही छप चुका था। जब वह मास्को पढ़ी तब आधी रात भीत चुकी थी। रास्त में उगन कितने

कल के मिलमिले म शव ढाय जात दत्ते । सारे दिन वह भयकर विग्र उसके दिमाग म चक्कर काटता रहा । उनने अपना नृत्य का कार्यक्रम शुरू करने से पहले, घोषित विषय का बदल कर चापिन का 'मृत यात्रा' गीत बजान भी कहा और बी स्फूर्ति से मृत्यु यात्रा का नृत्य किया । महान मजन कलाकारा का ढग कितना विचित्र है ।

अना पावलावा एक और ख्यातिप्राप्त नतकी थी । अभ्यास और अभ्यास ही उसने जीवन का ध्येय बन गया था । उसक नृत्या म हसगीत (Swan Song) भी एक नृत्य था । कालांतर म वह जब मरन लगी तो 'हसगीत' नृत्य क परिधान मगवाकर गले से लगाकर मरी । इस प्रकार कलाकार क जीवन म भाव और कला एक हा जाय तो महान कला की सृष्टि हाती है । मैंन पुत्रुर म रह कर अपा गाँव के लोगो के सामने ऐंसे बहुत स पागलपन के काम किय हैं । मर कई मित्र पुत्रुर आत और मेरी कला देख कर वहे प्रभावित हात थे । एक बार मैं गाँव गाँव धूमा हू । परम्परागत नृत्य-केन्द्र कल्तीकोट म मैंन अपना 'पतग नृत्य' बच्चा स प्रदर्शित कराया । उसम कचकली की मुद्राए न होन पर भी वहाँ की जनता को वह अत पमद आया ।

प्रवास

एकवार मैंन रात्रिदिवा नदी चित्रागटा इद्रकीनक आदि नृत्या की रचना करके यथागान नृत्य का एक दन लेकर सन 1937 म बंगलूर स बम्बई तक का दौरा किया । बंगलूर कलाप्रनों का नगर है समीयाआ का मायबा है । वहाँ बहुत स परिचित जन भी थ । मरे वहाँ कवल दो प्रशना की आमदनी पचहत्तर रुपये हुई । जो भी हा, सागा न मेरी कला को पमद तो किया । दशकी न दुबारा दिखान का आग्रह किया । 'दण्ड भरन को पसा नही' कहकर मैं वहाँ स भाग निवला । धारयाड और हुब्बल्लि क प्रदगनों म घाडा साम हुआ । बेलगाम गया तो वह मेरे लिए बजर ही साबित हुआ । बम्बई म भी दो प्रदगन किये । पता नही लोगो को कसे दया आ गयी । उहाँन दो हजार का दण्ड भर दिया । तो भी बेलगाम और बंगलूर के घाटे क कारण तीन सौ रुपये अपन हाथ स भरन पडे ।

नृत्य में पत्नी भी

मैंने आपकी बताया नही कि इस बीच मेरा विवाह हो गया था । पति नाच और पत्नी न नाच ता कस चलेया ? जामद नृत्य मिछान मिछान ही एक दिन सीता नाम की सडकी न मुमते विवाह कर लिया । नृत्य म भन ही कुछ मिला हो या न मिला हो पर भार्या तो मिल गयी । मरी दो शिष्याओं को भी नाच पति

मिले थे। विवाह के बाद पति पत्नी को नचाता है या पत्नी पति को यह तो अनुभव करने की बात है। मेरे बम्बई में नृत्य प्रदर्शन के समय कुछ यूरोप के कलाप्रेमी जन नृत्यगृह में आकर नृत्य देखने गये। उनमें एक यूरोपियन टूर-कण्डक्टर भी था। 'रात्रिदिवा' में मेरी पत्नी रात्रि की भूमिका कर रही थी। नृत्य समाप्त होने पर कण्डक्टर भीतर आया और बोला, "इनका नृत्य बहुत बढ़िया है।" मुझे इस पर गव का अनुभव हुआ। मैंने कहा, 'यह मेरी पत्नी है।' वह कुछ बोला नहीं। काश! वह कह बैठता, 'हाउ डज इट मटर?' (How does it matter) तो मेरा क्या हाल होता? अपनी पत्नी को मैंने यह बात नहीं बतायी।

दिव्य, भव्य, नव्य

बम्बई के दोरे में मेरी नृत्य-मंडली को पर्याप्त सम्मान मिला। वहाँ के 'आठ सक्ल' वाला (दिवंगत कहेयालाल वकील मण्डली) ने हमारा प्रदर्शन और मेरे भाषण का प्रबंध किया था। जमुनादास मेहता उसके अध्यक्ष थे। मैंने अंग्रेजी में एक जवत्त भाषण दिया। उस सभा में बम्बई के डब्लू चण के कुछ स्त्री पुष्प आय थे। कुछ लोग रंगमंच के अभिनेताओं की तरह सजघज कर आये थे। उनके सामने हमने अपने नृत्य और यक्षगान का प्रदर्शन किया। बहुत प्रशंसा हुई। उन लोगों की प्रशंसा और साधारण लोगों की प्रशंसा में केवल शब्दों का ही अन्तर होता है। भावनाएँ छोखली ही होती हैं। मैंने बैंगलूर में एकबार नृत्य का प्रदर्शन किया तो मेरे एक सस्तुत के ज्ञाता बुजुग मित्र भर मेकअप धाने से पूव ही आये और हाथ मिलाते हुए अपने हाथों में रंग लगाकर बोले, 'आपका नृत्य तो दिव्य था भव्य था नव्य था।' सस्तुत न जाननवाल मुझको मह सब कम पता चलता परंतु चार ही दिन बाद जब मैं धारवाड के एक मित्र से मिलने गया तो पता चला कि किसी ने मेरे नृत्य को देखकर कहा था "या तो इस भारत में अबल नहीं है या फिर हम लोगों की अबल मारी गयी है। इसलिए लोगों की प्रशंसा से बलाविद को अपना दिमाग धराब नहीं करना चाहिए।"

गापीनाथ

जब मैं कल्लोकोट गया था तब यथकसी के प्रसिद्ध कलाकार गोपीनाथ से भेंट हुई। उन्होंने हमारे लिए कुछ नृत्य भा प्रस्तुत किए। अग सचालन में कथ कसी की कठोरता होने पर भी उनका नृत्य बड़ा प्रभावक था। वही एक और डच प्यक्ति से परिचय हुआ। नाम था वेस्टर कॅप। वह बम्बई में 'इन्द्रदेव' के नाम से प्रसिद्ध था। वहाँ उन्होंने कुछ दिन तक एक नृत्यशाळा भी चलायी थी। उन्होंने हमारी नतक मण्डली को नारत्रे पर बुलाया था। तब तब उन्होंने कत्यक नृत्य भी चलाया था। उन्होंने कत्यक नृत्य में पद सचालन का धमत्कार अच्छी

तरह लिखाया। पश्चात् हमारे यक्षगान के नतका ने भी उनके समक्ष अपना नृत्य प्रस्तुत किया।

रागिनी

बहुत पहले रागिनी देवी ने मंसूर में कुछ नृत्य प्रदर्शित किये थे। तब उन्हें देखने का अवसर मुझे भी मिला था। उनके 'राधा वृष्ण' आदि नृत्य सामान्य थे, लेकिन पश्चात्पक्ष ढंग का 'द्विप्रग' नृत्य बहुत उत्तम बोटि का था। उसमें वसन्त काल की हँसी, उमग आदि भावनाओं की सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति हुई थी।

उदयशकर

एक बार उदयशकर का नृत्य देखने मद्रास गया था। वहाँ उनके नृत्य प्रदर्शन देखे। वे पश्चात्पक्ष देशों में घूम आये थे। उन्होंने अपना पादलोना के साथ भी नृत्य किया था। इस प्रकार रग निर्रेशन और उत्त कला के अध्ययन में उन्हें विपुलता हासिल हो चुकी थी। रगभूमि में पग कौशल और गीतों का मही चुनाव होने से उठाया नृत्य बड़ा सुन्दर होता था। पर उनकी रीढ़ भूमिका भी नास्तित्य भी ही दीयती थी। सच तो यह है कि देह रीढ़ के उपयुक्त ही नहीं थी। रीढ़ की भूमिका में वह ललित ही दीय पढते थे। उनके सभ में एक नम्बूदरीपाद नाम का नतक था जो कत्यक शली के नृत्य बहुत अच्छी तरह किया करता था। दस आत्मियों के बेलें में भी यह एकदम अलग दिखाई दे जाता था। उनकी मण्डली में अति उत्तम ढंग से नृत्य करनेवाली एक नतकी थी, फ्रेंच महिला मंडम सिमकी। उसका सारा बचपन नृत्य में बटा था। वह मंच पर दण भर भी जट-गो खड़ी नहीं रह सकती थी। जब उसकी कोई भूमिका नहीं होती थी तब भी उतार अगो में घिरबन होनी रहती थी। बसे कई बार उदयशकर को ही बिना हिल स्थिर खड़े देखकर मुझे आश्चर्य होता था। दृश्य पूरा होने तक यदि नतक या खटा हो जाय तो उसका अग विन्यास का रगमंच पर नृत्य करनेवाले दूसरे लोगों के अग विन्यासों से मिलना कत सभय है ?

सोबनृत्य

हमारे गाँव में भी सोबनृत्य की एक परम्परा है अर्थात् सोबनतन है। स्वयं को उँची जाति का कहनेवाले यद्यपि उनका अनादर करत हैं। लेकिन इन होनेय नागा का नाच, खँती का नाच, भूत का नाच, नाग नृत्य, राणी सोर्गों का शीटिया नाच मलमुडि सोर्गों का नृत्य, कोडग का सोर्गों का नृत्य—इस प्रकार के कई तरह के नृत्य कर्नाटक में प्रचलित हैं। वे एकदम सरल हान हैं। स्वादातर वे स्थानीय ही होते हैं, पर एमें नृत्य जन-जीवन का सन्ताप और उन्माद भावों

भाँति व्यस्त करत हैं। एकबार बैंगलूर में मैंने लम्बाणी जाति (बनजारे) का नय देखा। स्त्रियाँ वतावार में खड़ी होकर तरह-तरह से पद संचालन करतीं आधे घण्टे तक नाचती रहीं।

जीवन का मुञ्ज-मुञ्ज यत्न करने में नृत्य एक सहायक शक्ति है इसी दृष्टि से मैंने अन्न प्रशिक्षण की यशगान की कला को अपनाया और उसके प्रचार प्रसार में रचि ली।

नृत्य-सम्पदा

हमारे प्रदेश के विभिन्न भागों, जन वर्गों में लोकनृत्य प्रचलित हैं। उनके अतिरिक्त बरल की कथकलि के समान आंध्र के कुविपुडि नृत्य परम्परा का साथ विकसित कुछ और भी नृत्य हैं। प्रत्येक की अलग 'मांग' पद्धतियाँ भी हैं। परन्तु उनकी समस्त पद्धतियाँ समीचीन सहित उनका अध्ययन करनेवाले विद्वान बहुत कम हैं। हाँ, साम्प्रदायिक पावती परमेश्वर का पुराण लेकर चलनेवाले पण्डितों की कमी नहीं। इस दृष्टि से तो पाश्चात्या न अपनी सस्कृति से सम्बन्धित जितना अभ्यास किया है उतना दूसरों ने नहीं किया। ज्यादा क्या कहें, हम अपनी ही चीजें नहीं जानते।

सन् 1937 के आम-प्रास, ससार के नृत्या पर ध्यान करनेवाले विद्वान राल्फ द मारी हमारे गाँव आये थे। वे यशगान के बारे में जानना चाहते थे। उनके लिए बैंगलूर में यशगान के कलाकारों को एकत्रित करके उच्च चित्र सग्रह करने में मैंने सहयोग भी दिया था। उन दिनों वे स्वयं दश का दौरा करके लौटे थे। वे एक अन्तराष्ट्रीय नृत्य संस्थान के लिए काम कर रहे थे। उसका कोई पक्कीय व्यवसाय उनका एक पत्र आया। वे अपने एक और प्रतिनिधि के साथ यशगान की वयभूषा एकत्रित करने आ रहे थे। उस पत्र-व्यवहार का स्टाबटोम के इंटरनेशनल डाय आर्काइव्स के निदेशक, ब्रिस्टल हेगरे ने आगे बढ़ाया। मैंने अपने मित्र की प्रेरणा से अपनी पुस्तक 'यशगान वयलाट की एक प्रति जय संस्था की भेज दी थी। उसका छह मास बाद उनका पत्र आया। उनका साथ राल्फ द मारी भी आनेवाला था पर आ नहीं सके। ब्रिस्टल हेगरे एकदम सीधे हमारे पुतूर आ पहुँचे। तब मेरी पत्नी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। घर आये विदेशी की शान-विषामा व्यवहार मैं चुप नहीं बैठ सकता था। उनके लिए यशगान नृत्य दिखाने प्रयास पर निकल पड़ा। इससे उनका अपमानित भाव बहुत कुछ पूरा हो गया। यह जानकर आश्चर्य हुआ कि श्री राल्फ द मारी ने अपनी सारी सम्पत्ति लगाकर यह सम्पदा खड़ी की थी।

इसी आश्चर्य के माध्यम-मार्ग से ब्रिस्टल हेगरे ने भीर आश्चर्य की धार बही तो मेरे मुँह से निकल पड़ा 'मैंने क्या किया है!' उन्होंने बताया कि वे

अपनी सस्या की ओर से मेरे बाँव आकर मेरा सम्मान करना चाहते हैं। वे सस्या का गौरव प्रतीक एक कास्य पत्रक मुझे अर्पित करना चाहते थे। उसके लिए उह पुत्र म एक छोटी-सी सभा आयोजित करनी पड़ी। उनके स्य इम सम्मान की मैं अपन देज की कला क प्रति सम्मान माना। विश्व क विविध नत्या के प्रति उम सस्या का कौतूहल और सम्मान वास्त्व मे एक बहुत बडी वान थी।

और एक अवकाश

1958 के लगभग यक्षगान पर मेरी एक और पुस्तक प्रकाशित हुई। उसम उस कला के बारे म सौंदर्य शास्त्र की दृष्टि से, इतिहास की दृष्टि से मैंने जितना अध्ययन किया था सब प्रस्तुत किया है। उसक प्रकाशित होते-होते दिल्ली सगीत नाटक अकादमी न नृत्य पर एक सेमिनार आयोजित किया। उहने यक्षगान के लिए मुझे प्रतिनिधि के रूप म आमंत्रित किया। उस सेमिनार म आय नृत्या के जानकार, विद्वान् और नतक भी प्रतिनिधि के रूप मे आय थे। मैं एक भागवतर, एक वादक और एक नतक साथ से गया। नृत्य तो देखकर समझन का विषय है न? केवल मेरे भाषण से लोग यक्षगान की कल्पना नहीं कर पाते।

वहाँ एकत्रित लोगो के सामने हमन यक्षगान के वष और नृत्य का प्रदर्शन किया। वहाँ मैंने कुचिपुडि, आडोसी नौटकी नृत्य भी दसे जिनका मुझ अतक परिचय नहीं था। सब तक 'माग नृत्य' यानी कत्यक भरत-नाट्यम मणिपुरा और कथकलि तक ही सीमित थे। इम सेमिनार की कृपा से हमार यक्षगान का कुचि-पुडि और आडोसी को भी सम्मान मिला। भारतीय कलाविदा का पहल से ही सम्मान दिया जाता रहा है।

सन् 1964 म यक्षगान को भी भायता प्राप्त हुई। हाराडि राम गणग का सम्मान दिया गया। मैं समझता हूँ यह सम्मान यक्षगान की पुरानी परम्परा को प्राप्त हुआ है।

हमारी विचार-गोष्ठी

जब मैं दिल्ली गया था तब सगीत नाटक अकादमीवाला न यक्षगान के लिए एक योजना तैयार करने को कहा। मैंने यह गोचर कि यह काम करने नहीं करना चाहिए, उत्तर और दक्षिण बन्द जिले के प्रमुख कलाविदा को निमन्त्रण भेजा। दक्षिण जिले के कलाविदा को भारत का य 'गान' एक अफ्रू मो चीज लगी होगी। उन्होंने उसका पूरा बहिष्कार किया। धर जा विद्वान् आय उनको सनाहन उस कला क विकास के बारे म एक योजना बनाकर भेजी। मैं नहीं समझता कि उसने काश साम नहीं हुआ होगा।

अनुसंधान

गिन दिना में यक्षगान के सौंदर्य के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखने का विचार कर रहा था उही दिनों भोजपत्र पर लिखी एक पुस्तक ने उसके इतिहास के बारे में मेरा कुतूहल जगा दिया। हमारे यहाँ प्रचलित रामायण के आठ प्रसंग, मध्यपुर के गोपाल कृष्ण की स्तुति वाली एक पुस्तक यहाँ के किसी पुराने कवि ने लिखी थी। कुछ लोगों का तब था कि उसका लेखक पाति सुब्बा ही है जिसका सन 1802 में निधन हो गया था। पर मुझे उससे दो सौ वर्ष पूर्व के भाज पत्र मिल जाने से उस तक का खण्डन करना पड़ा। इससे हमारे जिले के सुब्बा के अनेक भक्त नाराज हो गये। तब विवश होकर मैंने सारे मलेनाड का भ्रमण किया और पुराने भोजपत्रों का मग्नह करके यक्षगान के साहित्य का इतिहास लिखने का साहस किया। उस इतिहास में मैंने यह सिद्ध किया कि उन रामायण के प्रसंगों का लेखक पाति सुब्बा नहीं, अपितु कोई अनाम कवि है जिसका सन 1600 में उसकी रचना की थी।

मैंने यह काम करते समय उसके संगीत के बारे में भी अनुसंधान किया। उसने विविध राग एकत्रित किए। उन्हें अपने बम्बई के मित्रों को भी भेजा। मुझे तब यह सोचकर दुःख हुआ कि क्या यक्षगान भाषा सीमा के कारण केवल कानडवालो तक ही सीमित रहेगा ?

सपना

मैंने पढ़त से ही यक्षगान के नृत्य के बारे में कई प्रयोग किये थे। इसलिए यह विचार उठा कि इस नाट्य रूपके का, जिसका संगीत इतना शक्तिशाली है, एक ऐसा बल क्या न तयार किया जाय जिसे भाषा न आन पर भी लागू समझ सकें। उस काम का षोडा-बहूत उपयोगी बनाने के लिए उस आजीविका का साधन बनाकर चलानेवाले व्यवसायी भाग्यवत तथा मतकों की आवश्यकता महसूस हुई। तरीक घामीणा से चलानेवाले के लिए मुफ्त में काम कराना गलत लगा। उन्हें यर्षा के दिना में अवकाश रहता है इसलिए उन दिनों वह वह काम कर सकते हैं। एवंचर मैंने अपना मन की यह बात बम्बई के मित्रों के सामने रखी तो उन्होंने कहा, आपको जा भी सहायता चाहिए हम करेंगे। आप अपना काम आगे बढ़ायें। अब मैंने सोचा कि जब पैसे की जिम्मेदारी लेने मित्र आगे आ रहे हैं तो मुझे अब पीछे नहीं हटना चाहिए।

सपारी

मुसलम विरवात और गौरव रखनेवाले भाग्यवतों, यादवा और मतका का

उड़ुपि में दो मास का समागम रहा। व अपने विषय में दश लोग थे। तब मैं यह ध्यान न रखकर कि साठ पार कर चुका हूँ, मेरा यह शरीर मरा साथ दगा या नहा, इस काम में कूद पड़ा। दिन में चार घण्टे नाचकर नृत्य में उत्साह रखने वाला पुत्रको को सिखाने लगा। बिना जवान का प्रयोग किया, नृत्य सही पूरा कथानक प्रदर्शित करने का तरीका निभाया। कई नरको को बीच बीच में क्रमानुसार रंगमंच पर आने और जान का डग सिखाया। भागवत की सहायता से यशगान में आनेवाले रागा को बतान का प्रयास किया। मैंने यह भी प्रयास किया कि गीत ऐसा होना चाहिए जिससे संगीत और साहित्य दोनों समझ में आयें। पारव संगीत का सौंदर्य बढ़ाने की वला, बलैरिनट, सक्सोफोन आदि वाद्य भी जोड़े। दो मास के प्रयास से 'भीष्म विजय' और 'अभिमन्यु वध' नाम के दो नाटक तैयार किये। परम्परा से छूट स्त्री दय के अलवारा और कुछ अन्य रोपा को ठीक करके प्रदर्शन की तैयारी की।

प्रवास

बम्बई, धारवाड, बंगलूर, भगलूर आदि नगरों में उन नाटकों के प्रदर्शन का आयोजन बनाया। हमारे इस प्रयत्न को बम्बई के कानडेंतर तथा गुराफ क सोगा ने भी देखा और देखकर आश्चर्य और सन्तोष व्यक्त किया। उनका प्रोत्साहन से मैंने अगले वर्ष भी ऐसा प्रयत्न किया। रगनिदेश के बारे में बम्बई की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

इसका आर्थिक दायित्व मेरे मित्र सजीवराय, बलाकार हेम्बार और उनके अनेक बम्बई के कानड मित्रों ने उठाया। उन्होंने सगभग अट्टारह हजार रुपये एषित किये। उन दो वर्षों में हमारे कलाकारों को मानह हजार मिल।

यह काम करते हुए मैंने अनुभव किया कि यशगान में सुख हो पत्नी के साथ और आभूषणों को फिर से लाना अनिवाय और महत्वपूर्ण है। मुझे उसकी शुरु करना भर ही था। मेरा संगीत वाला भाग पूरा करने में श्री कृष्णमाधव और श्री विराम उड़ुपि की सहायता मैं याद किये बिना नहीं रह सकता। श्री कृष्ण माधव ने अपनी बलाभिरुचि तथा विद्वत्ता से मेरे यशगान के अनुसंधान में बहुत सहायता दी। मैं जब 'नदी-यात्रा' का प्रयाण किया था तब भी उन्होंने वाक् के रूप में सहायता की थी।

एक ही अभाव

मेरे प्रयोग आशाजनक रहे। जिस माताप से मैं यह कह सकता हूँ कि अनेक विद्वानों तथा कलाकारों ने उच्च सराहा उन माताप से मैं यशगान की जगह में के लोगो के विचारों के बारे में नहीं कह सकता। भगलूर व पुनूर में

द्वय पर लिखने की इच्छा से ज्ञान के कई अध्याय लिखे। उन्ने पढ़कर मेरे मित्र
 बी० मोनारामधरा न उसकी व्यंग्यपूर्ण भूमिका लिखी। उनका शीपक था 'एन
 एम डेट किक्म ऑन आल साइड्स' (An ass that kicks on all sides)।
 मैंने उसी लहजे में उसका अनुवाद 'चारों ओर जान मारनवाला गधा' किया
 और अपन विशेषणा में जाड़ लिया। 'सरसम्मा की समाधि' को सन् 1933 तक
 तिग्रहर प्रकाशन के लिए मनोहर ग्रंथमाला को दिया। उनका मुख्य पात्र अशक्त
 रूप में लयिक मनाधमवाला व्यक्ति था। उसी का विभिन्न व्यक्तियों के जीवन
 में दिखाकर विकसित करता चला गया। इस प्रकार मेरा वह उपयाम एक अलग
 ही रास्ते पर चला है। मेरे 'गम गुडी' नाटक व 'काश्यर' के समान यहाँ भी
 नीतम्मा अर्थात् गत जीवन की प्रेन रूप में तृप्ति पान का प्रयाम करती है। एक
 ढग से यह कहानी अवास्तविक रूप से चलती है, फिर भी वास्तविक मनोधर्म का
 चित्र उपस्थित करती है। इस रचना पर अधिक लोग का ध्यान नहीं गया।
 हमारे गाँव की एक पत्रिका ने लिखा 'ऐसे लोग जीवन में नहीं हों सकते।' यह
 लयिक जीवन का प्रश्न उठाने पर आँखें मूढ़कर नीति की बात कहनवाला का
 रास्ता है। इसलिए मुझे ऐसा लगना है कि प्रत्येक को यह समझना होगा कि
 वह स्वयं क्या है। किसी और ने लिखा था कि इस पुस्तक से जाति-द्वेष बढ़
 सकता है।

मेरी 'गम गुडी' और 'देवदूत' रचनाओं में मुझे काफी अपयश दिलाया।
 सम्प्रशयिका को मैं एक मूर्तिमत्क माना लगा। मठ के सजासिया व भी कोप का
 भाजन बना। परंतु अब मेरी रचनाएँ पढ़ने वाले महानुभावों ने मुझे बुलाकर
 मेरे प्रति सम्मान व्यक्त किया। खर, मेरी रचनाओं का अर्थ अब तो उनका पत्त
 पडा।

साहित्य की पृष्ठभूमि

धारवाड़ के मेरे मित्र श्री बिंदु माधव बुलि न, जो कर्नाटक के साहित्यकारों
 के आत्मकृत सग्रह कर रहे थे, मुझसे भी लिखन का आग्रह किया। मुझ लगा,
 भला आठ स पृष्ठा में ऐसे साहित्य का इतिहास मैं क्या लिख सकता हूँ।
 मस्किनको व एक साधारण लेखक न अपन लेख में प्रश्न उठाया है क्या साहित्य
 कार को अपनी जीवनी लिखनी चाहिए? उनका साहित्य को पढ़न के बाद उनका
 बार में जानने की क्या चीज रह जाती है? साहित्य के लिए अनुभव ही ज म-
 फूमि है। उनके बिना वह अलग विकसित नहीं हो सकता। अगर हुआ तो बना-
 वगे होता है, झूठा होता है। कुतूहल पैदा करनेवाली कहानियाँ लिखी जा
 सकनी हैं। सचटा सानवधा की बल्पना की जा सकनी है परंतु उनको प्रभाव
 पाना बनाकर आँखा के सामने छोड़े करने के समान लिखना है उत मृत रूप

चोम

जब मैं गाँवा म भ्रमण कर रहा था तब मैंने बहुत से अच्छे तो के घर दूध । उनक गाँवा स लेकर जिन काफी बगानी म व काम करने जाते थे वहाँ भा हा आया । उसी अनुभव का लेकर पाँच दिना म 'चोमनदुडी' (चोम) उपयास की रचना की । पहली बार उस रचना की प्यार बरनवाला काई मानव नहीं था । पणु ने ही उसे पसन्द किया । मैं घर के आँगन म उसकी पाण्डुलिपि रख कर भीतर काँची पीन चला गया था । चाये के अभाव म एक गाय उसे मुह म दबाकर बाहर चली गयी और आधे प न चट भी कर गयी । हमारे मगलूर क पशु वहाँ के लागा से अधिक विद्या प्रेमी होत हैं—यह दखन के बाद विद्या विहीन पशुसमान' कहते समय शर्म आती है । मानव पढन लिखन के बाद शायद मानव-स्तर तक पहुँचगा । मैंने उस गाय का पीछा करक, उसके मुह स छान कर जो कुछ बचा था उसकी रक्षा की । उसे फिर से ठीक ठाक करके छपवाया । तब तक मैं अपनी कोई भी पुस्तक दो-तीन सौ स ज्यादा नहीं छपवाता था । मित्रा के पीठ ठाकने पर उसकी एक हजार प्रतियाँ छपवा ली । हमार बानडवाला न इस कृति का बहुत पसन्द किया । उसकी हजार प्रतियाँ बिकन म बारहवप बीत गय । जाना होन पर भी 'आपकी पुस्तक बहुत अच्छी है' कहनवाला आज भी बहुतर है । पता नहीं वह अच्छी पुस्तक उहाने पढ़ी है या नहीं ।

सधु कृतियाँ

बाद म मैंने बडे उपयास लिखने की ओर ध्यान नहीं दिया । 'हसिवु' (भूष) बीर्पक स दस कहानियाँ, 'हावु (साँव) नाम से दस कहानियाँ और 'तेरेय मरे-यल्लि (परद के पीछे) नाम स दस कहानियाँ लिखी । उनकी कथावस्तु गरीबी, बचपन, स्त्रिया की दाखण स्थिति आदि होती थी । उस समय 'स्वदेशाभिमान' पत्रिका के लिए छोटी मोटी लखमासाएँ लिखा करता था जैसे—'हल्लिय हल्लु समस्तर' (गाँव के दस प्रमुख), 'नगरद नायकर', 'चिक्कदोडडवळ' (छाटे-बड), 'द-मोति आदि । 1932 मे अथवा उसमे कुछ पहले थी मास्ति बेंकटेश अय्यनार की सहायता के फलस्वरूप 'मुक्कद्वार' नाटक प्रकाशित हो सका । उसकी दो-सौ प्रतियाँ बचन म पूरे चौदह वष सगे । अयोध्या के राम की वनगमन म सर्वा-यात्रा स सौटने म जितना समय लगा लगभग उतना ही समय इस पुस्तक की बिन्ना होन म लगा ।

पाग सरसम्मा की समाधि

मैंने स्त्रीरन लिक्चर की एन-दो छोटी पुस्तकें इसी समय पढ़ी थी । उती

दम पर लिखने की इच्छा से ज्ञान के कई अध्याय लिखे। उम पढ़कर मेरे मित्र वी० सीतारामदाश ने उसकी व्यंग्यपूर्ण भूमिका लिखी। उमका शीपक था 'एन एम डेट किक्स ऑन ऑल साइड्स' (An ass that licks on all sides)। मैंने उमी लहजे में उमका अनुवाद 'चारों ओर लान मारनवाला गधा' किया और अपने विशेषण में जाड़ लिया। 'सरसम्मा की समाधि' को सन् 1933 तक लिखकर प्रकाशन के लिए मनोहर ग्रथमाला को दिया। उसका मुख्य पात्र अत्यक्त रूप में लजिब मनोधमवाला व्यक्ति था। उसी का विभिन्न व्यक्तियों का जीवन में निष्ठाकर विकसित करता चला गया। इस प्रकार मरा वह उपन्यास एक अलग ही रास्ते पर चला है। मर 'गम गुडी' नाटक के 'काश्यप के समान यहाँ भी नोसम्मा अन्न गत जीवन की प्रेत रूप में तपित पान का प्रपास करती है। एक ठग से यह कहानी अवास्तविक रूप से चलती है फिर भी वास्तविक मनोधम का चित्र उपस्थित करती है। इस रचना पर अधिक लोग का ध्यान नहीं गया। हमारे गाँव की एक पत्रिका ने लिखा 'ऐसे लोग जीवन में नहीं हो सकते।' यह लजिब जीवन का प्रश्न उठाने पर आँखें मूँदकर नीति की बात कहनवाला का रास्ता है। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि प्रत्येक को यह समझना होगा कि यह स्वयं क्या है। किसी और ने लिखा था कि इस पुस्तक से जाति-द्वेष बढ़ सकता है।

मेरी गम गुडी और 'देवदूत' रचनाओं में मुझे काफी अपयश मिलाया। सम्प्रदायिका का मैं एक मूर्तिभजक माना लगा। मठ के सन्तानिया का भी कोप का भावन बना। परन्तु अब मेरी रचनाएँ पढ़ने वाले महानुभावों ने मुझे बुलाकर मेरे प्रति सम्मान व्यक्त किया। खर, मेरी रचनाओं का अब अब तो उनका पालन पडा।

साहित्य की पृष्ठभूमि

धारवाड़ के मेरे मित्र श्री बिन्दु माधव बुलिन, जा कर्नाटक के साहित्यकारों का आत्मकृत सग्रह कर रहे थे, मुझसे भी लिखने का आग्रह किया। मुझ लगा, भला आठ-दस पन्ना में ऐसे साहित्य का इतिहास मैं क्या लिख सकता हूँ। भक्तिकी का एक साधारण लेखक ने अपने लेख में प्रश्न उठाया है क्या साहित्यकार को अपनी जीवनी लिखनी चाहिए? उसका साहित्य को पढ़ा का बाद उनका बार में जानने की क्या चीज रह जाती है? साहित्य के लिए अनुभव ही जन्म भूमि है। उसका बिना वह अलग विकसित नहीं हो सकता। अगर हुआ तो बना-बनी हाता है, झूठा हाता है। बुनूहल पत्रा करनवाली कहानियाँ लिखी जा सकती हैं। सबका सनिवका की कल्पना की जा सकती है परन्तु उनका प्रभाव पानी बनाकर आँसु के सामने पड़े करन का समान लिखना है उर मृत रूप

देना है—तो जीवन की पृष्ठभूमि में ऐसी कल्पनाओं का विकास करना होगा— यह मेरा दृष्टिकोण है। साहित्य और कलाओं के बारे में मैं इस कसौटी पर घरा उतरना चाहता हूँ। मैंने बहुत से नाटक लिखे। मेरी कई पुरानी रचनाएँ खो भा गई हैं पर अब मुझे उसका दुख नहीं है। उसका कारण इतना ही है कि वहाँ कतिरत कुछ गवित चित्र केवल अनुराग के कारण निरूपित हुए। आग के अनुभव उनका मजाक उड़ात स लग। इस प्रकार कई उपन्यास, नाटक, कहानियाँ लिखने के बाद उनकी पृष्ठभूमि का भूलकर साहित्य सृजन के बारे में सात आठ पठो का एक लख लिखन से कोई लाभ नहीं—यह सोचकर मैं चुप हो गया। यहाँ उसका बार में विस्तार से लिखना है इसलिए लगता है कि उसके लिए एक अध्याय लिखना कोई कठिन नहीं है।

जदवाजी

मुझे जा लिखना होता है उसके लिए एक बेचनी सी हो जाती है। विलम्ब से कभी शुरू करके, विलम्ब से पूरा करने में मुझे विश्वास नहीं है। मेरा वह स्वभाव भी नहीं है। जदवाजी ही मेरा गुण है। इस आदत में दोष भी हैं गुण भी हैं। जल्दी से काम करने से उसमें बारीकी नहीं आती है। पर तु बीनन पटकने के लिए मैं रेंटा नहा रह सकता हूँ। मर मन में एक कहानी का नाम, उसका स्थूल विषय आते ही मैं चुपचाप बसकर, लिखने लग जाता हूँ। मन के एक तरफ बहने में कोई रुकावट है तो उस काम में मैं हाथ नहीं लगाता। अगर लिखने बस गया तो एक दिन में एक अध्याय तो लिखा ही जाना चाहिए। बीच में सोचकर आगे क्या लिखना है—यदि एसी स्थिति हो तो मैं उसे शुरू ही नहीं करता। अनुभव की पृष्ठभूमि विनाश हो तो लिखत समय सिर घुंजलाने की जरूरत नहीं पड़ती। स्पष्ट रूप से एक एक करके चित्र आँखों के सामने खड़े होत जात हैं और घड़ी बढ़त सगत हैं। नृत्य से भी यही अनुभव मिला। बहुत बड़े उपन्यास लिखत समय भी मेरा अनुभव एसा ही रहा है। मन में पैदा हुआ बीज मन के सामने ही विकसित होता चाहिए। विविध सन्निवेश अपने आप आकर मिलने लग जात हैं। मूल धर्मियों का चरित्र धलीधालि सचित होने पर ही लिखना शुरू करना चाहिए। लिखत समय, उद्देश्य पूर्वक लिखत समय भी सिखनी के आगे बढ़त बढ़त वह काम अपने आप जाता जाना चाहिए। कई बार मुझे ऐसी रचना काय में आश्चर्य में डाला है। सत्रन काय में सगन के बाद विधायन कहाँ? एक अध्याय लिखन के बाद दूसरा अध्याय बहुत दिनों के बाद लिखना हो तो वह काम मुझमें नहीं हो पाता। मुझमें विस्मय कुछ जगता है। अधिकांश याददाश्त वालों का भी यही हाल होता है। मेरे लिए तो वह अवभव है। प्रथम अध्याय में भाव व्यक्त का चरित्र कुछ दिना के बाद एषदम बदल जाता है।

इस प्रकार एक अध्याय लिखने के बाद दूसरा लिखने तक—हैमने समय, खाने समय, सोते समय कहानी के विकास के सन्निवेश के विषय अध्या के सामने नाचने रहते हैं। उन अंशों को चित्रित करने का दूसरा दिन होता है। दूसरे दिन ही उस पूरा हो जाना चाहिए। दूसरे दिन मिलनवान जन और खान में कहानी अपने ढंग से आगे बढ़ने लगती है, विकसित होने लगती है। रचना के अंत तक चित्रण को अविरत जारी रहना चाहिए तब जाकर पात्रों के चरित्र और कथा के सन्निवेश स्वाभाविक रूप से बढ़कर खिलते हैं। लिखने समय, अभिनय करते समय, नृत्य करते समय, अपने आपको भूलने पर ही बड़े सज्जन काय अपने आप मुदर रूप धारण कर लेता है। कई बार उपन्यास का पात्र मैं स्वयं हो जाता हूँ। हसता हूँ, रोता हूँ श्लोघ करता हूँ। मेरी मानसिक स्थिति में परिचित लोग, काम करते समय मेरे पास नहीं आते। मेरी बेटो मालविका जब छोटी थी, सब बीच-बीच में आकर तंग करती थी। कुछ समय बाद 'बापू लिख रहे हैं' कहने पर वह भी समीप नहीं आती थी। मैंने अपने उपन्यास 'चोमन दुड़ी' और 'सरसम्भन समाधि' को पाँच-पाँच दिनों में समाप्त किया था।

'मरलि मणिगणे' (माटी की ओर) के तीस अध्यायों को तीस दिन में लिखा। 'मणिगण युद्ध' (समाप्त न होनेवाला युद्ध) को बीस दिनों में, 'ओदायद उदल्लिल' (उत्तरता के चक्कर में) को तेईस दिनों में पूरा किया। पाँच अंकों के नाटक को एक ही दिन में पद्यतम किया है। पाँच दिनों से ज्यादा कभी किसी नाटक लिखने में नहीं लगाये। मेरी इस जन्मदात्री से मुझे त मयता मिल जाती है। उसने गहन काय में भी महायत्ना मिली है। मुझे ऐसा लगता है कि जमकर बठकर लिखने में विचार-सहस्रों में जो शक्ति आती है वह रुककर बीच में छोड़कर, घूमते घूमते लिखने में नहीं आती। एक बार लिखने के बाद मन के परे पर वह गव मिशने लग जाता है। पाँच छह दिन तक एक पंथी और शक्ति रहती है, और बाद में मन स्वाभाविक स्थिति में पहुँच जाता है। लिखने का काम जितना आनन्ददायक है ठीक करना और प्रतिलिपि बनाने का काम उतना ही उब पेश करता है। मैं अपनी ही लिखाई ठीक नहीं कर पाता। प्रतिलिपि बनाने वरु तो दूसरे ही विचार आन लग जाते हैं। यह काम दूसरे करें तो अच्छा है। हमने अनाथ मरी लिखाई साफ नहीं है। कई शब्दों की तो टेढ़ी मेढ़ी गेयाप्रा में ही बनाना करना पड़ती है। सबकुछ ही, अपनी लिखाई पढ़ने में मुझे स्वयं बच्य हाता है। मर लिखाई की लिखाई भी ऐसी ही थी, पर लगता है कि इसमें मैं उनका एक काम भाग हूँ।

प्रसंग

लिखने के लिए सही मनस्थिति अथवा अमुक विषय पर लिखना चाहिए'

यह विचार मरे मन में कैसे आता है वह भी एक विचित्र स्थिति होती है। मन में कभी किसी कारण दुःख हान पर कटुता का अनुभव होने पर कई बार स्वप्न रह जाता है। कभी कभी घात भी मिलती है। प्रकृति के किसी दृश्य को देखते समय, कोई सुन्दर कलाकृति देखते समय, भावपूर्ण संगीत सुनने पर मन शांत होता है और जिस वस्तु से प्रेरणा मिलती है उसी में मन खो जाता है। संगीत प्रकृति सुन्दर दुःखानुभव, मन की शांत स्थिति में और कोई नवीन चित्र उम्र वातावरण से एकदम असम्बद्ध बात का जन्म देता है। तब कबल कहानी का नाम सूझ सकता है। एक नाटक की कथावस्तु आँखों के सामने नृत्य करने लग सकती है। कई बार आधी रात में उठकर उस भाव का दाशब्दा में लिखकर फिर सो गया हूँ। ऐसे बनाए गए सनिप्त नोटों से मरी अधिकांश रचनाएँ तयार हुई हैं। एक नयी रचना शुरू करने के लिए उसी प्रकार की मानसिक शक्ति भी चाहिए। जब वह शक्ति मिलती है तब जो लिखना है उसकी एक स्थल रूपरखा तयार करके काम शुरू किया है। उनके बिना भी एकदम सीधा लिखता चलता गया हूँ।

विस्मरण में नाभ

लिखकर समाप्त करने के बाद उस भूल जाने से भुझ काफी लाभ हुआ है उससे सहायता ही मिलती है। मनुष्य अपनी सारी यादा का संग्रह कर जी नहीं सकता। नहीं तो जीना असहनीय हो जायेगा नारकीय हो जायेगा। जीवन में यदि एक सुख हो तो हजार दुःख होते हैं। सुख तो दुर्लभ ही हान है। अतः जीवन से मुकाबला करने के लिए दुःख की विस्मृति आवश्यक है। मर जन्म लिखने के पागलपनवान व्यक्ति का उसमें और एक विशेष उपकार होता है। पुराने चित्र यदि विस्मृत हो जायें तो मये के मजदम सहायता मिलती है। नहीं तो पुराने चित्र ही फिर उभर सकते हैं।

मरलि मणिगणे (माटी की ओर)

अतः मैं सशपथ अपनी कुछ रचनाओं की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता हूँ। 'मरलि मणिगणे' का पृष्ठभूमि उमकी भूमिका में ही सशपथ में दी है। समुद्र तट पर स्थित कोठ में आनन्द मन वान नागा का जीवन है यह। वहाँ के निसर्ग का सौन्दर्य देखकर मनुष्य मनोप अनुभव कर सकता है। यह निसर्ग तब से अब तक अथवा कब तक एक समान रह सकता है। उसमें चित्रित तीन पीढ़ियाँ का कहानी है जो मरलि मणिगणे के उमान गणु हाती है। कालक्रम की दृष्टि में वह मरी पाड़ी तक पहुँचती है। पहली पीढ़ीकासा न निसर्ग का सहाय प्राप्त नहीं किया है

समुद्र के साथ, नदी के साथ सघष्य करके, अपना पसीना बहाकर अन्न के लिए मध्य किया। तब घोर गरीबी थी। उस गरीबी के सङ्घटन में बचने के लिए एक ही रास्ता था—भाग्य पर भरोसा रखना। उनमें खीरता न बड़ा दुख भाग। पदल चलन व उम्र जमाने में तीव्र-योद्धार, शादी-पाह रवयाथा, बयनाट—यही सब उनका मुख्य के साधन थे। विलास के लिए वेश्याशा की गति में ज्यादा मुन्न की बलना तब नहीं थी।

दूमरी पीढ़ी तब आते अंग्रेजी शिक्षा की हवा बहने लगती है। एक समुदाय गाँव छोड़कर शहर में चला जाता है। होटल उद्योग से धन कमाकर, गाँव में पत्ता भेजना है। संपत्ति बढ़ती है। पस के बल से, उमेडा में मजा तोन वान लोग गाँव में पनपने लगने हैं और एक तरफ लच्छा जैसे व्यक्ति बाजार में माह में फेंककर नये वातावरण में अपना दिमाग खराब कर लेते हैं। उनके भाग में भी निमग्न केवल एक जड़ वस्तु होती है। तीमरी पीढ़ी में अंग्रेजी शिक्षा मवमा य हा जाती है। बकारी का प्रश्न उठता है। दश में अशांति फैलन लगती है। तब य सब राम जम लडके को गवाने लगते हैं। अन्त में निराशा में यह गाँव की आर मुह माडना है। वहाँ भी स्त्रियाँ की स्थिति बँसी रहती है। मेहनत करना और धक्कर कर हा जाना। राम जमे व्यक्ति को निमग्न ज्यादा मुख्य का प्रेरक हाता है। वह नये मन्वार का फल है। इस प्रकार उसम जनता के आर्थिक और मानसिक जीवन का विप्लव हुआ है। उसे पसन्द करनेवाले भी हैं। उमने बारे में सब प्रकार की आलाचना भी हुई है। आज प्रशंसा करके बल निंदा करने वाले भी हैं।

उम पर 'देवराज बहादुर पुरस्कार' के अवसर पर मेर मधनूर के मित्रों ने मेरे सम्मान का प्रबन्ध किया और बड़ी प्रशंसा की। एसी प्रशंसा करने वाला मात सोगों में पाँचने पुस्तक भी नहीं पढी थी। एसी प्रशंसा पर मेरा मन बँसे दूमता ? आमनौर पर एक साहित्यिक बलाकार को मिलनवाले सम्मान का अर्थ इनना ही होता है।

चेट्टू जीव (पहाड़ी जीव)

उमके बाद 'चेट्टू जीव' लिखा। इसमें नाटक के गमान बान स्थान और शिक्षा व अनुवन की ओर ध्यान रखा। जगत में भटकनवान मुझे उम प्रश्न का परिवर्ष था। स्थिति भी नये नही थी। गाँव में जाकर अन्ध मित्रा व कृषि व गाह्विक बावों को उरार अच्छा लगा था। उम विषय का बान करन को दुष्टा हुई। एक बार मैं कुछ निग्रो व विवर में उम विधाय बनन कवि प्रजनवाशग व मित्र भी मेरुनावशा के घर गया। जान समय कुछ निग्रन का मन कर रहा था। बर बरा होना चाहिए यह निरकर मन मन्त्री का पाया था। मन्शा १२

यह विचार मर मन म कैसे आता है वह भी एक विचित्र स्थिति होती है। मन म कभी किसी कारण दुःख हान पर, कटुता का अनुभव होने पर कई बार स्तब्ध रह जाता है। कभी कभी शांति भी मिलती है। प्रकृति क किसी दृश्य को देखते समय, कोई सुन्दर कलाकृति देखते समय, भावपूर्ण संगीत सुनने पर मन शांत होता है और जिस वस्तु से प्रेरणा मिलती है उसी म मन खो जाता है। संगीत प्रकृति सुख दुःखानुभव, मन की शांत स्थिति म और कोई नवीन चित्र उम वान, वरण से एकत्र म असम्बद्ध बात का ज म देता है। तब कवल कहानी का नाम सूत्र हो सकता है। एक नाटक की कथादस्तु आँखों के सामने नृत्य करन लग सकती है। कई बार आधी रात म उठकर उस भाव को दा शब्दों म लिखकर फिर स सो गया हूँ। एम बनाय गय सन्निप्त नोटा से मरी अधिकांश रचनाए तयार हुई हैं। एक नयी रचना शुरू करने क लिए उसी प्रकार की मानसिक शक्ति भी चाहिए। जब यह शक्ति मिलती है तब जो लिखना है उसकी एक स्थूल रूपरखा तयार करके काम शुरू किया है। उनसे बिना भी एकदम तीघा लिखता चला गया है।

विस्मरण से लाभ

लिखकर समाप्त करने क बाद उम भूल जाते म मुझ काफी लाभ हुआ। उमसे सहायता ही मिलती है। मनुष्य अपनी सारी यादा को सदा ढोकर जी नहीं सकता। नहीं तो जीना असहनीय हो जायगा, नारकीय हो जायेगा। जीवन म यदि एक सुख हो तो हजार दुःख हात हैं। सुख तो दुर्लभ ही होते हैं। अत जीवन से मुकाबला करने क लिए दुःख की विस्मृति आवश्यक है। मर जम लिखन के पागलपनवान व्यक्ति का उमम और एक विशेष उपकार होता है। पुराने चित्र यदि विस्मृत हो जायें तो नय क मजनम सहायता मिलती है। नहीं तो पुरान चित्र ही फिर उभर सकते हैं।

मरनि मणिगगे (माटी की आर)

अन म म अपम अपनी कुछ रचनाया की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता हूँ। मरनि मणिगगे की पृष्ठभूमि उमकी भूमिका म ही संक्षेप म दी है। समुद्र तट पर स्थित कोर म आनन्द सन वान सागा का जीवन है यह। मणिगगे निसग का सौ दय देकर मनुष्य सतीय अनुभव कर सकता है। यह निसग तब स अब तक अथवा बन तक एक ममान रह गया है। उममे चित्रित तीन पीढ़िया का कहानी है जो मरि मरि के उमान से शुरू होता है। कालक्रम की दृष्टि म यह मरी पीढ़ी तक पहुँचती है। पहली पीढ़ीवाला न निसग का स ताप प्राप्त नहीं किया।

समुद्र के साथ, नदी के साथ सघष करके, अपना पसीना बहाकर अन के लिए सघष किया। तब घोर गरीबी थी। उस गरीबी के मकड़ में बचने के लिए एक ही रास्ता था—भाग्य पर भरोसा रखना। उनमें औरना ने बड़ा दुःख भागा। पदल चलन व उन जमाने में तीज-चोहार शादी-प्राह रवपाया, बपनाट—यही सब उनके मुख व साधन थे। विलास के लिए बेशरामा की मगति में ज्याया मुख की बल्पना तब नहीं थी।

दूसरी पीढ़ी तब आते अंग्रेजों गिशा की हवा बहने लगती है। एक ममुदाय गाँव छोड़कर शहर में चला जाता है। होल उद्योग से धन बमानर, गाँव में पैसा भेजता है। सपत्ति बढ़ती है। पैसे के चल में, बमहा में मजा तन वात लोग गाँव में पनपने लगते हैं और एक तरफ लक्का जैसे व्यक्ति बाजार के माह में पंगकर नये घातावरण में अपना दिमाग खराब कर लेते हैं। उनके भाग में भी निमग केवल एक जड वस्तु होती है। तीसरी पीढ़ी में अंग्रेजी गिशा सवमाय हो जाती है। बेकारी का प्रश्न उठना है। श्रम में अशांति पनने लगती है। तब य सब राम जैसे लडके को तवान लगते हैं। अन्त में निराशा में वह गाँव की आर मुह माडता है। वहाँ भी स्त्रिया की स्थिति बसी रहती है। मेहनत करना और पबकर रर हो जाना। राम जम व्यक्ति की निमग ज्यादा मुख का प्रेरक हाता है। यह नये संस्कार का फल है। इस प्रकार उनमें जनता के आर्थिक और मानसिक जीवन का विप्रण हुआ है। उसे पमन्द करनेवाले भी हैं। उनके बारे में सब प्रकार की आलोचना भी हुई है। आज प्रगता बरके बल निदा करने वाले भी हैं।

उस पर 'देवराज बहादुर पुरस्कार' के अवसर पर मेर मगनूर के मित्रों ने मेरे सम्मान का प्रबोध किया और बड़ी प्रशंसा की। ऐसी प्रशंसा करने वाले मात स्त्रियों में पाँच में पुस्तक भी नहीं पढी थी। ऐसी प्रशंसा पर मेरा मन कैसे झूमता? आमतौर पर एक साहित्यिक बलाकार को मिलनेवाले सम्मान का अर्थ इतना ही होता है।

बेट्टूद जीव (पहाड़ी जीव)

उसके बाद 'बेट्टूद जीव' लिखा। इसमें ताटक के ममान बान, रमान और त्रिया व सनुवन की ओर ध्यान रखा। जगन में भटहनवात मुख उन प्रंग का परिवय था। व्यक्ति भी नये नही थे। गाँवों में जाकर अनक मित्रा व वृदि व साधुमिक बावों को मुहर भक्त, मगा था। उन विर का वान बान की इच्छा हुई। एक बार मैं कुछ निशे व विवर म हरा दिध में बरहा व विर प्रानकांग के मित्र थी मेरुतावगा व पर गया। जाते समय कुछ निशुन की मन कर रगा था। वह 'बरा हास बादि' यह निशुन मन में नही हा पाया था। मगना व ग्रे

की घाटी चढ़कर जब मडकेरी से चार मील दूर रह गया तब बस खराब हो गयो । वही बंठ रहता सम्भव नहीं था । मडकेरी पैदल ही चल पडा । सामने खडे पहाडो न पहाडी जीवन नाम मुझाया । मडकेरी पहुँचा तो मजुनाथय्या की मोटर मेरे लिए इ तजार कर रही थी । उस पर उनके घर पहुँचा । वह काफी के बागो से घिरा पहाडियो के बीच का प्रदेश था । उनके घर बटकर छह दिन मे हव्यक ग्राहण की एक कहानी घसीट डाली । उसकी आचरितकता को देखकर उसमे भला कहानी क्या है / कहनवाल लोग भो है । मैं कोई कहानी कहने नहीं बठा था । मैं अपनी बटी का बीच बीच म नई कहानियाँ मुनाया करता हू । लोगो के समझना चाहिए कि उप यास चरित्र चित्रण के लिए हुआ करता है ।

हेतला ताई (जन्म देने वाली माँ)

बाद मे 'हेतला ताई' उप यास लिखा । उसमे एक ओर तरह का चरित्र-चित्रण है । उसमे एक व्यक्ति मे लघुता की भावना थी, पर वही लघुता किस प्रकार महानता और गव का विषय बन जाती है यह दिखाया है । उसमे लम्बे समस्या भी एक मुख्य विषय है ।

मुगियद युद्ध (जीवन-युद्ध)

'मुगियद युद्ध' शाला के एक गरीब अध्यापक की कहानी है । पुत्र मे मैंने उनक साथ दस पन्द्रह वष काट थ । मैं उनक सुख दुख से भली भाँति परिचित था । 'कदव क्या की पष्ठभूमि है । वही एक अध्यापक के घर बटकर उनका खाना याकर मैंन बाल प्रपच क तीन भाग समाप्त किय थ । उनक साथ आसपास की पहाडियो भी चढ़ा उतरा हूँ । घन जंगल मे चक्कर लगाय है । उनकी आशा अभिलाषा का भी समझा है । जीवन की गहरायी मे उतरा हू । गरीबी क जंगल मे भी चक्कर लगा आया । इस उप यास को पढ़ कर श्री जागीरदार ने इसे यथाथवाणी उपयाग कहा । किसी दूसरे ने इस व्यक्ति सापेश कहा । सभी का क अष्टिकोण कितने भिन्न होते है ।

औदायद उरलन्लि (उदारता के चक्कर मे)

यह मेरा एक ओर उपयास है । उसकी रगभूमि उत्तर कानड डिसा है । अनेक राष्ट्रीय और सायन्निक आ टोलना का उसमे उत्तल है । नेताभा की दुराणा पना कमान क ह्यकण्डे पना घसीटनवाला पाठ्यग समाज मे ईमानदारी क कान निग्राया झूठ परथ, किन प्रकार उच रथान पर पट्टेच जाता है भाँति बाने विव्रित का है ।

दो और रचनाएँ

कलाकार का मानसिक विकास विवृत करने को योग्य पद 'मन' उपायम लिया। इसमन 'य' क बार म गर्वात्म विवचना है। मरे लिए तो कल बार भी सब की भाँति एक व्यक्तित्व है। उनका मन किमी और ही उग स बात करना चाहना है यही उनकी विशेषता है। उनके वा' नि' उपायम है स यासाय ब'कु। इयम गहस्य जीवन म भागनवाला का यहा बनाया है कि ससार ही कम भूमि है। कवल विश्वास स क्या मिनता है? वह विराम काय रूप म परिणत होना चाहिए तभी उसस लाभ है—यही उस उपायम को क्यावस्तु है। क्या की 'रुक्मायी एमा अपूव व्यक्तित्व नही'। मैंन जीवन को उम रूप म देखनेवाल अनक बूढ़ा की देखा है।

निष्पद्य

कहानी उपायम, नाटक लिखने के समान मैंन निष्पद्य भी लिखे हैं। वहाँ भी मेरा स्वभाव जल्दबाजी का ही रहा है। आवश्यक विषय से सम्बन्धित सभी तथ्यों को एक बार निशान लगाकर बँट गया तो बस घसींता चला जाता हूँ। एक बार लिखने के लिए बैठने भर की बात है। 1200 पंक्तियों वाल 'बासु प्रपञ्च' को घसींने में तीन मास लग। परंतु बाद में उठे टीक करने में कुछ वर्ष लग गये। मुद्रणालय तो एक बार बँटकर पूरा कर डाला।

मरी और एक रचना है 'बालवय बेलकु' (जीवन ही प्रकाश है)। एक बार मैं धारवाड गया था। यहाँ मरे मित्र मकरराय जोशी न देवर इल्लिद बंदकु' (ईश्वर के बिना जीवन) विषय पर भाषण देने को कहा। शायद उहाँने मुझे नास्तिक समझा था। भगवान् है या नहीं, मैं इस झगड़ में पड़ना ही नहीं चाहता था। मैं न नास्तिक हूँ न आस्तिक। मरे लिए ऐम विषय पर भाषण देना प्रश्न पत्र का उत्तर देने के समान था। उत्तर देने का प्रयत्न करता हूँ। उत्तर देने समय अनेक विचार-सहारे मन में उठती हैं इसलिये मैं भाषण देने को तयार हो गया। उहाँने कहा, उसी को लिखकर दे दीजिए। उसमें जीवन, ईश्वर, आत्मा कम-कम आदि विषयों के बारे में मैंने अपने विचार प्रकट किये।

यहाँ पर मैंने सन् 1950 तक सित्त उपायमों के बारे में मनोरंजन बताया। उनके बाद में भी लिखता रहा, लिख जा रहा हूँ। यह बात सब जानते हैं। लेकिन लिखना ही चाहिए ऐसी हठ तो है नहीं। प्रश्नों की गरमा बड़ाने की जि' भी नहीं। चाहे उपायम ही या नाटक उम करने अनुभव को पृष्ठभूमि पर लिखन म हो मस गृप्ति मिनती है। लिखन समय मर पात्र और व्यक्तियों का एम व्यवहार करना चाहिए माना क जीवन है। मुझे उनका मुद्र दिशाओं देना चाहिए उपाय

बानें मुनायी देनी चाहिए। लेकिन मर अनुभवों की भी तो एक सीमा है। उनसे जितना मार निकल सकता है उतना ज्यादा कृपि का प्रयास करने पर फल पीका निकलगा।

अनुरक्ति

एक जमाने में वह भी जीवन के दिना में जब आदर्शवाद का भूत सवार था दुनिया का उद्धार करने को निकलता, तब कुछ उप-यासा की रचना की। पर ज्यों ज्यों मर जीवन का विस्तार हुआ अनुभव बना उस जीवन के बाहर म जहाँ तक सम्भव हो सका निष्पन्न होकर मैंने जो विचार किया तो मुझ लगा कि मर मज्जन और जीवन में निष्कन्ता अनिवाय है। 'चोमन दुडी' इसी दृष्टिकोण का पन्ना बन गया था।

बाद में भी लिखता रहा हूँ। वैसे तो आज मुझे अपने लिये उप-यासा का नाम तो था है लेकिन उनमें क्या क्या है और किमने क्या किया यह पूछा जाय तो शायद उत्तर न दे पाऊँ।

साहित्य के इन प्रयोगों में आपको दो भिन्न सहरे दिखायी देंगी। एक कुछ रचनाएँ वे हैं जिनमें मैं दूर घूब होकर दुनिया को देखा है जस, 'शनिश्चरनेरल्लि' (शक्ति की छाया में) जखव दारी (किमलन की राह) तथा समीपे। कुछ कृतियाँ ऐसी नहीं हैं। जीवन की समस्याओं का दूसरों के द्वारा सामना किये जाने की बात कहते समय, मरे तटस्थ रह कर देखने का ढंग कुछ और है। यदि समस्याओं में मेरे जीवन को छुआ होता तो मैं मूक होकर नहीं बैठता। कई बार स्वयं को शकशोरन वाली समस्याओं में मुझ उप-यासा लिखने को प्रेरित किया है। 'गाधारण्य' ऐसा ही एक उप-यासा है। हमारे देश के एक राजनीतिक दल वालों को वह एकदम बटु लग सकता है। उस उप-यासा के बटु सत्य की मने प्रत्यक्ष भोगा है। जनता के नेताओं तथा राजनीतिक दल की बातों और व्यवहार देखकर मुझे बड़ा आघात हुआ है। इस कारण मुझे कोई भी पक्ष दक्षिण नहीं लगा। यदि कोई पक्ष दानवी गुणा का आजमाने लग तो मुझे लगता है कि जनहित के लिए उनसे अनुज्ञाचार का दर्शना आवश्यक है।

यह ममस्या बनने राजनीति की ही ममस्या नहीं आजकल तो स्वतन्त्र भारत का दात वरण में ओक याना में मेरे जसा का दम घूट रहा है। मैंने पहला अध-धडा अनाचार और साम्प्रदायिकता का घण्टन किया है। आज की राजनीति में धार पूजा मूठ यमात् बड घटिया दर्जे तक पहुँच चुकी है। लख जिन समाज में जो रहा है व उन कन्विवन करनेवाली पबितयाँ हैं। अतः प्रश्न यह उठता है कि मरा कान्य क्या है? गहरा और टिछना नामक उप-यासा में अनाचार पात्र के द्वारा पूरा रूप में तो न मही पर मर और मर जग लागे व विचारों

को घोड़ी बहुत आवाज देन का प्रयास किया है ।

क्षीण स्वर

परन्तु मेरा यह विश्वास नहीं है कि साहित्यकार के स्वरा समसार का उद्धार हो सकता है। भारत जन दश म मत्तर करान नतता म न पनीम कराड वनस्व हैं। बिना कुछ समये पूरा ही व अपन नता चुनन है। साहित्यकार उनसे बहुत दूर हैं। पढ़ने लिखन वाला के लिए तो हजारों पुस्तकें हैं, सैकड़ों राशियाँ हैं। क्या सभी के लेखक प्रभावित कर सकत हैं ? वह प्रभाव राजनीति म भत्ता कितना हो सकता है ? मेरे लिखन मे दुनियाँ उलट पलट नहीं हो जानी। दूसरों के विचारा को समझ कर क्या उनमें मैं पर्याप्त प्रभावित नहीं हुआ ? पर मैं यह कैसे बता सकता हूँ कि वह प्रभाव किसकी बात या किसके नगर म हुआ है। अनक रचनाआ की प्रेरणा न मुझे बुद्धिजीवी बनाया। इसलिए मेरा यह वक्तव्य हो जाता है कि मैं साहित्य के द्वारा समाज का कुछ अपित करूँ। पर हममें एक शिष्य समुदाय जन्म नहीं लेता। यह शिष्य समुदाय तो 'दास समुदाय' बनना जा रहा है। इसलिए मुझे एसा समुदाय बनान की इच्छा नहीं। अग्रे मूढकर किसी के मेरे शिष्य बनन की अपेक्षा समीक्षात्मक रूप म मुझे समझकर मुझ म भिन्न विचार रखन वाल बुद्धिजीवी का मैं ध्येष्ट समझना हूँ।

बातें सुनायी देनी चाहिए। लेकिन मेरे अनुभवों की भी तो एक सीमा है। उनमें जितना सार निकल सकता है उससे ज्यादा कृपि का प्रयास करने पर फल फीका निकलगा।

अनुरक्ति

एक जमाने में वह भी जीवन के दिनों में जब आदर्शवाद का भूत सवार था, दुनिया का उद्धार करने को निकला, तब कुछ उप-यासों की रचना की। पर ज्यों-ज्यों मेरे जीवन का विस्तार हुआ अनुभव बढ़ा, उस जीवन के बारे में जहाँ तक सम्भव हो सका निष्पक्ष होकर मैंने जो विचार किये तो मुझे लगा कि मर सज्जन और जीवन में निकटता अनिवार्य है। 'चोमन दुडो' इसी दृष्टिकोण का पहला कदम कहा जा सकता है।

बाद में भी लिखता रहा हूँ। वैसे तो आज मुझे अपने लिखे उप-यासों का नाम तो याद है लेकिन उनमें क्या क्या है और किसने क्या किया यह पूछा जाय तो शायद उत्तर न दे पाऊँ।

साहित्य के इन प्रयोगों में आपको दो भिन्न लहरें दिखायी देंगी। एक कुछ रचनाएँ वे हैं जिनमें मैंने दूर खड़े होकर दुनियाँ को देखा है जैसे, 'शनिश्चरनेरसल्लि' (शनि को छाया में) 'जख्ख दारी' (फिसलन की राह) तथा समीक्षा। कुछ कृतियाँ ऐसी नहीं हैं। जीवन की समस्याओं का दूसरा के द्वारा सामना किये जाने की बात कहते समय मरे तटस्थ रह कर देखने का ढंग कुछ और है। यदि समस्याओं ने मेरे जीवन को छुआ होना तो मैं मूक होकर नहीं बठता। कई बार स्वयं को झकझोरने वाला समस्याओं ने मुझे उप-यास लिखने को प्रेरित किया है। 'गोठारण्य' ऐसा ही एक उप-यास है। हमारे देश के एक राजनीतिक दल वाला को वह एकदम बटु लग सकता है। उस उप-यास के बटु सत्य को मैंने प्रत्यक्ष भोगा है। जनता के नेताओं तथा राजनीतिक दलों की बातें और व्यवहार देखकर मुझे बड़ा आघात हुआ है। इस कारण मुझे कोई भी पक्ष दबोपक्ष नहीं लगा। यदि कोई पक्ष दानवी गुणों का आजमाने लगे तो मुझे लगता है कि जनहित के लिए उसके दण्डाकार को दर्शाना आवश्यक हो जाता है।

यह समस्या केवल राजनीति की ही समस्या नहीं आजकल तो स्वतंत्र भारत के वात-वरण में अनेक बातों में मेरे जसा का दम घुट रहा है। मैंने पहले अध-श्रद्धा अनाचार और साम्प्रदायिकता का खण्डन किया है। आजकी राजनीति में वीर पूजा लूट खसोट बड़े घटिया दर्जों तक पहुँच चुकी है। लेखक जितना समाज में जी रहा है वे उसे कल्पित करनेवाली शक्तियाँ हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि मेरा कतय क्या है? 'गह्रा और छिछला नामक उप-यास में अपने एक पात्र के द्वारा पूर्ण रूप से तो न सहो पर मरे और मर जसे तागा व विचारों

को थोड़ी बहुत आवाज देने का प्रयास किया है ।

क्षीण स्वर

परतु मेरा यह विश्वास नहीं है कि साहित्यकार के स्वरा स ससार का उद्धार हो सकता है । भारत जम दश म सत्तर कराड जनता म स पनीम करोड चयस्क है । बिना कुछ समयके वूडो ही वे अपन नेता चुनते ह । साहित्यकार उनसे बहुत दूर हैं । पत्ने लिखन वाली के लिए तो हज्जारो पुस्तके है, सक्डो राम्ने हैं । क्या सभी के लेखक प्रभावित कर सकते है ? वह प्रभाव राजनीति म भला कितना हो सकता है ? मेरे लिखने से दुनिया उलट पलट नहीं हा जाती । दूमरो के विचारा को समझ कर क्या उनसे म पर्याप्त प्रभावित नहीं हुआ ? पर मैं यह कस वता सकना हूँ कि वह प्रभाव किसकी बात या किसके लख से हुआ है । अनक रचनाभा की प्रेरणा ने मुझे बुद्धिजीवी बनाया । इसलिए मेरा यह कत्तय हो जाता है कि मैं साहित्य के द्वारा समाज को कुछ अर्पित करू । पर इससे एक शिष्य समुदाय जम नहीं लेता । यह शिष्य समुदाय तो 'दान समुदाय' बनता जा रहा है । इसलिए मुझे ऐसा समुदाय बनाने की इच्छा नहीं । आखें मूदकर किसी के मेरे शिष्य बनन की अपेक्षा समीक्षात्मक रूप से मुझे समझकर मुझ से भि न विचार रखने वाले बुद्धिजीवी को म थ्रेण्ट समझता हूँ ।

द्वारा राजनीति मे

स्वतंत्रता से पहले

जब महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में मैं बूढ़ा, तब जवान हो था। पांच छह वर्ष तक मैं कांग्रेस का सदस्य रहा, उसका एक स्वयंसेवक बनकर अपने आप कुल्हापुर में काम करता था। यह कहना गलत न होगा कि राजनीतिक भाषणास मुझे अपनी ध्वनि का परिचय हुआ। उस समय की राजनीति का एकमात्र उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से निकालना था। उसके लिए आवश्यक वाक्य प्राण हमारे नेता प्रदान करते थे। गांधीजी की 'यंग इण्डिया' पत्रिका मेरे लिए एक तरक्की थी। उसकी लेखों से ज्यादा समीक्षा करने की अपनी शक्ति मेरे पास नहीं थी। उन दिनों देश के कुछ नेताओं के लेखों के अतिरिक्त और कुछ पढ़ने की आनंद ही कम थी। कभी कभी रमान चर्चर्जी की 'माडर्न रिव्यू' पत्रिका पढ़ लिया करता था।

आगे चलकर, भाषण देना बंद करके, खादी निर्माण का काम अपने हाथ में लिया। उसकी कहानी आरम्भ में ही बही है। उसमें असफल होने के बाद मेरा मन साहित्य, नाटक, शिक्षा और ग्राम सुधार जैसे विषयों की ओर गया। हवाई किले बनाने के बदले अपनी शक्ति के अनुसार काम करने लगा। अपने अध्ययन, भ्रमण और खोज से भारत की गरीबी और जड़ता की समस्याएँ मुझे असीम लगी। स्वतंत्रता सपना के अगले दो वर्ष मैं केवल आसक्त प्रेक्षक मात्र बनकर बैठा रहा। दोना वर्ष विशेष निराशा में ही कट जिससे मेरा मन स्वयं को सालन लगा।

दूसरे महायुद्ध में प्रत्यक्ष रूप से भारत का विशेष उपकार किया। जापान और वर्मा की घटनाओं से बर्तानिया को यह महसूस करना पड़ा कि अब साम्राज्य को बचाव रखना बठिन है। खैर किसी प्रकार भारत को स्वतंत्रता मिल गयी। कांग्रेसियों ने यह कहना शुरू कर दिया कि उही के प्रयत्न से यह स्वतंत्रता मिली। मेरा विचार है कि युद्ध के बाद की परिस्थिति ने बर्तानिया को झुकने को

मजबूर कर दिया था। उहे यह समझ मे आ गया था कि असतुष्ट लोगो पर अब वे राज्य नही कर पायेंगे। कोई आ दोलन न छेडने वाल बर्मा को भी उह स्वतंत्रता देनी पडी।

अभिमान जाता रहा

कांग्रेस के बार मे आरम्भ मे मुझ मे जितना अभिमान था चौथे दशक मे उतना ही कम हुआ। अहिंसा के नाम पर जेल जानेवाले कुछ लोगो के तौर तरीके से मैं परिचित था। अनेक लोग ऐसे थे जो समय से स्फूर्ति पाकर सत्याग्रह करके जेल गये थे। हमारे कर्नाटक के दक्षिण जिले मे कांग्रेस मे घुस आये कई नेताओं के व्यवहार स मुझे बडी जुगुप्सा हुई। वचक, अवसरवादी, लालची लोग यदि भगवद्गीता की भी दुहाई दत तो भी मैं धोखा नही खाता। दिवगत श्री सदाशिव रायजी को हटाकर जब कुछ चालबाज लोग नेता बने, तो मुझे इस राजनीति के सामने निरझुका लेना पडा।

स्वतन्त्रता तो मिली

मन 1947 मे भारत स्वतंत्र हो ही गया। उसके माथ दश को चलाने की जिम्मेदारी भी आयी। इस उद्देश्य को लकर राजनीति मे भाग लेने वालो की सख्या तो उगलिया पर गिनी जा सकती है। मेरे बड़े भाई साहब ने कांग्रेस मे रहकर काफी परिश्रम किया था। उसके अनुभव स मैं परिचित हूँ। मुझे लगा कि समय बीतने के साथ कांग्रेस स्वाधिया का स्वग बन गयी। गांधीजी ने 'कांग्रेस तोड़ दो' कहा था। यह बडी दूरदर्शिता की बात थी। मेरे भाई ने अपने कटु अनुभवो के कारण ही कांग्रेस छोडी थी। वे प्रकाशम के मंत्रिमंडल मे कर-मंत्री थे। उन्होंने जब एसा कदम उठाया तो अवश्य ही कुछ ठोस कारण रहे होंगे।

समय बीतत बीतते जन सेवा, देश भक्ति आदि शब्द जनता को धोखा देने के अथ लगने लगे। पुराने राजाओं सुलतानों की भगानेवाली जनता, उससे चौगुनी होकर उनकी छाडी जूतिया मे पाँव रखकर नवयुग के राजा बनने के सपने देखने लगी। कांग्रेस सस्था पर मेरे मन मे जो अभिमान पहले था वह मिट्टी मे मिल गया।

गांधी जी

देश के भागदशक गांधीजी का जीवन बलिदान हो गया। उनके नाम पर लाभ उठाने के लिए देश मे असह्य नता आगे आय। गांधीजी के सत्य अहिंसा के मंत्र सबकी जवान पर नाचने लगे। स्वाधिया के लिए बह एक मुखौटा बन गया।

सन् 1952 में चुनाव शुरू हुआ जाकि हमारे लिए एक महान घटना थी। मरा मरा देश की राजनीति को देखकर दुखी था। उस तरफ हस में आयात किया गया व्यक्तिव जीवन का गला घोटनेवाला कम्युनिज्म देश में फलन लगा। उसका विरोध में प्रजातन्त्र की रक्षा करनेवाली सस्याओं में वर्द्धमाना का प्रभाव बढ़ने लगा। ऐसी परिस्थिति में मरे जमे का कत्तय क्या हाना चाहिए? मुझे राजनीतिक जीवन में कोई आक्षेप नहीं रह गया था। पर इस सन्धि स्थिति में तन्स्थ होकर जीना भी सम्भव नहीं था। तब यत्तिगत विरोध विधान के लिए मैं चुनाव में खड़ा हुआ। मैं कृपलानी के नेतृत्व में प्रजा समाजवादी पार्टी की तरफ से खड़ा हुआ था। तब मुझे यह भय भी हो रहा था कि 'समाजवाद' शब्द अस्पष्ट और अनिश्चित दिशा की ओर भाग रहा है। मैंने सोचा कि भले ही कुछ न हो कांग्रेस का विरोध तो होगा। उसी पक्ष में मेरे बड़ भाई लोकसभा के लिए खड़े हुए। मैं जम्हली सीट के लिए खड़ा हुआ था। तीन मास तक पुत्र के मतदाताओं के घर घर जाने का अवकाश मिला। तब यह पता चला कि चुनाव कितना सत्य और जहिंसा के माग पर हाता है। जाति विरोध करनेवाली कांग्रेस भी जातिवाद से दब गयी है। मेरे दोना विरोधी ब्राह्मणतर थे। मैंने जन्म से ब्राह्मण होने पर भी, ब्राह्मणतरों में विवाह किया था। यह बात जानने वाले मतदाताओं के लिए भी भारत ब्राह्मण ही ठहरे।

इस राजनीतिक सघष में नेता और उनके अनुयायी अपने प्रचार में सबसे पहले सत्य की बलि चढ़ा देते हैं। पता नहीं घन किस किस तरफ से आता है और उसका क्या क्या प्रभाव पड़ता है।

चुनाव परिणाम

चुनाव तो मरे और मर भाई के विरोध में ही गया पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने अपनी आंखों से देखा कि 150 मत पेटिया खुली पडी थी सम्बंधित अधिकारी ने लिखित रूप से यह स्वीकार करते हुए कहा 'ऐसा आपके साथ ही नहीं दूसरों के साथ भी हुआ है।' यायाधीश के सामने तो वह साफ मुकर गया और कहा कि ऐसा हुआ ही नहीं। मतधत्रा से आये फाम ही गायब थे। एक गांव से दूसरे गांव में पहुचकर मतपत्र ही गायब हो गये। मैंने इस पर मुकदमा लडा। न्यायाधीश के सामने यह सिद्ध किया कि मतपत्र एक जगह से दूसरी जगह कैसे चले गये। कतना ही नहीं मरे क्षेत्र में बांटे गये मता की कुल सख्या में केवल 72 लागा का छाड दें तो बाकी सब आये है।

उमर दुगने मतपत्र मगलूर की लोकसभा की पेटिया में दिखाये। पर तुव सब

“यायाधीश के लिए गम्भीर दोष दिखाई नहीं दिये। अतः उन्होंने मेरी अर्जी खारिज कर दी। मेरे पास तो चुनाव लड़ने के लिए भी पैसे नहीं थे। यह मुकदमा भी मैं मित्रों की सहायता से किया था। फिर से अपील करके धन कहा से लाता? शक्ति भी कहा से आती?”

परन्तु मेरे अनुभव में कम से कम दूसरे तो लाभ उठायेँ सोचकर व साहस का गजात सप्त सदस्य एच० वी० कामत का सौंपकर मारी बातें बताकर चुनाव आयुक्त के ध्यान में लाने को कहा। वहाँ मेरा काम समाप्त हो गया।

बाद में मैं चुनाव में हाथ नहीं डाला परन्तु कुशासन में निपुणता प्राप्त करके अपने भारत से जनता को तग करके, व्यक्ति की उन्नति में बाधक बनने का प्रसन्न प्रति जो उदासीनता आयी वह अब तक भी मेरे मन से नहीं गयी है और शायद जायगी भी नहीं।

मन की दासता

आजकल हम प्रजातंत्र के रास्त पर नहीं जा रहे हैं। हमने अपने नेताओं को देवता का स्थान दे दिया है। जनता तो सत्ता मूर्तिपूजक है ही। जब तक जनता अपने बारे में आप सोचने लायक नहीं बनेगी तब तक प्रजातंत्र नहीं होगा। हमारे नेताओं का ध्यान तो जनता की समस्याओं की अपेक्षा अपने सपनों को पूरा करने की ओर है। अर्थशास्त्र की गंध तक उन्हें मालूम नहीं। दस दश भी प्रजातंत्र की रक्षा करने और व्यक्ति के विकास के रास्त ढूँढने में पूरी तरह सफल नहीं हुए। जनता का ओर छोर जान बिना ही शासन के बल से, दल के बल से उनमें बस गद्दी को बनाये रखने की चपलता रहती है। अपने देश की सुरक्षा हेतु दुनिया के परस्पर विरोधी दो गुटों को बाता से तप्त करने का आत्म विश्वास इनमें है।

दुनियाँ के भिन्न-भिन्न देशों में हमारा स्थान सर्वप्रथम है। हम इतने वृत्तधन हैं कि भिक्षा देनेवालों को उमीक्षण भूल जाते हैं। ऐसे में यह बात हर कोई आसानी से समझ सकता है कि लखका की शक्ति इस देश में कितनी दुबल है। अनुरक्ति ही आहार बन एस लोपा के बीच में प्रगतिशील कहलाने का जमाना है यह। यह सब काल पुष्प की करामात समझ कर, कर्त्तव्य से मूढ़ मोड़ने की हालत पदा हो गयी है।

देश की रक्षा

विचारशील व्यक्ति के लिए हमारे देश का राजनीतिक वातावरण चित्रित कर देना सहज है। आंतरिक प्रशासन बर्दमानी और नालायकी से भरा है। सगता है परिश्रम करना एक अपराध है। अपने स अच्छी स्थिति में रहनेवाला

से द्वेष करना, उनसे खार खाना नया युग धम बन गया है। इसी पर चलनेवाले ही हमारे मुखिया हैं। तिवत पर चीन के आक्रमण के समय दलाई लामा को भारत में आश्रय देकर उनका मुह बंद करके, आश्रिता की रक्षा की कमज्युति दिखायी। राजनीति बहसवाजी नहीं है। राजनीतिक चालाकी से अपरिचित हमारे नेताओं ने चीनियों पर विश्वास करके देश रक्षा की उपेक्षा की। फिर भी अंत तक उनमें देवत्व का आरोप करके, उनके नाम पर दीया जला कर, उनसे शताश भी योग्यता न रखनेवाले लाभ नेता बनने में सफल हुए।

गत महायुद्ध ने यह सिखाया कि हिटलर जसी शक्ति के सामने कोई देश अलग अलग होकर लड़ नहीं सकते। हमारे नेता उस इतिहास से सबक नहीं सीख सके। पश्चिम के दो गुटों से अलग नेहरू जी एक तीमरे तटस्थ गुट के नायक बने। उसी का फल था चीन का आक्रमण। फिर भी हम अवन नहीं आयी। क्या हम अकेले देश की रक्षा कर सकते हैं जब कि चीन परमाणु बम बना रहा है ?

यूरोप के प्रमुख राष्ट्र ही एकाकी होकर देश की रक्षा कर सकना असंभव समझकर गुटों में मिलजुल कर अपनी शक्ति का विकास कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में पुराने शस्त्रास्त्रों से अधसज्जित अपने देश की रक्षा करने की नीति से मुझे डर लगने लगता है कि इससे कहीं हम अपने देश की बलि तो नहीं चढ़ा देंगे।

एक बात और। युद्ध की तैयारी सदा शस्त्रास्त्रों के विकास से ही हो सकती है। इन शस्त्रास्त्रों का सदा नवीनीकरण करते रहना चाहिए और ऐसी बातें हर समय गुप्त रखी जानी चाहिए। उही पर देश की शक्ति निर्भर रहती है। बाजार में पैसा देने से मिलनेवाले शस्त्रास्त्र ऐसे नहीं होने, इसीलिए यदि हम नये आयुध चाहते हैं तो हमारे सहायक बन सकनेवाले एक दो राष्ट्रों से हमारी मित्रता बनी रहनी चाहिए। परस्पर विरोधी गुटवाले यदि हमारे सहायक बने भी वे गुप्त शस्त्रास्त्रों को हमें कभी नहीं देगे। अगर दे दें तो हमारे माध्यम से अमेरिका का रहस्य रूस को, उसका रहस्य अमेरिका को पता नहीं चल जायेगा ? हमारे जस विमगादडी नेताओं पर विश्वास करके अपने रहस्यों की बलि चढ़ाने वाले भूख वे नहीं हैं।

वाकबाणों से युद्ध करनेवाले हमारे नेताओं को देश की रक्षा जब इतनी आसान लग सकती है तो ऐसा न हो कि कभी और एक नेफा का प्रसंग पदा हो तो अपनी अल्दवाजी और अहंकार से देश को बलि बंदी पर चढ़ाने का पाप हम ही भोगना पड़े।

दश की इस सफट की स्थिति को सोचते-सोचते मन की शक्ति चली गयी है। पर मुझ जसा लेखक क्या कर सकता है ? भला उसकी शक्ति ही क्या है ? मतदाताओं को खरीदने की शक्ति किस लेखक में है ? ऐसा आभास होने लगा है कि उसका होना भी नहीं होने के बराबर है।

आरम्भ

मुझे गृहस्थ बने लगभग पचास वर्ष पूरे हो गए। अब मैं केवल गृहस्थ ही नहीं, व्यवहारी भी हो चुका हूँ। मेरा पुराना आदर्शवाद बदल गया है। मेरे जीवन ने दूसरा ही रूप ले लिया है। इस परिवर्तन की कहानी मैंने काफी लिखी है। मेरा परिवार छोटा है। पत्नी आयी, घर भी बना, बच्चे भी हुए। पर क्या इतने से गृहस्थी बन जाती है? चूहे से बचने को बिल्ली, चोरो से बचने को कुत्ते, उनके पेट भरने को गाय भैंस और उनकी और हमारी सेवा करने के लिए सेवक भी तो चाहिए। इस प्रकार विवाह के निमन्त्रण पत्र में लिखने के समान सकुटुम्ब सपरिवार स्थापित हो गया हूँ। सस्या का पिता बन गया, ससार रूपी सस्या का पिता। बगल में थला लटकाए कच्चे चने चबाता, बाहो का ही मिरहाना, समाचार पत्र ही बिस्तर बनाकर बिताये पुराने दिना और इनमें अंतर है। तब कोई अकुश नहीं था। पर यह नहीं समझिये कि मैं घरवाली के कहने पर ही चलता हूँ। सुनू या न सुनू कहनेवाले तो हैं—यह गव है।

विवाह का विचार

मेरे जैसे घरदार छोड़े, बुजुर्गों से दूर और निखट्टू व्यक्ति के लिए पत्नी मिल जाना कोई आसान बात नहीं थी। पहले तो मैं विवाह ही करना नहीं चाहता था, बाद में लगा कि हो जाय तो कोई बात नहीं। सो विवाह करने की इच्छा हुई। कोई भी काम शुरू करने से पहले उसके हानि लाभ में बार में सोचने बैठना मेरा स्वभाव नहीं है। यदि वह मेरे काबू का है तो हो ही जायेगा। यह सोचकर क्या-वेपण के काय में लग गया।

पता नहीं किस पुण्यात्मा ने यह नियम बनाया कि विवाह के लिए एक कन्या चाहिए। किसी घर में एक अनमोल आभूषण साकर एकदम 'यह मरी पत्नी है' कहने का अह पुरुष को होता है। हमारे यहाँ क्या का लान की पद्धति कुछ ऐसी है जैसे भैंस, गाय, कुत्ता, बछड़ा लाया जाता है। लाने के बाद वह वस्तु

हमारी हो जाती है। पर तु लायी गयी क्या का मन हमारा होने तक 'मेरी पत्नी कहने का कोई अर्थ नहीं है। वह मात्र एक रुढ़ि है। पर मैं तो रुढ़ियाँ तोड़ चुका था। मुझे रुढ़ियों में बंध विवाह की आवश्यकता नहीं थी। मेरा विचार था कि एक दूसरे को पहचान कर विवाह करना चाहिए। लडका लडकी को ओर लडकी लडके को समझे। क्या हमारा समाज ऐसा बन पाया है? ज मपत्री और जाति म मरा विश्वास नहीं है। पर इसी प्रकार साचनवाला परिवार भी ता मिलना चाहिए था न? बाद म, लडक लडकी का परिचय होना चाहिए। पहन दोनों म मित्रता होनी चाहिए। वस यह रास्ता है कठिन। इस लोग जितना आसान समझन है यह उतना आसान नहीं है। बिना वजह एक लडके और लडकी का एक साथ खडाकर, उनकी स्वीकृति लिए बिना ही, अपने छूद के खर्चें से विवाह करा दनवाले ह हमारे समाज के लोग। मेरे विवाह करने के निश्चय और विवह होने के बीच तीन वष गुजर गय थे। इस बीच मैंने ही अपने कुछ मित्रा के विवाह भी कराये थे। लेकिन मेरे लिए अपना विवाह करना कठिन लग रहा था।

खोज

बगलूर की निवासी एक पढी लिखी लडकी ने मन ही मन मुझे से विवाह करने का सकल्प कर लिया था। उसने मित्रो द्वारा मुझ से बात करने का प्रयत्न भी किया। पर इस अश्वत्थामा से बात करने का साहस मित्रो मे नहीं था। अगर मैं अपनी दाढी नहीं कटवाता तो किसी की कदापि हिम्मत नहीं होती। जो भी हा, मित्र ठहर। उहाने सोचा कि समझदार होने पर भी यह लडका ऐसे कर रहा है। उमे एक छूटे से बाँध ही देना चाहिए। मुझसे उस लडकी का परिचय कराया गया। वह जसी दीख रही थी (अगर आग चलकर वह और मोटी न हा तो) मैं सोचा कि हो सकता है। मैंने मन से स्वीकृति भी दे दी थी। एक दो मास तक हमारे बीच पत्र व्यवहार भी चला। एक दिन वह अपनी सारी जिम्मेदारी अपन पिता के तिर मडकर मूक हो गयी। मर मित्रो ने उसक पिता से बात की। उहोने कहा "यह कस सभव है? अभी तो उसे तीन साल और पढ़ना है।" मैं यह सोचकर चुप हो गया। अच्छी बात यदि भाग्य से हुई, तो कम म कम परलोक म ता एक भाया मिल ही जायेगी।

बाद म एक छोटी आयु की लडकी मर सौ दय को देखकर मुझ पर आसक्त हा गयी। मध्यस्थ लागा द्वारा बातचीत भी शुफ हो गयी। एक सप्ताह बाद वह अपन आप उत्सुक होकर आग आयी और फिर वह भी इस व्यक्ति को एकदम अयाग्य समझ कर पीछे हट गयी। बाट मे मर एक मित्र न इस रिश्ते को जोड़ने का मत्न भी किया था।

सन् 1935 म मैं कभी-कभी मगलूर वेसेंट स्कूल जाया करता था। उनके यहाँ नाटक, नृत्य और अभिनय का निर्देशन किया करता था। उस स्कूल की सुपरिन्टेण्डेण्ट रमाबाई मेरा बड़ा सम्मान करती थी। एक दिन उन्होंने मुझ से नृत्य सीखनवाली एक लडकी के बारे म पूछा, "इस लडकी के बारे मे आपका क्या विचार है?" मैंने कहा, "क्या कहा जा सकता है। लडकी चुस्त है पर उमर बहुत छोटी है। इस उमर म विवाह की बात उठाना ठीक होगा? फिर अभी एक अविवाहित बहिन भी है। यह भी मालूम नही कि उसके घर म बड़ो के विचार कैसे हैं? उनके द्वारा बात कर सकती हैं तो कीजिए।" वे वाली, "अच्छी बात है।" वह मेरे द्वारा निर्देशित नाटक, नृत्य और प्रदर्शनो मे सदा भाग लती थी। जिस लडकी का जिक्र पहल किया था वह भी उसी स्कूल म थी। वह आयु म भी थोड़ी बडी थी। उसने अपनत्व भी दिखाया था। यहाँ तक कि अभिनय सिखान समय वह मुझ स झगड भी पडती थी। लेकिन इसने मेरे प्रति किसी तरह की कभी कोद आसक्ति भी नही दिखायी थी। वह और उसकी कुछ अन्य सखियाँ समय मिलत ही मेरे पास गप्पें मारने आ जाया करती थी और गाँव के और मेरे पुराणा के बारे मे सुन सुनाकर चली जाती थी।

गर्मी की छुट्टिया मे एक दिन व सब अपनी सुपरिन्टेण्डेण्ट के साथ एक दल बनाकर मेरे 'बाल-वन' आयी। वही एक-दो दिन रहकर खुशी खुशी वापस शौट गयी। तब फिर से रमाबाई ने उस लडकी की बात उठायी। मैंने अपना पालेवाला जवाब दुहराया। पता नही उनका क्या अभिप्राय था, व मेरे प्रति उस लडकी के विचारों का बडी तत्परता से अध्ययन कर रही थी। उन्होंने उस लडकी के विचारों स बात करने का निश्चय किया। आगे तीन दिन बाद मैं भी मगलूर गया। रेर ठहरने की जगह पर वही लडकी आयी और बोली, "मास्टरजी आप हमारे घर आइए।" मैंने कहा, 'अच्छी बात है।' उसके पिता का फुनो का एक बगीचा था। वह सारे मगलूर म प्रसिद्ध था। पहले बम्बई म उनकी एक बडी-सी दवा की कम्पनी थी। बाद म व मगलूर मे बस गय थे और वही अपना निवृत्त जीवन फूला के बाग की देखभाल म काट रहे थे। उसे देखन की मेरी भी इच्छा थी इसलिए मैं उनके यहाँ चला गया।

निश्चय

उनके घर जाने पर, उसने मुझे अलग बुलाकर एक विचित्र बात कही - "मैं आप से विवाह करना चाहती हूँ। अब एकदम स उत्तर देने के लिए भी मुझे आगे-पीछे सोचना पडा। पहले उसके मन म वह विचार आया तो होगा ही और फिर ऐसी बात कहना अमाध्य-सा लगा होगा। मैंने धीरे से कहा, "यह बात उठाने से पहले तुमने इसके बारे मे कुछ सोचा भी है? मेरा स्वभाव, मेरी स्थिति

सुम्हारी जिम्मेदारी—इन सब के बारे में सोचे बिना ही ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।' वहाँ से वह मुझे अपने पिताजी के पास ले गयी।

तीन दिन पहले ही यानी हमारे गाँव से लौटने के दिन ही उसने अपने मन की बात पिताजी से कह दी थी। पता नहीं उनके मन में क्या क्या सन्देह पैदा हुए होंगे। उहाने भी यही बात उठायी। कहा, "दखिए पहले मेरी अच्छी आमदनी थी। अब वसी स्थिति नहीं है। उन बातों की ओर ध्यान नहीं देना। और फिर जाति का प्रश्न भी है। यह सब आप का भलीभाँति सोचने के बाद ही निणय लेना चाहिए।"

विवाह

उस शाम को जब हम घूमने गये तब मैंने उसको सारी जिम्मेदारी के बारे में बताया। लगा, कि उसने अपने मन को पक्का कर लिया था अतः मैंने स्वीकृति दे दी। अगले पन्द्रह दिनों में हमारी रजिस्ट्रड मैरेज हो गयी। वह छह मई 1938 का दिन था, चित्रा पूर्णिमा का दिन। सिद्धाय के बुद्ध बनने का दिन। उसी दिन मैं गृहस्थी के बंधन में बंध गया। वह ब्राह्मण ब्राह्मणोत्तर का विवाह था उससे हमारे समाज में हलचल शुरू हो गयी। पर समय ने उसे ठीक कर दिया। मेरे रिश्तेदार और मित्रों ने हमारे साथ अच्छा ही व्यवहार किया। पुरातन वादियों के मन में ऐसी घटना से अशांति पैदा होना स्वाभाविक भी था। लेकिन मेरा रास्ता कुछ अलग ही था और उनकी मानसिक स्थिति अपनी अलग थी।

सनातनियों का आक्रोश

उड़ुपि के एक पत्रकार ने तो इसी भोके पर अपना सारा विष उगला। उस प्रकार की असहनशीलता का विरोध करने के लिए मुझे उस पर मुकदमा चलाना पड़ा। यह मुकदमा हाई कोर्ट तक गया। तीनों काठों में वह दोषी पाया गया और उसे जर्मनी भुगताना पड़ा। पर उसने जर्मनी न देकर बीर सतातनी के रूप में जेल जाना ही पसंद किया।

तब से लीला लीला बारात बन गयी। उसकी आरम्भिक शिक्षा मराठी में हुई थी। मराठी सीखकर मंगलूर आने के बाद फिर सारा काम कानड में ही करना पड़ा। विवाह के बाद भी उसने एक साल तक पढाई जारी रखी। उसी समय मैं नतन प्रवास पर चला गया। तब मेरी शाला चला रही थी। लेकिन अगले वर्ष ही वह बंद हो गयी। अतः मैं पुत्तूर में ही रहने लगा। हमारे विवाह के एक वर्ष बाद ही उसके पिता गुजर गये। मैं पहले से ही नहीं थी। इस प्रकार और काँरा रास्ता न होने से, उसके लिए पठि ही सबस्व हो गया। हमारे दोष

दाम्पत्य जीवन में कोई नवीनता नहीं है। दूसरों के समान ही हम भी गृहस्थ हैं। कोई ऊँच नीच नहीं मन मुटाव भी नहीं, मित्रता से ही हमने गृहस्थी चलाई। गृहस्थी माने उसके मुख दुख ही तो होते हैं। छोटे माटे बगड़े भी होते ही हैं। हम में कोई लुकाव छिपाव न होने से गहरा स्नेह रहा है। किसी समय मैंने सोचा था कि विवाह से जीवन में एक प्रकार का सौंदर्य आता है। मेरे अनुभव ने उस बात को सत्य पाया। यह भी मैं जानता हूँ कि बच्चों को हम जो स्नेह दते हैं वे उससे ज्यादा आनन्द हमें देते हैं। जीवन में सहनशीलता सिखाने में बच्चा से ज़्यादा कोई गुरु नहीं। मेरे जैसे सदा असहनशील के लिए तो यह पाठ अत्यन्त आवश्यक है। इससे पता नहीं मुझ में कितना सुधार हुआ है। यह बात तो दूसरे ही बता सकते हैं।

कष्ट में

हम दोनों का दाम्पत्य जीवन जब शुरू हुआ तब स्त्री-पुरुष के स्नेह में जितनी नवीनता थी उतनी ही चिन्ताएँ भी थी। साथ ही, उसकी पढाई रिहाइश की समस्या भी थी। पुराना कज़ भी दो कारणों से बढ़ा था। पुस्तक-प्रकाशन से लेकर छापाखाने तक मैं कज़ में डूबा था। इसके अलावा शाला के निर्माण का कज़ भी जुड़ा था। बीच में 'बाल प्रपञ्च' का भी बहुत कज़ था। उसके प्रकाशकों को मेरा कष्ट मालूम नहीं था। उनके कष्ट की ओर से मैं भी अज्ञात बना रहा। जीवन के अति कष्ट के दिनों में ही मुझ पर हमारी इस गृहस्थी का भार भी आ पड़ा।

विवाह के एक वर्ष में ही पत्नी ने आकर घर की जिम्मेदारी सभाली। मेरा भ्रमण तो पहले की तरह ही जारी था। 1937 तक 'बाल प्रपञ्च' के लिए मुझे मंगलूर में ही ज्यादा समय बिताना था। उस अवधि को ही घर में रहना पड़ता। शाला के बढ़ हो जाने से विद्यार्थी भी न रहे। उधर मेरी पत्नी के पिता भी न रहने से उसकी बहिन भी हमारे घर ही आकर रहने लगी। पता पता एक भूत की तरह तंग करने लगा। मायके में मनमौजी से रहनेवाले एक छोटें में जीव को मेरे जीवन के साथ जुड़ जाने के कारण किशोरावस्था की कई स्वाभाविक इच्छाओं को भी दबाना पड़ा। उन सब को मेरे प्रौढ़ मन ने महसूस ही नहीं किया होगा।

इसके अलावा, मैं एकदम उजड़डू हूँ। पहले से ही गम्भीर विचारों में डूबा रहना था। बात करते ही गुस्से में आ जाता था। ऐसे व्यक्ति के साथ जीवन चलाना बड़ा कठिन रहा होगा। यह सब मेरी कल्पना है। मैं यह कह नहीं सकता कि वह भी ऐसा ही सोचती थी। उमने छाटी आयु में मेरी आशा आकांक्षा के मुताबिक अपने को ढाल लिया था।

इसी बीच, हमारे स्नेह को सह न पानेवालो ने हमारे बीच विवाह विच्छेदकी बात भी फलायी। बेचारे! जो होता नहीं यदि वह हो जाय तो, वह बिगड़ गया समझने में लोगो को सतोप होता है। पर तुमरा मन तो आत्मभाव को और गहरा बनाने का निश्चय कर चुका था। इसी से हम कई कठिनाइयाँ को पार करना संभव हुआ।

हमारे ज्येष्ठ पुत्र हय के जन्म के समय बहुत ही कष्ट के दिन थे। तभी अपनी सुविधा के अनुसार घर बनाना शुरू किया था। जो मन में आता है उस बिना आगा पीछा सोच शुरू कर देना मेरा स्वभाव है। बच्च-बच्च की चिन्ता मचुप नहीं बठा रहा। उस शिशु के दूध, दवा आदि के प्रतिदिन के खर्च के लिए अपना कौर काटकर, उसे सुख देने का यत्न किया। आगे, दो ढाई वर्षों के बाद, ज़रा अच्छे दिन आने लगें।

मुझे लगा कि इस सन्तान का भला क्या सुख। पाता नहीं क्या बात थी वह सारा दिन रोया करता था। शायद स्वास्थ्य ठीक न होने से ऐसा करता था। उसमें गोद में लेकर घूमने लगा तो मैंने अनुभव किया कि बच्चे ही इस दुनियाँ की सच्ची सुख सम्पत्ति होते हैं।

बचपन में पूछा गया उसका एक प्रश्न मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। हमारे घर का एक बछड़ा मर गया था। उसे दफनाने की जहूँग वह जानता था। एक बार मैं उसे बहा ले गया तो उसने पूछा, 'पिताजी, मरे मरने पर आप क्या करेंगे?'

वह रोज कुछ प्रश्न पूछा करता था। उनसे मुझे 'बाल प्रपञ्च लिखने में सहायता मिली। पर कई बातें ऐसी भी थीं कि उसे कैसे समझाता पर वह कहता कि उस सब समझ में आता है। आप बताइए तो सही ऐसी बड़ी बड़ी बातें ऐसे ही लड़कें किया करते हैं। आगे, एक वर्ष बाद, हमारे घर में एक बच्चा का जन्म हुआ। उसका नाम मालविका रखा गया।

बेटी का प्रदत्त

एक बार मेरी बेटी मालविका ने बहुत तंग किया तो मैंने उसे डाँट दिया। उसने तुरन्त कहा, 'पिताजी मैं जंगल चली जाऊँगी।' मैंने पूछा, 'क्यों?' वह बोली, 'वही शेर है, वह मुझे खा जाएगा।' मैंने कहा, 'खा जाएगा तो क्या होगा? बट् वाली, 'तब माला न आपकी रहेगी और न माँ की। तब मरी समझ में आया कि बच्चा का मन कितनी आसानी से दौड़ता है।

मैंने दोनों बच्चों को घर में पूरा स्वराज्य मिला हुआ था। सदा घर में ही रहते थे। लड़क ने घर में ही एक-दो साल तक पढाई की। हमारे छापाखाने के कठि जोड़कर पत्र लिखने लगा। उसके सारे बाह्य खेलों के लिए मैंने पूरा

स्वतंत्रता दे रही थी। मेरी इच्छा थी कि शांला की वद से उसके मानसिक विकास में बाधा न पहुँचे। एक दिन (1948 में) उसने शांला जान की इच्छा व्यक्त की तो मैंने उसे शांला में दाखिल करा दिया।

मेरा पुराने जमाने का नाटक का पागलपन, प्राणियों पर का प्रेम हमारे बच्चे को भी जा लगा। मौका मिले तो सभी बच्चों को उसमें माह होता है।

मालविका धीरे धीरे खूब बातूनी होने लगी। कहानी सुनना उसे बड़ा पसंद था। उसके लिए झूठ मूठ की कहानियाँ बुन कर सुनाता था। कई दिनों के बाद पूछने पर भी उन्हीं को बड़ थोड़ा और विस्तार से सुना देती थी। इन शक्तियों का विकास नहीं करना चाहिए?

सेवा में

शुरू में मुझे किसी प्रकार की चिंता नहीं थी। परिश्रम न करने पर भी मैं स्वतंत्र था। पर लिये गये कर्ज कमाने को प्रेरित कर रहे थे। शांला की जिम्मेदारी पहले से ही थी। अब और पाँच छह जीवों के पालन-पोषण का भार पड़ते ही पस की जरूरत और ज्यादा महसूस होने लगी। पसा एक अनिवाय पदार्थ हो गया जीवन के लिए। परावलम्बी व्यक्ति को समाज में सम्मान कहाँ? तब से केवल सेवा के लिए पुस्तकें लिखकर दूसरों के पेट भरने का काम बंद कर दिया। 'यदि आप अपने लिए लाभ चाहते हैं तो लेखक को भी उसका हिस्सा दीजिए' कहकर मैं वास्तविक दुनियाँ में उतर आया। मेरे पुराने प्रकाशन खरीदनेवाले लोगों से प्रशंसा मिलती है पर पैस नहीं मिलते। दस वर्षों में यदि 260 प्रतिभियाँ बिकी हों तो उससे ताँ उसी का खर्च नहीं निकल पाता। इसलिए पाठ्य पुस्तकें लिखकर, दूसरों से प्रकाशित करायीं। 'बाल प्रपंच' से भी मुझे सहायता मिलने लगी। परंतु प्रकाशकों के हाथ में पड़ी रचनाओं का क्या हाल होता है यह चार पाँच लोगों से समझने के बाद, मैं खुद प्रकाशक बन गया। तब मुझे कुछ प्रकाशकों के मुँह से यह सुनने का सौभाग्य मिला यह 'आदर्शवादी' लेखक नहीं रह, पैसे के लिए लिखनेवाले लेखक बन गये हैं। सच तो है उनकी इच्छा यही थी कि मैं उन जैसा रहूँ। क्या करता? इस नास्तिक को सरस्वती की पूजा का महत्त्व भला कैसे समझ में आये?

सन 1938-40 सारी दुनियाँ के लिए, बड़ा कठिन समय था। मुझे अपनी पुस्तकों की आमदनी पर भरोसा करने जीवन चलाना बड़ा कठिन लगा। तब तक साहित्य में अनदेखे की उतनी शक्ति नहीं आयी थी। इसलिए 'कन्नड अथवाश' पर काम करना शुरू किया। लोग पर विश्वास करके उन्हीं के गृहों पर कन्नड के उन सारे प्रदेशों में घूम जाया जहाँ कन्नड भाषा का प्रयोग होता है। उस कन्नड का अर्थ समझ में आया। आर्थिक लाभ भी हुआ। कुछ न बचना शुरू

किया, 'अरे कारत, इसमें भी घुस आय ।" मैंने अपने जीवन में कोई सीमा नहीं रखी । अपने को पण्डित समझने वाले सोये रह ता मैं क्या करता ? मैंने क नड का अथकोश तयार करना शुरू कर दिया । क नड मरी मातुभाया है । मैं उसका शिषु हूँ । मुझ से ज्यादा जाननेवाले अच्छी वृत्तियाँ लिखकर जब तक दश की सेवा न करे तब तक भर जस नाम हकीम राज्य करते रहये ।

बढईगिरी

फिर भी लिखने पर ही भरोसा करके जीने में विश्वास नहीं हुआ । दो वर्ष के साहस से मह बाद करके एक लकड़ी के काम का कारखाना खोला । खेल के सामान फुट, हल आदि तयार करने लगा । नीकरों के साथ लकड़ी चीर-चीरकर थक गया । तब दिमाग में कवल यत्र ही भर ये । एक-दो उपकरण अपनी कल्पना से ही बनवाय । जरा धय हुआ, लगा कि मह काम चला ले जाऊँगा । पर जापान के युद्ध में कूद पडने से, मेरे इजिन के लिए आवश्यक थोडा-बहुत तल मिलना ब द हो गया । कवल बार सविस के लिए अथवा मुझ से पहले जि हाने काम शुरू किया था उ ही की तेल मिलता था । भला मुझे क्या मालूम था कि युद्ध शुरू हो जाएगा ? यदि यह मालूम हाता ता गत शतादी में ही पैदा हाकर अब तक याथा समाप्त कर देना ।

भाग्य की राह में

तब क्या मैं उम युद्ध में सहायक हा जाता ? एक दो सुभाव युद्ध की सामग्री तयार कराने के भी आये । परंतु सन 1942 में परोक्ष रूप से राजद्रोह का प्रेरक मैं स्वत युद्ध में सहायक बस बनता ? तब तो मुझे अपनी पत्नी से युद्ध करना पडता । उसके लिए तेल की जरूरत नहीं थी । सन 1943 तक फिर से अधेरा छा गया । लगायी गयी पूजी और किया गया कब काई भी काम नहीं आया । युद्ध नमाप्ति तक अपना कारखाना ब द रखता तो मेरा हास क्या होता ? इसलिए जरा सही दाम मिलत ही मैंने कारखाना बेच डाला । आगे मेरा ध्यान मेरे पिछे धर्घ से सम्बन्धित छापाखाने की धार गया । युद्ध के कारण मुपत का धन नाबने लगा । लोग पडने लग । पुस्तकें ज्यादा बिकने लगी । सी पृष्ठो की घटिया कागजवाली पुस्तक के डेढ रुपये दाम रखने पर भी लोगो का नोट से कही वह अधिब सस्ती लगने लगी । लगा कि मर जस कुछ लेखक तो उससे अपना जीवन चला सकते हैं । या छापाखाना में काम ज्यादा होने लगा था । मैं पाठक पुस्तको का उपनीवी था । सी पृष्ठो की पुस्तक को लगभग चार आन में बेचना होता था । गाँव के छापाखानो को ज्यादा पसे देकर छपान की अपेक्षा

काम ही छोड़ना बेहतर लगा। या फिर अपना ही छापाखाना खोलना चाहता था। वसा ही किया। तब मैं अण्डरूप से साहित्य सवा करन लगा। लिखकर, छापकर, प्रकाशित करके पढ़न तक मैं स्वतंत्र था। कुछ समय बाद उससे जीवन का संधप जरा हल्का हुआ।

और दो

9405
3-487

दस बारह वर्षों के बाद, हमारे परिवार में और दो बच्चे पैदा हुए। उनमें बड़े का उल्लास और दूसरी का क्षमा नाम रखा। चार बच्चा क परिवार का चलाने की जिम्मेदारी काफी भारी थी। सन 1959 तक तो पुस्तक प्रकाशन से जीविका चलानी थी। केवल उपवास ही बिकते थे। काश को तो स्वयं छापकर प्रकाशित करने पर भी सारी आमदनी पुस्तक प्रकाशन में ही गल गयी। इसलिए कोई और आमदनी का रास्ता ढूँढना पड़ा। प्रेस चलाना भी आसान काम नहीं रहा। लेखन और प्रवास में मरा सारा समय लग जाता था अतः मैं प्रेस में ज्यादा बंध नहीं पाता था। घर और बच्चों की देखभाल ही ज्यादा होने से लीला भी उसे देख नहीं पाती थी। बड़ी अयवस्था रही। अपना समझकर जिस लडके पर वह जिम्मेदारी छोड़ी थी वह मौके से लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करन लगा। लाभ की जगह हानि होने लगी। जाँच करने पर पता चला कि बाहर के कामों का बिल तैयार नहीं होता था। तीन वर्ष की अवधि में कुछ हजार रुपये खोकर अक्ल आयी।

हृष

बड़े लडके ने हाई स्कूल की पढाई पूरी की। उसे उडुपि के कालेज में पढने लिए बड़ी कठिनाई से भेज सका। यह पता चलने पर कि उस कालेज की पढाई पसंद नहीं आयी, उससे घर ही आकर रहने के लिए कहा। सोचा कि जबरदस्ती की पढाई उपयुक्त नहीं। छोटी आयु का होने पर भी कुछ वर्ष तक उसी ने प्रेस सभाला। गाँव में और भी प्रेस खुलने लगे। प्रेस के बाहर की आमदनी जाती रही।

उसी जमाने में बेटे को स्वतंत्र उद्योग करने की इच्छा हुई। तब मुझमें उसके लिए पूँजी जुटाने की शक्ति नहीं थी। उसके उरसाह को भंग नहीं करना चाहिए सोचकर कुछ करके थोड़ी बहुत पूँजी जुटाई। उसके अपने मित्र भी सहायता करनेवाले थे। उसने बिजली के सामान की एक दुकान खोली। वह भी एक कहानी बन गयी। तीन वर्ष तक बेचारे ने दिन रात परिश्रम किया। वह उधार सामान मगाकर बेचा करता था। पर सार सामान का क्या हुआ, पैसे का

क्या हुआ इस तरफ उसका ध्यान नहीं रहा। दुकान की देखभाल करने के लिए एक जान पहचान का मगानुभाव मिले था। उन पर हम सबने विश्वास किया। वसा विश्वास करने पर धोखा ही हाता है—यह ध्यान में आने तक काफी कुछ सफाया हो चुका था।

नुकसान

तीन वर्ष की अवधि में मूल स पंद्रह हजार रुपये का कज सिर पर चढ़ चुका था। बेटा कज उतारने में असमर्थ रहा। अतः जन छोड़ बटा। "अब व्यापार बहुत हो गया" कहकर मैंने उसे अनातवास पर भेज दिया। मेरे लिए विज्ञान प्रपच का भार बहुत हो गया था। अकेले उसी का लगभग पच्चीस हजार का कज हो गया था। अब बेटे का भी पंद्रह हजार का कज सिर पर आ गया। इतनी मुसीबत ही पर्याप्त नहीं थी, पत्नी का स्वास्थ्य भी खराब होन लगा। प्रेस के सात-आठ नौकर मर विरोधी हो गये। जैसी स्थिति थी उसी में कोई न कोई हल ढढना था। तब प्रेस के कुछ यण बेचकर कुछ भार उतारा। एक मित्र ने उस समय मुझे बड़ा धय बधाय। उसी समय मेरा यक्षगान बयलाट' पुरस्कृत हुआ। बम्बई के मित्र ने एक निधि प्रदान की। उस सबसे बेटे का कज उतारने में काफी सहायता मिली।

मेरा मन जब कुछ शांत हुआ तब मैंने बेटे का हिसाब किताब जरा उलट पलटकर देखा। अब तक बड़े बेटे हप के अविकक पर दुखी हुआ था, गुस्ता भी किया था। उसके बही खाते में उसका विश्वस्त मनेजर के हाथ की करामात स्पष्ट दिखाई दी। मन थोड़ा हलका हुआ। समझ में आया कि विश्वास करने वाला कौ धोखा देने पर ही कुछ लोगो को मुख मिलता है। लडका बड़ा दुखी रहता था। उसे जरा शांति मिले सोचकर बम्बई में अपने एक मित्र के पास भेज दिया। मैंने साचा था कि उनके साथ रहकर कुछ लोक व्यवहार सीखेगा, बाद में गाँव में ही आकर अपनी इच्छा का कोई स्वतंत्र धंधा कर लेगा। वहाँ उसने अपने मालिक का विश्वास प्राप्त किया यह जानकर मुझे बरा सतोप हुआ।

अब तक मुझ पर विज्ञान प्रपच का कज था। साथ ही, उमक कज का भार भी था। पढने और लिखन का काम भी था। इतना काम था कि चिन्ता की झूलना ही पडा। पत्नी का स्वास्थ्य कुछ सुधरन लगा था यही एक तसल्ली का घात थी।

बेटे का भविष्य

मैं एक बार दिल्ली गया। जब लौटत हुए बम्बई गया तब मेरा बेटा मुझे

कपड़े बदले । वे सब उसके सामने पश्चित म खड़ी होकर रो रही थी । उसे देखकर विचार आया— बचारी व क्यो उस बच्चे क लिए आँसू बहा रही है ?

प्रकृति ने हम जो दिया था वह प्रकृति वापस ले गयी । अब रह गया था बेटे का बदल पायिव शरीर । मिथो न उम श्मशान ले जाने की तयारी की । एक मित्र न मेरे हाथ मे एक माला दी । वह मैंने उसके गले म डाल दी । मेरे दोना हाथो ने अपने आप जुडकर उसको नमस्कार किया । तब उमका बचपन मे पूछा प्रश्न याद हा आया । वह प्रश्न था 'पिताजी मैं मर जाऊ तो आप क्या करगे ?'

एक वय पहले उम बच्चे क व्यवहार शू य काम को देखकर, उस पर गुस्ता किया था । तीखी बातो से उसे दुखाया था । अगले वय उसका वनवास देखकर दुखी भा हुआ था । अत म उसके असीम धय, उदार स्नह को दखकर आनन्दित भी हुआ था । बचपन म वह सदा रोया करता था । मैं उसे छाती से लगाकर घूमा करता था । उसी याद को लेकर अत मे मैं श्मशान-यात्रा मे गया । जब सब यादें एक साथ आती है तो जीवन का विस्तार, वविश्य, माया, सौ दय एक एक करक याद आते हैं । पुरूप होकर मैं यह सब कह रहा हूँ, ज म देनेवाली माँ के दिल का क्या कह उमे शान्ति कहाँ ?

बाकी लोग

चार थे, तीन ही रह गये । इस पुस्तक के प्रथम सस्करण के समय, बेवल दा ही पे न ? वाट मे मेरी बेटी मालविका ने कॉलेज की पढाई पूरी की । आगे पता नहीं क्या उस मनोविज्ञान पसद आया । उसी म एम ए करके आग दो वय तक और अधपयन करती रही । बाद म वह अपने पाँव पर आप खड़ी होने लागव हो गयी ।

इस अध्याय की जोडन समय बेटे उल्लास न हाई स्कूल की पढाई खतम कर ली है । डेट वय बाद उसके बाद वाली क्षमा मट्रिक कर लेगे । इस प्रकार बच्चो के बडे होने का दश्य बढो के लिए सदा सतोपप्रद होता है । पर वे बड होने क साथ बडा से विपन कर नही रहये, अपने अपने राज्य के सपने देखने लगये । देखना ही चाहिए । तब बडा से दूर होना ही पडता है ।

तब बच्चो के बिना घर एकदम वीरान लगन लगता है । बचपन के असम्बद्ध प्रलाप स मन का जो सतोप मिलता है उनके प्रबुद्ध होने पर उनका तक, उनकी विद्वता माता पिता की उतना सुख नही दे पाते । उसका आक्षपण कुछ और ही होता है और इसका कुछ और ।

याद आने पर

उडुपि में

सन् 1962 के वर्षाकाल में मैंने उडुपि में दो मास बिताये। तब मैं यक्षगान नृत्य का एक प्रशिक्षण चला रहा था। अठ्ठाश लोग उसी तरफ के थे। उनकी सुविधा की दृष्टि से ही मैंने वहाँ यह उद्यम किया था। मित्र कुंशि हरिदास का घर ही मेरा मुकाम था। उस दम्पती के व्यवहार ने मुझे उनके घर को अपना घर समझने में मजबूर कर दिया था। मैं अपने काय में लगा था कि परोक्ष रूप से पता चला कि मेरे मित्र हरिदास भट्ट कुछ हिक्मत कर रहे हैं। वे भरी साठवीं वषगाठ का आयोजन कर रहे थे। उसी सिलसिले में उडुपि के मेरे कई मित्र बड़े उत्साह में इस काम में जुटे हुए थे। एक बार रोगटे खड़े हो गये। वास्तव में मुझे ऐसी औपचारिकताओं से तृप्ति नहीं होती। उस बहाने मैं अपने को अमर बनाना नहीं चाहता था। मेरे प्रति प्रेम और विश्वास के कारण वे वह आयोजन करने जा रहे थे। उनका उत्साह भग्न करने का भी मेरा मन नहीं हुआ। स्नेह और प्रेम के आगे भला मेरी क्या बिसात! इस प्रकार उहाने यह याद दिला ही दी कि मैं साठ वष का हो रहा हूँ। इधर इस आशय के पत्रिकाओं में लेख भी छपने लगे। दूसरे भी ऐसे समारोह मनाने का उत्साह दिखाने लगे। धारवाड़ के विद्यार्थ्य क हाई स्कूल वाला ने उडुपि से भी पहले यह आयोजन कर डाला। मुझे एक विद्यार्थी-सम्मेलन में बुलाकर उसी के साथ वह उमर भी मना लिया।

10 अक्टूबर 1902

मुझे याद है कि मेरा जन्म 1902 में दस अक्टूबर को हुआ था। गत साठ साल में पता नहीं क्या-क्या हो गया है। मुझे अपने जन्म दिन को याद करने का उत्साह ही नहीं है। साहित्यकार होकर सबसे भ्रमण करने लगा, आमतौर पर अपने जन्म दिन पर गाँव में ही नहीं रहता था। कुछ वष पूर्व मैं सतारा गया था। वहाँ एक मित्र ने मेरे लिए वहाँ के कुछ गहस्यों को बुलाकर चायपान का आयोजन

किया था। तब मेरे साथ के एक मित्र मुझसे या ही पूछ बैठे, "आपकी क्या उमर है?" उह बताते समय याद आया कि मरा ज म दस अक्टूबर को पढता है। हूँसते हुए बोला 'आज तो यह मरा ज म दिन ही मना रह हैं आप।'

इस प्रकार अनजान ही य साठ वष नदी के जल व समान वह गया। साठ काई ज्यादा नहीं। मेरे ऊपर विश्वास और अभिमान रखनेवाला को वह बहुत लगे होंगे। उडुपिवालो ने वह दिन बड़ी खुशी से मनाया। हरिदास भट्ट और उनका मित्रवग—पै व धु, डा० ऐताल सब मेरे पुराने परिचित हैं। उस दिन उनके द्वारा की गयी प्रशंसा सुनते हुए मैं बहरा ही बना रहा। मैं इतना ही कह सकता था 'मैं आप सबके विश्वास के लिए बहुत ऋणी हूँ।'

उडुपि के उदाहरण का कर्नाटक के कई नगरों न दोहराया। मैं सारा साल सम्मान बटोरता शिवमोगा, अकोले कारवार मैसूर, भद्रावती आदि स्थानों में जाकर उनके ऋण के भार से और अधिक दबकर लौगा। कई पत्रिकाओं ने, एक लेखक का जा सम्मान दिया जाना चाहिए, उमस भी ज्यादा सम्मान व्यक्त किया।

ऐस लोगा म मेरे घनिष्ट मित्र, साधारण परिचित बाल्य मित्र, सभी हैं। कुछ लोगा न घर म भोजन के लिए बुलाकर, आसन पर बिठाकर मुझे भेंटें भी दी। तब मुझे यह स हैह हुए बिना न रहा कि वाकई म मैं उनके प्रेम और प्रीति का भाजन रहा हूँ।

एक ही याद

लेखक प्रकाशन सुविधाओं के अनुग्रह से हजारों लोगा के सामने आता है। जो उसे प्रत्यक्ष नहीं देख सकत उनको भी वह मोहित कर सकता है। मेरे लेख और रचनाएँ आमतौर पर मनोरंजक नहीं होती। मेरी रचनाओं म मिठास से ज्यादा खटास रहती है। कुछ लागा के दृष्टिकोण म मैं वास्तविक समाज से बहुत दूर हूँ। परम्परावादियों को दृष्टि में एक 'नास्तिक' हूँ पर वे ही लोगा मेरी साठवीं वषगाठ मनाने के बहाने मेरा सम्मान करने लगे तो मैं समझता हूँ कि उनकी उदारता महान् है।

भविष्य के गणपति भट्ट मेरे पुराने मित्रों में से एक हैं। उनके पास मैं एक बार गया था पर उनका स्वभाव कुछ ऐसा है कि मुझे बार बार उनके पास जाने की इच्छा होती है। जब मैं एक लम्बे दौरे पर था, मुझे पता चला कि व हमारे घर आये थे। तब मैं यलगाण के प्रदर्शन के लिए मागर गया था। वहाँ से मुझे चार दिन का अवकाश मिला था। मुझे फिर से सागर जाना था। हेगडेजी धारवाड या मेल देखन आय हुए थे। उन्होंने पूछा, 'हमारे यहाँ नहीं चलना?' मैंने कहा, 'आपने अपने गाव पहुँचन से पहले दीवाली पर मैं आपके यहाँ पहुँच

जाऊगा। दूसरे दिन घनघार वर्षा रही। मैं उनके गांव गया। वे मुझ से पहले गांव पहुँच गये थे। उनके यहाँ त्योहार था। दूसरे दिन भी वर्षा न घर लिया। उस दिन घनलक्ष्मी की पूजा थी। मुझे लगा कि वे उस दिन एक साहित्यकार की पूजा करने का निश्चय कर चुके थे।

मचिकेरी में सभा हुई। वह मेरे सम्मान के लिए आयाजित की गई थी। सक्डा जन घर से त्याहार छोड़कर, वषा में पदल चलकर गाडी में बैठकर वर्षा में भीषकर आय थ। वडी सी एक छत पर लोग इक्ठठे हुए थे। मुझे भी उसी ऊचे स्थान पर चढाया गया। नौ सौ रुपये की दक्षिणा मिली। जम में वह सेवा याद करता हूँ तो सोचता हूँ कि उस अरण्य मध्य में निवास करनेवाले उा मेरे मलनाड के बंधुआ का प्रिय साहित्यकार कैसा मृग नहीं होगा। वहाँ यह मेरा दूसरा सम्मान था। जब भी उनके असौम गौरव दान को याद करता हूँ तो ऐसा लगता है कि उनकी कल्पना के फार त का चित्र मेरा नहीं रहा होगा।

और दो मधुर स्मृतियों का उल्लेख करना गलत न होगा। एक सागर का मम्मान था दूसरा भद्रावती का। मुझे लगा था जैसे सागरवालो ने अपने शहर के सारे सुगन्धित चन्दन के हार मुझ अकेले का दे दिये। साठ साल पूरे करने के अवसर पर साठ हार पहनाये गये। चन्दन के हारा सेपता नहीं मैं कितना सुगन्धित हो उठा था।

भद्रावती के मित्र ता उनसे भी बाजी ले गये। उन्होंने तो गाड़ियों में फूलों के हार लाकर उनसे मुझे लाद दिया और खुशबू से नहला डाला।

ऐसे लोगों की प्रशंसा और स्तुति में मैं क्या कहता? मैं क्या उत्तर दे पाता? "मैं आपका ऋणी हूँ, ऋणी हूँ, ऋणी हूँ" बस इतना ही कह पाया।

शिवमोगा के लोग न उदारता से निधि देकर सम्मानित करत समय मेरे काम को बड़ा हलका कर दिया। मैं सोच में पडा था कि क्या कहूँ। उ होने मेरी जीवन दृष्टि जाननी चाही। मुझे भूल गये थे। उन्होंने समस्त जीवन के बारे में विचार करने का अवसर दिया। जीवन के प्रवाह में मैं एक बूद के अलावा और हूँ क्या?

वडो का आशीर्वाद

मेरे इक्सठवें जन्म दिन पर जब इतने वायत्रम चल रहे थे तब मेरा चुपचाप बठे रहना उचित था? अपन आपका बडा समझने में किंचित मात्र भी आक्षेपण नहीं हाता है। क्या मैं भी असम्य जनता का ऋणी नहीं हूँ? बुजुर्गों, पूवजा और दूसरों का दिया ज्ञान सरोवर न होता तो मेरी भूख, मेरी तप्या कभी तप्त हो पाती?

इसी कारण आठ दम बप पहले, जब मुझे साहित्य परिषद का अध्यक्ष चुना गया था, वहाँ जाने से पूर्व तीन बुजुर्गों को पत्र लिखकर उनके आशीर्वाद मागे गये। इस साठ का मधिम पत्र लिखना उचित नहीं लगा। चार दिन पहले मजेश्वर जाकर श्री गोविंद पैं के दशन करके उन्हें नमस्कार किया था। उनकी प्रीति, उनका विश्वास मेरे लिए सदा स्मरणीय है। उस दिन भी उन्होंने मुक्त कण्ठ से आशीर्वाद दिया। पर मैं यह नहीं समझा कि वह मेरी और उनकी अंतिम भेंट होगी। प्रत्येक को अपना समय आने पर जाना ही पड़ता है। वह घटना इस चिर सत्य की एक साक्षी थी।

बम्बई

यह कहूँ तो गलत न होगा कि बम्बई मेरे लिए कानड जाननेवालों तक ही सीमित थी। यह बात नहीं कि दूसरी भाषा वालों से परिचय नहीं था। पर वहाँ का कानडभाषियों का प्रेम स्मरणीय है। अतः व मेरे लिए बड़े प्रिय है। जब मैं पहली बार यूरोप गया तब उन्होंने सम्मान सहित विदा दी। मेरे लौटने पर स्वागत किया। जब मुझे केन्द्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला तब भी एक निधि देकर सम्मानित किया। उन्होंने ही फिर इक्कठवीं वषगाँठ मनाकर पुनः सम्मानित किया। इस बार भी उन्होंने एक निधि प्रदान की।

इस प्रकार दस लोगों से दक्षिणा पाने वाला कण्ठ ज्यादा होता है। साठ पूरा हो जाने पर इस सबको पेशन समझूँ? लोग यह आदर हमारे काम के लिए लिखात हैं क्योंकि वे समझत हैं कि हमारा काम उनका ही है। उन कामों का कोई अन्त नहीं होता है। जीवन पवाह का जब तक अन्त नहीं आ जाता तब तक करने के लिए काम करना ही हाना है। इसलिए उनका मनहूँ इम बूढ़े शरीर में शक्ति भरन का एक प्रयास ही मानना चाहिए।

विश्वविद्यालय

एक दिन बैंगलूर के एक मित्र के घर में समाचार पत्र से पता चला कि कर्नाटक विश्वविद्यालय ने मुझे और अन्य दो महानुभावों को मानद डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान करने का निश्चय किया है। अन्य ये श्री सी जी देशमुख, एन आर गायत्रील जा भारत भर में प्रसिद्ध थे। मैं कर्नाटक का था। उस समाचार ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया। जागे उही से पत्र आन पर मैं अपनी कुतन्ता व्यक्त की। इस प्रकार डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान करना एक परिपाटी तो है, पर मैंने इस बात की कल्पना नहीं की थी इसीलिए आश्चर्य हुआ। उसका मुख्य कारण यह था कि मैं विश्वविद्यालय का एक सामान्य उपाधिधारी भी नहीं था।

उमी वप (1963 में) प्रशस्ति स्वीकार करने के लिए मुझे बम्बई से वहा जाना पड गया। उन प्रशस्ति समारोह में उस दिन उस वप क सकडो स्नानक और अय अनगिनत प्रेक्षक एकत्रित थे। उस दिन की सभा घमघाम स सम्पन्न हुइ। तब के कुलपति श्री पावटे ने ही मेरे विनान प्रपच' की पहली बार के द्र सरकार को सिफारिश की। मेरे बारे में उहान जो विश्वास दिखाया उसका म बडा कृतज्ञ हूँ। उस दिन तो हम तीनों अतिथियो को डिग्री प्रदान करने के बाद कई दिनों से गुस्मे में बैठा देवराज इन्द्र एक घण्टे तक लगातार बरसता रहा।

उस दिन हमारे बाद के जिन सैकडो स्नातका ने डिग्री को परिश्रम से ही प्राप्त किया था, वे बेचारे वर्षा में भीगते रहे। मलेनाड के एक साहित्यकार को बुलाकर सत्कार करने से ही उस दिन ऐसी वर्षा हुई होगी। बिना कुछ कहे हमें वह डिग्री लेनी पडी। हमारे बारे में विश्वविद्यालय वालो ने बडी उदारता से कुछ बातें कही। जिह लेकर बाद में पत्रिकाओ में बडी टीका टिप्पणी हुई। लेकिन उनकी बातों में भले ही कोई दोष रहा हो पर हमारे सम्मान को चोट करनेवाली कोई बात नहीं थी। अगर उसे याद करू तो मुझे राज ही हानेवाली एक चीज याद आती है। किसी विशिष्ट मित्र के घर आन पर हम प्राय कहा करते हैं 'आपकी मेहरबानी है कि आप पधारें।' इसका यह अर्थ भी लिया जा सकता है कि 'कृपा करके चले जाइय।'

सम्मान के बाद

यह सम्मान लेने के बाद मैं जल्दी से बम्बई पहुँचा। उसी दिन होनेवाले यक्षगान में मेरी उपस्थिति अनिवाय थी। उसी मौके की ताक में बैठे मेरे मित्र श्री व्यासराय बल्लाल न सभा को सम्बोधित करत समय डा कारत कहा तो मुझे चारो ओर देखना पडा कि 'वह कहाँ है'। इस उपाधि के मिलने से मैंने सोचा कि यह एक नयी मुसीबत शुरू हो गयी।

उसी वप मसूर विश्वविद्यालय न भी अपने हिस्स का गौरव यानी एक ओर डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की। तब भी मुझे बम्बई से वहा भागना पडा था। उस समय भी बम्बई में यक्षगान नृत्य के बदले जीवन एक दारुण नाटक ही हो रहा था। मेरी पत्नी पर जो विपत्ति टूट पडी थी उसने कारण मैं वहाँ था। उसके वेंसरप्रस्त गभकोष की उही दिनों शल्य चिकित्सा हुई थी। उसे टाटा अस्पताल में ही छोडकर उसकी चिकित्सा करनेवाले डा बोरनी में जब अनुमति माँगने गया तब मैं अपने को चोर महसूस कर रहा था। उहाने तो उदारतापूर्वक 'आप हो आइय, हम यहाँ हैं। आपका किसी घात की चिंता करने की जरूरत नहीं' कह दिया। मैं भी जल्दी से निकल पटा।

इस प्रकार कर्नाटक के दोना विश्वविद्यालयों ने मेरे काम को देखकर जो

संतोष प्रकृत किया उस में उनकी उदारता ही मानता हूँ। इस दूसरे अवसर पर श्री पावटजा भी उस दिन व समारोह में मेरे साथ सम्मानित उपाधि लेनवाले थे। तब सरदार पणिकर कुलपति थे। उस समय की एक दुखद घटना मैं बताय बिना नहीं रह सकता। प्रशस्ति प्रदान करते समय या बाद में श्री पणिकर का स्वयं आमंत्रित किये गये मुझ जैसे व्यक्ति से बात करन की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। इस याद से एक और घटना याद आ गयी। राजा हाथीसिंह की 'चीन यात्रा पुस्तक का अनुवाद करत समय एक विषय भर ध्यान में आया था। हाथी सिंह जब चीन गये तब सरदार पणिकर चीन में भारत के राजदूत थे। नेहरू जी और राजा हाथीसिंह जी का साल थे ही। दूसरे राजनीतिक दल से सम्बन्धित होने के कारण पणिकर ने उनके साथ बड़ा अनुदार व्यवहार किया था—यह बात मैं नहीं पड़ी थी। मैं व्यक्तिगत अनादर की स्मृति लाद कर बम्बई जान के लिए मगलूर पहुँचा। तभी वहाँ की एक पत्रिका में श्री पणिकर के निधन का समाचार पड़ा। तब मन को बड़ा बुरा लगा। यह सच था कि उनकी काफी आयु हो चली थी। पर हातात उनका इस प्रकार चले जाने की बात पर विश्वास कर पाना भी कठिन था।

प्रशंसा

साठ वर्ष के अपने छोटे से जीवन में मैंने जीवन के बहुत से उतार चढ़ाव देखे थे। उनका खूब अनुभव किया था। कर्नाटक की जनता ने मर प्रति जो आदर और मान दिखाया उसका कारण मुझे गव करने की कोई बात नहीं थी। सब में यह इच्छा रहती है कि लोग हम परस करें। हमारा काम दूसरों को परस आया यह इच्छा होना बड़ा स्वाभाविक है। हम साहित्यकारों का लिखना भी इसी उद्देश्य से होता है कि दूसरों को कुछ समझा सके। पर उनकी भी हमारी तरह स्वविचार शक्ति विकसित करनी चाहिए और समीक्षात्मक दृष्टि से विषयों को स्वीकार करना चाहिए। हम यह भी समझना चाहिए कि उनका मन हमारी ही तरह का होना आवश्यक नहीं।

यह तो हुई पाठक की बात। अब प्रश्न यह है कि कुछ शहरों में जहाँ मेरा सम्मान किया गया वहाँ हजारों लोग एकत्रित हुए। मुझे मालाएँ पहनायी गयीं प्रशंसा की गयी। क्या उन सबके मेरी पुस्तकें पढ़ी थीं और उन्हें परस आयी थी? यदि ऐसा हा तो मेरे जसा लेखक स्वयं में उड सकता है। पर वास्तव में वहाँ एकत्रित लोग में सौ में से दस में भी मेरी किताबें छुई हानी तो मैं अपने को भाग्यशाली मानता। चन्द लोगों ने ही उन्हें पत्रों पर परस किया होगा। उनकी प्रशंसा सुनकर शायद जनता ने भी—यह एक महान् व्यक्ति है समयकर उस उतार में भाग लिया होगा।

कनाटक म सहृदय पाठको की सख्या किननी हागी यह पुस्तको की बिक्री से पता चल जाता है । पहले हजार प्रतिपा के बिकन मे दस वप लग जाते थे । अब भी उनके लिए कम से-कम तीन साल तो चाहिए ही । यदि वह दुबारा प्रकाशित हो जाये तो उसे बिकने मे तो पूरे दस साल चाहिए । हमारे लेखका म ऐसे कितने लोग है जो दूसरा संस्करण छपवान का साहस करते हैं ? यह ठीक है कि पहले मे अब परिस्थिति मे सुधार आया है ।

साधारण जनता उपन्यास और कहानियाँ ही पसंद करती है । यदि उन्हें अच्छे निबंध अथवा बौद्धिक स्तर की कुछ अन्य पुस्तकें दी जाएँ तो चार पाँच प्रतिशत पाठक आगे आ ही सकते हैं ।

इसलिए यदि लोग प्रशंसा करके सम्मान प्रकट करते हैं तो लेखक को अपन को बहुत ऊँचा समझने की जरूरत नहीं । वह जमाना अभी बहुत दूर है । कनाटक म कितने लोग अपनी लेखनी द्वारा अपनी जीविका चला रहे हैं ? पाठ्यक्रम की पुस्तकें लिखनेवालों को तो वह सुविधा है । वह क्षेत्र ही दूसरा है । पर तु इस के लिए हम किसी को दोष देने स लाभ नहीं । देश की मंद गति ही उसका कारण है । बौद्धिक क्षेत्र म परिश्रम करने वाले केवल लेखक ही अपने लोग स बहुत आगे जा सकते हैं । उनका मन कई ओर चल सकता है चलना भी चाहिए । पर तु उनकी लेखनी के आकर्षण स सारी जनता उनके पीछे चली आयेगी यह सोचना गलत है ।

बीस वर्ष बाद

आगे की कहानी

मैंने अपनी यह आत्मकथा अपनी पठिपूति तक लिखकर बाद कर दी थी। आगे उस ओर मेरा ध्यान नहीं था। इसका अतिरिक्त काल अनुमानित रूप से घटनाओं की ओर ध्यान न देकर अपने जीवन में जिन विषयों पर विशेष अभिरुचि थी उन्हीं को स्मरण कर मैंने स्मृतिपटल शीपक से तीन खण्डों में एक पुस्तक लिखी थी। इसका जय यह नहीं कि इस अवधि में मेरी अभिरुचियाँ, विविध विषयों के सम्बन्ध में जानने की चपलता और क्रियाकलाप समाप्त होत गये। वास्तव में एक-एक विषय पर मैंने जो काम किया उससे लोगो को लाभ होगा यह सोचकर ही मैंने 'स्मृतिपटल' के तीनों खण्ड लिखे थे। इसलिए फिर से उस ही आत्मकथा के रूप में लिखूँ तो पुनरावृत्ति होगी, साचकर मैं चुप रहा। लेकिन बाद में पता चला कि कुछ मित्रों को तो आत्मकथा में ही अभिरुचि है। अतः उन्हीं के आग्रह पर कार्यक्रम से आगे के दो दशकों की कहानी लिखकर जोड़ रहा हूँ। उमर बीसते बीसती जीवन की यादें न चाहत हुए भी मिटती चली जाती है। जीवन में आकषण उत्पन्न करनेवाली कुछ ही घटनाओं की यादें जीवन के साथ चिपककर ही रह जाती हैं। जत एत विषयों पर लिखना संभव होगा सोचकर आगे के जीवन के अनुभवों को भी इस संस्करण में जोड़ रहा हूँ।

आगे का जीवन

जसा कि मैंने अभी कहा यह लगभग दो दशकों की कहानी है। इस अवधि में मेरी दृष्टिक्रियाएँ घटने पर भी जीवन को जानने की कोशिश, उपयुक्त जीवन निर्वाह के दृष्टिक्रियाएँ और मानसिक क्रियाकलाप निष्क्रिय नहीं हुए। फिर भी कई घटनाओं के बारे में लिखते समय छोड़ा आगे पीछे होना संभव है। इस अवधि में मेरे क्रियाकलाप बसा प्रपंच तक ही सीमित रहे। पहले से चली आ रही यम गान की भावना तो एक थी ही। दूसरी है चित्र और शिल्पकला, जो मानसिक अभिरुचि का कारण है। यह जानते हुए भी कि उसमें प्रवेश करने के लिए

अपेक्षित योग्यता मुझमें नहीं है, जो कुछ जानता था उससे अधिक जानने का प्रयास किया। यशगान के प्रति मेरी आसक्ति उसके सजन से सम्बन्धित है। दूसरी बलाभाब व बारे में ऐसा नहीं। लेकिन इन दोनों आसक्तियों ने बला सृष्टि और उनका बारे में गान संग्रह के प्रयाजन से मुझे देश विदेश घूमन को प्रेरित किया।

यशगान

यह आरम्भ से ही मेरा प्रिय विषय रहा है। गान माध्यम से भावाभिव्यक्ति की इच्छा कभी कम नहीं हुई। बहुत पहले कुच्छेक गेय नाटका में हिन्दुस्तानी और लोक गीतों की शैली का प्रयोग कर अपने मन की तरंगों को अभिव्यक्ति दी थी। इस विषय में मुझे प्रेरणा देनेवाले डा० अर्नाल्ड बाके के इंग्लैण्ड में निधन हो जाने के बाद भी वह आकांक्षा कम नहीं हुई। उही के समान लोक गीतों का संग्रह करने की इच्छा मैंने आज भी सजी रखी है।

रागों का आवेपण

मैंने रागों का संग्रह करनेवाले व्यक्तियों को देखा है। सन 1958 के लगभग मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि यशगान में सबको राग हैं। क्या उन सबका परिचय हमारे भागवतरो को है? ब्रह्मावर में मैं एक यशगान की गोष्ठी का आयोजन किया था। तब पाँच छह विस्मय हो चले रागों को पहचान पाना संभव हुआ। जलाहरण के लिए पचासति, डवलार, तुण्डह्लावतु मचाली आदि रागों ने मेरा ध्यान खींचा। मरी पठ्ठीपूति के समय कर्नाटक के विविध नगरों ने मेरे सम्मान में धन के रूप में जा भेंटें दीं उससे इसके अनुसन्धान की सुविधा हुई। सन 1962 के बाद मैंने उसी के लिए फिलिप्स टेप रिकार्डर खरीदा। मैंने ध्वनिमुद्रण (Recording) में निष्णात बैंगलूर के अपने मित्र श्री केशवमूर्ति और श्री राममूर्ति की सहायता ली। उस काम के लिए मुख्य रूप से भागवतरो की ही आवश्यकता थी। उन्हें आमंत्रित करके उद्युपि में एक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया। मित्र श्री हरिदान भट्ट के घर के पिछवाड़ेवाले सोमठ के भवन में तीन चार दिन दो-दो बार बैठक करके काम किया। उस समय भागवतरो शेष गिरि किणी जीवित थे। उन्हें अप्पार वृष्ण वय और श्रीनिवास नायकर जा गा नहीं पाते थे, नारणप्पा उप्पूर, राम गणेश और रामचन्द्र नाउड—सबको बिठाकर उन्हें पाते सारे गीत रिकार्ड कराये। यह काम कराने के समय कर्नाटक संगीत के विद्वान श्री श्रीनिवास उद्युप का साथ ही रखा था। उनकी सहायता से सैकड़ों गीतों को न केवल रिकार्ड किया अपितु राग और ताल के नाम भागवतरो से पूछकर लिख लिये गये। बाद में

एक और विद्वान मित्र की सहायता ली। व ये बगलूर आकशवाणी के श्री ए० वी० वृष्णमाचाय। उन सभी गीता को सुनकर, भागवतरा ने भले ही उनका नाम कुछ भी बताया हा, उहाा खुद सबका नाम ठीक स निश्चित किया। इसस यह लाभ हुआ कि नाम भूल जाने पर भी भागवतरा को कण्ठस्थ गीता के नाम पहचानने में सुविधा हो गयी। राग व दावनी, व दावनी सारग हो गया था। राग कानड हि दुस्तानी हम्मीर राग बन गया था। द्विजानती हि दुस्तानी का जय जयवती राग था। राग 'गुजरी हि दुस्तानी की गुजरी तोड़ी' था। राग 'कोरवी के बारे में थोड़ा बहुत वाद विवाद रहा। वह कर्नाटक का 'कुर्जी राग' था। और भी नाम इस सूची में जोड़े जा सकते हैं।

वात में सात आठ वर्ष उपरांत, एसी ही एक और गोष्ठी की। तब जिले के दक्षिण भाग के भागवतर जोइसो की बुलाया था। वधती मेला क घोटपडे को भी बुलाया था। उस बार को गोष्ठी में राग कोरे का परिचय मिला। यशगान में कोरे ताल भी है और कोर राग भी है। कोरे राग हि दुस्तानी राग माड के समान ही है। इसके अतिरिक्त यशगान का मधुमाधवी हि दुस्तानी संगीत में मधुमाधव सारग है। यह बात हि दुस्तानी संगीत के जानकार कुंदापुर क संगीतकार भिन वासुदेव ने बताया।

विशुद्ध रागों के रिकार्ड

इन सब प्रयत्नों का एक फल निकला। हमारे भागवतरों को कुछ राग कण्ठस्थ थे जिनके नामों का पता न था उनको सही ढंग से गवाकर उनमें से चौंसठ रागों की रिकार्डिंग की। मेरा विचार था कि हमारे यहाँ लोगो में यदि यशगान के संगीत के प्रति लगन है तो हमारा यह प्रयास एक स्मायी काय सिद्ध होगा। पर यह मैं नहीं जानता कि कितने लोगो ने उससे लाभ उठाया। यशगान के व्यवसाय में निरत एक दो व्यक्तिगो ने ही उन टेपों की प्रतिमाँ ली। हमारी गाष्ठी में सहायक भागवतर श्री नारणप्पा उप्पूर ने अवश्य ही घाडा थम करके रागों का अभ्यास करने में अपनी तत्परता दिखायी।

वम्बई के मित्रों की प्रेरणा

यह मालूम ही था कि मेरे इस काय को यदि सफलता देना है उस बचाना, उसका संरक्षण तथा विकास करना है तो वह यशगान को व्यवसाय मानलवाले ही कर सकते हैं। उसक लिए मित्रों से आवश्यक आर्थिक सहायता पाने के लिए मैं उन टेपों को लाकर सन 1961 में वम्बई भागा गया। वहाँ यशगान में अभिरुचि रखने वाले चित्रकार हैब्यार, हमारे हर काय में सहायता

देने वाले यास बल्लाल गणेशभट्ट और उत्साह में इन सब से बड़े चढ़े मूढ़बिंदरे सजीवराय और उनके मित्र अमीन थे। उन सभी को एक जगह आमंत्रित करके मैंने अब तक की दोनों गोष्ठियों में रिकार्ड किये गए राग सुनाये।

तब श्री हैमदार तथा श्री सजीवराय ने यह कहकर मुझे भरोसा दिलाया, "आप इनसे जो भी आगे काय करना चाहें कीजिए, पसो की चिन्ता करने की जरूरत नहीं।"

यक्षगान नृत्य नाटक

मैं जानता हूँ कि वाकप्रिय लोगों को यह बात पसंद नहीं आयेगी। मेरा सारा ध्यान, एक कला माध्यम अपनी सारी शक्ति से क्या क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता इसी ओर था। राग के चमत्कार और ताल के विविध का केवल प्रदर्शन कला का गुण नहीं। किसी भी कला के माध्यम का आदर्श नहीं है वह। इसलिए मैंने अपने मित्रों के सामने अपन मन की बात विस्तार से रखी। उसका सार यह है—

केवल गीतों की पद्धति राग और ताला के वाद्यों द्वारा एक प्राचीन क्या दो घण्टा की अवधि में नृत्य के साथ प्रदर्शित करना मेरा उद्देश्य रहा है। गीत और नृत्य का सम्बन्ध होना चाहिए। गीत का य और उसमें भी सम्बन्ध होना चाहिए। गीत का य द्वारा जो काय होता है वह नृत्य और अभिनय से पूरा किया जाना चाहिए। हम राग का जितना सम्भव हो सके उतना प्रयोग करना चाहिए। केवल स्वर में गाकर नाटक समाप्त करने की जो पद्धति है उसे मैं सप्तक में दिखाने के बदले उस भाग को बलेरनेट अथवा सेक्सोफोन वाद्य से पूरा करना चाहिए। सवाद और युद्ध के दृश्य भागवत में अपने गले से पूरा कर। भागवत संगीत से विरति चाहती गीत के भाग को केवल गला पूरा नहीं कर सकता अतः उसमें साथ वायलिन वादन मिलाना चाहिए।

रगस्थल को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए हमें युद्ध और दरबारा की शोभा तक सीमित रंग सञ्चालन का जहाँ तक हो सके, विस्तार करना चाहिए। ये सब बातें मैंने उन लोगों के सामने रखी।

उन सबने मुक्त कण्ठ से कहा "चाहे जो भी व्यय हो चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, आप अपना प्रयाग करके दिखाइय।"

चार प्रयोग

मैंने यह काम उड़ुपि में आरम्भ किया था। मेरा विचार था कि मैं जो भी काय करता हूँ, उसका जो भी लाभ है या होगा और कल को यक्षगान यदि बचा

रहेगा, तो बयलाट को अपनी वक्ति बना कर चलनेवालों के द्वारा ही सम्भव हो पायेगा। इसलिए प्रथम वष (1962 में) उडुपि में दो मास के लिए यह काम अपने हाथ में लिया। सप्ताह में एक दिन यानी इतवार को पर यानी पुत्तूर जाया करता था। मेरे जन्म स्थान के पासवाले उस प्रदेश में चार व्यावसायिक मण्डलियाँ थीं। पुराना सम्प्रदाय उनमें काफी बचा हुआ था। वहाँ के भागवतरो की बीस तीस साधारण प्रसंग (कथावस्तु) जबानी याद थे। उनमें मैं जो भी पूछता और जो भी अपेक्षा रखता उस सबका सही ढंग से काय रूप में परिणत होना इस कारण था कि उनमें मेरे प्रति गौरव और प्रेम था। मेरे चुने हुए अधिकांश लोग वही के कलाविद रहे हैं। ऐसे प्रयोगों में प्रधान पान केवल गीतों पर ही निर्भर रहता है और वह भागवत से ही होता है। परम्परागत पद्धति के पोषक नारणप्पा उप्पूर, आर० रामचंद्र नाउड उससे सहायक थे। आठ इस व्यावसायिक अभिनेता हम से आ मिले थे। हो नाथर की तरफ से कैरेमन महाबल हेग्गडे और मन्ग-वादक किरिनीरू नारायण हेग्गडे को मैंने चुना। मृदंग बजाने हिरियडक गोपाल और चण्ड (एक प्रकार की ढोलक) वादन के लिए केम्पणु आनन्द थे। इसलिए मैंने एस वाद्य पसन्द किये जिससे गीत का महत्त्व न घट। एक दिन अंतिम दिना बेला बजान बैंगलूर के श्रीनिवास उडुप साय देने आये। 'कोट का कोरग नाम का व्यक्ति बतेरनट बजाने में सहायक हुआ। और भी अनेक व्यक्ति समय समय पर मेरे सहायक हुए, जिनके नाम आज मुझे याद नहीं आ रहे हैं।

भीष्म विजय

इस प्रकार अभ्यास करा, मैंने 'भीष्म विजय', 'अभिमान-युद्ध' (अभिमान-युद्ध) और 'सधव-बधे' ये तीन कथानक चुने। उनके अनुकूल अभिनय योग्य गीत चुनकर उन्हें समय और अवसर के अनुसार काट छाँट कर तयार किया। एक-एक कथानक के लिए लगभग चालीस रागों का अभ्यास कराया। 'भीष्म विजय' की कथा काशीराज की बेटियाँ के स्वयंवर से लेकर परशुराम के निगमन तक चलती है। इसका दृश्य में अम्बा, अम्बिका अम्बालिका की जलक्रीड़ा का भी एक दृश्य दिखाया था। इन तीनों का आगमन, जलविहार को जल में उतरना, नदी का पानी, तैरना, डुबकियाँ लेना, स्नान के बाद शृंगार—यह सब अभिनय और नृत्य के द्वारा मंच पर दिखाया था। साधारण यक्षगान में जल-क्रीड़ा है पर उसकी कल्पना आँखा के सामने खड़ी नहीं होती। उसके लिए निर्दिष्ट रूप देने का निश्चय किया। इस अवधि में रंग मंच पर फौर पड़े स्त्री देशों के लिए उचित अलंकार और आभूषणों की व्यवस्था की। कथा-समाप्ति के समय भीष्म का अविद्येव स्पष्ट हो जाता है। अतः उसे युद्ध के लिए खड़ा होना

पडता है। समझ से परे की काल लीला दिखाने के लिए अंत में मैंने मंगलाचरण का एक नया पद्य जोड़ा।

और एक प्रसंग

एक और कथा थी 'अभिमन्यु युद्ध' जिमकी समाप्ति संभव वध में होती है। दो मास के निरंतर परिश्रम से ये दोनों तयार हुए। इनमें शब्दों का प्रयोग नहीं होता। केवल गीत, वाद्य, रंग सज्जा और अभिनय द्वारा ही यह सम्पन्न होने हैं।

इन दोनों का प्रथम प्रदर्शन हमने बम्बई में किया। बम्बईवालों के लिए वह नया था। बम्बई निवासी कन्नड वाला क लिए भी वह उतना ही नया था। वहाँ के मेरे मित्रों ने ही उन प्रदर्शनों की पूर्ण व्यवस्था की थी। कलाविद हेनर के वहाँ होने के कारण उनके परिचित पत्रकार, विदेशी राजनीतिज्ञ वह प्रदर्शन देखने आये थे। यह एक महत्वपूर्ण बात थी। प्रदर्शन की व्यवस्था करनेवाले मित्रों से हमारा उसकी प्रशंसा और प्रोत्साहन की अपेक्षा ता की थी लेकिन विशिष्टों की भारतीय रंगमंच के प्रति रुचि और प्रशंसा भी उसके द्वारा मिली। श्रीमती अलकाजी ने उन खेलों को देखकर समीक्षा करत हुए उसकी रंगसज्जा के बारे में ब्रिलियंट कारिओग्राफी (Brilliant Choreography) लिखा। यथगान में रंग सज्जा में गया गया कर दिखाना संभव है यह बात सूचित करने को उनका मत वहाँ व्यक्त करना पडा।

अगले वष

उपरोक्त दोनों यक्षगान नृत्यों को बम्बई, हुबली धारवाड, बंगलूर, पुत्तूर और कुंदापुर में प्रदर्शित करके लौटकर मुझे अपनी गृहस्थी और घर के काम काज की ओर भी ध्यान देना पडा। बाद में, सन 1963 में, और एक बार ऐसे ही दो नृत्य-नाटकों की योजना बनाकर पुत्तूर में ही उनका अभ्यास कराने लगा। अपने व्यक्तिगत सारे कामकाज छोड़ छोड़कर उद्युपि में लम्बी अवधि के इस प्रशिक्षण के लिए ठहरना सुविधाजनक न होने से, पुत्तूर के वेक्टरमण मंदिर के बरामदे में ही उनका अभ्यास कराने लगा। उस समय के कलाकारों में भी अधिकांश पढ़ते वाले ही कलाकार थे। एक दो जो ठीक नहीं बैठते थे उन्हें छोड़ना भी पडा। किसी प्रकार उन सबको लेकर दो मास निरंतर प्रयास के बाद, उस वष मैंने 'बभ्रुवाहन कालग' (बभ्रुवाहन युद्ध) और 'रति कल्याण' (रति का विवाह) पर काय किया। 'बभ्रुवाहन-कालग' बहुत समय में चली आयी एक अज्ञात कवि की रचना थी। 'रतिकल्याण' भी ऐसी ही कथावस्तु थी। इनमें कौतूहल उत्पन्न करनेवाले सनिवश आकषक युद्ध और विविध भावाभिव्यक्तियों के लिए अनक

अवसर थे। प्रशिक्षण के शारम्भ में ही एक अभिनेता को सनिपाल ज्वर में धर लिया। उसे घर भिजवाना पड़ा। राक्षस के पान के लिए चुना गया गया धक्ति मेरी कसौटी पर पूरा नहीं उतर पा रहा था इसलिए और दो नये लोगो को प्रशिक्षण देना पड़ा। इन कठिनाइयों के हान पर भी पहली मण्डली से इस मण्डली न ज्यादा अभिरुचि से काम किया—यह देखकर मुझे प्रसन्नता हुई और सताप भी हुआ।

भाव के लिए उपयुक्त स्थान

इस काम में जो अडचनें आती हैं उनकी यहाँ थोड़ी बहुत चर्चा कर देना आवश्यक लगता है। हमारे परम्परावादी भागवतर अपनी पद्धति से गा सकते हैं उसमें मुझे कुछ मिलाना नहीं था। वह शली केवल ताल और लय से सम्बन्धित हैं। लेकिन भाव से सम्बन्धित बातों की स्पष्टता एवं सुख दुःख की भावना व्यक्त करनेवाले आलापों की मुख्य आवश्यकता थी। मैं, जैसी मेरी समय में आया वैसा गाकर उन्हें बताता जाता था। उसका भाव और विषय का निरूपण अभिनय और अंग विन्यास में प्रकट होने पर ही, गीत व नृत्य के मेल से दिखायी देता है यह बात भागवतर उप्रूर समझ गयी। नाबूड, जो गत वर्ष भी मेरे साथ थे, उस तरह से स्वयं को बदल न सके। दूसरे वर्ष के प्रशिक्षण में मैंने उनके स्थान पर रामगाणिग को लिया। मदन के बारे में भी यही बात हुई। पहले दल के एक दो कलाकार भावों के अनुसार अपेक्षित सतुलन नहीं दिया पाते थे इस लिए हिरियडक गोपाल के साथ अर्चो तिमप्पा का लिया। यही नहीं पुत्तूर आने से एक और सुविधा हुई। क्लेरनेट बजानेवाला अभी निष्णात नहीं हो पाया था। पुत्तूर के ही गोपाल कृष्ण यान डाम्रा को क्लेरनेट और सेक्सोफोन बजाने में कौशल प्राप्त था। मदन सप्तक स्वरों को पुष्ट करने के लिए तथा गीत को कणप्रिय बनाने के लिए मैंने सेक्सोफोन तथा क्लेरनेट जैसे वाद्य ही उत्तम समझे।

मेरे चुने दोनो कथानकों में कुछ विशिष्ट सनिवेश और पात्र थे। उनमें एक मेदीहूत नाम का एक राक्षस पुरोहित था। उस राक्षस पुरोहित का अनुरूप नृत्य अभिनय वेशभूषण की कल्पना करके उन्हें जुटाना भी अनिवाय था। उस प्रसंग के अंत में मंच पर चित्रागदा और उलूपी का प्रवेश होता है। वे महाशय के निवास पाताल की ओर जाती हैं। इसमें अभिनय और कल्पना को पुष्ट करने वाले प्रसंग हैं। उस वर्ष कुछ नये लोगों को प्रशिक्षण दिया। उत्तर जिल के कलाकारों की सहायता से प्रशिक्षण का वह काम पर्याप्त सतोपजनक रहा।

अनासक्ति

इस प्रशिक्षण की अवधि में एक खाम बात मेरे ध्यान में आयी जिसे मैं कभी

भूल नहीं सकती। उड़ुपि में प्रशिक्षण के समय, गाव के लोग जितनी लगन और बुतूहल से तालीम देखने आते थे, इतना बुतूहल पुत्तूर में देखने को नहीं मिला, जहाँ मैं दस बीस वर्षों से नाटको पर जनक प्रयोग करता आ रहा था। तालीम के दौरान गाव का एक भी आदमी वहाँ नहीं दिखायी देता था। जबकि दूर से उड़ुपि के कुछ लोग बीच बीच में आकर तालीम देखा करते थे। इसका कारण भी मुझे मालूम था। अपने यहाँ के लोगों का स्वभाव बताने के लिए वह कारण बताता हूँ।

पारि सुब्बा

मैंने सन 1956 के लगभग यक्षगान के लिए रामायण का कथानक लिखने वाले पारि सुब्बा के बारे में अपना स देह और अभिप्राय बता दिया था। दक्षिण जिले वालों का मत है कि वह कुडबल का पारि सुब्बा ही है। मैंने कहा था कि उत्तर भाग में भी एक सुब्बा नाम का व्यक्ति था। वही उस कथाविशेष का लेखक है। आगे प्राप्त सामग्री से भी मरी ही बात सिद्ध हुई। इससे दक्षिण जिले वालों को ठेस लगी। जबसे वह वाद विवाद शुरू हुआ, यक्षगान कला की दृष्टि केवल उत्तर जिले का ही हो गया। नि सन्देह मैंने वहाँ के सम्प्रदाय और वेशभूषा को पसंद किया था। वहाँ के कलाकारों में मुझ पर विश्वास रख कर मेरे सभी कामों में हाथ बढ़ाया था, यह भी सच है। परंतु कला के लिए जाति या क्षेत्र नहीं होता है। उस जानने का अधिकार सबको समान है। इस दृष्टिकोण का मैं सह पानेवाले स्वाभिमानी ग्रामीणों के असहयोग और द्वेष का मैं पात्र ही नहीं था, अपितु उन्होंने मेरी यक्षगान सम्बन्धी गोट्टियों का भी बहिष्कार कर दिया।

प्रवास

सन 1963 के प्रवास में हम लोगों ने फिर एक बार बम्बई में अपना यक्षगान का प्रदर्शन किया। बाद में धारवाड, शिर्डी, सागर, हेगोडु शिवमोग्गा, भद्रावती, बंगलूर, पुत्तूर, कुंदापुर में भी इसका प्रदर्शन किये। बम्बई में कानड के आम लोगों ने उस विशेष नहीं सराहा, परंतु विद्वज्जन को और उन लोगों को भी जो यक्षगान में वर्तिलाप को प्रधान मानते थे हमारे प्रयोग बहुत अच्छे लगे। वहाँ के प्रदर्शना को सफल बनाने के लिए मेरे मित्रों ने जो कष्ट उठाये और जो जा काय किये, उनकी मैं जितनी भी प्रशंसा करूँ वह कम है। उन दो वर्षों में जो भी धन एकत्र हुआ वह सब मैंने अपने साथी कलाकारों में बाँट दिया। वे खेती-बाड़ी करनेवाले लोग थे। वर्षों के समय उनकी कोई आमदनी भी नहीं होती इसलिए उन्हें ता इससे बहुत तपित हुई।

विदेशियों की प्रतिक्रिया

बम्बई में प्रदर्शन देखने आये कुछ यूरोप के कला प्रेमियों ने हमारे वाद्य सुन कर नेपथ्य में आकर सेक्सोफोन की वाद्यतरंग को देखकर आश्चर्य और प्रशंसा व्यक्त की। परन्तु ऐसी भावना हमारे दक्षिण और उत्तर कानड के यक्षगान प्रेमियों में कभी दिखायी नहीं दी। मरा 'वार्तालाप' का बंद करा देना उनके लिए मेरा एक महान अपराध-सा था। दूसरा अपराध था विदेशी वाद्य बेला और सेक्सोफोन का प्रयोग में लाना। इसे कर्नाटकी संगीतवाले इस शताब्दी के आरम्भ से बेला और तीन चार दशक से सेक्सोफोन का प्रयोग करते आ रहे हैं। उसे ताज्जान पसन्द किया, विदेशी बहकर अवहेलना नहीं की। यक्षगान के महत्त्व को जाननेवाले हमारे यहाँ के लोग ने तो उन दोनों वाद्यों के प्रयोग के बारे में आक्षेप किया ही, साथ ही, यक्षगान में वार्तालाप को ही महत्त्व देकर तथा उसके नृत्य वेशभूषा, या अभिनय पर विशेष ध्यान न देकर, ताल बदले (मदग) को ही महत्त्व देनेवाला ने अपनी अधिभ्रष्टता से यक्षगान को नुकसान ही पहुँचाया—यह बात उन्हें समझ में नहीं आयी यह आश्चर्य है।

निराशा

मेरे मित्र सजीवराय और हम्बार चाहते थे कि इस प्रकार के प्रयत्न, प्रोत्साहन के अभाव में रूकने नहीं चाहिए उन्हें आगे बढ़ाना चाहिए। यह मण्डली अपने दूसरे आम व्यवसाय के समान, इन नये प्रयोगों को भी जारी रखे। उसके लिए मण्डली को खूब मेहनत करनी होगी। उन्होंने यह प्रश्न भी सामने रखा कि उसके लिए क्या करना होगा। उस पर हमारे अनुभवी कुछ बुजुर्गों ने कहा, 'बाहर से सहायता मिल तो अच्छी बात है।' उसके लिए साल में एक बार ऐसा एक आयोजन करने के लिए 18-20 हजार रुपये की जरूरत पड़ती थी। इतना पसा तो किसी प्रकार जुटाना ही पड़ता था। साधारणतः यक्षगान मण्डलियाँ अब पसा कमाने की मण्डलियाँ बन चुकी हैं। हमारे मित्रों की इच्छा के अनुसार नये प्रयोग करने के लिए इतना दण्ड भुगतने की जरूरत नहीं सोचकर, मैंने कहा, "इस विषय को घड़ी भूल जाइए।"

आगे मुझे ऐसे नये नाटक का प्रयोग में हाथ लगाने में काफी वय लग गयी।

आजीविका के झमेले

प्रकाशक के रूप में

सन 1962 तक पुत्तूर में मैंने अपना छापाखाना लगा रखा था। अपनी पुस्तकें स्वयं ही छापकर मैं अपनी जीविका चला रहा था। मुद्रण और प्रकाशन दोनों कामों से बहुत कजदार हो गया था। मेरा साठवा वर्ष पूरा होने पर कर्नाटक के अनेक भागों में मेरे सम्मान में जो समारोह किये गये उससे मेरी पुस्तकों की बिक्री पहले से काफी बढ़ गयी थी। मेरी प्रकाशित पुस्तकों की संख्या भी काफी थी। माल में एक उपयास प्रकाशित करने के साथ साथ विक चुकी किताबों का दूसरा संस्करण निकालना बड़ा कठिन कार्य था। उन दिनों एक नये उपयास की एक हजार प्रतियाँ बिकने में पाँच साल लग जाते थे। दूसरा संस्करण निकालने पर तो उसके बिकने में पहले से दुगुना समय लग जाता। इन कारणों से पुस्तकों से जो पैसा मिलता वह पुरानी पुस्तकों के नये संस्करण निकालने में खर्च हो जाता। इस अवधि में साल के अंत में मैंने हिसाब लगाकर देखा। छापाखाने में पड़ी सारी पुस्तकों की अंकित कीमत (कुल पुस्तकों की कीमत का एक तिहाई) यानी कागज और छपाई का खर्च साठ हजार से अधिक हो चुका था। यह प्रति वर्ष बढ़ ही रहा था, कम होने की नौबत नहीं आती थी। सन 1958 तक मैं विज्ञान प्रपंच का चौथा भाग समाप्त करके छपवाने के काम में लग गया था। उस एक पुस्तक के लिए ही बहुत खर्च हो गया था। इससे बहुत कज हो गया। इस पुस्तक की बिक्री भी धीमी गति से चल रही थी, इसलिए अर्धों के सामने कज का एक गटठर ही दीख रहा था। इस कज का एक बड़ा हिस्सा कन्नड़ के क्षेत्र में विशेष रचि रखने वाले 'प्रकृतियाँ' द्वारा समय समय पर प्रमोपहार के रूप में भेजी गयी धनराशि से मैंने पूरा किया।

एक वर्ष बाद यानी मेरे बासठवें वर्ष में, मैंने आय कर का हिसाब दिया तो देखा कि लोग से भेंट के रूप में प्राप्त धन करीब तीस हजार रुपये हो गया था। सम्बंधित आयकर अधिकारी ने उस पर भी साठे तीन हजार रुपये आयकर लगा

दिया और आदेश भेजा कि पाँच दिन में उसे जमा करा कर पमाण पत्र प्राप्त कर लें। उसी अवधि में मुझे अपने गुजर गये बेटे का वज्र भी चुकाना था। अब कुछ भी हो वज्र करके भी कर का भुगतान तो करना ही था। उधर इसी समय मेरे बेटे उल्लाम 1 इंजीनियरिंग कालेज में दाखिला ले लिया था। बटी मालविका मैसूर में मनोविज्ञान पढ़ रही थी। उन दो छत्तों के अलावा, 'विज्ञान प्रपत्र' का अंतिम भाग को भी प्रकाशित करना था।

कर का भुगतान

आय कर का भुगतान करके चिंतित मन से मैसूर चला गया। ज्ञात समय रास्ते में मिन मजुनाथगया का घर ठहरा। 'विज्ञान प्रपत्र' के कागज आदि मगवान में वही मेरी सहायता करते थे। तभी उनके यहाँ एक प्रतिष्ठित याचधीश आय थे। मैंने मजाक में उहे अपने आयकर की कहानी सुना दी। आयकर अधिकारी ने अपने लगाये गये कर के समयन में तब दते हुए बताया था "यह धन गुरु शिष्य की परम्परा के अंतगत ही आता है। केरल का एक शिष्य ने अपने गुरु को एक धन राशि भेंट की। वह धन आय के रूप में माना गया क्योंकि वह उसकी वृत्ति के अंतगत आता था। आपकी पण्डितता पर दिया गया धन भी उसी श्रेणी में माना गया है।" उसके इस तर्क पर याचधीश हस पडे और बोले, 'उस अकल नहीं। गुरु शिष्य के सम्बन्ध में और इसमें कोई समानता नहीं। आप इ कमटक्स कमिश्नर से अपील कीजिए। यदि वे नहीं मानते तो ट्रिब्यूनल से अपील कीजिए। वहा भी यदि आपको असुविधा हो तो सीधे हाईकोर्ट जाइए।" मैंने बसा ही किया। इ कमटक्स कमिश्नर ने अपने अधीनस्थ का आदेश का समयन करत हुए मेरी अपील खारिज कर दी। तब मैंने इ कमटक्स ट्रिब्यूनल से अपील की। अगले वर्ष उन्होंने फसले में कहा कि यह आय कर के अंतगत नहीं आता। भाग्य की बात कि सरकार ने उसके विरुद्ध अपील नहीं की।

दुर्भाग्यपूर्ण वर्ष सन 1963

इसी वर्ष कर्नाटक प्रदेश की जनता ने शायद मरी योग्यता से बढकर मेरा सम्मान किया। इस सम्मान से कहां मैं फूल न उठू इसलिए एक ओर स नहीं बल्कि चारा और स मरे भाग्य ने मुझ पर मुसीबतें डाली। उनमें से एक सबट मेरी जमीन से सम्बन्धित था। उस अवधि में उसी जमीन पर रहता था जो बच्चों की पढाई के लिए ली गयी थी। बहुत पहले ही वह शाला बन्द हो चुकी थी। वह जगह तब मर पुस्तक प्रकाशन और छापेघराने का केन्द्र थी। छ एकड़ भूमि में पानी की कमी के कारण कुछ भी नहीं उगता था। पाँच छह कुए खोद कर भी

पानी के लिए बहुत फट्ट उठाया और अंत में उस से हताश होकर मैं पुत्तूर के राजमाग के पास नौ एकड़ जमीन का एक टुकड़ा खरीद लिया। वहाँ आम आदि के छोटे मोटे पेड़ लगाये। उस बाग की रखवाली के लिए एक दो झोपड़ियाँ भी बनवायी, पर उससे भी मुझे कोई लाभ नहीं मिला। सन 1963 में एक दिन ममूर सरकार ने मुझे सूचित किया कि वहाँ सरकार की आर स 'प्रवासी मंदिर' (पयटक निवास) बनाया जाएगा इसलिए मैं वहाँ जमीन छोड़ दूँ। वह विज्ञप्ति भी मुझे गजट से ही पता चली। सरकार की इस आजा की मैं चुनौती नहीं दे सकता था। चुनौती से लाभ भी नहीं था। इसलिए सही मुआवजा देने की बात कह कर मैं वहाँ जमीन उनके सुपुद कर दी। अब यह उम्मीद करना बठिन था कि वह मुआवजा कम मित पायेगा। मैं यह आशा की थी कि कल को मेरा अपना घर और छापाखाना आदि यदि चला भी जाय तो एक टुकड़ा जमीन अथवा उसकी कीमत मेरा बच्चे को मिल सकती है। पर तु सरकार के प्रतिनिधि पुत्तूर के कमिश्नर ने कीमत आंकन में ही तीन वर्ष लगा दिये। उसके लिए दूसरे ग्राहक आन पर भी मैं उसे बेच नहीं सकता था। मेरा कहना था कि मुझ उससे काइ पमठ हजार रुपये मिलने चाहिए। जब मैं यह पत्र व्यवहार कर रहा था तभी उस जमीन के पास की जमीन के मालिक ने बगडा खडा कर दिया कि सब नम्बर गलत है इसमें से चार एकड़ जमीन उसकी है। यह बात भी कोट तक जान का एक विषय बन गयी। कमिश्नर साहब ने उस विवादग्रस्त जमीन का छोड़कर शेष जमीन का मुआवजा प द्रह हजार रुपये देने का निश्चय किया।

अब कोई और चारा न रहने से मैं जिला कोट में अपील की। अपनी जमीन के पास की जमीन की कीमता का ब्यौरा देना पडा। बिना हक के अपनी जमीन बहनेवाल उस मालिक के खिलाफ भी सबूत में कामजात जुटाने पडे। इस झगडे के निबटने में और तीन वर्ष बीत गये। जिलाधीश ने अपना हक जताने आये उस व्यक्ति की अपील खारिज कर दी और मेरा माँगा मुआवजा सही ठहराया। तब सरकार ने हाई कोर्ट में अपील की। इस प्रकार सरकार द्वारा जमीन अपने अधीन कर लेने के दस वर्ष बाद, जब मैं पुत्तूर छोड़ कर सालिग्राम पहुँच चुका था, हाईकोर्ट का फसला मेरे हक में हुआ। तब तक मेरी अंतिम आशा रूप उस जमीन की कीमत शीशे में दीखने वाल बटुए जैसी रह गयी थी।

मुद्रण और प्रकाशन

अपने बडे बटे के नाम पर चलाया 'हृष मुद्रणालय', उसी के फट्ट और दु प का कारण बनकर उसमें भी कम आयु में बढ हो गया। उससे घाडी-बनुत का आप हो जाया करती वह थी साल में तीन मास घाडी विवाह सहालाय के दिनों में निमग्न पत्रा की छपायी से। वह भी तब से जब मैंने उसके बेईमान मनजर

की हटार स्वयं काम सम्भालना शुरू कर दिया। उससे मुझे एकमात्र सुविधा यह थी कि मेरी पुस्तकें मेरे सामने छपती थीं और मैं दो बार उनके प्रूफ ठीक कर लेता था। महीने में पंद्रह दिन इधर उधर घूमने से छापने का काम तभी देख पाता जब मैं घर में रहा करता था। मेरी अनुपस्थिति में कामगारों को कोई काम नहीं रहता था। बहुत सारे बहुत उनके पास कागजों की तह लगाने का काम रहता था। उन दिनों उनका वेतन भी बहुत कम हुआ करता था। इसका अलावा मैं वेतन बढ़ाना भी नहीं चाहता था। बाहर से काम जुटाना मुझ से होनेवाला नहीं था। जो वहाँ स्वयं आत में उही का काम कर पाता था इसलिए गाँव से दूर रहनेवाले सहायक के दिनों में ही मेरे पास आता, अपना नहीं। मेरी अनुपस्थिति में होने वाला काम केवल गाँव के छोटे मोटे बीड़ी उत्पादकों के लेबल छापने का काम था। उसमें विशेष कम्पोजिंग की जरूरत नहीं पड़ती थी। तब कागज की कीमत भी ज्यादा नहीं थी। चार छह ब्लाक जोड़ कर छाप देने पर लोग स्वयं आकर ले जाते। उसमें आदमी कम होने पर भी झमेला ब्रह्म नहीं था। मेरे सारे कामगार मेरे ही सिखाए हुए थे। एक छापेवाला जब से मैंने छापखाना खोला तभी से, मेरे पास था और छापने तथा बाईंफिंजिंग का काम करता था। वह थोड़ा बहुत इतन मरम्मत और पम्प मरम्मत का काम भी जानता था अतः फुरसत के समय वह वह काम भी कर लिया करता था। मेरे पास दो ही लडकों को सही ढंग में कम्पोजिंग करना आता था। उन्होंने मेरे साथ पाँच छह वर्ष काम किया। एक बच्चा भी था जो आँखें कमजोर हो जाने से, और कहीं काम कर न मिल पाने से मेरे पास ही पड़ा था। और दो लडके थे जिन्हें पूरे साल का अनुभव भी प्राप्त नहीं था। इस तरह प्रेस में सात जन काम करते थे।

सहयोग की नीति

एक दिन बाहर से एक मजदूर नेता की सवारी आयी। उन सबके कान भर कर उसने उन्हें अपने अधिकार के लिए हड़ताल करने को उबसा दिया। यह स्वामाधिकार था कि ऐसी बातें उहें जम गया। और मुझे? मैं गाँव में ही बहुत कम दिन रहता था। अगर मैं अपनी पुस्तकें मगलूर के छापखाने में दे देता तो प्रच की दृष्टि से अपने यहाँ छापने से अच्छा ही रहता। ऐसी परिस्थिति में एक को छोड़कर सब कामगारों न, यहाँ तक कि जिन्होंने एक साल भी पूरा नहीं किया था अपनी माँगें भर सामने रखी। मुझे आश्चर्य हुआ। उससे चार दिन पहले सावजनिक सभा भी हुई थी। यह मुझे अच्छा ही लगा। मुझे अपने परिश्रम से मिलने पर ही पूरे मिल जाते हैं बहुत थे। उससे ही अपना पेट भर लेता। चार-छह आदमियों के पसीने की ममायी खाकर उनका श्रम करने की इच्छा मुझे नहीं थी। ऐसे आन्दोलन में मगलूर में बहुत समय से दृष्टता आ रहा था।

छापाखाने की समाप्ति

इन कारणों से मैंने खुद ही प्रेस बंद कर दिया। कामगारों से रहा, "आज से प्रेस बंद कर दिया गया है। वे जब चाहे मुझसे तीन मास का दंडन ले जा सकते हैं।" एस.म. उ.ह. मुआवजा देना होता तो मुझे उ.ह. डेढ़ हजार रुपए देना पड़ता। इसका अलावा उ.ह.ने मुझसे काफी कज भी ले रखा था। मैंने सोचा खैर कोई बात नहीं। उनमें एक त्रिचिचयन हरिजन था, वह दूसरों से नहीं मिला। उससे मैंने कहा, "तुम कोई छोटा मोटा काम करते रहो, कुछ भी न हो तो कम से कम बाहर भेजनेवाली पुस्तकों के बण्डल आदि ही तैयार कर दिया करो।"

आने कामगार खुद उस विवाद को कोर्ट में ले गये। यहाँ मैंने बताया कि अमुक अमुक न मुझ से इतना कज ले रखा है। उनमें से एक को कज का अलावा रहन को मकान भी दिया था। व. तो कज लेने की बात साफ भुकर गये। तब मैंने लेबर कमिश्नर से कह दिया, "कोई बात नहीं, आप जैसा उचित समझे, निणय दीजिए।"

उ.ह.ने अपने फसले में "तीनों कामगारों को मुआवजे के रूप में केवल तीन सौ रुपय दिये जायें", कहकर उस विवाद को बंद कर दिया।

मैंने अगले वर्ष छापाखाने के लिए सही ग्राहक ढूँढ निकाले, प्रेस की सारी सामग्री ले जाकर बम्बई में 'सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी' को बचकर अपना कज का भार जो जरा कम किया। याद में कुछ वर्षों तक अपनी सारी पुस्तकें बाहर ही छपवाने लगा। केवल प्रकाशन और विपणन अपने हाथ में रखा।

अपने सुख दुख

व्यक्ति का सुख दुख के लिए जिस प्रकार उसकी आर्थिक स्थिति मुख्य कारण होती है, उसी प्रकार उसका समाज भी कारण हो सकता है। व्यापारिक अपयश भी कारण हो सकता है अपना परिवार भी कारण हो सकता है। मेरे साथ साठ साल पूरे होने पर कर्नाटक के विविध नगरों में मेरा सम्मान किया गया, सहायता की गयी, सब मुझे यह सतोष हुआ कि जिस उद्देश्य को लेकर लिख रहा हूँ, यह जानना तब पढ़ रहा है। इससे मेरा आत्म विश्वास दृढ़ हुआ। पर तु उसका पाँच प्रकाशन काय कितना जोखिम में भरा है यह दूसरे समझ नहीं सकते। क.न.वा.ला में पढ़ने की रुचि का विकास नहीं हुआ है, साहित्य के अभाव से व.नि.त.त. भी नहीं होत।

मेरे समाज न बयस्कित रूप से मुझे कोई दुख नहीं दिया। उमक विरवास रीति-नीति का वार में मैं ही कटू बातें कही। फिर भी उ.ह.न. मुझे प्रेस ही दया। मैं यह नहा कह सकता कि मेरी तीखी आलोचना को उ.ह.न. क्षमा कर

दिया, पर इतना जरूर है कि सहन अवश्य किया। उावे विचार म यह सब कहनेवालो की आवश्यकता थी। जनता की ऐसी सहनशीलता का मैं वृत्त हू। पर तु भरो वृत्ति विचार, इच्छा, क्रिया कलाप आदि के लिए भरे घर का वातावरण ठीक रह और निश्चित रहे तो जीवन सरतना से आगे चल सकता है। लेकिन वट केवल मुझ पर निर्भर नहीं और वह मेरे वृत्ते की बात भी नहीं। मेरा हाथ थाम कर जीवन चलाने आयी पत्नी ने इतन वष बिना कुछ बाले बड-बडाय और गरीबी म डर बिना तथा उसके पास जो नहीं था उसकी चिंता किए बिना जीवन का सहनीय बना लिया था। पर तु उसका जीवन तो उसके हाथ का जीवन नहीं रहा।

वह अपन बचपन म ही अपनी मां को खो बठी थी। उसके पिता न दूसरा विवाह कर लिया था। बच्चो की मा के मरने के बाद बच्चो को ननिहाल चले जाता चाहिए मौनली मा की यही इच्छा थी। उस परिस्थिति मे पिता क उसको अपन पास रखन पर भी उसे अपना बचन सदा आश ही लगा। तम उसकी ओर उमकी बहिन की ममतापूर्वक रक्षा करनेवाली थी उसकी दादी।

उमके पिता क निधन हो जान के बाद उसकी बुढिया दादी हमार यहाँ आकर रहन लगी। वह अटठानवे वष की हो कर गुजरी। उसकी मत्यु भरी पत्नी के लिए एक गहरा आघात रही। उसस पहले उसे अपने पिता की आत्महत्या के दुख स भी बहुत आघात लगा था। इसलिए बीच बीच म उसकी मानसिक स्थिति काफी खराब रहा करती थी। इतना ही नहीं, तभी हमारो बडा बटा सन् 1961 म कसर से मर गया। यह सब उसके मानसिक उतार चढाव का कारण बन गये। उस कई बीमारियां लग गयी।

इम तरह मेरे घर की और मन की शांति जाती रही। तभी एक और विपत्ति आन पडी। एक दिन सन् 1963 म मुझे पत्नी की गर्भाशय के कसर के कारण बम्बई अस्पताल म दाखिल कराना पडा। विशेषज्ञ डा बोरजस की शल्य-चिकित्सा से वह उस सकट से मुक्त हुई। लेकिन तब से मानसिक अस्थिरता के साथ दहिक पीडा भी उसे बीच बीच म सताने लगी। इस प्रकार सातवें दशक के सारे आधे भाग मे भरे लिए सुख नाम की भी नहीं रहा। आग का वष भी उस दृष्टि स कोइ सुखद नहीं रहा। उस वष काम छोड छाड कर भाग्य को कोसन का छुत्र अवकाश मिला। ऐस समय मे मैं यदि अपने को किसी काम म न लगाय रखना तो भरा जीवन बजर हो जाता, व्यथ हो जाता।

बेटो का विवाह

इम अवधि म मेरी बेटो मालविका एम ए उत्तीण कर बंगलूर म मनोविज्ञान का अधयन कर रही थी। आर्थिक दृष्टि से उसे वहाँ रखना मर लिए बहुत

कठिन था। उसी अवधि में डाक्टर की पढाई समाप्त करके मनो चिकित्सा सीखा जो आये एक पत्रावी तरुण से उसका परिचय हुआ। उसका नाम है रवि कपूर। उसके पिता भारत विभाजन के समय लाहौर में अपना सब कुछ छोड़कर बम्बई में कुछ साल डॉक्टर की नौकरी करके निवृत्त होकर अमतसर में रहने लगे थे। एग्जिन मेरी प्रेटी रवि कपूर से दियाह करने का निश्चय करके मेरी अनुमति लेने उसका साथ घर आयी। वह दूर का लड़का है, भिन्न सभ्यतावाला है, यह चिन्ता मेरे मन में उठी। पर मैंने सोचा कि छोटा को अपने भविष्य का निर्माण स्वयं करना है हम नहीं।

सन् 1965 में उनका विवाह दूर अमतसर में सम्पन्न हुआ। वह आय-समाजी ढंग से हुआ। उसका कारण रवि के पिता डॉ० मोहनलाल कपूर की अस्वस्थता थी। उन दिनों मैं क्या था? अपने समाज की इच्छानुसार शानदार विवाह करने की स्थिति में नहीं था। अपनी बत्ती को केवल पांच हजार रुपये का सोना दे सका। बराती बत्तार में ही अपनी पत्नी, बच्चे और अपने तीन मित्रों का लवंग अमतसर गया। आने जान और शादी में कुल मिलाकर पांच हजार ही खर्च कर पाया। तब आप सब सद्गुण सपरिवार अमतसर पधारिएँ किमी का भी जीपचारिकता के नाते मैंने ऐसा पत्र नहीं लिखा। सातवें दशक के जीवन के उन अधर में दस घटना से हम दोनों को वास्तव में सत्ताप मिला। इसे गरीबी में मिला सत्ताप कह तो अतिशयोक्ति न होगी।

शिवराय जी

इसी दौरान मैंने एक और दुःख देखा जिसका उत्तर खोज बिन नहीं रह सकता। शिवराय जी मेरे जीवन की एक प्रेरक शक्ति थे। पुत्तूर में मेरे बचपन का कारण यही एक आकर्षण था। मेरे प्रत्येक कायकलाप में मेरी पीठ ठोककर सहायता देनेवाले वही थे। वे मेरे शिक्षण तथा रंगमंच के क्षेत्र में ब्रिय प्रयोग और इम तालुका की आर्थिक परिस्थिति के अध्ययन और जनजीवन की जागृति में महत्वपूर्ण देने वाले प्रमुख व्यक्ति थे। वे हमारे जिले के सहकारी क्षेत्र के मूल पुरुष थे। वे पंचायत राज्य के जन्मदाता थे। शिक्षणालयों के मागदर्शी थे। पुत्तूर कभी भी उनका क्रोध चुका नहीं सकता। वे अपना बुढ़ापा धाटने मद्रास चले गए थे जहाँ उनसे पुत्र का घर था। वही वे एक एग्जिन गुजर गये। मैंने अपने जीवन में उन जसा मागदर्शी, साहसी, सावधानिक सबकुछ दूसरा नहीं देखा। उनकी याद बनाए रखने को पुत्तूर में उनका नाम पर शिवमदन नाम से एक स्मारक बनाने का विचार किया गया। उसमें भी लागू आनंदा की होड़ थी। हाँ उन काम में उन्हीं के द्वारा स्थापित कुछ सत्कारी मन्थ्याश्रा ने सत्तापता नहीं मिली। फिर भी उसी रात के कुछ मित्रों की निहत्ताप बनाने की इच्छा नहीं

धी सहायता से शिवसदन का निर्माण हुआ ।

इस आशा से कि उस काम के लिए आर्थिक सहायता मिलेगी साचकर, मैंने और एक बार यक्षगान नृत्य नाटक का प्रशिक्षण शुरू किया । उसके लिए 'गय चरित्र' नाम का एक सुन्दर कथानक चुना । उसे उत्तर जिले के कलाकारों से एक घेले' के ढग पर तैयार कराया । फिर बम्बई आदि नगरों में जाकर उसका प्रदर्शन किया । उससे अधिक् लाभ न होने पर भी मन को कुछ शांति अवश्य मिली । बम्बई के मित्र मजीवराय ने इस शिवसदन क लिए ध्वनिवधक यत्र भेंट किया ।

शिवरायजी के गुजर जाने के बाद, जिस पुत्तूर में मैं बहुत वर्षों स रह रहा था वहाँ का घातावरण तमश बदलता दिखायी दिया । वहाँ उनक नेतृत्व में जो जो काम हो रहे थे सब बढ़ होते जा रहे थे । कुछ नये ढग के नेता आग आन लगे ।

साहित्य

इस दशक में 'विज्ञान प्रपञ्च' का अंतिम भाग प्रकाशित हा गया । बडे साहस और परिश्रम में विषय सग्रह करके जो 'यक्षगान और वयलाट' लिखा था उसका सशोधित संस्करण भी निकल गया । मैंने अनेक घरा की सहायता से ताडपत्र एकत्रित किये । उमी गाँव के बुजुग साहित्यकार उग्रान मनेशराय की सहायता से 'वेतालेश्वर रामायण' का सम्पादन करके प्रकाशित करना सम्भव हो पाया । मेरी यक्षगान के बारे में लिखी पुस्तक स्वीडन की एक संस्था के ध्यान में आयी । 'इंटरनेशनल डांस आरक्वाइव्ज थे ब्युरेट्ज वेंट हेगर पुत्तूर आये । उस संस्था के सम्पापक राल्फ द मारी का परिचय मुझसे मन 1935 में हुआ था । इस बार उनके प्रतिनिधि ने अपनी स्टावहोम संस्था की ओर स मेरे यक्षगान से सम्बन्धित काय के लिए एक कास्य पादक प्रदान किया ।

शायद इसमें हमारे तश की आँखें खली होगी । साहित्य अकादमी न उसी पुस्तक पर मन् 1967 में अकादमी पुरस्कार प्रदान किया ।

तीन-तीन यात्राएँ

युनेस्का

दो दशक पहले जब मैं यूरोप गया था तब मैं पेरिस में चार दिन ठहरा था। वहाँ मेरा कोई परिचित नहीं था। हाँ, श्री ईगलटन से परिचय था जो लम्बे असें तक मैसूर में प्रोफेसर थे। मैसूर में उन्होंने स्थानीय मित्रों को साथ लेकर प्रौढ़ शिक्षा के बारे में विशेष प्रयत्न किया था। जब मैं पेरिस गया तब व युनेस्का सस्था में काम कर रहे थे। उनसे भेंट करने से उस सस्था के शिक्षा विभाग के प्रमुख जॉन बावस से मित्रता हुई। आग 1954 के आस पास श्री जान बावस ही मैसूर के समीप यलवाल में प्रौढ़ शिक्षा हेतु कुछ अनुसंधान करने के लिए दो साल तक रहे। उस धर्वाधि में मैंने उन्हें प्रौढ़ शिक्षका के लिए पाठ्य-पुस्तकें सहायक पुस्तकें तथा शिक्षण की अन्य सामग्री तैयार करवा दी। उस मित्रता से युनेस्को सस्था को मेरे कार्य का परिचय मिला होगा। इसलिए उस सस्था के पौरात्य विभाग ने सन 1967 में तहरान में जो प्रौढ़ शिक्षा पर एक गोष्ठी का आयोजन किया तो उसमें भाग लेने के लिए मुझे भी आमन्त्रित किया गया। केन्द्रीय शासन ने शिक्षा विभाग से डा० शमा को उसमें भाग लेने के लिए भेजा था। उस गोष्ठी में नेपाल, पाकिस्तान और सिंगापुर से भी चार-पाँच प्रतिनिधि आमन्त्रित थे। इससे बहुत समय के बाद मुझे फिर से तहरान जान का अवसर मिला।

खाली हाथ यात्रा

वहाँ जाने का अवकाश तो मिला। आने-जाने का पत्र और वहाँ ठहरने का खर्च सस्था वहन कर रही थी। पर खाली हाथ वहाँ जाने पर काम कन चल पाता? मुझे यह चिन्ता सतान लगी कि पर्शिया के इतिहास प्रसिद्ध पासों पोलिस, सिराज, इस्पाह जैसे स्थान देखे बिना वापस आना सम्भव होगा? उसक लिए हाथ में कापी पैसे की जरूरत थी। इसके अलावा तहरान में टपती और नास्ता-पानी के लिए भी पस चाहिए थे। मैंने सरकार से विदेशी मुद्रा माँगी तो उसने

केवल 20 पाँड (360 रुपये) की मजूरी दी, इसलिए पश्चिमा देश को देखने की मेरी इच्छा जाती रही। और फिर जब मैं जा रहा था तब एयर इण्डिया के इंजिनियरों की हड़ताल चल रही थी, इसलिए हमारा विमान तेहरान के बराय लबनान के बेरुत में उतरा। मेरे प्रवास का एक दिन व्यर्थ गया। हाथ के पैस उस दिन घूमने में काफी खर्च हो गए। खर, दूसरे दिन आर किसी कम्पनी के विमान से तेहरान पहुँच कर गोष्ठी में सम्मिलित हुआ। उस दिन सभा में चर्चा का विषय था—प्रशिक्षण के बाद भी प्रौढों में शिक्षा लाभदायक क्या नहीं हो रही है? मैंने सुझाव दिया—'प्रशिक्षण पान के बाद प्रौढ यदि आगे अपन आप पढ़ना चाहते ह तो उनके मानसिक स्तर के अनुकूल पर्याप्त पाठ्य सामग्री मिलनी चाहिए।' यह सुझाव न केवल पसंद किया गया अपितु उसका लिए नया कया करना होगा उस पर भी काफी चर्चा हुई।

नया परिचय

उस गोष्ठी में नेपाल के प्रतिनिधि श्री कमल दीक्षित से न केवल परिचय ही हुआ अपितु गहरी दोस्ती भी हो गयी। उन्होंने भारत में शिक्षा प्राप्त की थी। बापू में वे नेपाल के एक राणा परिवार की संपत्ति की देखभाल कर रहे थे। उनका अपना प्रस था इसलिए वे मेरे ज्यादा समीप आये। भारत के प्रतिनिधि डा० शर्मा ने गोष्ठी का सारा समय अपनी कारगुजारी के बखान में और हिंदी भाषा की महिमा के गुणगान में ही बिताया। बीच-बीच में पाकिस्तान के प्रतिनिधि उन्हें टोक देते थे। वहाँ हमारे तीन दिन के प्रवास में घूमने घूमने और बातचीत करने में श्री कमल दीक्षित ही मेरे अधिक निकट रहे। उन्होंने मुझे नेपाल आन का निमन्त्रण दिया। हम दाना न मिलकर नगर का भ्रमण किया। हमारे आतिथ्य में किये गये राज वैभव के समारोहों में हम दोनों न भाग साथ भाग लिया। टेलीविजन पर एक सड़की का पशियन गीत भी सुना। मैंने अपन हिन्दुस्तानी सगीत और वहाँ के सगीत की निकटता का अनुभव किया। हमें अतिरिक्त वहाँ और कुछ भी नहीं देखा। हम व लोग नगर के समाप के एक पहाड़ी प्रदेश पर ले गये थे। मैंने अपने होटल की पिडकी से ही एनब्रूच पकत थर्णा को देया। बस, वही एक स तोप था। विमान की हड़ताल के कारण मैं अभी बिता में डूबा रहा कि किसी प्रकार एक बार चम्पई पहुँच जाऊँ। किसी प्रकार तेहरान आये और बेलिजियम के सर्वेना विमान से चम्पई पहुँच गया। इतिहास प्रसिद्ध पश्चिमा देश मेरे लिए एक सपना ही बनकर रह गया।

काबुल के मित्र

भरती तेहरान यात्रा की बात काबुल में रहनेवाले भर एक मित्र श्रीम आचार्य

को पता चली। उन दिनों वे काबुल में अध्यापक थे। इससे पहले वे उडुपि के एम जी एम कॉलेज में गणित विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होंने 'आप तेहरान से स्रोतों के समय काबुल में दो दिन के लिए मेरे पास ठहरियेगा', कहकर निमन्त्रण दिया। उस समय मेरे लिए वहाँ जाना संभव नहीं था। एयर इण्डिया की हड़ताल के कारण मुझे अपने घर पहुँचना ही एक समस्या थी। फिर भी अफगानिस्तान मेरे लिए एक नया देश होने से उसे देखने की बड़ी इच्छा थी। इसलिए मैंने अपने आप अगले साल काबुल जाने की योजना बनायी। श्रीश आचार्य ने वहाँ की सारी व्यवस्था की। उन्होंने लिखा था कि काबुल से 150 मील की दूरी पर बौद्ध युग का 'बामिया' है और वहाँ से 100 मील आगे जाने पर 'बु दे अमीर' नाम का एक जलाशय भी है।

काबुल से

इन प्रकार दूसरे वर्ष में दिल्ली पहुँचा और वहाँ से विमान द्वारा काबुल गया। वहाँ का सारा प्रबंध मेरे मित्र आचार्य पर था। यात्रा पर जानवाने भारतीय टिकट के लिए अपने पैसे नहीं ले जा सकत। उन्हें परदेश में दूसरा के सहारे रहना पड़ता है। चार पाँच दिन में उनका अतिथि बनकर रहा। काबुल नगर घूम आया। उनकी पत्नी बेटे और उनके एक मित्र के साथ काबुल से 150 मील दूर स्थित बामिया देखने गया। पूरा रास्ता बजर है और पर्वतों के बीच से सकर रास्ता से जाना पड़ता है। उसके एक तरफ काबुल नदी बहती है जो आगे चलकर सिंधु से मिलती है। इस नदी का उदगम दस हजार फुट ऊँचे पर्वत में होता है। उसके पास की घाटी का रास्ता में मोटरों का शक्ति-परीक्षण हो जाना है। आस पास के पहाड़ भय उत्पन्न करते हैं। बाद में उनगई जाती है। वह आकमस (आमूर) नदी की दूसरी घाटी है। वहाँ दोना और हरियाली रहित विविध रंग के भयानक पर्वत और पर्वत शिखर दिखाई दत हैं। उस रास्ता में होते हुए हम बामिया नगर पहुँचे। वहाँ भी चारा ओर सड़का रंगों के रागसाकार पर्वत और उनकी प्राकृतिक दीवारें हैं। इसी नगर में तीसरी या चौथी शताब्दी में राजा कनिष्क के जमाने में बामिया में एक महान् बौद्ध सम्मेलन हुआ था। वहाँ के पर्वतों की दीवारों के कृतक गुहाघरा में आज भी लोग बसत हैं। दुनिया की सबसे बड़ी बौद्ध प्रतिमाएँ वही हैं। उनमें एक 125 फुट की और दूसरी 175 फुट की दयाकार बौद्ध मूर्तियाँ हैं। आगे उन देश पर सना लेकर आये इस्लामी मूर्ति भजकों के आक्रमण से ये प्रतिमाएँ कितनी विवृत हो चुकी हैं, मानव की धर्माघता के साक्षी के रूप में वे आज भी बची हैं।

उसी बामिया में एक बार मंगोल नेता चंगेज खान की सना की हार पानी पड़ी थी। आगे उसके बेटे ने दुबारा उस नगर पर आक्रमण करते उनका ध्वज

लिया और वहाँ जन संहार किया। बामिया नगर के चैत्यालयों और प्रतिमाओं को देखकर मरुभूमि के समान पहाड़ों के रास्ते से और 100 मील यात्रा करके 'बुदे अमीर' सरोवर देख आया। वहाँ के पहाड़ों का सौंदर्य और ही प्रकार का है। उन सब के बारे में 'पूर्व से अत्य पूर्व' यात्रा पुस्तक में विस्तार से लिखा है।

मित्र श्रीश आचाय की कृपा से काबुल का दशन हो सका। काबुल में मुगल बादशाह बाबर की समाधि देखने का अवकाश भी मिला। इन सबने श्रीश आचाय के आतिथ्य की स्मृति की अमिट छाप छोड़ी। काबुल से मैं और एक बार मुलेमान पर्वत देखकर स्वदेश लौट आया।

नेपाल की यात्रा

नेपाल के दूतावास में मेरे परिचित बांग्लोडी देवराय 'चाज डी अफेयर' थे। उन्होंने मुझे नेपाल आमंत्रित किया। तेहरान में श्री कमल दीक्षित ने भी नेपाल आने का आमंत्रण दिया था। बहुत दिनों तक वे दोनों आमंत्रण स्मृति में रहे। उही दिना मुझे दिल्ली जाना पड़ा। एक बार मैं कुदापुर गया था तो शाम के समय हमारे जिले के कमिश्नर श्री नागगीड ने फोन से सूचित किया, "हमारी सरकार ने आपका पदमभूषण प्रदान किया है। कृपया आप उसे स्वीकार करें।" उस समाचार से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने वह खबर किसी को नहीं बतायी। मुझे यह आश्चर्य हुआ कि सरकार ने मेरे सिर पर इस प्रकार का सम्मान क्यों लाया। मैं पहले से कांग्रेस सरकार की आलोचना करता आ रहा था। यह झाल आया कि उस समय की निजलिगप्पा सरकार ने अथवा किसी मित्र ने मेरा राजनीतिक दृष्टिकोण ध्यान में न रखते हुए केन्द्र को मेरा नाम सुझाया होगा। फिर भी मन ही मन मैंने उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की। खैर, तब मैंने सोचा कि इससे नेपाल की यात्रा के लिए सुअवसर मिलेगा।

एक यात्रा के साथ दूसरी यात्रा

मंगलूर से सीधे दिल्ली जाने में कोई दिक्कत नहीं है। पर मेरी बुद्धि सीधी चलन को तैयार नहीं थी। दिल्ली पहुँचने में पहले अपनी अर्थ अभिलाषाओं को तप्त करने की आवश्यकता से मैंने निश्चय किया कि पहल है रावाद में रहनेवाले अपने भाई के घर जाना चाहिए। वहाँ से विमान से भुवनेश्वर जाकर अपनी आँखें तप्त करनी चाहिए। फिर विमान से ही बलकत्ता जाकर अपना भतीजे रामानंद के घर एक दिन बिताकर बाद में नेपाल का राजधानी काठमांडू जाना चाहिए।

भुवनेश्वर में दर के समीप बान धारवल के समय में छपगिरि, उदयगिरि के गुहालय और कोणाक की अद्भुत वास्तुकला ने मुझे स्वप्नलोक में विहार

कराया। वे सब भारत की वास्तुकला और शिल्प के बारे में उत्साह पदा करने वाली कृतियाँ हैं। उन सबका देखा। कलकत्ता में दो दिन ठहरने के बाद, सीधा उड़ा तो बंगाल का मदानाई प्रदेश लाघत ही भव्य हिमालय क दशन हाने लगे। बहुत बप पहल, मुझे शिमला नगर म दूर स हिमालय की एक शान्ती के दशन हुए थ। अब ऐसा नही था हजारा मीलो तक फली पवतावली तथा एवरेस्ट और काचनजगा के शिखरा पर विहगम दष्टि डालन का अवसर मिला।

देवराय तथा दीक्षित

काठमाडू में विमान से उतरत ही दोना मित्र मेरी प्रतीक्षा में खडे थे। मैं देवराय जी के घर में ठहरा। उनकी सहायता से पाटन, भाटगाव, काठमाडू के पशुपतिनाथ, स्वयंभूनाथ के मंदिर देखने का अवसर मिला। मित्र कमल दीक्षित के आतिथ्य का सौभाग्य भी मिला। इतना ही नहीं, देवरायजी ने तो मुझे भारतीय संस्कृति का दूत ही बना दिया था। भारत नेपाल मंत्री सघ की ओर से एक सभा का आयोजन करके मेरा सम्मान किया गया और उसकी स्मृति के रूप में मेरे सिर पर एक नेपाली टोपी भी पहनायी गयी।

बहुत पहले श्री देवराय मगलूर में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। तब उन्होंने एक साहित्यकार के रूप में अच्छा नाम कमाया था। उनकी उदारता और स्नेह का मैं बखान नहीं कर सकता। उन्होंने भारत और नेपाल की मंत्री और घनिष्ठ करने के लिए जा परिश्रम किया वह प्रशंसनीय है। ऐसा काम एक ईमानदार राजदूत ही कर सकता है।

काठमाडू में मुझे पता चला कि हिमालय और काठमाडू के बीच महाभारत नाम की एक पर्वतश्रेणी है। यह दिवगत पण्डित नेहरू की राजनतिक सूझबूझ थी कि नेपाल के मंत्री राणा खानदान की मुट्ठी से निकलकर राज्य वर्तमान राजघराने का हाथ आया। बाद में नेपाल के राजा को यह गलतफहमी हो गयी कि वही नीति भारत नेपाल राज्य में स्वतंत्रता जगाकर बोझाला जैसे व्यक्तियों को उकसाकर वहाँ के राजघराने को गिराने के प्रयत्न में सहायक हो रही है। तब नेपाल ने अपने उत्तर के विशाल राष्ट्र चीन की आर हाथ बढ़ाय और हमारे देश की मंत्री की आर सन्दिग्ध दष्टि से देखने लगा। चारों ओर से बड़े राष्ट्रों से घिरे छोटे राष्ट्रों की दशा ऐसी ही होती है।

जब बाबुल गया था तब ऐसी ही एक विचित्र परिस्थिति देखने को मिली थी। बाबुल में एक ब बाद दूसरे राजा गद्दी पर बैठन गये और गिरत गय। उस रिज्ञाकर अपन पक्ष में करन के लिए रूस आग आया। उसने बाबुल तक राज-भाग बना डाला। अमरीका, फ्रांस, इंग्लड भी उसकी सहायता को आगे आये।

इन उदार राष्ट्रों में होड-सी लग गयी। आज अफगानिस्तान रूस की मुटठी में फसा है। अफगानिया की स्वतन्त्रता आज बठपुतलियों की स्वतन्त्रता रह गयी है।

दिल्ली

चार-छह दिन काटमाडू में टहरा के बाद, दिल्ली में आयोजित राष्ट्र प्रशस्ति वितरण समारोह में पहुँचा। उस वक कर्नाटक से मुझे जस पद्मभूषण मिलने वाला था वैसे ही नम्रविशेषण डा० मादी का भी मिलना था। हमारी ही तरह उसी दिन पद्मविभूषण पद्मभूषण और पद्मश्री उपाधियाँ प्राप्त करने काई बीस-तीस लाख आमंत्रित थे। राष्ट्रपति जाकर हुसैन हम लागा को वह सम्मान प्रदान करनेवाले थे। इंदिरा गांधी भी उम समारोह में उपस्थित थी। उस दिन समारोह में काफी पहले प्रशस्ति प्राप्त करनेवाला को एक रिहमल कराया गया था। बाद में शाम को निश्चिंत समय पर विधिवत् समारोह हुआ। उससे कर्नाटक के लोगो का मैं अपनी ऊँचाई से कोई छह इंच अधिक बड़ा दिखायी दिया हूँगा। आखिर मैं उस दिन पद्मभूषण का विजेता जा बना था, 'विजेता' शब्द का अर्थ जाननेवाला के लिए। पता नहीं, किस जीतन से वह विजय मिला? सरकार द्वारा नियमित सम्मान को विजय किस अर्थ में कहा जाए? वह काई स्पर्धा है?

इस विषय को समाप्त करने में पहले एक दो मजदूर घटनाएँ बताना चाहता हूँ। उस समारोह के बाद कर्नाटक से आनेवाले यानी मुथ और डा० मादी का डा० महिषी (उपमन्त्री) ने रात्रि भाज पर आमंत्रित किया था। वहाँ कुछ और भी कानड़वाल आमंत्रित थे। जब हम साथ बैठे तो नम्र विशेषण डा० मोदी ने मन्त्रालय में एक बात कही। उस दिन उह सम्मान स्वीकार करते समय राष्ट्रपतिजी के काता घग्गा पहन मुठ की जोर देखकर कृतपता से नमस्कार करता ही था। मोदी जी ने उस काले चश्मे को बड़े ध्यान से देखा होगा। अतः उस दिन के समारोह के बार में बार्ने करने हुए उहान मुसब कहा, 'राष्ट्रपति जी को एक आँसू एकरम नहीं है।' खैर उह ऐसा नहीं कहना चाहिए था। राष्ट्रपति जी अंधे नहा थे। प्रधानमंत्री के साथ पत्रों पर हस्ताक्षर करने वाली यह तो उनकी गांधारी वृत्ति होती है।

और एक खोज

उस दिन के अतिथियों के चार में डॉ० महिषी को चार बार्ने कहनी ही थी। उन्हें मरने परिरक्षक रहा ही होगा। वे बेलगाँव के सा कानड़ की छात्रा थी। एक वक कानड़ के बार्नेको रूस में अफगान बनकर गया था। उम दिन मैंने अपने

हाथों से एक स्वर्ण पदक (कालेज की ओर से उनकी किसी सफलता के लिए) उन्हें प्रदान किया था।

उसके बदले उन्होंने उस दिन रात्रि भोजन के समारोह में आगतुको को मेरा परिचय कराते हुए फरमाया "इन्होंने 'कानूर सु-ब्रम्मा हेगडती' जैसे महान उप-याम की रचना की है।" वह खबर यदि वे वी पुटटप्पा को मिल जाती तो वे मुझ पर कृतिचौय का दावा कर सकते थे। इतना ही नहीं उससे यह जय लगाने का भी अवकाश था कि मैंने उनके पद्मभूषण' विरुद्ध को तो नगी चुरा लिया क्याकि कुछ वष पहले ही वह उन्हें भी प्राप्त हुआ था।

मानसिक तृपा

जा भी हा मैं बुद्धिजीवी रहा, श्रमजीवी नहीं। यह इस अर्थ में कि दृष्टिक दल में किसी चीज की साधना नहीं की। अपन पचासवें वष पूरा हान तक भी, जैसा मैंने शारीरिक श्रम किया वह उस श्रम का फल अनुभव करन के लिए नहीं था। वह फल भी मानसिक ही था। जहाँ तक दैहिक श्रम की बात है मैंने अपन यौवन में सात आठ वषों तक योगाभ्यास करके, कनाटक के कई गाँवों में भ्रमण करके, वहाँ के तरणा को प्रशिक्षित भी किया था। तीये दशक में तरणा का दल एक दिन करके, गान्ति शिविरा का आयाजन भी किया था। नुएँ आदि सुन्वाय, तालाब साफ करवाये थे। पर वह सब मैंने खुद कम किया था। परन्तु उन दौरान प्राकृतिक सौन्दर्य देखन या और कुछ देखन की चपलता से पाँवा का जूब चवाया था। कई बार पहाड़ की चढ़ाई उतारने की थी। ऐसा श्रम व्यायाम का अर्थ नहीं है। पहाड़ों और जगता में जाखा का भूख मिट्टी। शारीरिक घकावट के बिना वैसा हो पाना कठिन है। उनक लिए अविद्याय पैदल भ्रमण दूसर प्रकार का हाता है। तब आँखा रो तृप्त करन की उस अभिलाषा में वह का वह श्रम महसूस ही नहीं होता।

मैंने अनेक बार ऐसे प्रवाम किया है। उमर बढ़ते-बढ़ते मैं पाँव मेरा शरीर ढीले में कमजोर पडत जा रहे हैं। एक एसी घटना घटाता है। मैंने काशिक रामायण का मपादन करके उसे प्रकाशित कराने का विचार किया था। तब उन वक्ती की अधिष्ठात्री देवी कौन है कहाँ है—यह खोजने का अवसर आया। उसका मंदिर उत्तर कानड जिले की घाटी की दीवार के बीच 'याण' नामक स्थान पर था। उसे दपने की इच्छा से शिर्षी गया। वहाँ से वी एक श्रोघर जैसे मित्रा को साथ लेकर शिर्षी से बारह मील दूर हगडेकटट गया। वहाँ एक घर में आतिथ्य का आनन्द लकर, अगले दिन उनके दिव्य वाहन से आठ दस मील की यात्रा की। उस वाहन का हन वहाँ तक पहुँचा आना ही बड़ी बात थी। आग पन्हा के पास, वाहन से उतर कर पैदल जाना था। वहाँ उनरामी और चढ़ाई दाता ही

थी। वह पहाड़ के पास का सकरा रास्ता है। मुझे अपन साहस पर यह विश्वास था कि मैं वहाँ चल सकूंगा पर कुछ ही दूर चलने के बाद इससे पहल का वह कुटचाट्टि पुष्पगिरि, कुदरेमुख की पहाड़ी आदि पर चढ़ने उतरने का सारा घमण्ड जाता रहा। एक दो मील चलन के बाद मुझे कहना पडा, "आप सब आगे जाकर गेच आइए, मैं यही आपकी प्रतीशा करूँगा।" पर क्या व लोग मुझे छोड कर जात ? जस-तस पाँच छह मील चलकर अनादि काल के चूना पत्थर के बन उस मंदिर को देखा। बाबरी की सी आकृति वाल उस टीले पर एक गुफा है। वह गुफा प्राकृतिक है। उसम पानी रिसता रहता है। उस प्रकार रिसत पानीवाली दीवार ही भरव कहलाती है। बूडे पुराने उसे भरव मानते थ। 'चतवसव पुराण म कहा गया है 'अधेरी गुफा मे वतलेश्वर विराजमान हे।' आँखा से न दीखनेवा न भरव की ता मैंने कल्पना कर ली और उस दीवार की फोटो भी छीच ली। उसी प्रकार का दृश्याकार चीटिया के बिल जैसा दीखनेवाला टीला निचली-वाती घाटी म है। वह चण्डी का मंदिर है। सुना है वहाँ उसक भीतर छह फुट की एक कास की प्रतिमा थी। वह कुछ दिन पहल तक थी। हाल ही म उसकी चारी हा गयी थी। बहुत थक जान क कारण मैं उस देवी को देखने न जा सका। खैर उम यात्रा से इतना ता समझ म आ गया कि आग स मुझस शारीरिक थ्रम का कोर् भी काम नही हो पायगा। उसम एकमात्र अपवाद होगा—मन की मस्ती की धुन का शिकार हाकर काल्पनिक भावा म बहकर नत्य करने का काम। उसस शारीरिक थ्रम की कल्पना की बात ही नही उठती।

गुरु विन विद्या

मर नत्य का डग उसका आकषण उसका दुख मुख जा भी है वह सब मुझम ही पदा हुआ है और वह सब काय मैंन सन् 1940 तक किय हैं। पुत्तूर का दशहरा उत्सव बन् हो जाने के बहुत दिन वात् तक मैं नत्य के चक्कर मे नही पडा। लेकिन फिर मे 1958 मे उसम कूद पडा। तब मैं ब्रह्मावर मे एक यक्षगान गोष्ठी चला रहा था। उम गोष्ठी म आये कुशल नतका के सामने अपन मन का उफान निकालन क लिए लगातार दो घण्टे तक नाचा। उसके दो दिन बाद कदम उठाना भी मुश्किल हा गया। लेकिन नत्य क समय किसी भी प्रकार की थकान नही महसूस हुइ थी। उपयुक्त एकमात्र प्रसंग यदि छोड दें तो सातवें दशक म मैंने उपन पाँवा का कभी थकाने की कोशिश नही की।

उस अवधि की भय

मुझे अपन ग्श की वास्तुबला का सौन्दर्य दखन की लालमा सदा जागत रहती है। इसी कारण मैंन भुवनश्वर की यात्रा की थी। उस यात्रा म ईमा पूक

की कुछ गुहाएँ देखी। आठवीं शती और तेरहवीं शती के रचित दैत्याकार देवालय और भव्य मूर्तियाँ भी देखी। इस प्रकार मैंने ममस्त उत्तर और दक्षिण भारत के अधिकांश मंदिर देख डाले। यह तसल्ली भी थी कि कम-से-कम एक बार राजस्थान जाकर अम्बेर, जजमेर, जयपुर की वास्तु और चित्रकला भी देख सका था। फिर भी कुछ ऐसे स्थल भुझे सदा याद जाने थे जिन्हें अब तक दख लेना चाहिए था, पर किसी कारण दख नहीं पाया था। उनमें मुख्य हंखजुराहो के देवालय। वसंत मासिक पत्रिका के सम्पादन के समय मैंने सत निहार्सिंह की पुस्तक पढ़कर जोर उसमें दिय चित्रों का देखकर मुग्ध हुआ था। बाद में मार्टिन हॉलमन द्वारा प्रकाशित खजुराहो पर एक पुस्तक में वहाँ की वास्तुकला के सौंदर्य को देखने का मौका मिला था। पर वह स्थान देख नहीं पाया था। मैंने पढ़ा था कि वह यासी से इलाहाबाद जानेवाली लाइन पर पड़ता है। बीच के स्टेशन पर उतर कर जंगल के रास्ते साठ से अम्सी मील तक पैदल जाना पड़ता है। वहाँ किसी प्रकार की सुविधा नहीं है। इस डर में मैंने कुछ दशक तक अपनी इच्छा को दबा रखा था। भुवनेश्वर की यात्रा ने उस लालसा को भड़का दिया। सौभाग्य से पता चला कि दिल्ली से खजुराहो तक विमान सेवा शुरू हो गयी है। इसलिए पुनः एक बार जब दिल्ली गया तो वह लालसा भी पूरी कर ली।

खजुराहो

मध्य प्रदेश में स्थित इस स्थान ने दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में चंदेल राजघराने के शासन के समय बड़ी उन्नति की थी। उनके शासन के डेढ़ सौ वर्ष के समय में ही खजुराहो स्थान पर लाल पत्थर से एक नहीं सौ से भी ज्यादा मंदिर बनाए गये। वास्तु और शिल्प के सौंदर्य से युक्त वे मंदिर एकदम दायें बायें स्थित राजस्थान, बिहार अथवा दक्षिण के प्रभाव के बिना बस बन गये यह एक आश्चर्य की बात है।

वहाँ मैं थोड़ा समय ही बिता पाया। उस स्थान को देख आये मित्रों से सुन रखा था कि वह जन संचारहीन स्थान है परंतु जब मैं वहाँ गया, तब वहाँ ऐसा नहीं था। वहाँ प्रवासियों के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करायी गयी हैं, मागदर्शन भी है। वह कला का ऐसा अगार है कि कलाप्रेमी वहाँ महीनों बिता सकते हैं। वहाँ मैं थोड़ा ही समय बिता सका, पर उस अवधि में मैंने विष्णु, ईश्वर, दुर्गा आदि पौराणिक देवताओं के सँकड़ा अवतार और विविध रचानों को देखा। वहाँ के पुरातन शिल्पों में जीवन के शृंगार को रूप प्रदान करने के असंख्य तरीके देखे। पुरी और कौणाक में दिखायी दन वाले और एक प्रकार के शिल्पों को अद्भुत प्रमाणों में देखा। कामशास्त्र ही नहीं, काम के विद्वान रूप के अनन्य माध्यम देने। हम साग मिथुन शिल्प का प्रयत्नपूर्वक घाट बोर्ड

विशेषण दें और वहाँ दिखायी देनेवाले शिल्प पर उस आरोपित करें परंतु मन में समाधान लाने की स्थिति तक हम पहुँच नहीं सकते। उन्हें देखकर मैं यह सोचकर लौटा कि जीवन में सुख भी है, दुःख भी है, रस भी है, विरस भी है, बस ही मौ दय भी है जुगुप्सा भी है।

नमदा का तट

जोर एक बार मैं (अब समय जोर प्रसंग भूल चुका हूँ) नमदा तट पर बसे जगन्पुर गया। वहाँ एक प्राकृतिक जलाशय है जो नमदा ने अपने प्रवाह से सग मरमर को छेदकर निर्मित किया है। वह दृश्य देखकर लौटते समय मुझे वहाँ ले गय सज्जन ने कहा, 'यहाँ भी एक प्राचीन मंदिर है बल्लिए देखें।' वह एक टीले पर निर्मित एक वृत्ताकार मंदिर है। उस वृत्त के चारों ओर चार पाँच फीट ऊँची सलखड़ी की चौमठ स्त्री मूर्तियाँ बनी हैं। मातृदेवियों के चौमठ अवतारों का वहाँ एक विशिष्ट शली में उभेरा गया है। मानव की सबसे पुराना देवी उनकी माँ है। बाप में माता पिता के सम्बन्ध से उसके मन पर छाप डालनवाला एक जोर देवता है—लिंगरूपी शिव। वहाँ के मंदिर का चौमठ यागनियों का मंदिर कहते हैं। मध्यप्रदेश में चंडेला के बाद कलचुरी घराने की एक रानी ने वह मंदिर बनवाया था। नाट्यक में राष्ट्रकूट की शक्ति कम करने वाले कलचुरी राजा ही थे। राष्ट्रकूट के बभ्रव के साथी यदि एलारा गुहालय जोर बारगाबाद है तो कलचुरी राजा का बभ्रव का एक सुंदर नमूना यह मंदिर है। वहाँ की प्रत्येक प्रतिमा मूर्तिभक्तों के हाथ चूर चूर हो चुकी है फिर भी अब तक प्राण्य श्वशेषों से ही उनका नष्ट हो चुका रूप सौ दय की कल्पना की जा सकती है। उनकी शली जल त सरस सुंदर स्वतंत्र जोर गम्भीर तथा उन्नत है। ऐसे प्रवामों से अपने मन का तप्त करना मेरा सदा का स्वभाव है। मैं कबल वही एक ही काम नहीं किया फिर भी उमस मरी अभिरुचि को पोषण अवश्य मिला है। पाश्चात्य शिल्प और चित्रा का सौंदर्य देखकर आगे के बाद भी मेरे मन को सन्तोष देनेवाली और अपने पूर्वजों के प्रति मेरे मन में गव जागृत करने वाली अगर कोई चीज है तो वह है हमारा वास्तु और शिल्प।

हमारी माधना क्या है ?

मानव के जीभर देने योग्य किसी किसी द्वारा बनायी चीजें देख कर या परोक्ष में गुनकर वाह वाह कर देने से ही क्या हमारा काम उतम हो जाता है? यह प्रश्न मुझे गदा सालता है। मेरी आयु का बहुत बड़ा भाग अब समाप्त हो चुका है। मैं किसी कामोत्तर नहीं रहा अतः अब भी उठ जीवन चलाना असाध्य है। घूम घूम कर देगना चाहिए, विविध साहित्य पढ़ पढ़ कर पान प्राप्त करते रहना चाहिए,

जीवित रहने तक कोई न कोई साधक काम करते रहना चाहिए—यही बात सदा मेरे मन में बनी रहती है। मेरे विचार से हम तभी यह महसूस कर सकते हैं जब कि हम जीवन को जीवन की तरह जी रहे हों। इसलिए प्रयामपूर्वक कई प्रकार के कामों का भार अपने सिर पर लाद कर परिश्रम करते हैं। वर्षों निताय हैं। छह मात वर्ष तो 'बालप्रपत्र' में काट दिये। तीन वर्ष 'अथ कोश' के निमाण में लग दिये। पाँच वर्ष विज्ञान प्रपत्र में लगाये। लगाये या काट यानी समय इस ढंग से बीता कि इस बात का बोध ही नहीं हुआ कि कस बीत गया। उसी गुण से कौशिक रामायण के सम्पादन जैसा नीरस काम भी मुझे उबाऊ नहीं लगा। सग्न से करने वाले काम में श्रम नजर नहीं आता।

सातवें दशक के जीवन में फिर से प्रश्न उठा कि अशांति कितने काम बिनाए जायें। छापाखाना बन्द कर दिया। केवल प्रकाशक बन गया। पर तब यह भय हुआ कि यदि मैं उसी काम को करता बठा रहा और गादाम में पड़ी पुस्तकें बीडा से नष्ट हो गयीं तो परिश्रम से कमाया खोडा बहुत पसा भी स्वाहा हो जाएगा। तब पुस्तक प्रकाशन की जिम्मेदारी भी मैंने बगलूर की ए. वी. एच. सम्था का माप दी। तब सोचन लगा कि चलो अब आराम से बठा जा सकता है।

आराम में बठ नहीं सकता

अब तक तो कभी चुपचाप बठा नहीं रहा उसमें आगे ऐसा करना सम्भव है? यह एक बडा प्रश्न है। करने के लिए कोई काम न होने पर भी किमी न किमी आवश्यक या अनावश्यक काम में डूब जाना मरा स्वभाव हो चुका है। आगे के लगभग मरे सार काम ऐसे ही है। दूसरे लोग चाहें या न चाहें आ विषय मुझे पसन्द है उसमें मन लगा देने की आदत आगे भी जारी रही। एन ही कुछ उदाहरण आपके सम्मुख रखता हूँ।

चालुक्य वास्तुशिल्प

इस अवधि में मैं कनाटक सरकार की संगीत-नाटक, ललित-कला और साहित्य—तीनों अकादमियाँ का सदस्य रहा। उनकी साल में दो या तीन बैठकें होती थीं। एक बार ललित कला अकादमी की बैठक में मैंने कहा, "हम जनता में कलाओं के प्रति अभिरुचि पैदा करने के लिए क्या कर रहे हैं? दूसरे देशों में चाहे अकादमियाँ हो या म्यूजियम चुपचाप बैठे नहीं रहते, वे अपने यहाँ की कला सम्पदा का परिचय कराने के लिए विशेष प्रयत्न करते रहते हैं। हम क्या कर रहे हैं? समाए करते हैं ज्यादा से ज्यादा हम जिनको कलाकार ममज्ञत हैं उनका सम्मान कर देते हैं वयं। जनता का कला न धारे में जानकारी देने के लिए हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। हम जिनको सम्मानित करते हैं वे कलाकार बतलाते

लगते हैं। उससे पहले हमें स्वयं समझना चाहिए कि क्या क्या है और किन लोगों को कलाकारों के रूप में सम्मानित करना चाहिए? क्या हम ऐसा वातावरण पैदा कर रहे हैं?"

तब एक सदस्य ने पूछा, 'इसके लिए क्या प्रयत्न किया जाय।'

उस पर मैंने व्यथित होकर कहा, देखिये कर्नाटक का एकीकरण हुआ। उसकी स्मृति में एक बड़ा ग्रंथ की रचना की गई। उस खालकर देख ता ऐसा लगता है कि पुराने मसूर के अलावा और कहीं वास्तुकला जैसी कोई चीज ही नहीं है। मसूर में सम्बन्धित कृतियों के अलावा और कुछ ही नहीं है। ऐहोल को भारत की वास्तुकला का पालना कहते हैं। ऐहोल, पट्टदकल्लु, वादामी और इट्टीगि लक्कुडी जैसे स्थानों का उस पुस्तक में ज़रा सा भी उल्लेख नहीं होना चाहिए था।'

उस उद्गार ने किसी का कर्कश नहीं किया। उसने मुझे ही जागृत किया। मेरा पहल से सीखा पाठ यह था—'हम वह चाहिए यह चाहिए' बहकर दूरियों पर भरोसा रखो तो काम नहीं चलता। मन सदा यही कहता, यदि तुम कुछ चाहते हो तो जा तुम्हें समझ में आता है वह करो। मेरे 'बाल प्रपञ्च' का जन्म भी ऐसे ही हुआ था। 'अधःकोश' भी ऐसे ही बना, 'विज्ञान प्रपञ्च' के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

उसी कारण मैंने कर्नाटक के वास्तुशिल्प के बारे में स्थूल परिचय देने वाली एक सवित्र पुस्तक लिखने का निश्चय किया। अब सोचने लगा कि कर्नाटक में कहीं कहीं क्या-क्या नहीं है? उसमें मैंने मसूर के हलेबीड, बेल्लूर, सोमनाथपुर तक ही था। उन्हें देखने से पहले मैं पट्टदकल्लु, ऐहोल, वादामी देख चुका था। कृष्णकुण्ड, इट्टीगि लक्कुडी तलवाडु, डबल, गलगनाथ, धन्लिगावि आदि का मैंने नाम भर सुन रखा था और क्या था? देकार रहने की अपेक्षा एक अच्छा काम तो मिला साचकर कमरा बंधे पर लटकाकर और एक द्वार घूमने चल पड़ा। जहाँ पहुँच गया था वहाँ भी गया, तब स्थानों पर भी गया। उनमें पट्टदकल्लु, ऐहोल, महाकूट वादामी आदि नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्हें देखकर कुछ ही वष बीते थे। जल्दवाजी के कारण कुछ ऐसे स्थल थे जो उस समय में नहीं देख पाया था। अब उन सब की कमरे में बंद करने गया। उपयुक्त सभी स्थानों की दो बार यात्रा की। वहाँ दुबारा जाने का और एक कारण था। अनेक मंदिरों के भीतरी भागों में पलश साइट फोटो खींचे थे। एसी फिल्मों की जब धीकर देखा तो चित्र एक दम साफ नहीं आय थे। फिर पुजलाया। फोटो खींचने में कोई तकनीकी गलती हो गयी थी। दूसरी बार खींच गये फोटो साफ थे। चँर, तीन गद्दीने डौड घुप करके कई क्लिप्स बरबाद कीं। उन सार चित्रों का सवधान करके उन्हें उतारे तो दय, शती और काल प्रम से छोटा।

छपाने की तैयारी

आगे और कुछ दिन तक वास्तुशिल्पो के अच्छे चित्रों की कापी तैयार की। उन सारे मंदिरों पर विद्वानों की लिखी पुस्तकें पढ़ी। बाद में झपना लेखन-काय शुरू किया। चित्र संग्रह का काम भी पूरा हो गया। मैं जानता था कि अच्छे छापा खाने में हजार प्रतिभा छपवाती है तो उस जमान में आठ दस हजार रुपये लगत थे। कुल 73 के लगभग चित्र चुने थे। मणिपाल छापाखाने में उसके प्रकाशन का प्रबंध किया।

बाद में ललित कला अकादमी की अगली बैठक में मैंने बताया, 'आप लोगो के सामने मैंने ऐसा एक काम करने के बारे में कहा था। अब उस पर काम कर रहा हूँ। एक हजार प्रतियों की कीमत इतनी बढ सकती है। दो हजार प्रतियाँ छपवाई जायें तो एक प्रति दस रुपये में बेची जा सकती है। वहाँ उपस्थित सदस्य मेरे मुँह की ओर देखने लगे। शायद उनका मतलब यह था कि इस सबके लिए पस कहाँ है। तब मैं बोला "आपको डरने की जरूरत नहीं है। उसके लिए सारा खर्च करके चित्र एकत्रित करके ब्लाक खरीदकर छपवाने की सारी तैयारी करके उसका नमूना यहाँ लाया हूँ। मेरा काम व्यर्थ नहीं जाएगा। अब आपकी महमति हो तो उसे मैं अपने ही नाम से छपवा सकता हूँ।' तब लाचार हो उह महमति देनी पड़ी। थगले दो तीन महीना में पुस्तक प्रकाशित होकर बाहर आ गयी। उहान उमका खर्च उठाया। मेरी खुशी का कोई ठिकाना न था। मैं सोचा इस खुशी में मैं और भी काम पाऊंगा। पर उस खुशी में एक ही डर था। अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तक की बिक्री की कोई व्यवस्था नहीं थी। ग्राहक या व्यापारी को चालान में पैसे दे अकादमी से मिलानेवाले थगड़े से बमीशन पर पुस्तकें खरीदकर बेचने की जिम्मेदारी लनी पडती है। उसके लिए उस अकादमी के कार्यालय में चार पाँच चक्कर लगाने पडते हैं। इस कारण छपी पुस्तकें अकादमी के कार्यालय में ही सुरक्षित पडी रहती हैं।

नया सुझाव

जिन दिना मडया के शकरेगोडा कर्नाटक में शिक्षामंत्री थे उनसे यह प्रश्न पूछना ही पडा 'प्रकाशित पुस्तक की बिक्री की आपने यहाँ कोई व्यवस्था नहीं है? अकादमीवाला ने कहा कि प्रतियाँ बिकी ही नहीं।' तब श्री गोडा ने परमाया, "उह खरीदकर हमारी शालाआ में बाँटने की व्यवस्था करेगे।' दूसरे दिन ही मैं उनसे मिलन गया। मैंने कहा, 'महोदय अकादमी सरकार के पास से पुस्तक छापती है और आप भी सरकारी पैसे से ही शालाआ में बाँटने को खरीदते हैं। पुस्तकें तो जनता तक पहुँचने के उद्देश्य से ही छपी जाती हैं। ऐसी व्यवस्था यदि नहीं की जा सकती तो पुस्तकें छपवाकर सरकारी पैसे व्यर्थ नहीं करना चाहिए।'

पता चला कि जाग उसी ललित कला अकादमी न मैसूर के किसी एक ही व्यक्ति क—फोटो का अनुकरण करके चित्रकार बननेवाले साहसी क—चित्रा को पचास हजार रुपये खर्च करके छपवाया था। मैंने ऐसी अकादमी के सदस्य के सामने कहा 'दिल्ली की ललित-कला अकादमी भारत तथा विविध देशों के और विविध कालों के चित्रों को छाप कर प्रकाशित करती है। हम भी उन चित्रों को खरीद कर उनको प्रोपका का अनुवाद करा कर अपने लोगों तक पहुंचाने की व्यवस्था क्या न करें?' पर हमारा वातावरण ही कुछ और था। हमारी अकादमी के कलाविद कहलानवाले सदस्य अकादमी का अधिकांश पैसा अपनी शालाओं और मेहनत के वास्तुपान की ओर ध्यान रखते हैं। कला हमसे बड़ी है। कला का क्षेत्र भी बड़ा है। उससे सम्बंधित ज्ञान लोगों में फैलाना चाहिए—यह उदार बुद्धि उनमें नहीं है। हमारे चित्र खरीद लीजिए, हमारी कृतियां खरीदिए' लोग इसी चिन्ता में लगे रहते हैं। चित्रकला क्या है? दूसरे के चित्रों की अनुकृतियां बनाना हमारी सृजनशीलता है? ऐसे लोग अपनी स्वतन्त्र सस्थाए चलाते हैं मंत्रिया और उनकी पत्नियों की प्रशंसा में अपना दिन काटते हैं। किमी न किसी बहाने ऐसे लोग सहायता प्राप्त करते चले आ रहे हैं। पुराने जमाने में कविमान राजाओं की प्रशंसा में काव्य रचना करके क्या अपना जीवन नहीं चलाए? वह कला की सच्ची सेवा ही कला है?

•

प्रयोग और कृतियाँ

पुरानी यादे

जिन्होंने मरा 'मरलि मणिग' उप-यास पढा है उह उसम आनेवाले एताल क पोते राम की याद होगी। उस उप-याम म आनवाली तीन पीढिया की कहानी म पहले मरी दादी क जमान का परम्परावादी चित्र आता है। दूसरी म नई शिक्षा प्राप्त करन उससे लाभ न उठानेवाला लच्चा जाता है। य दोनों पीढियाँ निसग से सघप करती है। तीसरी पीडी के पोत राम की आखें निसग स आर्कषित होती हैं। इसस मैंने यह चित्रित किया है कि कला के माध्यम पर क्या प्रभाव हो सकता है।

हमारे दश का मगीत चाहे वह शास्त्रीय हा या लोक-परम्परा पर आधा-रित, भाषा से पदा होकर व्यक्ति के मन का विम्बित करता है। इससे साहित्य म मानसिक सुख दुख ता दिखाई द सकत हैं पर ऐना नही लगता कि निसग उसके द्वारा अपने को प्रतिविम्बित कर सकता है। बिधावन, शुबट आस जस पाश्चात्य गीत प्रबन्धकारों ने यह कर दिखाया है। इस प्रश्न को मैं थपन 'मुक्तद्वार' नाटक म—काल का जब विविध पाथा क रूप म चित्रत करने लगा तब नृत्य के माध्यम स प्रकट करने को विवश हुआ। उस नृत्य के अनुकूल चलनेवाले गीता के चक्कर म मैं नहीं पडा। काल क बारे म मरे लिख भौत साहित्यिक हैं। काल पक्षी बनकर अभिन बनकर मप बनकर चक्र बनकर वहाँ दिखायी दन लगा। उस नृत्य को समीन कैसे प्छि देगा यह मैंने तोचा नहीं था। पर यह कल्पना एक भ्रम या धुन की तरह मन को तग किय जा रही थी। तब तब हिन्दुस्तानी नाटको क गीत और कुछ चीजा स परिचय हा गया था। मैं साहित्य विरत बन बनान लगा और अलीबाला अलादीन जसी कहानिया का प्रयोग करन समय मैंने हिन्दुस्तानी मगीत को उन चीजा का प्रयोग किया था। उससे मुझे अन्त प्रयोग के लिए उत्साह मिला।

इस बात की मैंने पजे मंगेशरायजी स घवा की। उस स्पष्ट करने के लिए मैंने उनसे कहा, 'अब एक नदी है उसकी विविध गतिया को चित्रित करन क

लिए ऐसा किया जा सकता है।' मैं तब राग भरधी में आलाप लकर पानी के उतार चढ़ाव की कल्पना को दिखाने का प्रयास किया। वह बड़ी धुंधी न मरी और देखते रह गयी।

और एक बार भय मयूर नाम का नृत्य तयार करत समय मैं मेघ महार की एक चीज उठाकर आलाप लने लगा। वह प्रयत्न वहाँ समाप्त हुआ। उसकी सम्भावना मेरे मन में आयी थी जब 'मरलि मण्णिग' उपवास का नायक राम समुद्र के सामने बैठकर कल्पना करता है।

वासुदेव नायक

मेरे इस पागलपन का विकसित हान में और दो दशक लग। यशगान बन के प्रयाग में उसकी सम्भावनाएँ दिखायी दीं। उस विकसित करने की बात अभी मिटी नहीं थी। कुछ दिनों तक मेरे मन में 'नदी यात्रा' के ध्वनि रूप का सपना दीखता रहा। तब मैंने अपना यौवन के मित्र कुदापुर के वासुदेव नायक का घर बुला भेजा। उनका हिन्दुस्तानी संगीत के पाण्डित्य से मैं परिचित था। उनमें मैंने अपना उद्देश्य बताते हुए कहा, 'दखिए, मुझे नदी के जन्म और मृत्यु को गीत के माध्यम से सज्जन करने की इच्छा है। आलापन के द्वारा उसका गर्जन कर सकता हूँ। पर तु वीच वीच में मेरे मुह से निकलनेवाले आलापों का निश्चित और नियंत्रित करने की शक्ति मुझमें नहीं। एक बार जो आलाप लेता हूँ वह दूसरी बार नहीं आता। उसके लिए आवश्यक स्वरगान मुझमें नहीं यह आप जानते ही हैं।' यह बताते हुए मैं अपने मन की सारी पागल कल्पनाएँ उनके सामने रख दीं।

"आधी आती है उसका गजन-तजन ऐसा है। बादल घिर कर बूदें पडने लगती हैं उनका गिरना इस प्रकार है। बूदों से बुलबुले बनते हैं और यह जल घूर्णितता है। उस जल की धार दूसरी धाराओं से मिलकर पत्थरों पर से गिरकर आगे बढ़ती है। वहाँ से जलप्रपात बनकर आगे बहती है। बाद में घड़ी मदानी प्रदेश में पहुँचकर आराम से टेढ़ी मढ़ी होकर हवा के साथ चल जाती इठलाती हुई बहती नदी बन जाती है। इसका बाद नदी समुद्र में मिल जाती है। समुद्र उसे पीछे ढकेलता है। समुद्र की लहरों और नदी में सघन होता है। अन्त में किसी प्रकार नदी समुद्र में लीन हो जाती है।

इसीलिए राग मुखतानी में आधी की प्रचण्डता दिखायी राग पटदीप में बूदों का गिरना उसका वेग दिखाकर भरवी या किसी और राग में नदी का अहवार दिखाया। जल प्रपात के लिए फिर से वही राग प्रयोग में लाकर लाचारी से रोक लिया। नदी का मन्द प्रवाह राग काफी से दिखाया। समुद्र का गजन दिखाने का राग मालकोस का प्रयोग किया और समुद्र और नदी का सघन राग काफी और

मालकोस से दिखाया । अतः म राग मालकोस को काफी पर अधिकार करते दिखाया ।

दो-तीन दिन तक मरी गुनगुनाहट गजन का आलाप नायकजी हारमोनियम पर बजाते रहे । इस तरह मेरे मुह से निकले हर राग का विस्तार करके स्वरा का निश्चय कर दिया गया ।

रेडियो प्रसार

अब मुझे यह याद नहीं है कि उस जमाने में बैंगलूर आकाशवाणी के अधिकारी कौन थे । मैं अपनी यह कल्पना उनके सामने रखी । उन्होंने बड़ी खुशी से सहयोग दिया । मैं अपने साथ वासुदेव नायक को भी ले गया था । मैंने ही उन्हें याद दिलाया कि पहले किस राग का आलाप मैंने किया था अतः मुझे उनकी आवश्यकता थी । आकाशवाणी के वाद्यदल के संचालन के लिए मेरे वही के मित्र श्री वी वी कृष्णमाचार्य मेरे सहायक हुए । कही वामलिन, एक दो जगह वीणा, गिटार चलो, आगन ऐसे आठ दस वाद्यों की सहायता से 'नदी-यात्रा' नामक भाग्य घण्टे का एक गीत प्रबंध तैयार किया । रेडियो से वह आगे दो तीन बार नये प्रयोग के रूप में प्रस्तुत किया गया । इस काम ने मुझे सतोष तो दिया पर पूरी तृप्ति नहीं मिली । उसका कारण था मन्द्र स्थायी स्वरो को पुष्टि और तीव्रता देने में हमारे तंत्री वाद्यों की अपनी सीमाएँ । उही त्रिनालय का प्रयोग करते हुए वाद्यवादकों को शाबाशी देते हुए, एक-दो-तीन चार कहते हुए बिना जंगलियों पर गिने निकलनेवाले मेरे काल्पनिक प्रवाह में सतुल्य लान का काम बख्तर था । उस अवधि में मेरे लिए कृष्णमाचार्य और वासुदेव न जो श्रम और सहायता की थी वह भुलायी नहीं जा सकती ।

इस कल्पना के मेरे भीतर जन्मने के बाद से और एक गीत प्रबंध का दुबल रूप लेने के बीच वह एक मास मेरे लिए, स्वप्न का गन्धर्व लाल बना रहा ।

प्रयोग और गोष्ठियाँ

आगे अब भी अवकाश मिलता यशगान की संभावनाओं और अगमभावनाओं के अपने मुझे घेर लेते । मैं अपने मन में महाभारत के अनेक संदर्भों की कल्पना करता रहता । सक्का पात्रा का आँखा के सामने पड़ा करक कुम्भेन व बंदम चतवा कर देखता । वार्तालाप के बिना ही केवल वाद्य-बंद की पृष्ठभूमि से उस चिलवाता ।

इस अवधि में हमारे यहाँ के लोग को यानी हमारे व्यावसायिक यशगान भागवतरो और नतवा को, उनकी क्या कमियाँ हैं दिखान की इच्छा हुई । इस लिए समीत नाटक अकादमी की सहायता से उद्युपि में चार पाँच दिन की एक

गोष्ठी की। उस गोष्ठी में यक्षगान के गीत, नृत्य, वार्तालाप और अभिनय में तथा भाव में जो सम्बन्ध है, उसकी चर्चा करने की, जितने लागे का मैं जानता था और नितना का दूसरा क द्वारा परिषय पाया था उन सबको और उत्तर तथा दक्षिण कानड दोना जिला क प्रतिष्ठ अभिनता, वादक और भागवतरा का आम-प्रति किया। उस गोष्ठी का सारा प्रबन्ध उद्युपि क महात्मा गाँधी कॉलेज के प्रिंसिपल न किया। आमि प्रति सभी जना का आन-जान का पत्र और भत्ता देने की जिम्मेदारी सगीत नाटक अकादमी न उठायी। इसी अदसर पर हर रात उत्तर के छल, दक्षिण क छल, कटपुतलो का नाच, चम-गुनली क उला क अलाया दिन में कुछ प्रतिस्पर्धाएँ और कुछ विषया पर चर्चा का आयोजन भी किया गया था। उस गोष्ठी की विशेष उपलब्धि यह थी कि गीत (मुद्र, दुद्र, हृप उल्लाम रोप, भय आदि) का अभिव्यक्ति में तथा उमक लिए पृष्ठभूमि के वाद्य और भागवतरा की ताल में सामास्य कस हा तथा पत्र-सचानन और गति में और भावा में भी कसा सम्बन्ध कसा हाना चाहिए—इन विषयो पर चर्चा हुई। उदाहरण की आवश्यकता पडने पर मैं उन स्वयं करके दिग्याया। भाष्य स वह सारी कारवाही ककवाली श्रीगिषाम भट्ट ने निदकर रप ली थी अत उस प्रवाशित करना भी सम्भव हा गया।

इस गोष्ठी में भी उत्तर दक्षिण जिले की बात भन ही न गही पर पाति सुबा का प्रेत छाया था। एक भी अभिनता या भागवतर दक्षिण में नहीं आया। उसमें अपवाद यह रहा कि दक्षिण के कुछ प्रतिष्ठ ताल आर मन्ग क कलाविद आये। उनमें दराजें सीतारामय्या न हम पूरा पूरा मृत्य ग दिदा। समय, न्फूनि वार्तालाप में कितने भाव और रमा का ध्वनि के द्वारा प्रदर्शन किया जा सकता है इन सब पर सफल प्रयोग किय। हमारी गोष्ठी में भाग लेन दिन्नी सगीत नाटक अकादमी वारा और कुछ विदशी भी आय थ।

सहयोग

इस तरहकी गोष्ठी का सारा भ्रय उमकी व्यवस्था का भाग उठानेवाले मित्र और धन की सहायता करनेवाली सगीत नाटक कला अकादमी (कर्नाटक) को मिलना चाहिए। उससे ज्यादा मेरे ज मस्थान के व्यावसायिक कलाविदा को मिलना चाहिए। मेरे प्रयोग क बारे में आस पास के प्रदेश क उदार समीपका नें कइ प्रकार के आक्षेप किय पर तु स्थानीय व्यावसायिक कलाविदा का व्यवहार ऐसा नहीं रहा। व तो निरंतर अपनी शक्ति भर सहायता देत आ रह थे। बालक्रम से यहाँ भी एक छोटी सी फाँस आ लगी।

बाल-साहित्य

सातवें दशक में बाल साहित्य की दो गोष्ठियों से मेरा सम्बन्ध रहा। मद्रास के 'सदन लैंग्वेज बुक ट्रस्ट' ने मेरे निर्देशन में बंगलूर में कन्नड़, तमिल, तेलुगु, मलयाली भाषाओं के लेखकों की गोष्ठी का आयोजन किया था। तब बच्चा के साहित्य के लिए मेरे समान परिश्रम करनेवाले कुछ लेखकों का परिचय हुआ। उनमें चित्रकार और प्रकाशक भी थे। वहाँ मुझे ऐसा लगा कि आधुनिक युगीन पाठ्यचालियों की रचनाओं का अध्ययन करके उनसे प्रेरणा पानेवालों की संख्या अभी बहुत कम है। उस गोष्ठी के कुछ मास बाद उसी सभ्यता में दिल्ली में अखिल भारतीय बाल साहित्य गोष्ठी का आयोजन किया। उसके लिए भी मुझे निर्देशक के रूप में आमन्त्रित किया गया था।

दिल्ली की गोष्ठी

उसमें सरकार की ओर से एन सी ई आर टी के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। उसकी कुछ चर्चा यश चित्रकार श्री शंकर मेनन के भवन में भी हुई। शंकर मेनन ने बच्चा के लिए कुछ सुन्दर सचित्र पुस्तकें प्रकाशित की हैं। वे सभी दृष्टिकोण से प्रशंसनीय थीं।

उस गोष्ठी में मुझे यह कमी दिखाई दी कि वे सब बच्चा के लिए लिखना चाहते थे, पर आधुनिक विज्ञान की बच्चों की कहानियाँ में ठूसना चाहते थे। उनका उद्देश्य तो अच्छा था परन्तु वे चन्द्रलोक की यात्रा के विषय में सामने आनेवाली वैज्ञानिक समस्याओं के ज्ञान के बिना ही अन्तर्दिश प्रक्षेपण का पुष्पक विमानों के रूप में सरलीकरण करने का प्रयास कर रहे थे। तद्दरान में मेरे साथ गये भारत के प्रतिनिधि डा. शर्मा प्रत्येक क्षण विज्ञान की बातें किए जा रहे थे। तब मैंने अनुभव किया कि 'वैज्ञानिक' कल्पना उनमें एकदम नहीं थी।

और एक बात! एन सी ई आर टी के प्रतिनिधि अपने सरकारी पत्र के उच्च स्तर से नीचे उतरने की तयारी नहीं थी। भाषा शिक्षा के विचार से हिन्दी में उन्होंने 'ना प्रयाग किये हैं बर अब भी कवाशि' कणमाला से जूझ रहे हैं। लिपि लिखाने के लिए, लिपि के आकार और उसी से मिलन-जुलनवाली वस्तुओं की कल्पना करने वाले प्रो. लुबेकर की दृष्टि एकदम अथ गूँज लगी। मुझे आश्चर्य हुआ যেতাহ জসে ব্যক্তি কে यह कहा पर कि धायक से शब्दान और शब्द से अक्षर पान अपने आप हो जाता है। जब इस पद्धति का प्रचार हान लग गया है तब फिर 'अनादि लिपि दधी द्वारा य नहे मुन बच्चे क्या सताय जात चाहिण ? भाषा की कल्पना के लिए अथ दन का शब्द एक पत्र हीन हैं। लिपि अथ रहित होती है, शब्द उसमें अथ भरत हैं। आश्चर्य की बात है कि यह अज्ञान आज भी

हमारे देश के शिक्षाधिकारियाँ और शोध संस्थानों में दिखानी दे रहा है।

क्षुब्ध विषयों में

मुझे उपयुक्त उदाहरण इस कारण देना पड़ा क्योंकि आत्मकथा लिखते समय मैं जिन क्षेत्रों में श्रम किया है वह जितने मुख्य और आकर्षक हैं उतने ही महत्व के हैं, मर जायेंगे का भरनेवाला विषय भी है। मुझे उस बारे में इसलिए कहना पड़ा कि हमारे देश का शिक्षा-क्षेत्र नीरस और अनाकर्षक होने से बच्चा में ज्ञान का कौतूहल नहीं जगाता। इसका कारण ऐसे विषयों में ही है। हम चाहे कैसा भी ज्ञान किसी को देना हो उसमें दो बातें मुख्य हैं। पहली बात है कि यह ध्यान रखना चाहिए कि हम किससे समझा रहे हैं? उनकी आयु क्या है? उसकी नैसर्गिक रुचि किसमें है? उसमें कौन कौन से सबदों का प्रयोग किया जा सकता है? हम इस बात का भूल जाते हैं कि बिना रुचि जगाए हम विषय को चाहे जितना भी विद्यार्थियों में भरें वह ज्ञान शिक्षा न होकर दण्ड ही जाता है। शिक्षा उनके कान और आँखों द्वारा होनी चाहिए। थोड़ी बहुत स्पष्टता भी। हम जगत का परिचय इन ही द्रव्यों द्वारा ही होता है। देखकर, छूकर और सुनकर हम इस जगत् को समझने का प्रयास करते हैं। जिस हम देख नहीं सकते उनके बारे में सुनकर समझते हैं। ऐसी जो बातें बच्चे सीखते हैं उन्हें दुबारा ध्यान कर सकने का उत्साह उनमें आना चाहिए। बिना किसी शिक्षक के ही बच्चे अपनी मातृभाषा सीख लेते हैं। इसलिए हम इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि क्या दूसरी भाषाएँ सीखने में बच्चा को अपनी आयु के दस बारह वर्ष देना चाहिए?

दूसरी बात यह है कि जब तक अभिरुचि उत्पन्न नहीं होती तब तक कोई भी उपदेश लाभकारी नहीं। किसी विषय में रुचि उत्पन्न करने के लिए उसके प्रति आकर्षण पैदा करना ही एकमात्र रास्ता है। यदि वह आकर्षण हो और हम पुस्तकें उपलब्ध करा दें तो विद्यार्थी बड़ी रुचि से उन्हें पढ़ेंगे। जबकि अन्यथा कभी होनेवाला लाभ के लालच में पड़ाने से कोई फायदा नहीं होता। हमारा पाठ्यक्रम ही ऐसा होना चाहिए। साथ ही, अध्यापकों को विषय का उत्साह और पूरा ज्ञान हो तभी यह सब संभव हो सकता है। विद्यार्थियों के सामने आनेवाली पुस्तक में यह गुण होने चाहिए।

दो एक प्रयत्न

इस दिशा में मैं बहुत पहले दो एक प्रयत्न किया था। भूगोल के लिए मेरी लिखी चित्रमय दक्षिण कन्नड़ और 'दक्षिण भारत' इसका उदाहरण है। भाषा की शिक्षा के सिलसिले में मेरी 'सिरि गण्ड पाठमाला' और 'गण्ड

समीक्षकों के आक्षेप

इस लम्बी अवधि में लिये गये उपयासों पर काफी समीक्षा हो चुकी है। कुछक व बार में एक दो बानें यहाँ बही जा सकती हैं। भारत एसी ही बातें बहुत चले आ रहे हैं। इन्हें ऐसी ही चीजें पसन्द है, 'व अमुक' व प्रति उदार हैं उठाने अमुको व प्रति उदारता नहीं लिखायी एक उपयास में अमुक पात्र ऐसा कहता है जीवन को जय गरीबी और शोषण चूस जा रहा है तब वे इधर उधर की बात बहे जा रहे हैं। इस प्रकार की समीक्षाएँ हूँ हूँ। एसी समीक्षाएँ मैंन स्वयं बहुत कम पढ़ी हूँ। उनमें से अधिकांश तो मित्रों ने लाकर सुनायी हैं। कुछ लोगों ने पत्र लिखकर भी पूछा है कि मैंन ऐसा क्या लिखा ? मैंन उह उतर भी लिखे हैं। पर ऐसी समीक्षाएँ मुझे विचलित नहीं करती।

एक साहित्यिक कृति को जनता व सामने रख देने के बाद समीक्षक उनक बारे में जो कुछ कहते हैं या जो सुधार चाहते हैं उस हूँ उपयास के अगल सस्करण में ला नहीं सकते। एक चित्र बना देने के बाद एक शिल्प के निर्माण के बाद समीक्षा की टीका दखकर उसमें पुन परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। साहित्यिक कृति की यही बात है। जाग अगली किसी कृति व निर्माण के समय वह समीक्षा याद आ सकती है। ग्राहकों की इच्छानुसार लिखा जा सकता है बाजार की रुचि के अनुसार लिखा जा सकता है। जो उनका चाहिए वह हम अपनी रचनाओं में दे सकते हैं परंतु अपने जीवन को जिम्मेदारी को पूरा करने व प्रयत्न में मैं अपना उत्तरदायी भाग हूँ। मैं इसी दृष्टिकोण से लिखता हूँ। समीक्षा जसा चाहते हैं स्वयं उसका सजन कर सकते हैं परंतु उह एक लेखक को लेकर आप ऐसा मत लिखिए और ऐसा मत लिखिए गहन का अधिकार नहीं दिया जा सकता। अपने जीवन को चलाने का अधिकार केवल मेरा है। वह अधिकार मुझ ज में देनेवाला ब्रह्मा को भी नहीं। मेरे जीवन के प्रति मेरे अनुभव का पान ही उत्तरदायी है। ऐसा अनुभव दूसरे का नहीं हो सकता। समान अनुभव होने पर अपने अनुभव को नाप तौलकर यह मुझ है यह गौण है यह अच्छा है यह बुरा है यह कहने का अधिकार केवल मुझ ही है। यहाँ स्व दष्टि और पर दष्टि मुझ तग कर सकती है, हम भले ही कितना प्रयत्न करें दूसरों की दष्टि को समझने की हमारी एक सीमा होती है। उसी सीमा में मैं दष्टि को समझता हूँ और चित्रित करता हूँ।

आज मैं जब अपने अनुभवों के बारे में सोचता हूँ तो इस पचास वर्ष की लम्बी अवधि में भी और उसके बाद भी उनका स्तर एक ही जसा नहीं है। अपनी अनुरक्ति और आवेश उतर जाने के बाद, मानव स्वभाव और उसकी समस्याओं के बारे में यह जान जान के बाद कि विविध पान शत्रु का प्रभाव

भी उन तक पड़ता है, अपन अनुभवों के मूल्यांकन में भी अन्तर आ जाता है। इस दृष्टि से भरीमानसिक प्रगति जिस दिन रूक जायेगी या मंद पड़ जायेगी उस दिन यह समझना चाहिए कि मेरा जीवन भी स्तब्ध हो जायेगा।

पक्षपात

एक ही उप-यास के विभिन्न पात्रों को चित्रित करते समय मर पक्षपात की बात कहनेवाले समीक्षकों से एक बात कहनी है कि उप-यास में आने वाले सभी पात्र मेरे अनुभव जय है। वह अनुभव उनकी चाल डाल और व्यवहार देखन पर ही हुआ है। मैं अपनी संवेदना—सज्जन, दुखन, चोर और चूठे को समान उदारता से नहीं बाट सका हूँ। यदि सबको एक ही ढंग में आका जाय तो व एक दूसरे से भिन्न नहीं दीखेंगे। यदि वे मुझे सभी समान रूप से मूख या ईमानदार दीखें तो व्यक्ति के चरित्र और समस्याओं की भिन्नता का कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा।

हमारे कुछ समीक्षक जिन मूल्या को नया मानते हैं अथवा जिन्हें उन्होंने बाहर से उधार लिया है उस ही मिथ्याता के आधार पर व टीका करते हैं। उनके लिए जा उहान पड़ा है (कहना चाहिए जिन उहान खोना नहीं) वह ही अत्यन्त आधुनिक तकनीक है सही मापदण्ड है। मैं तकनीक के दिखाव के लिए कुछ भी नहीं लिखा आर लिखूंगा भी नहीं। मेरी रचना मर अनुसार ही चलनी चाहिए नहीं ता नहीं। मेरे प्रत्येक उप-यास की अपनी अपनी शली है। उस दृष्टि से समीक्षकों की समीक्षा अथवा उनके द्वारा दिये जानवाले अंकों के जोड़ में अन्तर आ सकता है।

सातवें दशक के उप-यास

सातवें दशक में मैंने 'जाल निराल इहं चित्र, इ नोददारी', स्वप्नद हाने, 'मूकजिह्व वनसुगलु' और 'उत्कृष्ट गार उप-यास लिखे। उनमें भी अब मुझे एक दो उप-यासों की क्यावस्तु याद नहीं है और एक दो की घाड़ी बहुत याद बची है।

'जाल निराल' में एक परित्रमा रल में बठकर यात्रा करनेवाले विविध मनो घम के यात्रियों का दृष्टिकोण है। उसके मुख्य प्रेरक एक बुजुर्ग मित्र रह हैं। वे ह दिवगत नतक शम्भू शर्मा। वे अपने जमान के महान विद्वान् और दार्शनिक थ। उहोने आशावादी दृष्टिकोण से जीवन को देखा था और माफ मुयरा जीवन बिताया था। एक दिन वे दंघन के एक टुक के चपेट में आ गये। उनके पाँव पर ससारी का पहिया चढ़ गया। तब नि सहाय देखन छडे राहणीरा स

उहाने कहा "छठे छठ क्या दण रहे हा । पाँव की बाटकर अलग बग्न दण की वाहर निकाला ।" मैं उह अस्पताल म देखन गया था । मुझस उहाने गर्भरता से कहा अवश्यमनुभोवनव्यम वृत्त कम शुभाशुभम् ।' वह था उनका विश्वास । उनका वह व्यक्तित्व ही मर इस उपवास की प्रेरणा थी ।

स्वप्नदहान (स्वप्न की नयी) उपवास म कला स सम्बन्धित बातें आती हैं । साथ ही आति मानव की एक कल्पना भी है । रास्ता भटक जान म सवट म पडी एक लडकी की कहानी इन्की मुख्य कथावस्तु है । उनक लिखन की प्रेरणा भी एक विविध ढग से मिली ।

एक शिक्षणालय की अध्यापिका अभी कया थी थी । वह वही क एक अध्यापक के प्रेम म पसकर गम्भीरी हो जाती है । दाना अलग अलग जाति क हान स उनका प्रेम विवाह क बन्धन क समीप नहा ला सकता । और फिर वह व्यक्ति तो पहल स ही विवाहित या बाल बच्च भी क । यह बात उस लडकी क एक सम्बन्धी के बान म पडन स वह गुस्स म आ जाता है । वह उस अपराधी स बदला लेना चाहता था । वह मेरा सलाह लन आया । मैंन उस समझाया कि इसस स्थिति और बिगड सकती है और लडकी का जीवन और दुःखमय हा जाएगा । पहले लडकी क भविष्य के बारे म सोचना चाहिए था । किसी वय स उसका गम्पात करा दना था । उस सकल स पार होन क बाद ही कोई बात सोची जा सकती थी । उस भाग्यहीन कया का मुझस परिचय करानेवाला भी वही अध्यापक था । उस लडकी पर अनुकपा हान से ही वह उन मरे पाम लाया था । मैंन देखा कि हमन जा रास्ता सोचा उसस उह कोई राहत मिलती दिखाई नही दी । मैंन उह मचेत किया कि उसस वे और सवट म फस जाएंगे । बान म उस अध्यापक न उम लडकी से विवाह कर लिया । मैंन देखा कि उनका जीवा जान द स बीत रहा है । उस अध्यापक के प्रति मेरा आदर तो गुना वड गया । यही घटना स्वप्नल होल उपवास की कथावस्तु की आधारभूमि बनी ।

इमक बाद मैंने और दो उपवास 'मूकज्जी' और उक्किद नोर लिख । दूसरे म उत्तर और दक्षिण कानड जिला की स्वतन्त्रता पूव की राजनीतिक स्थिति का स्थूल चित्रण है । तब के कलुषित राजनीतिक वातावरण म सजजनता और ईमानदारी के लिए कोई स्थान न होने स दुग ध की ही श्रीगन्ध (चदन) बताने की नीच वृत्ति उत्पन्न हा गयी थी । 'मूकज्जी' एक गहरी लंगिक समस्या से सम्बन्धित है । इसमे मानवाली मूकज्जी (मूक आजीमा) का व्यवहार बाने, परम्परा स आया भगवान अवतार पाप-पुण्य इत्यादि विषयो पर का उसका विश्वास हमारे अतस को शिक्षोडकर रख देता है ।

अमीरो के दुब्यवहार पर जॉर्ज ब द कर लेनेवाने तथा साधारण जन की समस्याओ को बडाकर बतानेवाल समाज म स्त्री पुरुष की समस्या भी एक प्रमुख

विषय है। इसे चित्रित करती मूकज्जी के मुह से निकलनेवाली अनक बातें परम्परावादियों को हिला सकती है। उम पुस्तक के प्रकाशन के बाद कुछ मित्रों ने केवल इतना ही कहा कि उन्होंने उसे पढा है, और कोई बात नहीं की। दस वष बाद उमी को 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' मिला। बाद में उसकी बड़ी प्रशंसा होने लगी। उसमें हमारे समीक्षकों के लिए एतराज की बात मूकज्जी की अतीन्द्रिय शक्ति थी। प्रश्न यह उठा कि ऐसी शक्ति है या नहीं। करिश्म, अवतार, पुनजन्म इत्यादि पर विश्वास करने वालों को मूकज्जी में दिखाई देनेवाली शक्ति अनथकारी लगी। उसमें स्त्री पुरुष की अनादि काल की समस्या का निरूपण है यह मुख्य विषय ही ओपल हो गया। मैंने लैंगिक प्रश्न को लेकर गत तीन हजार वर्षों से चले आय दृष्टिकोण को प्रागैतिहासिक साक्षियों के साथ कुग्द कर दिखाने के लिए सत्तर अस्सी वर्ष की एक वृद्धा को माध्यम बनाया। परम्परागत जीवन के साथ साथ प्राचीन ऐतिहासिक ज्ञान उसके द्वारा दिया जानेके लिए मैं उस अतीन्द्रिय दृष्टि दी। उसका मुख्य कारण स्त्री-पुरुष की अनादि काल से चली आयी एक सृष्टि है। मानवकुल उस स्तर का अंतिम सोपान है। उसके बार में विविध धार्मिक दृष्टियों को यथत करन के लिए मुझे मूकज्जी को सपने' देखने की शक्ति देनी पडी। ऐस सपन देखनेवाली वह मूकज्जी अपने ही सामने कडी महत्त करके जीविकोपाजन करनेवाली, तथा अपन ही किसी रिश्तेदार द्वारा शीलभग की गयी और इसी कारण पति से विछुडी ही एक स्त्री और उसके पति दोनों को कर्णा की दृष्टि से समीप लाती है। जातक, पुराण, चमत्कार सबका पचाकर चलनवालों के विश्वासों की नींव को यदि गरीब मूकज्जी की शक्ति हिलान सगे तो उसका कौन जिम्मेदार है? हम तो चमत्कार और पुराण आदि अवास्तविक नहीं लगते। सत्य देखने की एक दृष्टि अवास्तविक लाती है। साहू बाबा जसा के समक्ष घुटने टेकनेवालों की प्रतिभा का भरा उपयास 'मूकज्जी' अवास्तविक देख सकता है।

दशक उत्साह

अभिमानियों का परिवार

बीसवीं शती के सातवें दशक में मुझे एक बात स्पष्ट दिखायी दी, वह यह थी कि कलम में भरे ही पाठकों की संख्या कितनी भी रहे, लेखन-वृत्ति अपनाकर जीवन चलानेवाले का आर्थिक रूप से निश्चित ही पाना अमम्भव है। यदि ऐसा न हो तो स्पष्ट प्रवृत्तिवाला के लिए कला में माध्यम द्वारा जीवन चलाना बड़ा कठिन हो जाएगा। जनता में लोकप्रिय हो जाना के बाद यह बात सिनमा क्षेत्रवाली के लिए तो संभव हो सकती है पर कलम के धीरे के लिए नहीं। लेखक बनकर जाने के लिए मुझे प्रकाशक भी बनना पड़ा और मुद्रक भी। उन दोनों के छूट जाने के बाद जीवन चलाना कठिन ही हो गया। साठ के बाद तो कष्टानुभवी और नीचे घिर गया। आर्थिक दृष्टि से कई हानियाँ भी उठायीं। परंतु उठा जाघाता से उभरने में कलम जनता का अभिमान मेरा सहायक बना यह बात मैं भूल नहीं सकता। जो मेरी समझ में आया वह मैंने लिखा। उससे मैंने उतने दुख भी पहुँचाया। किसी को उद्देश्य पूरक दुख देने को तो मैंने नहीं लिखा था। अतः वे उम्मेदवार करते आये। मैं अपने समाज से अलग नहीं होना भी नहीं चाहिए। मेरी समीक्षाएँ और घण्टन जो भी रहे हैं, मैंने समाज की अब हेलना करके एक उपदशक की जगह खड़े होकर कुछ नहीं किया। यह बात धीरे धीरे विकसित हुई। पिछले सात आठ वर्षों में मेरे अभिमानियों की संख्या बढ़ी है। उनमें इस परिवर्तन का मैंने अनुभव किया। वरना बंगलूर में रहनेवाले मेरे केवल एक परिचित यह पता लगाकर कि कु० पि० हरिदास भट्ट मेरे घनिष्ठ मित्रों में से एक हैं उनके द्वारा मुझे बंगलूर में आमंत्रित करके मेरे सम्मान में समारोह न करत। उन्होंने अपनी मित्र मण्डली इकट्ठी की और काफी समय और पैसे खर्च करके मुझे 1967 में एक दिन बंगलूर बुलाया।

तब मैं पैसठ वर्ष का था। पर उस संस्था का कोई विशेष महत्त्व न था। उसी व्यक्ति ने दो वर्ष पूर्व एक जोरदार आयोजन करके उपवासकार अर्थात् कृष्णराय का सम्मान किया था। उसी प्रकार उन्हें मेरा भी सम्मान करने का हठ था। इससे

पहले मेरा और उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। वह होटल उद्यान में लगे हुए थे। हाँ मेरे गाँव के अवश्य थे। उनके दैनिक जीवन और साहित्य में क्या सम्बन्ध है। नकल है यह मेरी ममता से बाहर था। पर कृष्णराय का उनके द्वारा सम्मान किये जाने की बात सुनकर मुझे इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ा कि सम्बन्ध कहाँ है। मित्र रामकृष्ण ऐताल ने बगलूर नगर के अनेक साहित्य प्रेमियों को एकत्र करके मेरे सम्मान में एक समारोह की व्यवस्था की। उस समारोह में एकत्रित प्रेक्षकों को दर्शन पर मुझे यह मानना पड़ा कि उसमें मेरी रचनाएँ पढ़ने वाले सबको अभिमानो हैं। इसके अलावा मेरे पुराने मित्र और प्रशंसक श्री वी सीतारामय्या और डा शिवराम जस व्यक्तिगत द्वारा मेरी प्रशंसा भी करायी। ऐसा लगा कि उस दिन उन्हें मेरे लिए वहाँ फास कर लाया गया था। समारोह की अध्यक्षता के लिए उम दिन मुख्य में श्री हनुमन्तय्याजी आमंत्रित थे। एक समारोह जितनी शान से किया जा सकता है उतनी शान से उद्घाटन किया। उम दिन मैंने क्या कहा आज मुझे याद नहीं। अपनी प्रशंसा करने जाहिर नहीं की। अभिनन्दन पत्रों में सदा दिखायी देनेवाली उत्प्रेक्षापूर्ण वातावरण में कान देना बंद कर दिया था। ऐसी बातें मुझे मदा अति महसूस होती हैं। जा भाँहाँ उस दिन के उत्तर के आँसु मुझे स्वतंत्र भारत की याद हो आयी। स्वतंत्र भारत 'सर्वमम जयते' के आदेश को लेकर चला था। पर तु वही प्रशासन जनता की स्वतंत्रता के लिए पहले के पाँच मी राजाओं को चार करोड़ रुपये प्रतिवर्ष मुआवज़ के रूप में देने की बात से मुकर गया था। इसीलिए उन भावनाओं की पीठ ठोसनेवाले भारतीयों की तब मुझे याद आयी। इस देश की जनता के प्रमुख जब राजाओं को दिये वचन से ही मुकर गये तो वे जनता को दिये गये वचन कहाँ तक निभाएंगे? शायद यही दुख उस दिन मैंने व्यक्त किया था। बर्नाटक के मुख्य में श्री की उपस्थिति से मेरे मन में यह बात जाग उठी होगी। हाँ सतता है कि उस भाषण के कुछ अंश उस सभा के सयोजक श्री रामकृष्ण ऐताल के पास हैं। सभा के अंत में उन्होंने अध्यक्ष के हाथ से सात हजार रुपये भेंट दिये। वह पसा बगलूर के मेरे अभिमानियों ने एकत्रित किया था।

सावधान

इस अवसर पर मैं बगलूर में श्री रामकृष्ण ऐताल का अतिथि रहा। मैंने उन्हें पहले भी देखा था, शायद उनके विवाह के अवसर पर। उम विवाह और इस समारोह के बीच काफी वक़्त बीत गया था। फिर भी उनका मेरे प्रति स्नेह मैं भूल नहीं सकता। मैं जब घर जाने लगा तो उन्होंने एक बात कही, "आप से एक बात कहना चाहता हूँ। वह इसलिए कि आपके स्वभाव के कारण मैं एक सच है। आपको लोगो ने पहले भी पसंद भेंट किये थे। हम जानते हैं आपके

हाथ म पसा रकता नही। यह पसा आप बक म जमाकर दीजिए।” पसे का मुह देखने के पहल ही पच क सपन देखन लगनवाले मुझे यह बात चतावनी सी लगी। इसलिए गाँव पहुचन ही, वह सात हजार रुपय बक म रख दिये। इम प्रकार मैं भी जीवन म एक बार धनी लखक बन गया।

एक और बडा समारोह

यह बात हुए कोई दो बप बीते हाग उहुपि नबर क मरे अभिमानिया का लगा कि किसी की आयु पसठ हा या सडसठ, क्या प्रक पठता है। उहोनि भी एक समारोह करने की योजना बनायी। मरी साठवी बपगठ उहुपि क हरिदास भट्ट जीर मणिपाल के प बघु ने बडे जार शार से मनायी थी। तब भी उनकी योजना मुझ बहुत दर बाद पता चली थी। फिर इस आयाजन की बात गुन कर मुझ लगा कि इह इतनी जल्दी करने का हठ क्या है। इसक अतिरिक्त ब इस आयोजन पर पहले स तिगुना पसा खच करत नजर आय। शायद व महीना पहले से ही उस काम मे जुट गये थ। शायद इसकी प्रेरणा उह भारत सरकार द्वारा पद्यभूषण प्रदान किये जाने स मिली थी, नही तो मुझ इसका कोई नया कारण दियायी नही दिया। उहुपि के उत्साही जन और बुजुर्गों को यह एक आदत सी बन गयी है। उनकी सारी तैयारी के बाद मैं साच रहा था कि पता नही इमकी अध्यक्षता के लिए किस मन्त्री को बुलाने वाले हैं। तभी पता चला कि कनकता क विद्वान अखिल भारतीय छायातिप्राप्त डा सुनीतिकुमार चटर्जी की वे स्वीकृति ले चुके है। चटर्जी कनडवाला के विशेष परिचित न होने पर भी उत्तर भारत म काफी प्रसिद्ध थे। वे अनेक भाषाआ के जानकार थ। उहाने भाषा और संस्कृति क बारे म काफी काम और शोधकाय किया था। उनके बारे म मेरी जानकारी बहुत कम थी।

उहुपि म यह उत्सव तीन दिन चला। कर्नाटक म कनड की सेवा म लगे बहुत स साहित्यकारा को बुलाया गया था। गोळिया पर गोळियाँ हूइ। भोज नादि का जबदस्त प्रबन्ध था। लगभग एक मने का-सा ही आयोजन था। उस अवसर पर मेरे अनेक मित्र तथा कर्नाटक के बाहर के भी लागा को देखकर मुझ बडा आश्चय हुआ। उस अवसर पर मेरी कल्पना स बाहर की मेरे ही एक प्रपच की उठोने वहाँ मेरे लिए रचना कर दी थी। उस कल्पना का कारण भी मैं ही था। इसस पहले मैंने बालप्रपच' लिखा था। बाद म मैंने विज्ञानप्रपच लिखा। मेरे मित्रो ने इसी अवसर पर छह सात सौ पृष्ठा का भारत प्रपच' नाम से एक अभिनन्दन ग्र थ मुझे भेंट किया।

इस उत्सव से मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता इससे हुई कि मरा स्नेह याद

करके मेरे मित्र और अभिमानी वहाँ आये थे। इतन लोग के सामने मैंने अपना बो बहुत छोटा महसूस किया। मेरे लिए एक और सतीष की बात थी उस निमंत्रण पर अद्यक्षता करने आये डा सुनीति कुमार का परिचय। बाद में जब एक बार कलकत्ता गया तो उनके घर भी गया था। उन्होंने मेरे 'मरलि मणिगे' उपन्यास के बंगाली में अनुवाद का कलकत्ता में विमोचन किया था। उद्दिष्ट के उत्सव में जब मुझे पण्डाल में ले जाया जा रहा था तब का दृश्य एक दृश्य आज भी मुझे दुःख देता है। यहाँ उसका उल्लेख करना गलत नहीं होगा। मेरे स्वागत के लिए पण्डाल के फाटक से मंच तक दोना और यक्षगान के बलाकारों का यक्षगान की वेश भूषा में सज्जित करके खड़ा किया गया था। यह दृश्य कर मुझे बड़ा ही दुःख हुआ। बला चाहे जा भी हा वह सदा बड़ी हाती है। उसकी वेश भूषा मुझे प्रिय है, वह यक्षगान की एक बड़ी सम्पत्ति है। हम अतिमानव व्यक्तियों को एक काल्पनिक वेश भूषा देकर एक नयी सृष्टि का सजन करके उसमें रम जाते हैं। ऐसे वेशों का और उस बलाकारों में अभ्यास किया है। मैं उसका भवन भी रहा हूँ। अतः मेरे स्वागत के समय बलाकारों को दोनों ओर खड़ा करना मेरे लिए एक अविस्मरणीय दुःख है। वह औचित्य की सीमा के परे की बात थी। पर यह मुझ पर के अभिमान के कारण ही किया गया काम था। मैं जानता हूँ कि उन्होंने मेरे यक्षगान के प्रति दृष्टिकोण को समझने के कारण ही ऐसा किया था। यह घटना हुए करीब पन्द्रह वर्षों की बात है। मैंने अपना दुःख आज जाहिर किया है। हम चाहे कितने भी बड़े क्या न हा, हम अपने जीवन के किसी आदर्श के प्रतीक रूप को भवित और आन्तरिक स्वीकार करते हैं। उमम यही आगम रहता है कि वह जहाँ है हम ही यहाँ पहुँचना है। हम जहाँ रहते हैं उस जहाँ नहीं बुलाना चाहिए और उसे वहाँ आना भी नहीं चाहिए। हम ही उसके स्थान पर जाना चाहिए।

केवल अभिमान से काम नहीं चलता

केवल अभिमान से काम नहीं चलता। यक्षगान पर तो मुझे बहुत अभिमान है। उसके लिए अपनी ओर से परिश्रम करने का आगा-पीछा नहीं सावधान। पर उस क्षेत्र में यहाँ के देवालय से सम्बंधित कुछ मण्डलियाँ सत्रिय हो चुकी हैं। ऐसी मण्डलियाँ संचारी नाटक सम्पत्तियों की वेशभूषा का अनुकरण करके नृत्य की उपस्था करके यक्षगान दिखाने लगी हैं। उनके विचार में सम्पूर्ण तात्पर्य, टिप्पट लगाकर मात्र दिखाना लाभदायक है। यह प्रवृत्ति दो-तीनों शताब्दियों से दिखायी देने लगी है। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में 1958 में आयोजित यक्षगान की प्रथम गोष्ठी में मुझे यह सूचित किया कि यक्षगान को उसने लिए प्रसिद्ध करने का अभी भी कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। उस कमी को पूरा करने के

विचार से मैंने कर्नाटक संगीत अकादमी को उसकी आवश्यकता समझायी। यम्बई के मित्रों से प्रार्थना की और गाँव के चार छह लोग मनात करके उस प्रशिक्षण के लिए एक शाला चालने का विचार किया। अपन मित्र वी की आचाय के गाँव ब्रह्मावर में एक घर निश्चित किया और वहाँ एमी एक शाला चोली। नीलावर के रामकृष्णय्या भागवतर का काम करने लग, प्रगिद्ध यश-गान अभिनेता हाराडि कृष्ण नत्पशिंगक बन गये गोपालराय मदग सिव्यान लग। सीखन की इच्छा रखनेवालों को सिपानेवाले तीन अनुभवों बताकार मिन।

तीन वष उस शाला के चलाने की अवधि में मैं अनुभव किया कि केवल यक्षगान सीखन के लिए विद्यार्थी नहीं आना चाहते। शाला को पढाई के बाद शाम का न यक्षगान पढ़ाने करते हैं। उसमें भी पहल वष जसा उत्साह अगल वष नहीं रहा। ऐसी परिस्थिति में तीन वष तक वह शाला चलायी गयी। दो वी आचय और गणपय्या अलस की सहायता से किसी प्रकार यह काम चला। यह अनुभव करके कि इसमें न कोई "यावसायिक" लाभ है और न ही कोई वित्तीय प्रयोजन। अतः तीसरे वष वह शाला बन्द कर देनी पडी।

सोभाग्य से अपनी वृत्ति को छोड़कर मर सहायक उन भागवतर और मृग बादक आगे एक समय मर काम आये। वह समय है आठव दशक का आरम्भ।

दिल्ली अकादमी द्वारा सम्मान

पिछन दिन पहली बार सन् 1957 में आसपास दिल्ली में एक नृत्य पाट्टी हुई जिसमें दिल्ली का संगीत नाटक अकादमी न यक्षगान, थोडिसी, कुचिपुडि नत्वा का भी स्वीकृति प्रदान की। हाराडि राम शिवराम हगड इन दिना को यक्षगान कलाविदो के रूप में सम्मानित किया गया। तीसरी बार श्री वीरभद्र नायक सम्मानित किये गये।

साथ ही श्री वीरभद्र नायक को कन्द्रीय अकादमी से और एक सहायता मिली। वह यह थी कि उन्हें इस क्षेत्र में काम करने के लिए पाँच छह वष तक के लिए पाँच सौ रुपये की मासिक बन्नि दी गयी। तब मैंने साचा कि यक्षगान में रचित रखनेवाले उनसे लाभ उठायेगे। मैंने उडुपि के मित्र श्री हरिदास भट्ट और और वी की आचाय से इस विषय पर चर्चा की। वे मणिपाल अकादमी की सहायता से 1981 के लगभग वहाँ एक यक्षगान शिक्षणशाला प्रारम्भ करने में सफल हुए। इस प्रकार तीन शिक्षक और बारह विद्यार्थियों से एक यक्षगान के द्र का ज म हुआ। नायद भोजन और शिक्षा की सह व्यवस्था होने के कारण जगह जगह से अम्पथी आने लग थे। उनमें केवल नस बारह "यकितया" की चुनता भी उडे सकोच का काय था। इसके लिए हमने केन्द्र और कर्नाटक

सरकार से सहायता मांगी। वे तो सहायता दत ही आ रहे थे, परंतु रोज यह चिन्ता सता रही थी कि एक प्राथमिक शाला के अध्यापक से भी कम वेतन पर तीन अनुभवी कलाकारों की सेवाएँ लेना हमारे लिए कहीं तक शोभनीय है? दूसरी बात यह थी कि कर्नाटक सरकार द्वारा विद्याधिया को दी जानेवाली सहायता से उनका सारा खर्च कब तक चलाया जा सकता है? एक यह भी चिन्ता हमें सता रही थी कि यह केन्द्र और विकसित करन के लिए सगीत वाद्य और नृत्य—इन सबके प्रशिक्षण हेतु केवल तीन शिक्षक काफी नहीं हो पायेंगे।

रगमच और वाहर

यक्षगान केन्द्र

उडुपि प्रसिद्ध यात्रा स्थल है मणिपाल की अनेक शिक्षा संस्थाओं का केन्द्र भी है। इसलिए वहाँ लोग का आना जाना लगा रहता है। वहाँ के महात्मा गाँधी कानज के प्रिंसिपल श्री हरिदास भट्ट थे। कॉलेज के आश्रम में ही हमारा यक्षगान केन्द्र आरम्भ हुआ। उन दिनों मैं पुत्र भ रहता था अतः बीच-बीच में वहाँ जाकर विद्यार्थियों का थोड़ा बहुत भागदण्ड भी कर सकता था।

दिल्ली नाट्यशाला के निदेशक श्री अलकाजी मेरे विचारों से प्रभावित हुए। वे विविध प्रकार के नाटकों के प्रयोग में लगे हुए थे। वे यक्षगान देखने उडुपि भी आये। यक्षगान के कुछ कथानकों को वे हिन्दी में अनुवाद करके उस अपने विद्यार्थियों द्वारा अभिनीत कराना चाहते थे। उन्होंने वह काम मुझे तीन मास के भीतर कर देने का कहा। तब मेरे पास मेरे पहले खेले जा चुके भीष्म विजय के कथानक का रिकार्ड था। उसके भीतों को उसी शैली में उन्होंने दिल्ली के हिन्दी कवि स अनूदित कराया। हमारे केन्द्र के नाट्य शिक्षक हेरजाल वैकटरमण ने उनके विद्यार्थियों को पारम्परिक नृत्य पद्धति सिखायी। राम गणेश भागवत में हिन्दी जानते थे। उन्होंने वहाँ के भागवत का काम निभाया। उस राष्ट्रीय नाट्यशाला के तीस विद्यार्थी उसमें प्रशिक्षण लेने लगे। तीन मास तक, मैं महीने में दस बार दिल्ली जाता आता रहा। वहाँ के विद्यार्थियों से एक बले शली का नाटक तैयार कराया। वहाँ के कुछ विद्यार्थी बहुत उत्साही थे। प्रतिदिन वे शारीरिक अभ्यास की व्यवस्था की जिम्मेदारी श्री बी. बी. कार्तिक पर थी। अभिनय और रंग संचालन और निर्देशन का भार मैंने अपने पर लिया।

यक्षरग

इन प्रयत्नों से हमारी राजधानी दिल्ली में कर्नाटक के यक्षगान का हिन्दी रूपांतर प्रदर्शित हुआ। उस जमाने में वहाँ की एक छात्रा राक्षिणी बोका न अम्बा के पात्र को बड़े ही सतोपजनक ढंग से निभाया। वही ही दो अन्य तरुणा

ने भीष्म और परशुराम के पात्रों का बड़ा सफल निर्वहण किया। मुझे लगा कि उस बले ने दिल्ली के विद्वानों को भी तृप्त किया। इससे हमें आगे बढ़ना पड़ा। वे राष्ट्रीय सरकार के सांस्कृतिक और शिक्षा विभाग की डा० कपिला वात्स्यायन उडुपि आयी। तब उन्होंने इस नये प्रयोग को स्थाई रूप से प्रशिक्षित करने के लिए अपेक्षित आश्वासन दिया। इसलिए यक्षराम नाम से एक नये विभाग ने हमारे के द्र में जन्म लिया।

राहिणी वीणा बाद में रोहिणी हट्टगडी हो गयी। उन्होंने एटिनवरो के चलचित्र गांधी में कस्तूरबा की भूमिका निभायी जो मेरे लिए एक बड़े सतोप की बात थी। उनमें नृत्य और अभिनय की क्षमता को मैं बहुत पहले ही पहचान गया था।

‘यक्षगान’ पर एक पुस्तक

इस अवधि में मसूर विश्वविद्यालय की प्रेरणा से सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से यक्षगान कैसा होना चाहिए, उसकी पारम्परिक सम्पदा क्या है, उसकी सीमाएँ क्या हैं, आदि के बारे में मैंने अग्रणी में एक पुस्तक लिखी। उसके प्रेरणास्रोत डॉ० ह मा नायक हैं। वे मसूर विश्वविद्यालय में कानड अध्ययन सत्यान के निदेशक हैं। वह पुस्तक कानड और हिंदी में भी प्रकाशित हुई। उससे भी पहले मैंने उनसे कहा था, “कानड में चित्रकला पर कोई पुस्तक नहीं है। मेरा विचार इस देश की चित्रकला के बारे में लिखने का है।” तो वे बोले, “उस हम लिखकर दीजिए।” तब मैंने कहा, “वह पुस्तक सचित्र होगी, उस पर बहुत खर्च आयेगा।” तब वे बोले, “कोई बात नहीं, आप लिखिए।”

कर्नाटक की चित्रकला

आठवें दशक का शुरू का वर्ष मैंने उसी काम में बिताया। मैंने पहले यह पता लगाया कि कर्नाटक की चित्रकला कहाँ कहाँ शेष है। मैंने पहले उसे बहुत कम देखा था। मैंने पहले सुना कि अजन्ता की शली पर वादाभी की दूसरी गुहा की आनती के नीचे कुछ चित्र हैं। वहाँ जाकर देखा तो उसकी रक्षा के लिए पोती गयी बानिशा सहित सारे चित्र अदृश्य हो गये थे। उनकी कल्पना मिण्डिगी की बनायी प्रतिकृतियाँ से और दिल्ली ललित-कला व विद्यापिया की प्रतिकृतियाँ से करनी पड़ेगी।

मैंने सुन रखा था कि हमारे यहाँ के भित्तिचित्र बीजापुर के राजमहला के पास ही बम्मतगी में और क्षयणी, निष्पापी आदि जगहों में हैं। मैं उन्हें देख गया। ऐसे दस-तीन बार जाकर उनके रंगीन प्रोगे खींच लाया। वे सब भित्तिचित्र

धुंधले पड चुके थे, खराब हो चले थे और एवदम नष्टप्राय स्थिति में थे। उसी प्रकार पहले के बनाव चित्रों पर फिर स बची फिराकर बिगाड जाला गया था। ऐम चित्र हम्पी के विहपाक्ष के मन्दिर के पास के मण्डप की छत पर भी हैं और कुछ चित्र श्रीरंगपट्टण, सिबी और श्रवणबेलगोल में भी हैं।

लघु चित्र भी इस प्रदश में हैं। मूडबिद्रि के घवलत्रय चित्र लगभग बारहवा और तरहवी शती के है। मैं उनके फाटो संग्रहीत किये। बीजापुर के श्री नारायण राव कुलकर्णी के पास दक्षिण हिंदू और इस्लामी शली के काफी मुन्तर लघुचित्रों का संग्रह था। बीजापुर के ही म्युजियम में अमीर एसरो की लिखी पुस्तक में परशियन शली के कुछ उत्तम चित्र दख थे। वह पुस्तक तब अत्यंत जीर्णवस्था में थी।

चित्रों के लिए यात्रा

मैं एक दो मित्रों के साथ लेकर निष्पाणी हो आया। वहाँ एक बाड से भित्ति चित्र संग्रहीत करके लाया। यही नहीं, हिरवनकल की गुफाओं में आदि काल के लोगों द्वारा बनाय गये चित्रों का भी संग्रह किया। इस प्रकार तीन वर्ष के इस परिश्रम के बारे में मैंने अग्रजों और कन्नड में एक सवित्र पुस्तक लिखी। कन्नड अध्ययन संस्थान के डॉ नायक के उत्साह से वह प्रकाशित भी हो गयी। इस प्रकार की इतनी मोटी रचना के लिए तीस चालीस हजार रुपये का खर्च आ सकता है। केवल भ्रमण और चित्र संग्रह में ही मैंने आठ हजार रुपये खर्च किये थे। इस पुस्तक की बिन्धी कसी हो रही है यह मुझे पता नहीं चला।

भारतीय शिल्प

इस पागलपन के बाद, अपने दश के शिल्प के बारे में लिखने की इच्छा हुई। उसक लिए मैं ऐसे कई भागों को दखन गया जो अब तक नहीं दख पाया था। बहुत पहले मैंने ऐसे शिल्प के लिए प्रसिद्ध कुछेक स्थान दखे थे। तब मरी नजर इतनी विकसित नहीं थी, कला की भी पर्याप्त समझ नहीं थी। अज्ञानता, एलोरा और औरंगाबाद में अपने मित्र हेवार के साथ चक्कर लगाकर चला आया था। दुबारा एलारा के शिल्प देखते समय मैं तो दग टूी रह गया। दिल्ली बलकत्ता और मद्रास के वास्तु संग्रहालयों की कांस की प्रतिमाओं के संग्रह का अध्ययन किया। उनक फोटो प्राप्त किये। इस प्रकार दो वर्ष के अत्यंत परिश्रम से मैंने अपने इस दश के शिल्प के बारे में अपना पान या अनान दर्शन का एक पुस्तक मणिपाल मुद्रणालय में छपवाकर बंगलूर विश्वविद्यालय का अर्पित की। वहाँ के कन्नड अध्ययन संस्थान के डा शिवरत्नप्पा की सहायता से मरा यह परिश्रम

सायक हुआ ।

शक्ति से बाहर का भार

उसके बाद यह विचार आया कि विश्व की शिल्प, वास्तु और चित्र-कला से सम्बन्धित एक पुस्तक कन्नड में क्यों न लिखी जाय । दुनिया के दूसरे देशों के चित्र, शिल्प और इतिहास से सम्बन्धित ग्रंथ मैं पहले से पढ़ता आ रहा था । चित्रकला और पाश्चात्य कलाकारों के अनेक ग्रंथ मेरे पास हैं । यह सब देखने पर मुझे लगा कि मेरा देश और यहाँ के लोग इस विषय के बारे में इतने अनभिन्न क्यों रहें ।

इस अध्ययन के साथ, इससे पहले सन 1952 में मैं यूरोप की भाष्य कला कृतियाँ का सरसरी नज़र से देख आया था । 1972 में अमेरिका के मंट्रोपोलिटन, गुगनहाइम, स्मिथोनियन, बोस्टन आदि के म्यूजियम के चित्र और शिल्प भी सरसरी तौर पर देख आया था । उनकी प्रेरणा से 1973-77 की अवधि में इस विषय का अध्ययन करके, लेखनकाय पूरा कर तथा चित्र चुनकर—इस तरह पाण्डुलिपि तैयार कर लेने के बाद मैंने मणिपाल मुद्रणालय में उस की छपायी के खर्च का अंदाज़ पूछा । उन्होंने बताया, एक हजार प्रतिया के लिए करीब आठ हजार रुपये खर्च आ सकता है । उसमें पाँच सौ काले सफ़ेद और चौबीस रंगीन चित्रों का खर्च नहीं लगाया गया था । तब मैंने मैसूर के कन्नड अध्ययन विभाग से चर्चा की । वहाँ की नयी व्यवस्था से वहाँ के निदेशक डॉ. ह. मा. नायक जरा निरुत्साहित हुए । उसी समय कनाटक विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डॉ. हिरेमठ ने कन्नड पर के अभिमान के कारण कहा, 'वह हमें दे दीजिए ।' मैंने उनकी बात शिरोधार्य कर एक सान्निध्य की अवधि में उसे छपवाकर उन्हें सौंप दिया । वही रचना मेरा कला प्रपञ्च है । उस पर मुझे दो प्रकार का गव है । पहला, मुझे उस काम से मिला सत्तोप और उसी से मेरे ज्ञान वृद्धि का सत्ताप । दूसरा यह कि भारत की समस्त भाषाओं में एका समग्र ग्रंथ अभी दूसरा नहीं आया ।

विहगम दृष्टि

उस पुस्तक के आरम्भ में, दुनिया भर में चित्र और शिल्प-कला के विविध रूपों का किस प्रकार विकास हुआ और उनके मुख्य सक्षण क्या हैं इसका सविस्तार वर्णन है । उसके बाद आदि-नागरिकता से लेकर विश्व के प्रमुख राष्ट्रों में चित्र, शिल्प और वास्तु के क्षेत्रों में क्या योगदान किया इसका उल्लेख है । वह सब बताने से पहले, शुरू के सात-आठ अध्यायों में उन कलाओं के परिचय के लिए

अनिवार्य और प्रस्तुति के लिए आवश्यक सिद्धान्तों को सोदाहरण समझाने का प्रयत्न किया है।

प्रवास

इस शतक में आरम्भ में पाश्चात्य देशों में प्रसिद्धि प्राप्त, हाल की दो ही शताब्दियों में सम्पदा साहस, शोध खोज आदि क्षेत्रों में जनन, संयुक्त राज्य अमेरिका को देखने का अवकाश मिला। सन 1972 में विमान बम्पनीवाला ने तीस स एक्-सौ-बीस दिन की अवधि के लिए भारत से अमेरिका हाकर आन को पाँच हजार रुपये की रियायत दी थी।

उसके साथ ही मिनीया पोलिस नगर के गणितज्ञ डा गोपीनाथ कल्याणपुर ने जो मरे बड़े पुरान मित्र थे, मेरे सारे प्रवास की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी, यह कह तो गलत नहीं होगा। वे स्वयं यूयाक आय और मुझे सारा यूयाक दिखाकर अपने यहाँ ले गए। मरे यशगान की विद्यार्थी मार्फत एस्टन सानफ्रांसिस्को में सिकाया के जगल और कोलराडो के गह्वर दिखाने को तैयार हो गयी। आगे डा कल्याणपुर डेनर नगर आये। वहाँ से मुझे घाट एटन पवताबलि, यल्लो स्टोन उद्यान बड लैंड आदि दिखाते हुए कार से दो हजार मील की यात्रा करायी। उसके उपरांत विमान द्वारा मुझे वाशिंगटन ले जाकर वहाँ से मसंच्यूटस के एमहरस नगर पहुँचाया। आगे वहाँ से मरी साली के बेटे कुलकर्णी ने बोस्टन नगर दिखाकर यूयाक पहुँचाने का काम किया।

इस प्रकार एक मास के भीतर मुझे संयुक्त राज्य अमेरिका का थोड़ा-बहुत परिचय प्राप्त हो गया। उसका वर्णन मैं अपनी पुस्तक 'पातालकके प्रयाण (पाताल की यात्रा) में किया है। उस यात्रा में हरे भरे जंगला, प्रकृति साहसी उद्यमों उनकी चित्रशालाओं और वैज्ञानिक समस्याओं ने मुझे अचरज में डाल दिया। उनके साहस से मैं पुलकित हो उठा। मैंने उनके कुछ नाटक भी देखे। सान फ्रांसिस्को नगर में आयोजित एक नाटक गोष्ठी में मैंने भी हिस्सा लिया। इस प्रवास ने मुझे प्रकृति और मानव के सम्बंधों की सीमाओं के बारे में सोचने को विवश किया।

फिर से रगमच का मोह

यूयाक में मैंने ब्राडवे रियू शूबट जय ती के अवसर पर आयोजित संगीतो-त्सव देखा। बाद में सान फ्रांसिस्को में रगमच सम्बन्धी गोष्ठी पर एक चीनी अपेरा और जापान का बबूकी नाटक का घाडा बहुत भाग देखने का अवसर भी मिला। यह सब देखने पर मुझमें अपने काम के बारे में और अधिक आस्था बढ

चली। 1969 में मेरे पास डाक्टरेट के मागदशन की आयी मार्था एस्टेन तब मेरे साथ रही। यक्षगान सीखने को जब वह मेरे पास आयी थी तब मैंने उसे अपन ही घर रखकर अपनी 'यक्षगान वयलाट' पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद करके बताया था। बाद में उसके लिए हिरियकडक गोपालराय और नीलावर रामकृष्णय्या से संगीत शिक्षण का प्रयत्न भी करके दिया था। मैं उम कई बार अपने प्रयासों में साथ ले गया था। घर में ही दो मास तक मैंने अपन ढग का ही नय मिखाने का प्रयास किया था।

विद्रोहिणी शिष्या

उसने बड़े परिश्रम में अनेक बार दशावतार खेल देखकर उसका विस्तार में अध्ययन करने अपनी डाक्टरेट की थीसिस तैयार की। उसमें उसे डॉक्टरेट भी मिली। उसमें एक वमी देखी वह नय पद्धति यात्रिक ढग में सीख रही थी। भाव विभोर होकर पात्र की तन्मयता उसमें नहीं आती थी।

आगे भी वह दो वष के लिए हमारे दश की भूताराधना के अध्ययन के लिए मेरी शिष्या बनकर आयी। उसके पुन आन के बार म कर्नाटक सरकार का विराध था। उसे मित्रा के माध्यम में किसी प्रकार अनुमति दिलायी और उसके आगे के काय का मागदशन भी किया। बाद में वह जिस रास्ते पर चली वह कुछ और ही था। वह डाक्टरेट जो पा चुकी थी। गौरी जाति की थी। गौरी जाति के लोग हमारी कला सीखन आये तो यहाँ लाग यह समझन लगते हैं मानो देवता ही उतर आये हैं। ऐसे लोगों की सहायता से गुरु को ही गुरुमंत्र सिखाने वाली शिष्या बन गयी थी वह।

मैं चुप नहीं रहा

उस अवधि में उत्तर कर्नाटक के सण्ण आटा (छोटा खेल) और दोहड आटा (बड़ा खेल) की एक गोष्ठी हंगोडी में आयोजित की। उसमें उम और के पारिजात राघाकृष्णा, सग्या बाल्या और एक बड़े खेलवाली की बुलाकर, उनका खेल देखकर, उनके बच्चे वैभव को आंकने का प्रयास किया। उसके बारे में कर्नाटक संगीत नाटक अकादमी को एक रिपोर्ट भी भेजी।

कठपुतली का खेल

अगले एक वष कुंदापुर, हुलुवागलु अतरवल्लि, अरेमल्लापुर, हादर मेरी आदि गाँव से कठपुतली का खेल दिखाने वाली सात-आठ मण्डलियाँ हंगोडी में बुलायीं। वहाँ के थोड़े थोड़े मुद्बण्णा की सहायता से उनके खेल देखकर उन पर भी विचार किया।

उन मण्डलिया म भी बडा से चली आयी सम्पदा को आगे बढानेवाले नही दिखे । पता चला कि व उस ओर ध्यान दन वाल भी नही है । हम उनक लिए क्या कर सकत है अथवा क्या करना चाहिए इस आशय की एक योजना मने एमी गोष्ठिया के लिए धन की सहायता देने वाली संगीत नाटक अकादमी का भेजे । कठपुतली के माध्यम से हम बच्चा का युव मनोरजन कर सकत है यह तथ्य उनम काफी मात्रा मे है । इसक अतिरिक्त विदशा म लोग कठपुतलिया स और उँगलियों से नचानेवाली पुतलिया मे कमे-कमे चमत्कार नही दिखाते । क्या हम भी बसा नही कर सकते ? हमार यहाँ पुतलियाँ केवल यक्षगान के पात्रों को नवल उतारती आ रही है । हम लोगो ने उह स्वतन्त्र रूप से प्रयाग करने की सभावनाओ की ओर ध्यान नही दिया । इही कारण स कठपुतली क लिए जा उत्साह मिलता था व् जाता रहा । आजकल कर्नाटक, आंध्र, राजपूताने म यह खेन नष्टप्राय स्थिति को प्च चुका है ।

यक्षरग का उदय

मेरे अपने दृष्टिकोण और प्रयत्न का व्यवत करने वाले यक्षगान श्री अलवाजी के प्रयत्न से दिल्ली म प्रदर्शित हुए । वहा उह लोगो न काफी पसन् भी किया । वहा के कई रगकर्मियो को उसन आकर्षित भी किया । बड़यो की प्रणामा मे मुह पर की तारीफ भी काफी मिली हुई थी । बड़यो न उसे उदात्त दृष्टिकोण से भी देखा । उाका गारा प्रशिक्षण दिल्ली संगीत नाटक अकादमी के तत्वावधान मे हाता रहा । उह देवन को नाटक अकादमी के अधिकारी ही नही, बाहर के लोग भी कौतूहल से जाते थे । वहा का पूरा काम करके घर लौटते समय मैं संगीत नाटक अकादमी क सचिव डॉ. सुरेश अवस्थी स मिलने गया । उ हाने मेरा बडे उत्साह से स्वागत किया । भर काय की खूब प्रशंसा करत हुए उहाने कहा, "हम सब इतने दिनों स लोक-कलाआ क बारे मे लम्बी चौडा बातें करत चले आ रह है । पर आपने इसी अवधि म उनमे छिपी शक्ति का खोप करा दिमा । ' यह बात किसी के भी मन म खुशी भर सकती थी । मुझे भी बहुत खुशी हुई । परंतु उही अवस्थी महोदय ने तीन वष बाद किसी जीर मदभ म कथकलि और यक्षगान के क्षेत्रो की समीक्षा करत हुए फरमाया कि हमारे आधुनिकीकरण के सारे प्रयत्न परम्परागत शली का नष्ट कर रहे है । मने यह बात एक अग्रजी पत्रिका मे पढी । तब मुझे ऐसा लगा, केवल राजनीति म ही नही बसा क्षेत्र के व्यवहार मे भी कितना छल फरेक भरा है ।

सन् 1974 मे श्री अलवाजी और डॉ. कपिला वात्स्यायन उडुपि के एक उत्सव मे आय थे । व विशेष रूप से मुन्म मिलन भी आये । तब उहोन मुझसे कहा था, ' आपको जो सुविधा और सहायता चाहिए हम उसका प्रबन्ध करेंगे,

आप अपना काम जारी रखिए।" तब मैंने उन्हें बताने हुए कहा था, "आप के इस काम के लिए दस-बारह आदमियों का खर्च उठाना पड़ता है। अनुभवों व्यवसायियों को ही इस काम पर नियुक्त करना पड़ता है।" यह बताकर मैंने उनसे बाधा से संप्रधित वेला सेक्सोफोन आदि का जिफ किया। मर और उनके सम्पादन के समय उपस्थित मार्था के मुख से आश्चर्य से निकला बला चाहिए। मैंने उसे टोका, "बेकार की बात मत करा।" बाधा परकीय हान से संगीत परकीय नहीं हो जाता। मेरा अनुभव है सेक्सोफोन और वेला से हमार नृत्य और नाटक के संगीत को बल मिला है।"

उसके बाद यानी 1976-78 में हमने अपने केंद्र से ही लगी यक्षरग नाम की सत्या चलानी आरम्भ की। उसके लिए व्यवसायी कलाकार ही लिये। प्रति-वर्ष दो मास उन्हें मूक नृत्य नाटक का प्रशिक्षण दिया। पहले वर्ष 'नल दमयती' और भीष्म विजय,' और दूसरे वर्ष 'कनकागी कल्याण' तथा तीसरे वर्ष 'चिन्नागदा' आदि नृत्य नाटकों के अभिनय का प्रशिक्षण दिया गया।

इस तालीम की अवधि में हमार ये मूक यक्षगान दो वर्ष तक मालिग्राम में, जहाँ मैं रहता था, और तीसरे वर्ष उडुपी में तयार कराये गये। हमारी तालीम का केंद्र गाव के कुतूहल रखनेवाले प्रेम्का के लिए खुला था। गाव के लोग केवल परम्परागत यक्षगान से जिसमें भाषा का महत्व होता था परिचित थे। वे लोग भी दोनों वर्ष मूक और विस्मित हाकर हमार मूक यक्षगान का देखन आते रहे।

इस प्रकार तयार कराये गये नृत्य नाटकों का श्री हरिदास भट्ट ने भारत के अन्य प्रदेशों में भी प्रदर्शित करने की जिम्मेदारी ली। उन्हें प्रतिवर्ष कर्नाटक में ही नहीं, भारत के अन्य नगरों में भी प्रदर्शित किया गया। इस प्रकार वे देश के अन्य प्रदेशों में तमिलनाडु, केरल, आंध्र, मध्य प्रदेश, बम्बई, पूना, असम, पंजाब हो आये। वे नड भाषा से अनभिन्न हमारे प्रांतों के सभी नाटक प्रेमी लोगों ने उन नृत्य नाटकों को पसंद किया जिससे हमारा आत्म-विश्वास और बढ़ गया। पर अकादमी के एक नियम का पालन करना हमारे वश की बात नहीं। उसके अनुसार प्रतिवर्ष पचास प्रदर्शन कर्नाटक के दूसरे भागों में होने चाहिए थे। इसके लिए व्यवस्था करनेवाले चाहिए और हमें आमंत्रित करने वाले भी तो चाहिए न? उस कष्ट की कोई सीमा नहीं। वह हमारे कार्यकर्ताओं के बूते की बात नहीं। इसलिए हम अपना यक्षगान तीसरे वर्ष में ही बंद करना पड़ा।

गाव वाले

मैं जिस दिन से इस काम में लगा उसी दिन से हमारे कुछ स्थानीय वृद्धों

को लगा कि हम दिया जाने वाला प्रोत्साहन, वास्तव में यक्षगान के बिगाड़ने के लिए दिया जा रहा है। यह अत्याप है। एमी शिवायतें सागा न केन्द्र सरकार को भेजीं। मरे वह काम करने से पूर्व ही एस पत्र मरे पास भी आय थे। उस द्वेषी दल में हमारे कुछ मित्र भी शामिल थे। पता चला कि मेरी शिष्या भार्या एस्टने भी उनके सरगन में एक थी। उसने एक दिन भर घर ही आकर वृत्ताता से यह कहा 'आप जो दिखा रहे हैं वह यक्षगान नहीं है।' बाद में वह ऐसा प्रचार भी करने लगी। मानव स्वभाव पर विश्वास नहीं करना चाहिए, ऐसी शिक्षा हनु मर लिए तो वह एक घटना थी।

मैंने उसका चित्रकार हेब्बार से भी परिचय कराया था। उसने अपन लेख के लिए एक चित्र भी बनवाया था। इसलिए उन्होंने उससे यह ही डाला "आप विदेशी हैं। क्या आप यह चाहती हैं कि इस देश की कलाएँ केवल म्यूजियम भर के तमाशे की ही रहें? रगमच की विद्यार्थी होने के नाते यूरोप में उसके दशक चित्र, शिल्प वास्तु नृत्य, संगीत और रगमच आदि के विषय में क्या-क्या किया जा रहा है और कैसे विकसित हो रहे हैं, उनकी परम्परा की मायता क्या है—यह तो उग पता ही होगा। हमारे यहाँ के असहिष्णु लोगो के उकसाने पर चार दिन का यहाँ आयी उसे इस देश की रीति नीति पर इतनी उद्दण्डता की बातें कहना मुझे सम्भयता का लक्षण दिखाई नहीं देता।

आभूषणों की सजावट

यक्षरग की योजना हाथ में लाने के बाद मुझे और भी बहुत कुछ साचना पड़ा। तब गाने के भाग का पुष्टि देने के लिए बेला और सक्मीफान जैसे वाद्य साथ जोड़े। इससे भागवतर के काम को अधिक सहामता मिली। दिल्ली में हिन्दी यक्षगान के प्रदर्शन में इसके महत्त्व का अनुभव हुआ। आकाशवाणी के विद्वान् मेरे मित्र ए वी कृष्णमाधाय बेला बजाने वहाँ गये थे। उ होने बिना गायकी के नृत्य और दूसरे वातावरण के लिए वाद्य की जा पष्टभूमि प्रदान की, वह मैं कभी भूल नहीं सकता। यह बात बताने का एक और भी कारण है। यक्षरग बाद ही जाने के बाद मेरे मित्रों ने उन वाद्या का छोड़ ही दिया। यह देखकर मुझे असीम व्यथा हुई थी।

केवल वाद्या की ही बात नहीं तब मुझे रगमच की एक-दो और वाद्या की ओर भी ध्यान देना पड़ा। पहली वषभूपा से सम्बन्धित है। मैंने देखा कि स्त्री वेष के लिए आभूषणों की कमी लगी। सही वेषभूपा की ओर भी ध्यान नहीं गया था। पुरुष पात्रों के लिए उपयुक्त आभरण वेषभूपा से ही स्त्री पात्रों के लिए काम चलाना पड़ता था। पुरुष पात्रों के आभरणों की अति की जरूरत कम

करके उनकी वेशभूषा के अनुकूल उसमें सन्तुलन लाना था। इसके अतिरिक्त, वे आभरण काष्ठ के होते थे। भारी किरौट और आभरण धारण करना एक बठिन काय था। उनके आकार और आधिक्य के कारण नृत्य में कई बार गति और मगिमा में अवरोध उत्पन्न हो जाता था। इन सब कारणों से पूर्व परम्परा के काष्ठ के बदले अल्युमिनियम जैसी हल्की वस्तुओं से आभरण तैयार करने का प्रयत्न किया। उनका आधिक्य भी घटाकर कपड़े लसों के रंगों में समरसता लाने का प्रयास किया। हमारे प्रदेश के रसिक आभरणों का आधिक्य ही पसन्द करते हैं। स्त्री-प्राय की भूमिका करनेवालों की मुखसज्जा और आभरणों का तो कोई हिसाब ही नहीं रहता। उन सबको एक सीमा में लाने की अनिवार्यता मुझे महसूस हुई।

आपत् स्थिति

इस दशक की मध्यावधि में स्वतन्त्र भारत को उस महान् संकट का अनुभव करना पड़ा जो उसने कभी नहीं देखा था। यानी प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी में वंश परम्परा से साम्राज्य करने की इच्छा जाग्रत हुई। उन्होंने सब नियम एक तरफ रखकर हमारे संविधान का अपमान करके उसमें परिवर्तन लाकर 'यायाग' की भी नकार कर देश पर आपत् स्थिति लाद दी। अगणित देशप्रेमियों को जेल में डूब दिया गया। असहयोग आन्दोलन के बाद, मैंने राजनीति में कोई विशेष काम तो किया नहीं था फिर भी यह सोचता था कि भारत की स्वतन्त्रता जनता की स्वतन्त्रता है। इंदिरा गांधी के दादा मोतीलाल नेहरू ने कहा था, "जन स्वातन्त्र्य का जहाँ सम्मान न हो वह संविधान जनतन्त्र का नहीं हो सकता।" उनके बेटे जवाहरलाल नेहरू जब तक रहे तब तक कांग्रेस सस्था और अपने मन्त्रीमण्डल के सदस्यों के साथ ऐसा व्यवहार करते रहे जैसे कि एक अध्यापक स्कूल के बच्चा के साथ करता है। पर उन्होंने संविधान को कभी नहीं तोड़ा। संविधान लागू होने के पाँचवें वर्ष में ही उसमें संशोधन अवश्य किया था। उनकी बेटों ने ऐसे किसी लिहाज की ज़रूरत नहीं समझी। उन्होंने जनता के मूलभूत अधिकारों को ही जड़ से उखाड़ने का काम कर डाला।

खिताब क्यों ?

मुझे दिया गया पद्मभूषण हमारी जनता की सरकार द्वारा मुझे दिया गया खिताब था। उस जनता के अधिकारों का ही सम्मान न रखनेवाली सरकार के विषय में अपना अभिप्राय स्पष्ट रूप में व्यक्त करने का एक उचित रास्ता था— उन खिताबों का अपने विचारों सहित राष्ट्रपति को सौदा देना। निम्नलिखित

पत्र लिखकर मने तत्कालीन राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद के पास भेज दिया। यह बात मैंने बहुत दिन तक किसी को नहीं बतायी। यह मैंने प्रचार के लिए नहीं किया था। यह सोचा था कि उसका परिणाम खराब भी हो सकता है। उस घटना से एक लेखक के द्वारा भला क्या हो सकता है? इससे अधिकार-सूत्र हाथ में लेनेवाली प्रधानमंत्री चुप भी रह सकती है?

सेवा में

सालिग्राम (द० व०)
दिनांक 2 10 1975

हिज एक्सीलेन्सी फखरुद्दीन अली अहमद साहब,
राष्ट्रपति नयी दिल्ली

आदरणीय

आपकी सरकार की ओर से सन 1969 में तत्कालीन राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त पद्मभूषण प्रशस्ति को आज मैं संखेद आपको लौटा रहा हूँ। ऐसा करने का कारण क्या है यह बताने के लिए आपकी अनुमति चाहता हूँ।

मई 1922 में दूसरों की ही भांति मैंने भी गांधीजी व असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था। तब अंग्रेजों के अधीन भारत की सेवा के लिए ही मैंने ऐसा किया था। स्वतंत्रता संग्राम में अपना कर्तव्य निभाने के लिए मैंने ऐसा किया था। सन 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर हम सब को अपार हype हुआ। हमारे लक्ष्य में प्रजातंत्र की स्थापना हुई। इसके सविधान में मुझे सताप दिया, लेकिन वह सताप दीघकाल तक टिका नहीं। समय बीतते सविधान में प्रदत्त मूलभूत अधिकारों में सशोषण लाने के बहाने उसे घटाने लगे। जिन्होंने सविधान की रक्षा के लिए हाथ उठाकर प्रतिज्ञा ली थी उन्हें ही मैंने यह काम किया।

इस तरह अंतिम आघात इस रूप में लगा कि हम पर शासन करनेवाले एक व्यक्ति की इच्छा न यायाग के अधिकार को छीन लिया, इससे प्रजा के अधिकारों की रक्षा का वह भरोसा भी मिट गया। भारत के समुक्त राष्ट्र सभ का सदस्य होने पर भी उस सत्त्वा द्वारा घोषित प्रजा के मूलभूत अधिकारों का यहाँ अपहरण हो गया।

यह परिस्थिति देखकर मुझे इस चौहत्तर वर्ष की आयु में भी सिर धकाना पड़ रहा है। मैं यह समझने को तयार नहीं कि किसी व्यक्ति को किसी भी अन्य प्रजा जन की व्यक्तिगत स्वतंत्रता छीनने का अधिकार है।
बई दशकों से मैं राजनीतिक क्षेत्र से दूर हूँ फिर भी लेखक के नाते भारत की जनता के साथ हुए अयाय का विरोध करना ही पड़ रहा है। यदि कुछ भी न

हो तो भी इससे मेरी आत्मा को शांति मिलेगी। यही सोचकर यह प्रशस्ति लौटा रहा हूँ।

असत्य पर सत्य की विजय हो।

सम्मान सहित
के एस कार्त

परंतु सविधान में सशोधन करते समय उन्होंने अपने गम्भीर स्वर में कहा था जनता अपना अभिप्राय व्यक्त कर सकती है। उस जमान में पत्रिकाया पर संसरक्षिप लागू थी। सरकार का कोई भी अप्रिय समाचार नहीं छपता था फिर भी सविधान में सशोधन के बार में समाचार छपते रहे। पुत्तूर और बंगलूर में इसके लिए ही आयोजित दो सभाओं में गया था। जब पुत्तूर गया तब सभा के आयोजक का ही बंद कर दिया गया था। अतः उसकी अनुपस्थिति में ही सभा हुई। बंगलूर में आयोजित सभा में काफी लोग आये थे। उस दिन वे बकनामा में सर्वोच्च न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीश श्री मदान द हेग्गड भी आनेवाले थे। जिला कमिश्नर की अनुमति लेकर ही सभा हुई थी। फिर भी ऐसा उपाय किया गया कि वे अवसर पर आ न सकें। उस दिन की सभा में मैं और मेरे एक मित्र ने निर्दाक्षिण्य होकर आलोचना की। स्वतंत्र व्यक्तित्व का एक साम्य रास्ता— अपनी लेखनी, मुह के द्वारा अपने मन के विचार व्यक्त करना है।

आपतकाल के दिनों में आठ बुजुग और नवयुवक जेल में डूबे हुए थे। उनके अनुयायी भूमिगत होकर विरोध करते ही रहे। मैंने किसी भी संधि में सीधे भाग नहीं लिया, पर रात या दिन में समय समय पर कुछ लोगो के घर पास आने पर सलाह अवश्य दिया करता था। मैं उन लोगों का अपने ढंग से मार्गदर्शन करता और सचेत भी करता।

आगे एक दिन, पता नहीं देव की किस प्रेरणा से अथवा किसी भूत की प्रेरणा से, इंदिरा जी ने आपत स्थिति हटा दी और इस विश्वास से कि भारत की जनता उनको पीछे है चुनाव की घोषणा भी कर दी। उसका फल दुनिया जानती ही है। पदच्युत हो गयी। जनता सरकार अधिकार में आ गयी।

जनता सरकार

इंदिरा जी की निरक्षर नीति और उनके पुत्र की उद्दण्डता व विराध में उत्तर हिंदुस्तान की सारी जनता एक हो गयी। लेकिन बुद्धिमान अथवा जति बुद्धिमान समझनेवाले दक्षिण के लोगो ने इस व्यवहार को माना उमस उनका कोई नाता ही नहीं। दक्षिण में प्रायः इंदिरा गांधी व उनके अनुयायी चुन गये। तब आश्चर्य हुआ। ऐसी एक निरक्षर स्वार्थी और किंगी का भी मुताहिना

न रखनवाली राजनायिका के अब भी इतने अनुयायी हैं ता जागे पता नही हमारे लिए कौन सा सफ्ट मुह बाये खडा है । हमारे लिए बभी भी पुश रहन का मोका नही बचा । अत मे ऐसा ही हुआ ।

जनता सरकार बहुत दिन टिकी नही । दूसर लोग इस बारे मे कुछ भी कारण बताए, मेरा विश्लेषण यह है—

जनता के चुने हुए अनेक प्रतिनिधि जनता के द्वारा उह दिये गये अधिवारो का दायित्व भूत गये । जीतवर आम प्रमुख लोगो मे कईयो को मंत्री पद और मुख्यमंत्री पद मे क्या-क्या स्वाथ सिद्ध हुगि और कितनी सम्पति जुटायी जा सकती है, पहले से ही यह स्वाद अच्छी तरह पता था । चुनवर आम सभी का म भी पद को ही लालसा थी। मेरा विचार है कि जिहाने पहले शासन किया उनम कोई भी ईमानदार, भला और साफ सुयरा नही था । एमे ईमानदारी से शासन चलाने वालों की सख्या हम ऊंगलियो पर गिन सकत हैं । इसी एक कारण से प्रधानमंत्री मोरारजी दसाई, श्री० चरणसिंह, श्री जगजीवनराम और कुछ अन्य नेताआ न भारत से अपन को बडा समझा और स्वाथ के लिए जनता पक्ष म फूट गुरु हो गयी । इसलिये इंदिरा देवी के चित्रकार हुसैन की अभिनव दुर्गा पुन प्रधानमंत्री के पद पर आसोन हो गयी । हमारी जनता को वेईमानी, देशद्राह, स्वाथपरता का कलक भारत क इतिहास म सदा के लिए एक उदाहरण के रूप म रह जायेगा ।

अप्रत्याशित दो सम्मान

बेटों का विवाह

आठवाँ दशक समाप्त होते, मेरे जीवन में व्यक्तिगत उतार चढ़ाव सुख-दुःख पहले जैसा ही साथ साथ आत रहे थे, वैसे ही अब भी साथ साथ दिवायी दन लगे। उनमें था एक मेरी छोटी बेटो क्षमा का विवाह। उमन बी एस सी पूरी कर ली थी। एम एस सी करना चाहती थी पर वह हो नही सकी। मंसूर विश्व-विद्यालय में उसे स्थान मिलते मिलत रह गया। दूर बढोदा में उसे आसानी से प्रवेश मिल गया परंतु वहाँ का वातावरण उनके लिए ठीक न होने से उसे घर लौटना पडा। इसी अवधि में उसने अपना भावी वर चुन लिया था। वह दूर का नही था। मित्र हरिदास भट्ट की पत्नी का भाई पद्मनाभ था। उनका जन्म मद्रास में हुआ था। वहाँ बडा हुआ था। वहाँ बकालत कर रहा था। उनका लिए मेरी और मेरी पत्नी की भी सहमति थी, परंतु मुझे यह विश्वास नही था कि लडके के रिश्तेदारा को यह सम्बन्ध पसन्द आएगा। उसकी क्याबद्ध मैं परम्परागत बानावरण में पत्नी विधवा थी। वे मेरी बेटो को जानती थी। उहाने उदार मन से उस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया।

पर मरी ही आर्थिक स्थिति ठीक नही थी, इसलिए यह विवाह कहीं हो, उसकी जिम्मेदारी कौन लेगा? इसी की चिन्ता सताने लगी। पुत्तूर में भर लिए स्थान की सुविधा थी पर स्वजाति मित्रों से स्नेह ज्यादा नही था। इसीलिए दोना आर के लिए बंगलूर को ही सुविधा उनक स्थान माना गया। वहाँ भर लिए एक सप्ताप की बात यह थी कि वहाँ मेरे मित्र उन सम्भाल सकत थे। वहाँ मरी बेटो का विवाह होना था पर सब बायों में मैं बवल एक धर्तियि ही रहा। अपनी बडी बेटो की शादी भी मैं बवल सात-आठ मित्रों को लेकर अमृतमर में मम्पन करा आया था। यह उननी दूर की जगह नही थी भर लिए बंगलूर गभीर था। विवाह का ममस्त भार उठाने के लिए मेरे दो मित्र आग आय। अत मुझे काम का कोई भार दिवायी नही दिया। मित्र श्री रामचरण एताल उमन लिए आगे आये। भर सम्बन्धी, बहना चाहिए उसस बड़कर मरे आदरणीय मित्र श्री

आनंदराम हाल्लूर भी आगे आय। वहाँ का सारा प्रबन्ध उन्होंने ही समाला। मुझे अतिथि मानकर विवाह के सारे काम खुद किये। उस कारण मेरे ऊपर उनका नृण का जो भार चढ़ा वह मैं भूल नहीं सकता।

पुत्तूर को विदा

एक लम्बी अवधि यानी लगभग चार दशक तक आश्रय देने वाला वह नगर कालक्रम से अपना आकर्षण खोता चला जा रहा था यानी मेरे लिए जो आकर्षण था उसका प्रधान कारण था भर समस्त त्रियाक्लापा का प्रेरणा तथा अवकाश प्रदान करने वाले मोल्लहल्लि शिवराय बुढाप में मद्रास जाकर अपने बेटे के साथ रहने लगे। उनके पुत्तूर छोड़ कर जाने के बाद मैं पुत्तूर का निवासी तो था पर मरा आना जाना, मिथवग व्यवहार आस पास के ग्रामों से सम्बन्धित था। पुत्तूर केवल डाक के पते भर को था। घर में रहते समय मैं अपने घर से रोज दो बार शहर होकर आता था। सुबह किसी वाहन द्वारा शहर जाता और रोज की डाक लेकर आता। शाम को व्यायाम तथा गप्पा के लिए पदल जाता। वहाँ मेरे एक मित्र की छत हमारी बैठक का स्थान थी। श्री ए पी सुब्रह्म्या जो अब नहीं रहे, रोज मरा साथ देते थे। उनके साथ ही मौसम का समय गप्पो में बीत जाया करता। बाहर से आनेवालों के लिए भी मरी मुलाकात की जगह वही थी। अब उस नगर में मेरे सावजनिक त्रियाक्लाप नहीं रहे थे। इधर मरी परनी का स्वास्थ्य खराब चल रहा था। वह सब भूलने के लिए मैं सोचने लगा कि पुत्तूर छोड़ दू तो कैसा रहे? मुझे अपने सुख दुख का यहाँ लिखने की इच्छा नहीं।

ऐसी मानसिक स्थिति में बंगलूर के मित्र श्री रामवृष्ण एताल ने अपने कुछ मित्रों की प्रेरणा से मुझे एक सलाह दी। श्री एताल की मरी जमभूमि कोट के समीप सालिग्राम में थोड़ी-सी जमीन थी। वह उन्होंने हाल ही में खरीदी दी। आगे एक घर बनाकर बुढाप वहाँ काटना चाहते थे। कुछ लोगों ने उन्हें सलाह दी, 'कारण अब बड़े होने जा रहे हैं अब वे पुत्तूर में क्या रहें? आप अपनी जमीन पर एक मकान बनवा दें तो हम उन्हें वहाँ रहने को आमंत्रित कर सकते हैं। यदि वे अपने गाँव आ जायें तो हम खशी होगी। हम भी अपनी सवाए दे सकते हैं।' मैं पुत्तूर छोड़ना ही चाहता था कि तभी उनकी तरफ से यह सलाह मुझे मिली। मैंने उसे स्वीकार कर लिया। बहुत समय से जहाँ रहता था उस बाल-बन को बेच-बाप कर सालिग्राम में रहने को तयार हो गया। यह प्रस्ताव आन के एक ही वष के भीतर सालिग्राम के मुख्य भाग के ही निकट अपनी जमीन पर एतालजी ने एक भारी कोठी ही बनवा दी। इस तरह 1973 के अंत में अपने गाँव कोट पहुँच गया। जनवरी सन 1974 बीतते-बीतते उनके

बनवाये 'सुहास' में मैं निवास करने लगा। कुछ समय बाद मेरा पुत्र का घर बिक गया। उससे जो पैसा मिलेगा वह मैं सोचा मेरे बच्चा के काम आयेगा। वहाँ से चलते समय मुझे लगा कि सालिग्राम में अब मेरा अज्ञातवास होगा। मेरा बचपन उसी परिसर में बीतने पर भी इन सान दशका की अवधि में मैं अपने गाँव वाला के लिए एक अपरिचित ही था।

ग्राम का निवासी

'सुहास' में रहना आरम्भ करने के बाद मेरे लिए वह घर और स्थान अज्ञातवास नहीं रहा। मेरे पहल के सभी क्रियाकलापों और प्रवासों का वह केन्द्र बन गया। श्री ऐतालजी द्वारा दूरदृष्टि से जो खोल कर खर्च करके वह घर बनवा कर मुझे सुपुत्र देना एक आश्चर्य की बात थी। मुनन वाले मित्रा को भी ऐसा ही लगा। स्वयं को भले ही कोई लाभ न था जिस व्यक्ति के प्रति अपना अभिमान है उनके लिए इतना त्याग करने वाले बिरले ही होते हैं।

बालवन

मैं चार दशक पुत्र में बिना चुका था, पर अपने उस बाल वन को छोड़कर जाने में मुझे कोई व्यथा नहीं हुई। पर वही जन्म और पले बच्चों का वह अच्छा न लगा। मेरी इच्छा थी कि मेरा बेटा उल्लास वहाँ खाली पड़े घर में कोई उद्योग आरम्भ कर सकता है। मैंने छापेखान और प्रकाशन से हाथ धो लिये थे। इसका कारण यह था कि कल मेरे बच्चे वह काम नहीं करेंगे। इसलिए वह जगह छोड़ने से पहले मैंने बच्चों से भी पूछा। उन्होंने मेरा विरोध नहीं किया। परंतु छह एकड़ का विस्तृत वह बाल वन, उसमें रहनेवाले पशु-पक्षी तथा बीच-बीच में आनेवाले नये पत्नी, उनके बचपन से लेकर अब तक के साथी सभी आश्रयण के केन्द्र थे। मैंने अपने बच्चा का प्राथमिक शालाआ में पढ़ने नहीं भेजा था इसलिए उनका सारा बचपन वही बीता था। उन्होंने वहाँ एक छोटी-सी शोपडी भी बना रखी थी उन लोगों के हाई स्कूल जाने के बाद भी वे अपने मित्रा को लेकर उहाँ पेडा की छाया में खेला करते थे। बाद में, वह जगह छोड़कर सालिग्राम में बसने के बाद बालवन की याद उन्हें सताती ही रहती थी। वहाँ के पेड़-पौधे पशु पत्नी, फल फूल। जब तक वे एक-दूसरे मित्र को नहीं जाकर न रहे थान, उन्हें तपित नहीं मिलती।

हस्तांतरण

वह जगह छोड़ने के बाद मैंने उन बचपन का प्रयाग किया। वह घर पर मुनकर एक महोत्सव न कर्नाटक सरकार पर और शान्त हुए लिखा कि वह

जगह मरने यादगार के हार म सुरक्षित रखनी चाहिए। त-कालीन मुख्य मन्त्री श्री देवराज असे ने उस खरीद लेने की घापणा की। अमेवली म भी घापणा हो जाने से भुझे ग्राहक खाजन की बात हा छोडनी पडी। तीन वष वसे ही बीत गया। सन 1979 म सरकार न मरा 'वालवन अपने अधिकार म नने की आशा जारी की। उसी वष मई 19 का मैन वट जगह विधिवत सरकार क अधिकार म दे दी। आगे उसकी कीमत लगाने आदि का काम होना था। एम पुस्तक क लिखे जाने तक भी वह काम पूरा नहीं हुआ।

मरे उस म्घात का छोटते समय बच्चा म पान पिपासा बढान के लिए वहाँ क्या क्या किया जा सकता है, इसके बारे म बनार और मन्कृति विभाग को निर्देश दिय गये थे। पर छोटते समय अपने एक परिचित को उसकी रखवाली के लिए वहाँ छोड आया था। फिर भी सरकार के उसका विधिवत अपन हाथ म लेने तक, उस घर म बहुत मी चीजें आसपास के लोगो न खिसका ली थी। बाद म सरकार ने वहाँ एक पहरेदार नियुक्त किया उसका नाम है म मध कुमार। उस मीप पानने का बहुत शोक है। पहले मैन बच्चा क लिए पशु-पक्षी पाल थे इसलिये वह मुझ अच्छा ही लगा। मन मे यह आशा जागी कि म मध की सहायता से वहाँ बच्चो के लिए एक सर्पलम खोला जा सकता ह।

बेटे का विचार

मर एक माग दूसरे बेटे उल्लास ने सूरत म अपनी इजिनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर ली। बाप म बगलूर म उमने मरका म दो वष तक नौकरी की। आगे उतवा कोई स्वतंत्र इजिनियरिंग उद्योग करने का विचार था पर वह हो न पाया। इसक बदले वह पेरिय पट्टण के पास थोडी सी जमीन लेकर तम्बाकू की खतीकरणे लगा। उसकी आ तरिक इच्छा पनी और बच प्राणियाँ पर अवपण की थी। उसकी बेना नागर होले अभयारण्य क पास है। इसीनिये उमे अपनी आनरिक इच्छा की पूर्ति के लिए वह जगह बहुत सहायक हुई। वह अब विवाह करके मभूर मे रहता है। वह कृषि और व यपक्षी के सरक्षण म रुचि से रहा है। चाहा कोई भी हो अपनी ऐच्छिक प्रवृत्ति के विकास का अवसर मिलने पर आतप्ति मिलती है, वह कवल धनाजन से नहीं मिलती।

अनिरोक्षित सम्मान

सन 1974 क आरम्भ मे मै अपन गाँव कोट से दो मील दूर स्थित सालि ग्राम म अपन मित्र द्वारा मरे लिए ही बनाम मकान म रहने लगा था। उसी वष एक दिन आधी रात का वहाँ डाकघान म वट खबर आयी कि मेरे नाम बगलूर से एक तेलीफोन है। उस टेलीफोन का बध समझन म मुझे जरा दर लगी।

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री चना रेडडी न मेरे ठिकाने का पता लगाकर मुझे एक सदेश भेजन को बर्नाटक सरकार से अनुरोध किया था। उसन पता चला कि मेरठ विश्वविद्यालय वाले मुझ कुछ दिन बाद डाक्टरट की पदवी प्रदान करना चाहत ह अत मुझे वहा निर्मात्रित किया गया है। इस समाचार क टा तीन-दिन बाद मेरठ विश्वविद्यालय के उपकुलपति का तार भी मिला साहित्यकार के रूप म मुझे डी एस सी की पदवी ग्रहण करन वहाँ जाना था। यह तार मुझे कुछ अजीब सा लगा। मैं वैज्ञानिक नहीं हूँ। विज्ञान क बार म कानड म लिखा अबश्य है। इसके अलावा दूर के मेरठ का मुझसे कोई सम्बन्ध ही नहीं था। फोन समस्त विश्वविद्यालयो के कुलपति चना रेडडी स आया था। मेरी समझ म नहीं आया कि क्या कहूँ। उनका निमन्त्रण आँधिं मद कर स्वीकार करक इतनी दूर मेरठ जाऊँ या नहीं। इसलिए दिल्ली मे भर मित्र शारदा प्रसाद को यह पत्र लिख कर पूछा, "इस प्रकार का एक तार आया है। मरा और मेरठ का कोई सम्बन्ध ही नहीं। पता नहीं व मेरे बारे म क्या जानत हैं। उनका निमन्त्रण स्वीकार करना कहाँ तक ठीक है?" उह पत्र लिखा था या तार दिया था यह अब मुझे याद नहीं। उहोने लिखा, 'आपका सोचन की जरूरत नहीं, आप चले आइये।' मैं निश्चित समय से दो दिन पहले ही दिल्ली जा पचा। वहाँ पर मैं हमेशा शारदा प्रसादजी के घर ही ठहरता हूँ। दिल्ली स मेरठ अस्सी मील के करीब होगा। उस दिन उसम भाग लेने दिल्ली विश्वविद्यालय क श्री मलहात्रा भी आमन्त्रित थे। श्री शारदा प्रसादजी के एक भाइ उस विश्व विद्यालय क शरय शास्त्र के प्राध्यापक हैं। उनके द्वारा श्री शारदा प्रसादजी न श्री मलहात्रा से सम्पर्क स्थापित किया। इससे प्रशस्ति वितरण क दिन ही मैं श्री मलहात्रा के साथ मेरठ चला गया। कुलपति चनारेडडी उस समारोह म आय थ। वहाँ जसा कि मैंन सोचा था कोई धूमधाम दिखायी नहीं दी। मलहात्राजी का डी एस सी की डिग्री प्रदान की गयी। आध्र के एक तम्ण कवि और मुझे डी लिट की पदवी दी गयी। उसमे पहले मेरे कौतूहल का कारण एक और बात पता चला। उस विद्यालय मे कुछ कानड के प्राध्यापक थे। पता चना कि उनस उस विश्वविद्यालय क सिडीकटवालो को मेरे बारे म जानकारी मिली। ममारोह की समाप्ति क बाद उस रात के रात्रि भोज म भाग लेने के बाद श्री मलहात्रा के साथ ही वापस लौट आया। रास्ते म मुझे मोदीनगर न बड़ा आकर्षित किया। मान्ने उद्योग बहुत से हैं। बिरलाजी न जिम प्रकार दिल्ली म एक मंदिर बनवाया है, उसी प्रकार इहोने भी मोदीनगर म एक भव्य मंदिर बनवाया है। गीटी म उतर कर उस देघन का समय मित्ना। आग एक नगर और मित्ना जिमक नाम न मेरा कौतूहल जगाया। वह था साकत नगर। उस नगर न रामायण के काल को याद दिला दी।

ज्ञानपीठ पुरस्कार

सन 1974 में मैं सालिग्राम में था। तभी श्रीमती रमा जन द्वारा सस्थापित भारतीय ज्ञानपीठ न मुझे 1978 के ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए चुना है, यह समाचार मिला। यह एक ऐसी सस्था है जो भारत में साहित्यकारों को सबसे बड़ी प्रशस्ति प्रदान करती है। उन्होंने वह प्रशस्ति नौ वर्ष पूर्व प्रकाशित मरे 'मूकज्जी' उपन्यास पर दी थी। उस घोषणा में एक सप्ताह के भीतर देश के कौनों-कौनों से सैकड़ों तार और हजारों शुभकामना पत्र प्राप्त हुए। इससे मुझे पता चला कि कानड के पाठकों में मरे प्रति कितना गौरव है। यह कानड के लिए तीसरी प्रशस्ति थी। मैं यह जानता हूँ कि जिस उपन्यास पर यह प्रशस्ति मिली उससे अनेक लोग बहुत प्रभावित हुए थे। यह नियम है कि एक भाषा का एक बार प्रशस्ति मिलने पर तीन वर्ष तक उस भाषा को वह प्रशस्ति नहीं मिलती। यह प्रशस्ति पहली बार श्री के. वी. पुट्टप्पा को उनके काव्य 'रामायण दशनम' पर मिली थी। उसी वर्ष एक और भाषा के लेखक का यह सम्मान मिला था। वह थे गुजराती के श्री उमाशंकर जोशी। आगे यही प्रशस्ति कानड कवि बट्टे के 'नाल्कु तति' कविता संग्रह को मिली। तब भी उनके साथ एक और भाषा के लेखक उसके हिस्सेदार बने। इससे उस प्रशस्ति के साथ मिलनवाला एक लाख रुपये का दो-दो व्यक्तियों में बँटे। मेरे समय में तो इस एक लाख का भागीदार और कोई नहीं था। इससे जनता में जरा गलतफहमी पली। मैंने कानड पत्रिका में एक जगह टिप्पणी पढ़ी। इससे पहलवाला को तो आधी-आधी प्रशस्ति मिली थी पर कारतजी को तो पूरी मिली।

दुनिया में नोबल पुरस्कार सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। विज्ञान, साहित्य और शांति के लिए भी प्रतिवर्ष पुरस्कार देने को स्वीडन के नोबल नामक महाशय ने अपने नाम से ही इस पुरस्कार की घोषणा की थी। कई वर्षों से ज्ञान विज्ञान में शोध करनेवालों को यह पुरस्कार दिया जा रहा है। उस पुरस्कार की रकम भी बहुत मोटी है। उसे यदि दो-तीन लोगों में भी बाँटा जाय तो भी उसको 1/3 या 1/4 प्रशस्ति नहीं कहता। प्रशस्ति के साथ मिलनवाला उस धन से सम्मान का सम्बन्ध नहीं हाता। अतः चाहे पुट्टप्पाजी हाँ या बट्टेजी उनके बारे में ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि आधी प्रशस्ति मिली। विविध भाषाओं का मूल्यांकन करते समय यदि दो-तीन व्यक्तियों में सम्मान योग्यता के दिखायी दें तो क्या किया जाय? तब पुरस्कार की राशि बाँटनी ही पड़ेगी, पर प्रशस्ति का पाठक बाँटा नहीं जा सकता।

सम्मान और सत्कार

खैर, इस प्रशस्ति के कारण कानड के उत्साही तथा अभिमानियों में जहाँ-

जहाँ बुलाया, वहाँ जाना मेरे लिए अनिवाय हो गया। तीन मास तक तो मुझे और कोई काम ही नहीं था। केवल यही एक काम था। मेर साहित्य के पाठक और अभिमात्री, जिन्होंने मेरा लिखा कुछ पढ़ा भी नहीं था, उन्होंने मुझे अपन-अपना यहाँ बुलाया। मेरी प्रशंसा की झड़ी लगा दी। अनगिनत मालाआ से लादा शाल ओलाए। अभिन दन पत्रों में तो सस्कृत के सारे शब्द लुटा डाले। यह बात तो जहाँ जहाँ मैं गया वहाँ हुई। ऐसा लगा कि ऐसे समारोहों में सावजनिक होड भी थी। मुझे कभी कभी यह विचार भी कचोटता कि यह प्रशंसा सीमा लांघती जा रही है। प्रशंसा की भी एक सीमा होनी चाहिए न? मैंने कई बार अपनी प्रशंसा में आयोजित समारोहों में आयोजकों से मज्जब म कहा भी था कि पानपीठ प्रशस्ति कहीं 'नामित्त' न बन जाय। दावणगेरे में आयोजित सम्मान समारोह किसी को भी नशा चढान को काफी था। दस हजार से भी ज्यादा लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे।

पहन मरी पण्डितों के अवसर पर भी बंगलूर में एक ऐसा आयोजन हुआ था। पानपीठ प्रशस्ति की प्राप्ति के समय भी बंगलूर में नागरिक अभिन दन का समारोह हुआ था। उसी के साथ विद्वानों की एक द्विदिवसीय गोष्ठी भी हुई थी। तब उन्होंने गुजरात के श्री उमाशंकर जोशीजी को अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया था। इन सज्जन और सत्कवि को अध्यक्षता के लिए आमंत्रित देखकर मुझे वही प्रसन्नता हुई जो उडुपि में सुनीतिकुमार चटर्जी को आमंत्रित देख कर हुई थी।

यह प्रशस्ति समारोह साहू जन सख्यावान माधारणतया दिली में किया करते थे। पर उस वक उन्होंने यह समारोह बम्बई नगर में किया। मैं अपने परिवार के साथ बम्बई गया और तीन दिन श्री साहूजन के घर अतिथि रहा। उस दिन का उत्सव विरता भवन में हुआ। उसी अध्यक्षता की सर्वोच्च यायालय के यायाधीश श्री चन्द्रचूड आमंत्रित थे। उस समारोह के दूसरे दिन ही यह निणय कराया था कि अगले वक यह पुरस्कार किस दिया जाय। उसकी बँटव श्री जन के घर पर ही हुई। उसमें हिंदी कवि श्री स हि वात्स्यायन 'अनेय' को यह पुरस्कार देने का निश्चय हुआ। हिंदी साहित्य के बारे में मरी जानकारी बहुत कम थी फिर भी अनेयजी से परिचित था। उन्होंने लगभग पाँच वक पूर्व इलाहाबाद में सम्पन्न एक साहित्य गोष्ठी में मुझे बुलाया था। तब मैं उनके घर पर अतिथि रहा था।

प्रशस्ति समारोह के दिन श्री श्रेयान प्रसाद जन के घर एक महोत्सव हुआ। उसमें आये कई विद्वानों में मेरा परिचय हुआ। इस प्रकार तीन दिन बम्बई में बिता कर मैं सालिग्राम लौटा।

इसी अवधि में श्रीमती इंदिरा गांधी लोकसभा चुनाव में हार गयी थी जिससे उनके पक्ष को बड़ा धक्का पहुंचा था। उन्हें प्रधान मंत्री पद भी छोड़ना पड़ा था। यह खबर भी फली थी कि व. कर्नाटक व चिक्कमगलूर क्षेत्र से चुनाव लड़ेगी। तब श्री देवराज अंस उन्हीं के पक्ष में थे। उन्होंने चिक्कमगलूर के ससद सदस्य श्री चंद्र गोडा से त्यागपत्र दिला कर उमर खाली स्थान से श्रीमती इंदिरा जी के चुनाव लड़ने का प्रबंध किया था। उस चुनाव की आरंभिक चरणों में भारत की आंखें लगी थी। उनके विरोध में किस खड़ा किया जाय यह बात जनता और सी पी एम पक्षवाला के लिए एक मिरदद थी। एमो परिस्थिति में दूसरे पक्ष वाले उनका मुकाबला करने में अपने का असमर्थ पा रहे थे। नहीं तो राजनीति से दूर रहने वाले व्यक्तियों के पास व नहीं जात। उन्होंने पहले सित अभिनेता राजकुमार से सम्पर्क किया। उन्होंने मना कर दिया। उसी समय मरे मिर पर गानपेठ पुरस्कार का मुकुट रखा गया था। इसलिए जनता पक्षवाला न मरा नाम अभ्यर्थी के रूप में सुझाया। यह बातें पत्रिकाओं में छपी। दूसरे लोगों ने भी मुझसे कहा। मुझे वह जचा नहीं। इंदिरा के विरुद्ध प्रचार काय करने का तो मैं तयार था, पर स्पर्धा के लिए नहीं। पर यदि कोई स्पर्धा के लिए न खड़ा होता तो फोवट में उन्हें जगह देने की अपेक्षा में चुनाव लड़ने को तयार था। राजनीति के लिए चुनाव स्पर्धा करने की आयु मरी नहीं थी। राजनीतिक वातावरण ने मेरे भीतर जुगुप्सा पैदा कर दी थी। उस समय मित्रों ने पूछा 'आप का नाम आया है क्या कर रहे हैं?' मैंने कहा, 'साहित्यकार के रूप में मुझे कनाटक में स्थान मिला है पर मेरे अभिमानों को समस्त कर्नाटक में फैले हैं। फिर भी एम लाग चिक्कमगलूर में सी से ज्यादा नहीं हूँ।'

10 अक्टूबर को मैं अपने जन्मदिन के समारोह में भाग लेने जब बंगलूर गया, तब वहाँ जनता पक्ष की ओर से यह प्रस्ताव सचमुच आया था, यह बात पता चली। इसी उद्देश्य से भी श्री जाज फर्नांडीस दिल्ली से मुझसे भेंट करने आये थे। मैंने उन वारे में अपने भाई से सलाह मांगी। उन्होंने 'इस उम्र में तुम इस चक्कर में मत पड़ो' कह दिया। श्री जाज फर्नांडीस से मैंने कहा, यह राजनीतिक दना का आपसी मध्य है, अतः आप विपक्ष के किसी उम्मीदवार को ही खड़ा कीजिए। हार जीत का प्रश्न तो बाद की बात है। यदि कोई ऐसा न मिले तो मजलूर पक्ष व श्री नम्बूदरी पाद को ही खड़ा होना चाहिए। किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्ध न रखनेवाले मुझ जैसे का नहीं। दिल्ली में उसका निणय तुरंत होना था। उसी दिन उस बात के निणय के लिए बैठक होने वाली थी। जाज फर्नांडीस ने मुझे बताया कि श्री वारेद्र पाटिल का खड़ा करने का प्रयत्न

किया जा रहा है। मैंने कहा, "ठीक है।" तब, "मैं फिर से शाम को आऊंगा, पाटिल यदि नहीं मान तो आपका ही मानना होगा" कह कर व चले गये। भाग्य से इस बात के चार घण्टे बाद पता चला कि श्रीमती इंदिरा गांधी के विरुद्ध पाटिलजी खड़े हो रहे हैं। मरे सिर का भार उतर गया।

प्रचारक

मैंने जॉर्ज से कहा था कि मैं जनता पक्ष की ओर से चुनाव प्रचार के लिए तयार हूँ। इसलिए चुनावों के दौरान मैं कनाटक की जनता पक्ष की सभाओं में बोलने गया। चिक्कमगलूर क्षेत्र में दक्षिण जिले का कारकल भी शामिल होने के कारण मैंने वहाँ के प्रचार में भाग लिया। इस प्रकार आठ दस जगह गया। तब का एक दृश्य तो चिरस्मरणीय है। इंदिरा गांधी से अनेक कारणों से नाराज कई दलों के लोग न तमिलनाडु, केरल, राजस्थान बम्बई आदि प्रदेशों से चिक्कमगलूर आकर इंदिरा के विरुद्ध प्रचार किया। उस आंदोलन में बेलतगडी में पुलिस की गोली की शिकार एक छात्रा हुई। श्री देवराज अर्स ने उस गोलीकाण्ड के लिए सरकारी जांच के आदेश दिये। उस जांच के दौरान अप्रेजी अखबार के एक सवाददाता न गोलीबारी के समय लिये गये फोटो की प्रति प्रस्तुत की। पर उस जांच का निणय क्या हुआ, यह बात तक प्रकट नहीं हुआ।

ऐसे प्रसंगों से पता चलता है कि हमारे देश के हुक्मरानों को अपना किया अयाय भी अयाय जमा नहीं लगता। नित्य जीवन में भी ऐसा ही है नहीं तो 1982 में बंगलूर में विपैली शराब में 350 जानें या ही नहीं जाती। सरकार ने उस पर जबदस्त जांच करायी पर विराधी पक्ष के सरकार सभालने तक उसकी रिपोर्ट गुप्त ही रहनी चाहिए थी? किसी भी सम्पत्ति में ऐसा हो नहीं सकता। केवल हमारे देश में ही चाहिए है। अमेरिका के वाटरगेट प्रकरण से इसकी तुलना करें तो ऐसा लगेगा कि हमारी जनता की प्रजातंत्र की राध तक मालूम नहीं। यहाँ की जनता के अधिकार और अह को बुचलना सम्भव है। जैसे भी भयकर अपराध यहाँ अधिकार और पैसे के बल पर इठला सकते हैं। सत्ता की घमघोष करानेवाले भारत मुनि के पुत्रों में की जानने वालों के लिए ही यह सम्भव है।

मुझे इस स दम में हुई एक घटना की याद आ रही है। बेलतगडी के गोलीकाण्ड के अगले दिन ही प्रातः काल मैं सालिग्राम से कोवकड नामक ग्राम जा रहा था। वहाँ पिछले दिन ही इंदिरा गांधी का आगमन हुआ था। वह महा माया कसी है यह देखने हजारों लोग इकट्ठे हुए थे। उस सभा में आये हमारे

जिले के एक नेता न जो उस समय मंत्री भी थे, जो फरमाया उससे मैं बड़ा चकित हुआ। उन्होंने कहा, "इस जनता पक्षवाला मझिंदरा गांधी की जूतियाँ उठाने की भी योग्यता नहीं।" मने वह बात अपने भाषण में बताते हुए कहा 'यह सच है उस बात को कहनेवाले महाशय मही वह योग्यता हो सकती है। दूसरे लोग इतने नीचे नहीं उतर सकते।" हमारे राष्ट्रधुरीणों का मन कितना निचल स्तर तक पहुँच गया है यह इस बात का साक्षी है।

चल-चित्र

श्रावस्तु

हैं लगभग पता नहीं क्यों फिर स मेरा मन चल चित्र की ओर
हले सन 1935 की अवधि में अवाक चल चित्रों के जमान में
'ध' में 'डोमिगो' नाम से एक लघु चित्र और 'भूत राज्य' नाम
का निर्माण करके उम काय से हाथ धो चुका था। उन दिनों मैं
र में बिताया करता था। तब मैंने वहाँ कुछ पाश्चात्य चलचित्र
भी ब्रैंगलूर और बम्बई प्रवास के समय भी एक दो उच्च कोटि
चित्र देखे थे। उम जमान में मेरे मन में देशी चित्रों के प्रति कोई
। सिने कला के प्रति भी मेरे मन में कोई आकर्षण न था।
से भी उसके लिए आवश्यक पैसा, प्रयत्न तकनीकी अनुभव
बाहर की बातें थी। इसलिए लगा कि इन बारे में सोचना ही
रीर बाद में भी एक दो सज्जना न जा इस कला से परिचित थे,
बारे में रुचि ली थी। परंतु यह सोचकर कि व मूल क्या को
के अनुसार ताड़ें मराडेंगे, मैं इन्कार कर दिया था। उन दिनों
छा अनुसार ही हम चित्र तयार करेंगे कहकर एक प्रोड्यूसर
पेशगी दी थी। पर वे दुबारा लौटे ही नहीं। एक और सज्जन
ही समाधि उपयास की क्या लने के लिए पेशगी देकर अधि-
पर आप चलकर उ होन उसे बनाया ही नहीं था। मेरा चोमन
व्रित करन के लिए एक महाशय स्त्रिष्ट तैयार करके लाय।
[छा 'महाराज यह कहानी तो आप की ही दिपती है, कही से
प उस फ़िल्म लीजिए पर मरा नाम मत दीजिएगा।' उन्होंने
सका चल चित्र बनाया। यह पता नहीं चला कि उह उमस
।, पर मुझे उमसे कोई नुकसान नहीं हुआ।

उदु सुवण ने, जिहोंने हमारे दिले में 'बाटि चनय्या' नाम का

तुलु चल चित्र बनाया था, चोमडदुडी को फिल्माने की इच्छा व्यक्त की। मैंने उनका पटकथा लिखकर दे दी। उससे कुछ पेशगी भी मिल गयी। बात वहीं समाप्त नहीं हुई उहान कहा, "मैं आपके कहने के अनुसार ही निर्देशन कराऊंगा।" तब मैंने उह उम काम के लिए बी बी कारत का नाम सुझाया। श्री मुवण ने उनको निर्देशन करने के लिए मना लिया। मैंने बी बी कारत को कथा के वातालाप टेप करके दे दिये। साथ ही कुछ तुलु गीतों की धुनें भी दीं। बाद में, उस कथानक के लिए आवश्यक विविध स्थान और दृश्य भी दिखाय।

आगे एक दिन अपने जिले में बेलतगडी कयूर में आयोजित चित्र के मुहूर्त पर भी मैं गया। परंतु ऐसा नहीं लगा कि उन निर्देशक महोदय को कलाकारों के चुनाव के समय जयवा चित्र तयार करते समय बीच में कहीं गरी आवश्यकता महसूस हुई हो। मेरे ही द्वारा परिचय कराये गये कुछ मित्रों की सहायता लेकर उन्होंने वह चित्र पूरा कर डाला। एक दिन पता चला कि वह चित्र बंगलूर में तैयार हो चुका है। मैं जब बैंगलूर गया तो व मुझसे मिलने आय और उहान मुझसे कहा "आप चित्र देखने चल सकेगे?"

मैंने कहा, 'नहीं।'

व बोले "आप बुरा मान गये हैं?"

मैंने कहा 'जी हाँ।'

मैंने आगे कहा, "जब फिल्म बनाते समय मेरी जरूरत नहीं थी तो अब मेरा वहाँ क्या काम? जब चित्र पर्दे पर आयेगा तब कहीं भी देख लूंगा।"

आगे बहुत से मित्रों ने पूछा था "आपको इस फिल्म से स तोप हुआ? मैं झूठ नहीं बोल सका। मैंने कहा, नहीं मुझे उससे स ताप नहीं हुआ।" कथानक में मर लिए 'दुडी (ढोलकी जसा बजाने का उपकरण) प्रमुख वस्तु रही है। उसकी आवाज और चोमा के सकेट का निकट का सब घ है। चित्र में मुझे वह नहीं दिखा।

मलेय भवकलु (मलेय सतान)

आगे चोमन दुडी को राष्ट्रपति पुरस्कार मिला। उसकी पटकथा-लेखन के लिए मुझे भी सम्मान मिला। पर उस प्रसंग की व्यथा दूर करने के लिए मेरे मन में यह विचार उठा कि मैं ही क्या न चित्र तयार करूँ। मैं उसी के बारे में सोचने लगा। मेरे छोटे भाई परमेश्वर ने उस बात में बड़ा उत्साह दिखाया। उसके लिए मैंने अपनी 'कुडियर कूसु' उपन्यास की कथा को आधार बनाकर पटकथा तयार की। उपन्यास लिखते समय मैं अपने जिले की पश्चिमी घाटी में रहनेवाले मले-कुडियर लोगों का जीवन देख आया था। उनका सरल जीवन और उनकी वह सामाजिक व्यवस्था मुझे फिल्म के लिए जँच गयी। उसे चल चित्र में आसानी से

दिखाया जा सकता था। कथावस्तु भी आकषक थी। जब मैं इंग्लैंड गया था तब उनकी समस्याओं के बारे में मेरी डॉ. हाईमनडाफ से चर्चा हुई थी। वे अगले एक दो साल के लिए अपनी पत्नी सहित हमारे यहाँ आये थे। मैं उन्हें मलेकुडिय लोगो के प्रदेश में ले गया था। तब लगा था कि कम से-कम खच में श्याम स्वत (ब्लक एण्ड व्हाइट) में एक चित्र तैयार किया जा सकता है। मैंने अपने छोटे भाई के साथ साठ हजार रुपये की पूजा लगायी। मेरे तीन मित्रों ने भी उतना ही पैसा लगाया। उनमें एक ऐसे भी थे जिन्होंने मुझसे बात भी नहीं की थी। चित्र निर्माण के समय ही मैंने उन्हें देखा था। इसी काम के सिलसिले में मैं एक बार फिर से उस जगह हो आया था। इस बीच यानी पिछले तीन दशकों में उन लोगो की बेधभूपा में काफी परिवर्तन आ गया था। अब अपनी फिल्म में उन्हीं को कलाकारों के रूप में लेने की संभावना नहीं थी। उस कथा की पृष्ठ भूमि प्राकृतिक स्थल—जंगल और पहाड़ थे। उस कथा के सारे दृश्य 'हल्लि होले' नामक स्थान पर उपलब्ध थे। केवल एक दो दृश्यों के लिए वहाँ से दस बीस मील आगे जाते तो काम चल जाता।

इस कथा का मुख्य विषय था मले कुडिया के जीवन की दाम्पत्य समस्या। वहाँ पुरुषों की अपभ्रंश स्त्रियाँ कम हैं। तो भी उनमें एक ने तीन स्त्रियाँ संभाली कर रखी थी। मैंने जिसे वास्तव में देखा उसका नाम था सुब्बा। वह एक भालू मारकर अपनी समाज में 'वीर' बन गया था। यही मेरे चित्र का नायक 'तुक्' है। उन लोगो के यहाँ न केवल स्त्रियों की संख्या कम है बल्कि उनके मालिकों और मालिकों के परिवारों के आ जाने से उन लोगो के परिवारों में अनबन हो जाती है।

इस चित्र का निर्देशक मैं ही था। गिरीश कासरबल्लि न भी मेरे आग्रह पर मुझे सलाह दी। श्री एस रामचंद्र छायाकार थे। एक स्त्री कलाकार के अतिरिक्त, सभी पात्र 'द्वय कलाकार' थे। उनके घर की बोली दक्षिण कर्नाटक जिले की थी। इसलिए इसी जिले की, चल चित्र जगत में प्रसिद्ध कल्पना नाम की एक लड़की से 'केम्पी' का अभिनय करने को अनुरोध किया। उसने खुशी से स्वीकार कर लिया। चित्र बनाने से पहले, सभी दस कलाकारों को इकट्ठा करके तालीम दी। बाद में तीन सप्ताह शूटिंग करते रहे। 'हल्लिहॉल' के कुछ बुजुर्गों ने उस समय जो सहायता दी उसे कभी नहीं भुलाया जा सकता।

विशिष्टता

यह चित्र मेरे लिए तो एक तरह से साहस का काम था। हमारे यहाँ सवादों को डबिंग करने की प्रथा है। मैं यहाँ सवादों का शूटिंग के साथ ही अवन किया।

चल चित्र के सस्करण का काम बगलूर की चामुण्डी लेबोरेटरी में हुआ। बाद में उसका पट्ट संगीत जोड़ने के लिए मुझे सबने मद्रास जाने को कहा। मैंने वह भी बंगलूर में ही पूरा किया। आकाशवाणी के श्री एम बी कृष्णमाचय ने उसके लिए आवश्यक पट्ट संगीत की व्यवस्था की। बगलूर के चामराजेन्द्र टेक्ना-लाजिकल प्रिंसिपल राममूर्तिजी ने अपनी सस्था में ही ध्वनि संयोजन की व्यवस्था करा दी। मैंने बाहर से अपने चलचित्र के लिए यदि कोई महायता ली तो वह भी बम्बई फिल्म डिविजन से चार सौ फीट लम्बी बय जीवन की रील। मद्रास से दो सौ फुट लम्बे दो दृश्य भी लिये। मेरा एक और प्रयास था। लोग चित्र के अलग टुकड़ा की प्राय तीन-तीन चार फोटो लेते हैं पर मैंने एक ही बार लेकर वह काम पूरा कर डाला। इस प्रकार बिना किसी अडचन के 22500 फुट लम्बे निगटिव से चारह हजार फुट लम्बा चल चित्र तैयार हो गया। यह सब एक तरह से मर लिए स तोप की ही बात थी। इस चलचित्र के काम में तथा आगे भी मेरे मन में कभी यह भाव नहीं उठा कि यह चित्र कहीं खराब हो गया हो तो।

मौन समीक्षा

पत्रकारों को बुलाकर मैंने वह चल चित्र दो दो बार दिखाया। मैंने सुना था कि पत्रकारों को खुश करने के लिए हजारों रुपये खर्च किये जाते हैं मैंने ऐसा नहीं किया। उह एक साधारण जलपान में अधिक का आतिथ्य नहीं दे सका। अतः चित्र की समीक्षा ने पूर्णरूप में मौन समीक्षा करके मरी सहायता की।

मैंने चित्र तैयार करने से पहले ही बंगलूर की एक चित्रवितरक सस्था के मालिक से बात की और अपने चित्र के वितरण में सहायता माँगी। मेरा उनका चालीस बप से भी पुराना स्नेह था। वे चित्र वितरण के काम में पर्याप्त अनुभवी थे। पता नहीं उहाने क्या समझा और वे बोले मैं पैसे नहीं लगा सकता। रहा सहा पता कर्ष देकर लाचार हो गया हूँ। तब मैंने उनसे कहा, मैं पैसे की सहायता के लिए नहीं आया। आप केवल उसके वितरक बन जाइयें। इसे उहाने छुशी छुशी स्वीकार कर लिया। इस तैयार चित्र को बिना किसी अडचन के सेंसर ने भी पास कर दिया। वितरक की सलाह के अनुसार, मैंने उसकी चार प्रतिमाँ बनवायीं। तब के सूचनामन्त्री श्री के. एच. श्रीनिवासराय सरकार की ओर से सहायता घन दाने आग आय। उन तर प्रदर्शन के लिए कर रियायत पाने का प्रयत्न किया। उसके लिए मेरे एक मित्र ने विधानसोघ की डोड घूप शुरू की। उससे केवल समय सरकता गया कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन मेरे मित्र सूर्यनारायण अडिग ने मुझसे पूछा, 'आपक चलचित्र का क्या हुआ?' मैंने कहा, 'टक्स फ्री कराने के लिए कोशिश कर रहा हूँ।' उहाने कहा, 'मैं वित्त मन्त्री से बात करूँगा।' चित्र एक महीने के लिए 'टक्स फ्री' हो गया। तब विधान सोघ से

सर्व्वी घत अधिकारीगण तथा अय लागो ने भी मेरे मित्र को ऐसे दिखाया मानो वह उही की मेहरबानी हो।

चित्र के प्रथम प्रदर्शन के लिए बंगलूर में थियेटर भी तो मिलना चाहिए था। एक सप्ताह ने अपने हाल का एक सप्ताह का किराया बारह हजार रुपये मागा। वह भी चार भाग काले धन और दो सफेद धन के रूप में। वह बात मुझे पसंद नहीं आयी। मैंने फिल्म चैम्बर के सदस्य भक्तवत्सलम् से इस दिशा में सहायता मागी। उन्होंने एक थियेटर की व्यवस्था करा दी। उनके लिहाज के कारण एक थियेटर के मालिक ने सप्ताह में बारह हजार रुपये किराये पर चित्र प्रदर्शन की स्वीकृति दे दी। पहले सप्ताह में उनीस हजार की आमदनी हुई। लेकिन दूसरे सप्ताह में चला चित्र लगाया नहीं, क्योंकि मेरे पैसे में काले धन का हिस्सा नहीं था। उन्होंने दूसरे सप्ताह दूसरा ही चलचित्र प्रदर्शित किया। आगे एक दो वितरकों की सहायता से एक दो जगह और भी वह प्रदर्शित हुआ। एक सप्ताह में तो मेरा चलचित्र प्रदर्शित करके मुझे सूचना तक नहीं दी। इस प्रकार उससे हुई आमदनी से तो मेरा विनापन का खर्च भी नहीं निकल सका। मेरे चलचित्र की चार प्रतियों में केवल एक की ही जरा माँग रही। केरल की कुछ बला-प्रेमी सस्थाओं ने स्वतंत्र रूप से मँगवाकर उसे देखा। खर, कुछ ही महीने में पता चला कि मेरे चलचित्र में वितरकों की कोई रचि नहीं। सरकार की दी एक लाख रुपये की सहायता में मेरा आधा खर्च हाथ लगा।

थोड़ा अमन्तोष

मेरे प्रयत्न के लिए और उससे हुए नुकसान से मुझे दुःख नहीं हुआ, परन्तु मुझ पर भरोसा रखनेवाले जिन मित्रों का जो नुकसान हुआ उसका मुझ दुःख है।

यह चलचित्र होकर भी न होने जसा हो गया। अगले कुछ ही दिनों में मेरे चित्र की प्रधान अभिनेत्री नहीं रही। यही उसका अंतिम चलचित्र था। वह एक नाटक मण्डली में काम कर रही थी। वहाँ सद्देहास्पद स्थितियों में वेचारी मीत का शिकार हो गयी। उसे पालन नहीं मिला। जब भी अपने उस घाट के चलचित्र को याद करता हूँ तब उस भाग्यहीन अभिनेत्री की बरबस याद हो आती है।

बंगलूर में एक थियेटर में मैं अपने एक प्रिय मित्र को साथ लेकर दूसरी बार अपना वह चलचित्र देख रहा था। व मेरे बड़ ही गहरें मित्र थे फिर भी मेरे पात्रों के संवादों का प्रत्येक शब्द उनके मन में असंतोष पैदा कर रहा था, यह उनके उदगारों से पता चला। चलचित्र की संवाद शक्ती से भी वे असंतुष्ट हुए होंगे। उसका जिम्मेदार तो मैं था, मेरे पात्र नहीं। अभिनय और संवाद के बारे में मेरे विचार स्पष्ट थे। चाह अभिनय ही या संवाद, केवल तात्पर्य व्यक्त कर देने से

ही काम नहीं चल जाता। मुंह से निकलनेवाले प्रत्येक शब्द में बोलनेवाले के मनोभाव और शब्द का अर्थ श्रोताओं को स्पष्ट रूप से ध्वनित होना चाहिए। इसके लिए तो मैं एक दो दशक परिश्रम भी किया है। जल्दी जल्दी पुस्तक पढ़ने के समान यदि सवाद वाला दिया जाए तो बहुत सारे लोगों को वही स्वाभाविक लगता है। मेरे विचार से मुझे निकलनेवाले हर शब्द से बोलनेवाले के मनोभाव और अर्थ श्रोताओं तक उगी रूप में पहुँचना चाहिए।

देश-विदेश मे

साहित्यकार के रूप मे

मरे हैंसने खेलने की भूमि, साम लेने की भूमि क नडनाडु है । मरी भाषा कानड है । मैं अपनी इच्छा, अनिच्छा, अपेक्षा, चिन्ता, सतोष, सुख दुःख कानड मे ही व्यक्त कर सकता हूँ और करता चला आ रहा हूँ । तात्पर्य यह कि मैं कवल कानडवालों का ही ध्यान मे रखकर लिखता हूँ । भारत उसमे बडा है । जगत उस से भी पता नहीं किना बडा है । इतने बडे जगत के बारे मे कुछ भी बहने क लिए मेरी भाषा पर्याप्त नहीं मेरी योग्यता भी पर्याप्त नहीं । परन्तु दुनिया के कुछ दशा का घ्रमण कर लेने के बाद, वहाँ की जनता की पर्या-वर्षा उपलब्धिया हैं, इसकी थोड़ी सी जानकारी मुझे मिली है । जल्दी जल्दी मे एक एक दश को एक-एक दो दिन दख पान पर भी मेरी आँखें उसे भून रही सकती ।

कल और आज

रोम जैसा पुरातन नगर देखकर आगे चला, ता इटली के वनिस प्लारेंस जस पुरातन नगरा के दशन करने पर, इटली के प्राचीन इतिहास की एक यात्री मिली । जिन दशो को देख नहीं पाया था उनका इतिहास पढा था । इसलिए प्राचीन लोगों की साधना का ज्ञान मुझे था । इसी दृष्टि से मैंने कई बार भारत का घ्रमण किया और अपने पूवजा की साधना को भी पहचाना है । अपना दश क बारे मे ज्ञान होने मे, उसके प्रति मुझे मे गव भी है । उही के साथ दुग्ग एतिहासिक घटना ता तथा गत करोडो लोगा के आंगुओ की भी याद है । यह सब ता विगत काल की यादें हैं । इतिहास क अध्ययन मे, इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रत्येक महान राष्ट्र एन ही आंगुआ मे डूबर उभरा है । काई भी एसा ाग नहीं जिसन मानदकुल की फूरता की घरम सीमा न देखी हा । यह सब महकर हीं आग की पीढियाँ अपन भविष्य का निर्माण करती आयी हैं । यह सब हर दश की जनता का सामूहिक कर्म फल है ।

अपन यूरोप प्रवास मे मुझे यह दखने का मिला कि वहाँ के प्राचीन नागा का

कमफल कैसा था। मेरे जन्म के बाद हुए विश्व के दो महायुद्धों ने और जापान का माचुको विनाश मानवकुल की क्रूरता, और आधुनिक शास्त्रास्त्र की साधना ने यह सिद्धा दिया कि करोड़ों लोगों की कितनी भयंकर हानि हो सकती है।

अदभुत म भी अदभुत

अपने उही प्रवासों से मैं एक और विचित्र अनुभव किया। वह है इन विश्व युद्धों से मानव की क्रूरता के शिकार हुए देश क देश युद्ध की रद्द भूमि बने। फिर भी व बचे रहे और उस डरावने प्रेत स बच कर व कस आगे बढ़े हैं यह भी मैं देखा। करोड़ों जीवों में, उनमें भी विचार और बुद्धि म विकसित मानव म भी जीने की इच्छा ने यह दिखा दिया कि कमी कमी साधना की जा सकती है। उसी से वह रद्द भूमि न-दान-वन बन गयी।

ऐसा ही एक सपना

ऐसी ही साध्यता का सपना मैंने छुटपन म तब भी देखा था जब मैं सन् 1922 म असहयोग आन्दोलन में काम रखा था। लगभग पच्चीस वर्ष बाद, यानी सन् 1947 में भारत की परतंत्रता से मुक्त होते देखा। पर उसक आगे क्या देखने मिला? जीवन की सफलता विदेशों में देख आने के बाद मुझे स्वतंत्रता के बारे में हुई भारत की प्रगति ने जो दुःख दिया वह और किसी घटना ने नहीं दिया। महात्मा गांधी के बाद हमारे राजनीति के आकाश में उतर लाये कई नेताओं और उनके अनुयायियों का व्यवहार आज तक भी मुझे यातना दे रहा है।

यह यातना दिन दिन बढ़ती ही जा रही है कम नहीं हुई है। जबस वेईमानी घायाघड़ी, सावजनिक लट खसोट हमारे नेताओं का उद्देश्य बना और जबसे चिक्नी चुपड़ी बातें और सम्झबाग उनकी जवान पर नाचने लगे और ऐसे लोगों के अनुयायियों की सख्या जब गौव-गौव म तार लगाने लगी तभी स मेरे भावी भारत का सुनहरा सपना चूर चूर हो गया। आज मुझ में भारतीय होने का गव लेशमात्र भी बाकी नहीं। मुझे स्वयं को भारतीय कहने म शर्म आती है। स्वतंत्रता के बाद क चातावरण को कलुपित करने म मेरा कोई हिस्सा न होन पर भी मुझे शर्म आती है।

अपने सुख से बढ़कर

मेरी आर्थिक स्थिति म कुछ सुधार आया। क-तड़वाला न मेरी योग्यता से भी बढ़कर मुझे सम्मान दिया। परन्तु लगता है कि हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म ग-दशा भर गयी है। साहित्यिका का क्षेत्र भी उसमें अपवाद नहीं।

जब भी मुझे अपना अस-तोष व्यक्त करने का अवसर मिला मैंने यकन

किया। सन 1978 के चुनावों में और बाद के चुनावों में भी राजनीतिक क्षेत्र को कल्पित करनेवाली नेहरू की बेटों के प्रति मैंने अपना असंतोष व्यक्त किया ही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, मेरे लिये 'गोडारण्य', बाद के 'भूजम,' 'अदे-उरु अदमरा' (वही गाँव और वही पेड़), 'नावुकट्टिद स्वर्ग' (हमारा बनाया स्वर्ग) आदि उपनामों के दुःख की प्रतिक्रियाएँ ही हैं।

इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों में दिखायी दे रही हैं। इन्हें कला का बाना पहनाकर, साहित्य का मुखौटा लगाकर, साधु-संतों की भक्ति का दिखावा करके जयवा मन्दिर तथा अन्य अनेक पुण्य क्षेत्रों के उत्सव कराकर, सावजनिक सम्मेलनों का आयोजन करके दिखाना यह सब अपनी वंशश्री और स्वार्थी जीवन की दुःख-घृणिपान की अगरबत्ती जलाने की तरह है। आगे कभी अच्छा जमाना आया तो हमारे पोट-पडपाते जो इतिहास लिखेंगे व इसका वर्णन दुःखी लेकिन निडर हो कर करेंगे।

आठवें दशक का लेखन

साहित्य और कला में मेरे लिए अपना दुःख भूलने के माध्यम हैं। उनके पूरक कल्प में अन्वयन और संचार मेरे जीवन को शक्ति प्रदान करते चले आ रहे हैं।

साहित्य से सम्बन्धित तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मेरी पहुँच में आनेवाले मूल्या का मैं बनाता चला आ रहा हूँ। ऐसे मूल्या के मानदण्ड पर बनी विचारधारा और संप्रज्ञित भाव जगत में खूब विकसित हो रहे हैं। उनमें प्रत्येक अनुभव में मेरी दृष्टि को अपनी पबल भँवर की ओर खींचा है। इसीलिए मेरे लेखन के मानदण्डों पर मेरे नव प्राप्त ज्ञान ने प्रभाव डाला। आधुनिक विचारों की चका-चौंध से दूर खड़े हाकर, तब से अतक एक ही पथ पर चलनेवालों को तथा अपने जयवा दूसरा में उग्रार लिये मापदण्ड अपनाकर चलनवाला को मेरे दृष्टिकोण अंतर्माधान पदा कर सक्ते हैं। मेरा व्यक्तिगत आदर्श और मापदण्ड जो भी हो, वह मेरे जीवन तक सम्बन्धित है। परंतु मेरे उपनामों में आनेवाले पात्र मुझ से पर्यक्-शक्ति रखते हैं—यह बात ध्यान में रख कर ही उनका व्यवहार जानने और मापने का प्रयास करता आ रहा हूँ।

मनगल सुलियन्लि (तन मन)

आठवें दशक में मैंने खूब लिखा है। कहना चाहिए कि हर वर्ष एक उपनाम लिखा गया है। उनमें यहाँ एक दो के बारे में कहना उपयुक्त होगा। हमारे जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव डालनेवाली यदि कोई समस्या है तो वह है स्त्री-मुम्प का सम्बन्ध। यह समस्या जितनी बड़ी है उतनी ही जटिल है। पट भरन की समस्या से भी अद्भुत आकार है इसका। इसने चारों ओर में पहने में ही बड़ी

सतर्कता से लिखना आ रहा हूँ। पाठको की चपलता को बढ़ाने का मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया। स्त्री पुरुष को शृंगार प्रवृत्ति का पीछे निसर्ग का क्या उद्देश्य है, उसकी पकड़ कितनी है वह मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति है इसलिए मानव में उसने कितने रूप धारण किये हैं उनमें कौन सा अंश जूगुप्ता पदा कर सकता है, कौन सा नशा पत्ता कर सकता है कौन सा जीवन के सौन्दर्य में वृद्धि कर सकता है—इन सबको विम्बित करने के लिए मैंने 'तन मा' उपयास लिखा। उसमें मैंने यह चित्रित किया है कि एव ही स्त्री पात्र उपर्युक्त सभी बातों पर कसौ प्रति कियाएँ व्यक्त करती है। उपयास का एकदम अंत में साथक दाम्पत्य के उदाहरण के लिए अपनी आँखों देखे अस्पृश्य परिवार के वृद्ध दम्पती का चित्रण किया है।

मेरे पाठको को अभी तक अधिक् आकर्षित न करने वाला उपयास है 'इलेपेंब'। यह शब्द नाट्य साहित्य से सम्बंध रखता है। साहित्यकार दूसरा को समझने के प्रयास में नगा रहता है इसलिए उसका अनुभव ज्यादा होना चाहिए। उसे जीवन का अर्थ समझना चाहिए। तब हमारे समक्ष जा प्रश्न उठता है वह है कि 'हम दूसरों को कितना समझ सकते हैं।' उसकी सीमा को जतान के लिए रगमच में अभिर्चि रखनेवाले कुछ तरुण-तरुणियों को लेकर उनके द्वारा खेल जावाने नाटक और उनके जीवन के बीच का अंतर व्यवस्त करने का प्रयास किया।

यहां दूसरा को समझने के प्रयत्न की सीमा मुझ साहित्यकार की सीमा को व्यक्त करती है। मैं दूसरा मे अलग नहीं।

स्मृति-पटल में

इस अधिक् में लगभग तीन साल लगाकर तीन भागों में अपने जीवन की स्मृतियाँ लिखकर 'स्मृति पटल' नाम दिया। इसमें मैंने अपने गत 75 वर्ष की दीर्घावधि की बातें याद करके लिखीं। बहुत सी बातें तो स्मृति से छूट भी गयी हैं। इसमें मैंने प्रत्येक विषय का वर्गीकरण करके लिखा है। उस प्रयत्न में पुनरावृत्ति हो सकती है। मेरा उस लिखने का उद्देश्य यह है कि मैंने जा प्रयास किया और जा जान प्राप्त किया उससे ऐस क्षण में अभिर्चि रखनेवालों को लाभ हो। अपने जीवन तथा वार्यों में मैंने जिन जिन का ऋणी हूँ उनका भी अपनी इस रचना में मैंने उल्लेख किया है। मेरा यह आभार प्रत्यक्ष और पराक्ष दोनों रूपों में मेरी सहायता करनेवालों के प्रति है। बहुता को मैंने देखा भी नहीं पर उनकी पुस्तकें सब मैंने लाभ उठाया है। मैं उनके प्रति भी आभारी हूँ। मैं तो एक छोटा सा माहमी हूँ, पर मुझ पर प्रभाव डालनेवाले व्यक्ति और विषय असंख्य हैं। मेरी आत्मकथा इस 'स्मृति पटल' में भिन्न है। इसमें 'मैं' शब्द का प्रयोग बहुत हुआ है। उसमें काल क्रम के अनुसार जीवन का चित्रण है।

कोशकारों के साथ

अपने ही भाषा कार्य के लिए और कन्नड के अध्यापकों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर मैंने पाँचवें दशक में 'सिरि गन्नड अथ कोश' तैयार किया। उसका दूसरा संस्करण थोड़ा परिवर्धित करके निकाला। आगे ऐसा ही एक काम मैसूर विश्वविद्यालय के 'डीन' श्री जवरे गौडा ने मुझे सौंपा। वह विश्वविद्यालय के सत्वावधान में तैयार होनेवाला 'इंग्लिश कन्नड कोश' के नये संस्करण का काय था। उसके पहले संस्करण का काय ऑक्सफोर्ड के शब्दकोश के आधार पर किया गया था। उन्होंने मुझे उस काय में सहयोग देने को कहा, इसलिए शब्दकोश के संस्करण मण्डल का मदस्य बनकर पाँच छै वष तक, महीने में चार पाँच बार समिति में भाग लेने मैसूर जाता रहा। बैठक से पूर्व वे लोग विचाराय जो शब्द सूची भजत थे उम ध्यान से पढकर मैं उसके पर्याय सुझाता था। समिति के उदघाटन के दिन उसके अध्यक्ष प्रो रगण्णा ने कहा, "यह काय हमें तीन वष में पूरा करना है।" यह सुन मुझे थोड़ा डर सा लगा, क्योंकि पहलवाले विद्वानों ने कई वष लगाकर बडे थ्रम से उसे तैयार किया था। उस काय में मुझे जो सबसे बडी कठिनाइ दिखी वह थी—मूल ऑक्सफोर्ड में शब्द, उनके प्रयोग सरल भाषा में सरल एवं उचित ढंग से सूचित करते हैं। अंग्रेजी में दैनिक प्रयोग में आने वाले शब्दों का उदाहरण देते हैं। वह 'अंग्रेजी' पता नहीं, अमेरिका के लोगों को कमी लगी परंतु उसमें सूचित पर्याय और अर्थ सामान्य लोग भी समझ सकते हैं। पर मुझे ऐसा नहीं लगा कि हमारे यहाँ लोग पदों के ऐसे सरल अर्थ दे पायेंगे। उसके बदल में एक दो वाक्यों में अर्थ व्यक्त करने का प्रयास करेंगे। एक कमी यह भी थी कि एक शब्द के लिए समानार्थ व्यक्त करते समय कर्नाटक के विविध प्रांतों में उसके लिए प्रचलित सभी शब्दों का बोध नहीं था। सारा कन्नड प्रदेश एक होने के बाद भी वह प्रयत्न नहीं हो पा रहा था, अतः मुझे लगा कि मैसूर विश्वविद्यालय का यह कोश केवल पुराने मैसूर वालों के लिए ही उपयोगी होगा।

इस बीच आधुनिक वैज्ञानिक शब्दों को चुनकर उनके लिए समान पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का काय भी हमारे यहाँ लोगों ने उठाया। एक शब्दकोश में भले ही कोई शब्द रहे वह अर्थ-स्रोतक तभी हाता है जब दूसरे ग्रंथों में उसका प्रयोग हो। लेकिन हमारे मित्रों का दृष्टिकोण था कि हम गिन शब्दों का निर्माण करेंगे अनन्त उच्च प्रयोग में लायेंगे। कर्नाटक में प्रचलित सरल वैज्ञानिक पुस्तकों में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दों के अलग-अलग प्रदशा में अलग-अलग पर्याय दिये गये थे। अब हम अंग्रेजी वैज्ञानिक शब्दों के संस्कृत भाषा की सहायता से पर्याय सुझाने लगे। अब तक जो वैज्ञानिक पुस्तकें नहीं लिखी गयी हैं और जो लिखी जा रही है

उनमें उन परिभाषिक शब्दों को भी जोड़ने लग। मुझे वह प्रयास पसंद नहीं आया। यदि ऐसा करना ही हो तो जिस शब्द का हम प्रयोग करते हैं वह अर्थ का बोधक होना चाहिए।

यह काय पांच वर्ष तक चला फिर भी कोश का तिहाई भाग भी पूरा न हो पाया। इस अनुभव के बाद, बठक में प्रत्येक शब्द पर चर्चा की पद्धति छोड़कर सदस्यों से आपह किया गया कि वे घर से ही पर्याय सुझाए। यह काम भी सात-आठ वर्ष तक चला। तब भी वह काम का तिहाई तक ही पहुँच पाया।

ऐसा क्यों होता है

इस काय में सबसे बड़ी दिक्कत यह होती है कि कोश के इस बहुत काय को सम्पन्न करने के योग्य अनुभवी लोग कम हैं। अंग्रेजी भाषा की शब्द सम्पत्ति बहुत विकसित है। हमारी भाषा इतनी विकसित नहीं है। यदि हाँ भाँ तो जास पास के बन्द प्रदेश में अंग्रेजी पद के लिए कौन सा अंग्रेजी पर्याय है, यह बताने की विद्वत्ता की कमी है। शुरु के मण्डल के सभ्यता में भी बठक में आकर मात्र कार्य-सूची की प्रति खोल कर देख लेने वाला ही अधिक थे। उनमें अधिकांश काय के प्रति उदासीन थे। डॉ शिवप्पा जस पहले से तयारी करके आवालो की सज्जा ब्रूत कम थी। इसलिए बठक में ही चर्चा करके सही पर्याय खोजन पड़ने थे। इस विधि से काय के सम्पादन में तो विलम्ब होना ही था। बीच बीच में कुछ परिवर्तन भी होते रहे। कोश के काय से अनभिन्न तांगा के द्वारा ऐसा होना संभव भी था।

इस प्रकार काय के शुरु में अध्यक्ष का दिया आश्वासन कि काम तीन वर्ष में पूरा हो जायेगा झूठा रहा। अध्यक्ष महोदय भी काय की गतिशीलता को समझे बगैर ही ऐसा आश्वासन दे बैठे थे। तरह-तरह के इस पर काम करने पर भी काय पूरा न हो सका। स्वयं देखने वालों और उस मूल रूप में लाने वालों में कितना अंतर होता है!

राजनतिक घातावरण

यह दशक राजनतिक दृष्टि से दश के लिए अत्यंत कलुषित दशक था। इंदिरा गाँधी के पदच्युत होने के बाद, जनता पक्ष अधिकार में आया। लाला का विश्वास था कि ये ईमानदारी से और प्रभावशाली होंगे स राज्ज का सञ्चालन करेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ। जनता पक्ष के प्रमुखा के दुरभिमान और दुराशा के फलस्वरूप यह स्थाय और कुतर्क की बलि हो गया। विविध पक्षा के शत्रुनि प्रभावशाली हो उठे। एस में सौ में पचास लोग प्रधानमंत्री पद की ओर आँसु गढान लगे। यही नहीं उनमें कुछक वयाविद्ध अपने आपको भीष्माचार्य के समान मघावों और इच्छामरणी भी समझन लग। उन प्रमुखा में भी कुछ ईमानदारी के

मैंने दूर से देखा है ।

सरकार का आमन्त्रण

इस अवधि में वेदर सरकार के सूचनामन्त्री श्री अडवानी ने सिने-उद्योग के बारे में सरकार की क्या नीति होनी चाहिए, इसकी एक रूपरेखा बनाने के लिए एक समिति की स्थापना की । पता नहीं, किस कारण आपतकाल के बाद मेरा और उनका परिचय हुआ था । इसलिए उन्होंने मुझे उस समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया । उस क्षेत्र से सम्बन्धित कुछ कलाविद और कुछ उद्योग विशेषज्ञों को सदस्य नियुक्त किया गया । सूचना मन्त्रालय के सचिव श्री शर्मा को उस समिति का कार्यनिर्वाहक नियुक्त किया गया । जब श्री अडवानी बंगलूर आये तब मैं उनसे और सचिव महोदय से मिला और उनसे समिति के कार्य-कलाप की चर्चा की । उन्होंने मुझसे कहा, "एक वष के भीतर जहा तक हो सके एक सब सम्मत रिपोर्ट तैयार कीजिए ।" मैं उस क्षेत्र के लिए नया था । वह भार भरी क्षमता से कुछ ज्यादा ही था परन्तु उसकी विविध समस्याओं से परिचित विरोध उभरना अवश्य होगा, इस विश्वास से मुझे उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी । घर लौटते ही समिति की पहली बैठक बम्बई में बुलाने की विनयित्त जारी की गयी । पहले यह विश्चय हो चुका था कि उसका कार्यालय बम्बई में ही होगा । तब तक पहले के सचिव चयन गये थे । उनकी जगह पर श्री कपूर को नियुक्त हो चुकी थी । उन्होंने हमारे काम की सहायता के लिए आवश्यक सभी प्रशासनिक सुविधाएँ प्रदान की ।

इसी प्रकार जनता सरकार ने 'फिल्म डिवीजन के पुनरुज्जीवन के लिए एक समिति की नियुक्ति की थी । श्री हृषिकेश मुखर्जी उसके अध्यक्ष थे । मैं तो अपनी समिति के सदस्यता को पहली बैठक की तिथि सूचित कर दी थी । पर इनके कुछ ही दिनों में जनता सरकार गिर गयी । उसके पतन के बाद उसके द्वारा नियोजित समितियों का क्या होगा, यह प्रश्न मुझ सताने लगा । मुझे लगा कि मुझे अपने अध्यक्ष पद से त्याग पत्र दे देना चाहिए । तभी इन्दिरा सरकार के सूचनामन्त्री श्री वसन्त साठे ने फिल्म डिवीजन के लिए बनायी गयी समिति को रद्द कर दिया । इससे मेरा विचार और पक्का हो गया । पर तब तक मैंने अपनी समिति की पहली बैठक बुला ली थी । मैं सोच रहा कि उसे भी रद्द कर दिया जाएगा । परन्तु जब मैं मन्त्री महोदय श्री साठे से मिला तो उन्होंने कहा, 'आप अपना काम जारी रखिए ।' तभी मुझसे वह काम आगे बढ़ाना संभव हो सता ।

जटिल समस्या

इस समिति का अध्यक्ष पद स्वीकार करते समय ही मैं जानता था कि काम

कितना जटिल है। उसमें कच्ची फिल्म के उत्पादन के प्रश्न से लेकर, चित्र बनाने, प्रदर्शन व्यापार, व्यवहार आदि समस्त प्रश्न जुड़े हुए थे। चल चित्रों के विभिन्न उद्देश्य, उनका वितरण, लाभ हानि, वियेटर, उनमें खर्च आदि के प्रश्न भी जुड़े थे। साथ ही, जायात निर्मात कर आदि के प्रश्न भी उठते हैं।

इससे पहले श्री एम के पाटिल के नतत्व में एक रिपोर्ट तैयार हुई थी और उनके बाद श्री पोसला की अध्यक्षता में एक और रिपोर्ट तैयार हुई थी। व दोनों रिपोर्ट हमारे सामने थी। उनका द्वारा की गयी कई सिफारिशों की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया था। इस विषयों की चर्चा करके एक सम्बन्धित रिपोर्ट तैयार करना शायद संभव नहीं होगा—यह डर मुझे सता रहा था। जो भी हो, डेढ़ वर्ष की अवधि में आठ दस बैठकें करायीं और उनसे सम्बन्धित सार विषय सप्रहीत करके परिशीलन किया।

समिति के एक दल ने सिने-उद्योग के और उसके प्रत्येक शाखादिक के बारे में यदि स्वतंत्र हाना हो तो हम क्या करना होगा—इस बारे में पूरी छानबीन की। सिनेमा की कला के रूप में विकसित होना चाहिए उससे द्वारा जनता का शिक्षित करना जनता को मनोरंजन प्रदान करना चाहिए आदि परम्पर विरोधी बातें भी उनमें थीं। सरकार के करो की नीति भी इसमें जुड़ी हुई थी यानी सरकार की आमदनी और उसके अधिकारों की सीमा के बारे में भी हम सलाह देती थी।

सदस्य

इस समिति के सदस्यों में अधिकांश लोग स उस क्षेत्र से सम्बन्धित ही थे। उनमें एम भा थे जा चलचित्र का एक उत्तम बना के रूप में विकसित करना चाहते थे। कुछ ऐसे भी थे जिनका कहना था कि जिस चलचित्र में ज्यादा आमदनी होती है वही जनप्रिय चलचित्र होता है। कुछ लोग अपने स्वार्थ के ही आधार पर अपना तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। उन में एकता लाना बड़ा कठिन था।

यदि सारी बातें कहने बतू तो एक पुराण ही बन जायगा। यहाँ केवल एक दो प्रमग ही रख जा सकते हैं। उनमें श्याम बेनेगल और अहूर गोपाल कृष्ण जस कलानिष्ठ लोग थे, तो दूसरी ओर जनता के लिए मनोरंजन ही मुख्य है कहने-वाल रामानन्द सागर और वडजात्या भां थे। इन उद्योग से सम्बन्धित प्रत्येक पहलू का दखना था। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त, सिने-क्षेत्र से सम्बन्धित विशेषज्ञ, तकनीशियन, कलाकार शिक्षक आदि से भी सलाह लेना थी। ऐसे विषय में कर्नाटक के भवनवत्सलम जैसे बाबू पट्ट और तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोग बहुत काम मिले। जो भी हो, एक सम्बन्धित रिपोर्ट तैयार हुई। उनमें किसी ने अपना विरोध नहीं उठाया। मैंने वह कॉग्रेस सरकार के सूचना मंत्री श्री वसन्त साठे को सौंप दी। तब जाकर मेरी जिम्मेदारी पूरी हुई। सरकार प्रायः ऐसी रिपोर्ट

तयार कराती रहती है। उही के साथ इमे भी लम्बी अवधि तक दबाकर रख दिया जाय तो यह उसकी जिम्मेदारी है, मरा दोष नहीं। मुझे इस काय म जिन सदस्यो और सरकार के अधिकारिया न सहायता दी उह में कभी नहीं भूल सकता। मैं सदा उनका आभारी रहूँगा।

इस क्षेत्र मे अपार धन खच होता है। वह आँखा को दीखता नहीं। ऐसा एक उदाहरण हमारी समिति ने प्रस्तुत किया। हमारे देश की जितनी फिल्म हर बप प्रयोग म लायी जाती है उससे साढे वारह करोड रुपय की विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सकती है—यह बात हमने अपनी रिपोर्ट मे दिखायी थी, पर इस ओर सम्य- धित मन्त्री और सरकार का ध्यान ही नहीं गया। इस तरह की एक वान ही अपनी सारी कहानी बता सकती है।

आगे

इस भार से मुक्त होकर गाव लौटने के बाद लिखने, पढने, या अपनी कोई-न-कोई इच्छा पूरी करने का अवकाश मिला। मैं अपने देश की राजनीतिक स्थिति देखकर निराश हो चुका था। उसे दशनि के लिए मैं 'नादु कट्टिद स्वग' (हमारा बनाया स्वग) नाम से एक उपन्यास लिखा।

हागकाग से बुलावा

मेरे मित्र श्री हरिदास भट्ट ने मुझे बताया कि हमारी सरकार के सांस्कृतिक विभाग द्वारा उह पता चला है कि हागकाग से हमारे यक्षगान को चार दिन के प्रदर्शन का आमन्त्रण मिला है। तत्काल सारी बात तो विस्तार से पता नहीं चली, फिर भी पहली बार हमारे केन्द्र के कलाकारो को देश से बाहर जाने का मौका मिल रहा है, साचकर दो कथानक चुनकर तैयार करने पडे। हागकाग जाने आने का खय तो सांस्कृतिक विभाग उठाएगा ही पर उसकी तैयारी, कला कारो का वेतन उनके लिए आवश्यक वेपभूपा की सामग्री के लिए भी तो धन चाहिए या न? वह धय कौन वहन करेगा? इसकी चर्चा मैंने तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री देवराज अम से की। व तुरत उसकी व्यवस्था म लग गये।

वहाँ प्रदर्शन के लिए 'पंचवटी' और 'अभिमन्यु-वध' दो कथानक चुनकर मैंने उनकी तैयारी करायी। जब अभ्यास चल रहा था, मेरे एक मित्र ने सुझाया, "इतने परिश्रम की आवश्यकता नहीं, उह तो हमारी परम्परा का एक खेल चाहिए।"

अब तक मैं एक स्पष्ट उद्देश्य से परिश्रम करता आ रहा था। उनकी बात सुनकर मुझे आघात से अधिक विस्मय हुआ। मैंने सोचा अच्छी बात है मैं तो अपनी तरफ से पूरा परिश्रम किये देता हूँ, पर अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मैं यह

निश्चय कर लिया था, परन्तु तभी हागकाग में हमारे भारतीय राजदूत के कार्यालय से तार आया कि आप यहाँ न आये ता बड़ी निराशा होगी। अन्त में मुझे अपने मित्रों के साथ जाना ही पड़ा।

वहाँ जाने पर यह पता चला कि वहाँ की हागकाग कला संस्था ने हमें आमंत्रित किया था। वहाँ क चीनियों ने भी हमारे प्रदर्शन की सराहना की।

हागकाग में भारत के मित्र भी थे। उनका आतिथ्य और सौजन्य हमें कभी नहीं भुला सकता। इसमें मैं अनुभव किया कि दाना और कला का सम्बन्ध ही है। मानो बुलानेवाले भी और बुलाये गये भी।

जापानियों की अभिरुचि

सन् 1979 में 'जापान फाउण्डेशन' नाम की सांस्कृतिक संस्था ने भारतीय परम्परागत रंग माध्यम के अध्ययन के लिए कलाकारों का एक ग्लेन हमारे देश भेजा। पता चला कि उस दल में नृत्य गीत रंगमंच में अभिरुचि रखनेवाले और विशेषज्ञ भी थे। वे दिल्ली की मंगीत नाटक अकादमी का सत्राह पर भारत के अलग अलग प्रांतों की कलाओं का अवलोकन करते हुए उडुपि भी आये। हमारे यशगान के दल भी आकर उहाँने वहाँ का काम देखा। साथ ही व्यावसायिक यशगान का भी अध्ययन किया। उनके चित्र भी लिये। उडुपि में उस समय मरी भी उनसे भेंट हुई थी। दूसरे वर्ष भी उसी संस्था ने एक बार फिर से वहाँ की कला का अध्ययन करने के लिए एक दूसरा दल भेजा। उहाँने आम पाम के सभी प्रकार के यशगान के प्रदर्शन दल और उस विषय में सम्बंधित अपेक्षित सामग्री सफल करके अपने देश लौटे। लौटने से पहले उहाँने हमें उनका दल में यशगान के प्रदर्शन का आमंत्रण दिया। उत्तर भारत के चारों नाटक के दो दलों को भी आमंत्रित किया था। जापान के महाकावी व्याख्यान के दल को भी आमंत्रित किया गया था। इन तीनों दलों के प्रदर्शन में कहीं भी सवाद नहीं था। जो मुण्डोटे पहले कर वाचा के प्रुष्ठ स गीत पर नये करके प्रदर्शन करने की एक कला है। हमारे यशगान में हागकाग में किया गया प्रदर्शन के समान सवाद भी था। पर वहाँ जाते समय हम तयारा के लिए सिर्फ चार ही दिन मिले। हमें ता पूव प्रदर्शित नाटक ही वहाँ लिखाने थे अथवा हमारे कलाकार बड़े चतुर थे शायद इसीलिए इतनी कम तयारी में प्रदर्शन हो पाया। उस तयारी के समय मैंने सवाद से ब्यक्त न हो पाने वाले कुछ अंशों को रंग लेखन द्वारा निरूपित किया था।

तो यह थी पंद्रह दिन की जापान की यात्रा। हम अटठारह आदमी जापान हो आये। इस यात्रा का अर्थ यदि कर्नाटक सरकार ने उठाती तो शायद हम बहुत अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ती।

जापान फाउण्डेशन

यह मस्था कला के लिए परिश्रम करनेवाली जापान की सबसे बड़ी सस्था है। उस न केवल सरकार से मदद मिलती है अपितु व्यापारी सस्थाओं से भी सहायता प्राप्त होती है। साथ ही, विश्वविद्यालयों के कला विभागों के विशेषण भी अपना पूरा सहयोग देते हैं। उस सस्था ने हमारे यहाँ से चलन में पड़े ही, हमारी अटठारह दिन की यात्रा के प्रत्येक घण्टा का कार्यक्रम, वहाँ कहा जाना है यह विवरण, होटल आदि का निश्चय कर लिया था। उनकी व्यवस्था एकदम आश्चर्यजनक थी।

जापान पहुँचकर उनका देश छोड़ने तक उनके निदेशक, विशेषण और मार्गदर्शक हमारे साथ ही बने रहे। उनकी व्यवस्था, आतिथ्य स्नेह समय की पाबंदी कलाप्रेम—सभी बातें हम आश्चर्यचकित करनेवाला एक अनुभव था।

गोष्ठियाँ

हमारे देश में भी विद्वानों और विशेषणों की बहुतेरी गोष्ठियाँ होती हैं। उनमें अनेक विद्वानों को आमंत्रित किया जाता है, पर सारे विद्वान गोष्ठी के आरम्भ में ही दिखायी पड़ते हैं, बाद में उनमें से अधिकांश गायत्रि हट रहे हैं। जापान फाउण्डेशन द्वारा आयोजित उस गोष्ठी में उस सस्था के कार्यक्रमियों के साथ विविध विश्वविद्यालयों से जाय रगमच, नृत्य संगीत, भाषा आदि से सम्बन्धित लगभग साठ विशेषण भी थे। वे लोग तीन दिन तक लगातार पाँच-छ घण्टा अपने आसन पर बैठे रहे, कार्यक्रम को बीच में छोड़कर नहीं गये। वे सत्र-द्वार प्रसंग को ध्यान से सुनते थे और पहचानें तथा बारीकी के प्रश्न भी पूछते थे। हमने उहाने यह अनुभव कराया कि वहाँ कला में जासक्ति रखनेवाले लोग भी हैं। मृत्वे तो यत्नगान के अनेक पत्रों प्रदर्शन के साथ भाषण देने का अवसर भी मिला। उनमें अध्यक्ष श्री यामागूचि जोसाबो मेरे वहाँ पहुँचने से पहले ही मरा परिचय—मरा कार्यक्रम और मरी कृतियाँ की जानकारी प्राप्त कर चुके थे। वे स्वयं अपने यहाँ के संगीत के विशेषण भी थे।

हमारे जापान पहुँचने के अगले दिन मुबह उहाने हम वहाँ के सारे कार्यक्रमों का विवरण दे दिया। इतना ही नहीं, अब तक उनके द्वारा तयार किया गया संगीत चित्र भी देखने का हम अवसर प्राप्त हो गया। हमारी ही तरह आमंत्रित 'बो' और 'महाकाली' से सम्बन्धित सुन्दर वण चित्र की एक प्रति भी उहाने हम भेंट की।

सहयोग

वे हम राज्यातिथि के रूप में प्रमुख नगरों में गये। वहाँ भी हमने अपने

खेल का प्रदर्शन किया। उनके सात आठ सहायक हमारे जापान पहुँचने से लेकर वहाँ से प्रस्थान करने तक हमारे सारे कार्यक्रम में सहायक रहे। व्यवस्था के इस दायित्व का उन्होंने बड़े प्रेम से निभाया। ऐसी कत्तव्य निष्ठा मुझे अत्यन्त देखने का नहीं मिली।

जापान के प्रेम्हको ने हमारे प्रदर्शन बिना शोर मचाए, यहाँ तक कि बिना पलक पलकाए देखे वहाँ तो अतिशयाक्ति न होगी।

हमने अपनी यात्रा के दौरान वहाँ के टोकियो, कणजावा, गीपू सफारो कोवे, ओसाका आदि नगर देखे। हम लोगो को वहाँ के सुन्दर रंगमण्डपो में अपने प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ। सन्नेह नहीं कि जापानिया में कला की तपणा बहुत ऊँचे दर्जे की है।

अपने देश लौटने के कुछ माह बाद, हमारे प्रदर्शन के बार में उनका अभिप्राय मालूम हुआ। वह यह था कि जापान की रंगभूमि की संस्था न सन 1981 में हुए प्रदर्शन में हमारे प्रदर्शन को वेप का श्रेष्ठ प्रदर्शन माना था।

वहाँ के लोग और प्रकृति-सौंदर्य

लगभग तीन हजार मील की यात्रा में हम वहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य देखकर बहुत आनंदित हुए। उन्होंने कणजावा का उद्यान, प्राचीन राजधानी क्यूतो का महल, स्वर्ण मंदिर आदि के दर्शन कराये। जापान की दस्तकारी और उद्योग की सफरता उनका शिष्ट व्यवहार आदि की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह कम है। उनका पुराने सस्कृति के प्रति माह हमने सफारो नगर में देखा। जब हम उस नगर में पहुँचे तब वहाँ शि टो मतावलम्बिया का एक बहुत बड़ा उत्सव चल रहा था। उस शाम जलूस में सक्डा शि टो मतावलम्बी भाग ल रहे थे। उनमें राजत, पदाति, सवार, रथी वाद्यकार आदि विविध स्तर के गुरुओ को हमने देखा। उनकी वेप भूपा तीन सौ वर्ष पुरानी सस्कृति का जीवन्त चित्र उपस्थित कर रही थी।

इस प्रकार हागकाग आठ सोसाइटी और जापान फाउण्डेशन की कृपा से हम न केवल पौराणिक देशों के दर्शन हुए, अपितु हम एक अभिष्ट स्मृति लेकर लौटे। लौटते समय हम एक दिन टाईलण्ड की राजधानी बंकाक का प्राचीन वैभव भी देखने का अवसर मिला।

अस्तु, बहुत दिनों से मेरे मन में अकुरित, पर सुप्त पड़ी, पूव देशों की यात्रा की लालसा मेरे प्रिय यक्षगान ने पूरी करा दी। देश लौटने के बाद मैंने उस यात्रा की स्मृति के साथ अत्यपूर्वो दर्शा की स्मृति मिलाकर पूव से अत्यपूव के नाम से एक प्रवास-लेख लिखा।

अस्सी वर्ष पूरे हुए

स्वास्थ्य

प्रकृति की कृपा से आयु के वष तो सराग भरत जात है, पर क्या जीवन भी भरता है? वह भी भरता है पर काह से? इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक मनुष्य को देना नहीं है? उदरपूर्ति का सधप जिस प्रकार हर प्राणी से जुडा है, उसी प्रकार मानव क भी भाथ है। उससे सम्बन्धित सुख दुःख किसी से छूट नहीं हैं। उसमें एकदम हमारे वष से बाहर की बात है आराग्य। वह अनियन्त्रित बाह्य कारणों से हम कगाल कर सकता है। हम स्वयं देह के साथ अत्याचार करके कगाल हो सकते है। इस दृष्टि से कभी कभी मैं शारीरिक पीडा का शिकार हुआ हूँ, पर उससे मरा जीवन खराब हुआ यह शिकायत नहीं कर सकता। जब मैंने साठ साल पूरे किये तब विचार आया 'भग्न अब कितने दिन और रहूँगा?' फिर भी बिना प्रयास के अस्सी वष पूरे गय। अब उसे भी पार कर गया। अब मुझसे पहले जैसा वह धर्म नहीं हो पा रहा है, पर मैंने अपना कोई क्रिया कलाप बन्द नहीं किया है। ऐसी स्थिति पदा भी नहीं हुई।

इस अवधि में मरी सहचरी बन कर आयी पत्नी हाल के पच्चीस वर्षों से जो शारीरिक कष्ट उठा रही है उससे मुझे वास्तव में मानसिक दुःख रखा है। वह उसकी लापरवाही नहीं, बल्कि ऐसी कई अज्ञात चीजें हैं जो उसकी समझ में बाहर हैं। सही चिकित्सा न हो पाना भी सम्भवत इसका एक कारण है।

गहस्थी

अब मेरे सारे बच्चे स्वतन्त्र हैं। वे अपना-अपना साथी पा चुके हैं। अपनी अभिरुचि और प्रवृत्ति के अनुसार जीवन चला रहे हैं। उन्होंने अपन-अपन घर बना लिये हैं। अपनी वृत्ति से वे तप्त हैं। यह सब है कि उनका बचपन, जबानों मेरी गरीबी को बाँटत हुए बीता है उनके व दिन कष्ट में ही बीत हैं। आज मरी स्थिति ऐसी है कि मैं उनका सहभागी बनकर खा सकता हूँ। मुझे इस स्थिति में लाने का श्रेय मेरे पाठकों को, अभिमानियों को और भारतीय ज्ञानपीठ सस्था को

है । मैं उन सब के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ ।

आस पास की जनता

मैं अपने आस पास के मित्रों का और दूर के दुखी सागा का भी दखता चला आ रहा हूँ । जिन दिनों मेरे पास कुछ भी नहीं था, तब मैं अपनी शक्ति भर उनका सहायता करता रहा हूँ । अत्र स्थिति ज्यादा सुविधाजनक है । थोड़े-बहुत पत्र देकर तप्त होने की अपेक्षा, कष्ट में रहनेवाले मित्रों की कुछ अधिक ही सहायता करने का प्रयास करता हूँ । उसे सहायता कहना गलत है । क्या मैंने अपने पिता और कुछ मित्रों से सहायता नहीं पायी ? उस ऋण को ऐस कत यो से चुना रहा हूँ ।

इतना ही पर्याप्त है

विदेशों के कलाकारों विद्वानों व पत्रकारों की साधनाएँ देखने के बाद मुझे अपने देश की शैक्षिक दरिद्रता अपार दिखायी देती है । इसे मैं दार्शनिक और धार्मिक दरिद्रता नहीं कह सकता । ऐस तत्त्व हमारा पूज्य न काफी मात्रा में हम दत्त रूप में दिये है । उ हे हम विद्वानों में भी निर्वात कर रहे है । ऐसे निर्वातों के लिए हमारी आध्यात्मिक सम्पत्ति के हिमाव है वह कर शायद हम अपनी आरम्भ-प्रवचना में तपो हुए है ।

मैंने कुछ और ही समझा था

मैं अपने चौथे दशक में 'बालप्रपंच' के साहित्यिक पाठ्य में उही कूटना, तो मेरा काम शायद साहित्य के निर्माण तक ही सीमित रहता और उसी में तप्त रहता । कुछ नहीं तो थोड़ा बहुत रगमच पर भी काम कर लता । इस 'बाल प्रपंच' के पाठ्य में मुझे दुनियाँ के ज्ञान प्रपंच को याँकर देखने की दृष्टि दी । उसने उस भूख को पर्याप्त रूप से भडकाया । तब से अब तक चाहे मुझे अच्छी तरह समय में जाये या न आय मरे ज्ञान की सीमा चाह कितनी भी कम क्या न हो, विविध विषयों से सम्बन्धित अग्रणी पुस्तकों संग्रहण करने ही रहता हूँ । उस दृष्टि से जब तक जीविका, ज्ञान प्राप्ति की लालसा बनी ही रहेगी । यह वहाँ तृप्त होगी ? मैं मरदा ऐसा एक विद्यार्थी ही बना रहूँगा । प्रत्येक क्षेत्र में जा खोजें हा रही हैं और जा ज्ञानवृद्धि हो रही है वह मुझे आश्चर्य में डाल देती है । विदेशों में एक नहीं हजारों विशेषज्ञ अथक परिश्रम कर रहे हैं । यह विश्व क्या है इस विश्व के लोग कैसे हैं ? यह विश्व कैसे आग बढ़ रहा है ? इस बारे में उनके काम की देखना हूँ तो मुझे अपने यहाँ का ज्ञान दरिद्रता याद आ जाता है । उसमें भी कानून को एक मात्र विचार विनिमय का साधन रखनेवाली मेरी कर्नाटकी जनता की

याद हो ही आती है। तब मुझे लगता है कि यदि अपना प्राप्त ज्ञान उाका समझ मे आनवाली भाषा मे न बताऊँ तो मेरा यह एक अपराध होगा।

साहित्य के द्वारा मेरा काम कुछ और ही प्रकार का है। मेरा इतना भ्रमण उसके लिए तनिक भी पर्याप्त नहीं। लगता है मेरे अनुभव भी बहुत सीमित हैं। क्योंकि हम अनिवाय रूप से जो अनुभव होते हैं वे एक प्रकार के हैं और उनका मुकाबला करने का ढंग हमारे प्रकार का है। इस तरह अपने और पराय अनुभवों को समझ पाना अत्यंत कठिन काम है। उसके लिए अवसर तो मिलते हैं लेकिन इतन नहीं जितने कि हम चाहते हैं। उाह समझना भी इतना सरल नहीं। हमारे अति निकट के मित्र अथवा बंधुओं के शील और अनुभवों का यदि हम थोड़े समय को मान लें कि हमने समझ लिया फिर भी जीवन में उनका सम्पर्क की अवधि बहुत दूर तक नहीं चलती। इसलिए हमारे सामने जानेवाले चित्र टुकड़ा टुकड़ा म हात हैं। वे परस्पर असम्बद्ध दृश्य होते हैं। फिर भी उाही पर विश्वास करके, दूसरा क अनुभवों के भागीदार बनकर अपन मनोधर्म के प्रयोजन के लिए साहित्य के हतु उाह प्रयोग में लाया जा सकता है। ऐसा काम म यथाशक्ति करता चला आ रहा है। ऐसी रचनाओं पर हुई समीक्षाएँ भी मैन पढी हैं।

वम में दूसरों के अनुभव तथा व्यवहारों के वास्तविक चित्रण ही दू ता क्या पर्याप्त रहेग ? मैं जैसा उाह समझ पाता हू भरे पाठकों को भी वस ही समझ म आये इस प्रकार लिखना नहीं चाहिए ? यह समस्या भी मेरे सामने है। जब जब भी मने ऐसे प्रयत्न किये तब-तब लागा का यह आक्षेप सुना कि कारत क अपने विचारों का भार उपन्यास की कलात्मकता के लिए एक दाप है। मर पाठकों को कलादृष्टि का प्रयापन अथवा माहकता न दीखने पर भी मर द्वारा विम्बित अनुभव पर विचारों का प्रकाश पडे तो कसा रहेगा—यह समझ पंदा करन का भी मैन प्रयास किया है, भले ही इस पर 'यह उपन्यास नहीं निब घ है यह टीका रही हो। मेरा प्रयत्न जीवन का अनुभव और उसका विश्लेषण हाता है। उस विश्लेषण से कौन सा अर्थ निकलता है ? मैन कुछ ऐसे अंग्रेजी उपन्यास भी पढे हैं। एनरण्ड का 'एटलस थ्रगड' म ऐसा ही एक निदर्शन दिखायी देता है। उसकी विस्मृति और विषय अलग हान पर भी विषय से सम्बन्धित सा ती और विचार प्रणालिया को प्रस्तुत करन की रीति उसकी है। इसमें यह समझन का कोई कारण नहीं कि यह समीक्षकों का काई आक्षेप है। कुछ पाठकों का भी ऐसा लगा है।

कर्नाटक से बाहर भी

अगर यह कह तो गलत न होगा कि मर विचार और शिवाकलाप का पत्र कर्नाटक ही रहा आया। साहित्य से सम्बन्धित अथवा शिक्षा से सम्बन्धित कुछ

गोष्ठिया में भाग लेने के लिए मैं कर्नाटक सीमा से बाहर भी गया था। मेरे उपवासोके अनुवादो स अथवा मेरे बारे में लिखे गये लेखो के कारण मुझे बाहर के लोग निर्मात्रत भी करते थे। एक बार मुझे कर्नाटक के दक्षिण केरल से निमंत्रण आया। गत दशक में एक बार त्रिचूर की साहित्य अकादमी ने मुझे निमंत्रित किया था। और एक बार, शायद ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलन के कारण, अखिल भारतीय आर्यस गिल्ड न थिये ड्रम में आयोजित वार्षिक सम्मेलन में मुझे अध्यक्ष चुना था। उस सभा में एक विशिष्ट काय के लिए आर्य जनता पार्टी के शासन काल के प्रधानमंत्री श्री मारारजी दसाइ से मिलन का अवसर भी मिला। उस बारे में मुझे कुछ कहना नहीं है। वे गांधीद्वान के एकमात्र प्रतिनिधि समझे जाते हैं परंतु उनके बारे में मुझे पहले सही कोई उत्साह नहीं था। जनता सरकार के पतन के लिए जैसे चरणसिंह राजनारायण आदि नेता कारण बने वैसे ये भी एक कारण रहे, मेरा यही विचार है। मुझे लगता है कि हमारे बुजुग राजनतिक नेताओं ने अपने में बड़प्पन का कोई गुण दिखाया नहीं।

कम्युनिज्म का प्रभाव

आपत्कालीन स्थिति में और उससे पहले भी मैं एक बार केरल हो आया था। केरल के एक देशाभिमानी दल ने जनता में साहित्य प्रचार प्रसार तथा अध्ययन का अभिरुचि बढ़ाने की दृष्टि से एक सुगठित सम्मेलन एर्नाकुलम में आयोजित किया। उससे एक प्रतिनिधि ने मेरे गांव सालिग्राम आकर मुझे उस सम्मेलन के उदघाटन के लिए आग्रहपूर्वक निमंत्रित किया था, इसलिए मुझे वहाँ जाना पडा था। केरल के उत्तर दक्षिण से लगभग पचास प्रतिनिधि वहाँ एकत्रित हुए थे। वे साहित्य प्रचार को उद्देश्य बनाकर गाँव गाँव में अपने सिद्धांत का प्रचार कर रहे हैं—मैंने यह पहले सुन रखा था। मैंने अनुभव किया कि सी० पी० एम० के नेता श्री नम्बूदरीपाद का उस काम में महत्वपूर्ण स्थान है। मुझे आमंत्रित करनेवाले बुजुग ने बताया कि जिस होटल में मैं ठहरा था वही आकर श्री नम्बूदरीपाद मुझ से स्वयं मिलेंगे। इससे मुझे जरा अश्चय भी हुआ। मैंने उनके सम्मेलन का उदघाटन करते हुए कहा 'मैं किसी वाद को लेकर नहीं लिखता। मैं अपने अनुभवों और आत्म साक्षी से बढ हूँ।' परंतु उनके सार कायक्रमों पर कम्युनिज्म की ही छाप थी। वहाँ जाते ही समोजका ने श्री नम्बूदरी पाद से मेरा परिचय कराया। आगे जमा मैंने माचा था मेरी उनकी भेंट न हो सकी, उसका कारण शायद मेरा भाषण ही था। वहाँ मुझे जो बात सबसे ज्यादा पसंद आयी वह थी कि उन्होंने साहित्य के द्वारा अपने राजनतिक सिद्धांत का प्रचार करने का प्रारंभ के कान काने में जागति पैदा कर दी थी।

विज्ञान और कम्युनिज्म

और एक बार एमे ही एक और सम्मेलन मे गया था। वह बाल साहित्य से सम्बन्धित था। वह कालडी नाम के स्थान पर सम्पन्न हुआ था। मने मुना था कि कालडी शकराचार्य की जन्म भूमि है इसलिए वहाँ जाने का कुतूहल भी था। वहाँ जाकर मैंने विविध प्रदर्शन और चर्चाओं मे भाग लिया। उस सम्मेलन के आरम्भ मे कई मंत्रियों ने भी हिस्सा लिया। हम चाहे कैसे ही सम्मेलन क्यों न करें मंत्री, महामंत्रियों को बुलाकर उनसे भाषण कराकर लाभ उठाने की भावना कर्नाटक मे भी है, वही बात मैंने केरल मे भी देखी। स्वयं को साहित्यकार समझनेवाले भी उन काल्पनिक दावाओं पर साहित्य की निष्ठा में अधिक भक्ति दिखाये बिना नहीं रहते। इसी के कायकर्त्ता विज्ञान से सम्बन्धित पत्रिका चला रहे थे, पुस्तकें प्रकाशित कर रहे थे। उसे देख कर मुझे लगा कि इस क्षेत्र मे आधुनिक इंग्लण्ड और अमेरिका कितने प्रकार का आकषक साहित्य ला रहे हैं उसे देखे बिना ही और देखने की कोई इच्छा भी न रखते हुए लडखडाकर कदम रखने की हमारी प्रवृत्ति है। बाद मे, वहाआये लागे से चर्चा करने पर पता चला कि उन्हें विज्ञान की आवश्यकता केवल अपने कम्युनिज्म के प्रचार के लिए है। उसी के लिए वे यह सब कर रहे थे। विज्ञान का मुद्दा न होना पर भी उसके बहाने कम्युनिज्म का प्रचार उनका मुख्य उद्देश्य था। इस प्रवास के बाद भी केरल की कुछ अन्य सस्थाओं के बुलाने पर मैं और दो तीन बार वहाँ हो आया था।

महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन

महाराष्ट्र उत्तर की थार हमारा पटोसी प्रांत है। उसन आधुनिक साहित्य मे काफी नाम गजित किया है। भाषावार प्रांता के निर्माण के बाद, पुराने बम्बई के प्रशासन के अंतर्गत मराठी बोलने वाले सारे इलाके और पुराने हैदराबाद और आस-पास के छोटे माटे राज्यों के अधीन मराठी बोलनेवाले हिस्से उसमे मिल गये। गुजरात से अलग होने के बाद भी वह प्रांत एक बृहद महाराष्ट्र के रूप मे उभर कर आया। वहाँ वर्षों से साहित्य-सम्मेलन का आयोजन होता आ रहा है। आपत्काल की स्थिति में भी वहाँ साहित्य सम्मेलन हुआ। उसमे दुगासाई भागवत जैसी साहसी साहित्यकार महिला ने उस समय की राजनैतिक गुंडागर्दी का विरोध किया था, भले ही उनके परिणामस्वरूप उसे जेल जाना पडा था। साहित्य सम्मेलन का एक आयोजन सन 1980 में शोलापुर जिले में वार्सी में भी हुआ था। वार्सी के तीन चार प्रमुख सालिग्राम में घर आये और मुझे उस साहित्य-सम्मेलन का उद्घाटन करने का आमन्त्रण दिया। उनकी बात से मुझे आश्चर्य हुआ। 'बाहर का एक साहित्यकार उनकी भाषा के साहित्य सम्मेलन का उद्घाटन करें' मुझे उनका यह विचार बड़ा उदार लगा। उस वर्ष के फरवरी

मास में अपने फिल्म कमीशन का काम पूरा करके, बम्बई से बेलगाव होता हुआ वासी पहुँचा। वासी एक जमान में एक कानड प्रदश था। मुझे अपने घर में ठहरानेवाला मञ्जन किसी जमाने में सिमी में व्यापार के लिए वासी में जाकर बस गया था। व 'काश्यपी' घराने के थे। उस सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए पूना से एक विद्वान आय हुए थे। एक मंत्री महोदय भी उस अवसर पर आय थे। उन्होंने पहले से ही मेरा भाषण मगवाकर उसका मराठी में अनुवाद करके प्रतिनिधियों में बाँट दिया था। उसमें मैंने क्या क्या कहा था यह तो मुझे याद नहीं, पर सम्मेलन में अधिकारियों ने भर-भार में जो आदर और सम्मान व्यक्त किया वह चिरस्मरणीय रह गया। उस समय के मेरे भाषण का सार महाराष्ट्र की सभी प्रमुख परिवर्तनों में आया था।

बढ़ा मुझे सबसे अधिक आकर्षित करनेवाली चीज थी उन लोगों का काव्य-पाठ का प्रति माह। जिस दिन मैं गया था उस रात आर दूसरे दिन भी शाम के आठ बजे रात के दो बजे तक ब्रून् में बसिया न, भल ही उनका गला बढिया रहा हो या न रहा हो काव्य पाठ करके लोगों का मनोरंजन किया।

सगीत

यह भी मेरे प्रात के बाहर का अनुभव है इसलिए बता रहा हूँ। कनाटक से बाहर गान पर मुझे सग्रेजी में बोलना पड़ता है। ऐसा ही एक अवसर आया। बम्बई आकाशवाणी का सगीत निर्देशक मंगेश नाडकर्णी से मेरा तत्र से परिचय था जत्र व 'कीकाल' में अध्यापक थे। बात में व बम्बई आकाशवाणी में चले आये। एक दिन उन्होंने आग्रहपूर्वक मुझसे कहा, 'बम्बई विश्वविद्यालय का 'म्यूजिक सकल' का सदस्य के सामने हम आपका एक भाषण कराना चाहते हैं।' उनके इस प्रस्ताव के पीछे क्या उद्देश्य था यह मुझे पता नहीं चला। उसमें अधिक सन्ध्य नहीं रहे हागे। उस दिन के लिए उन सगीत प्रेमियों का ही एक विषय मैंने चुना। वह विषय था— 'सगीत का प्रवाह और अर्थ'। मैंने यह विषय पत्र द्वारा अपने मित्र का सूचित कर दिया और निश्चित दिन बम्बई पहुँचकर एक दो सहायियों का साथ ल उस बैठक में उपस्थित हो गया। मेरी इच्छा अनुसार मुझे रागा की याद दिलाने की उहान मुझे एक वादक की सहायता की व्यवस्था की। उगम बबल बीस-तीस श्रोता रहे हागे। मुझे यह पता नहीं कि व सगीतन था या सगीत का रसिक। उन लोगों के सामने, जो जानता था मैं उसी की सगीत मान कर बसागान देने लगा। उस भाषण में कहकर निदर्शन कहना चाहिए। आरम्भ में मैंने साहित्य रहित नाद सचार के धार में निदर्शन दत हुए एक समय अपने 'नदी दर्शन' में कल्पित आँधी की कल्पना मुलतानी राग में आलाप लकर दिखायी। बाद में अपनी परिवर्तित तीन चार हिन्दुस्तानी चीजों का उदाहरण देकर यह

बताया कि गीत प्रबन्ध के साथ उनका क्या सम्बन्ध है। उसके बाद, कानड के भी दो-तीन उदाहरण दिये। उन गीतों के साहित्यिक अर्थ बताकर, उनमें गीत-संसार और भाव में किस तरह का संतुलन है यह समझाया। मेरा यह व्याख्यान लगभग एक घण्टे तक चला। वैंठरु की समाप्ति पर जब बाहर आया तो मुझे पता चला कि वहाँ एकत्रित सभी व्यक्ति संगीतशास्त्र के ममज्ञ थे। वे लोग संगीत के बारे में मुझसे सौगुना अधिक जानते थे। कुछ दिन बाद कला-समीक्षक श्री ध्यानश नाडकर्णी ने अँग्रेजी की एक पत्रिका में मेरे उस भाषण की चर्चा करते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की। मेरे किसी एक मित्र ने मुझे वह पत्रिका दिखायी। मैंने सोचा, चलो जान बच गयी।

बडौदा में

इस घटना के एक वर्ष बाद बडौदा विश्वविद्यालय ने मुझे भाषणमाला के अन्तर्गत तीन भाषण देने को आमन्त्रित किया। एक भाषण में मैंने अपने म विकसित साहित्यिक दृष्टि के विषय में चर्चा की। दूसरे भाषण में 'संगीत का प्रवाह और अर्थ' पर मेरा अपना चिन्तन था। तीसरे में टेपा की सहायता से यक्ष-गान के संगीत की चर्चा की। मुझे पता था कि बडौदा की भाषा गुजराती है। मेरे मित्रों ने वहाँ के दक्षिण के विद्वानों और हिन्दी के विद्वानों से मेरा परिचय कराया।

अगले वर्ष गुजरात विश्वविद्यालय के एक विभाग वाले ने कानड साहित्य के बारे में भाषण देने को मुझे और डॉ० अनन्तमूर्ति को आमन्त्रित किया। वहाँ भी मैंने साहित्य प्रेमी श्रोताओं के सामने एक भाषण दिया। उस अवसर पर वहाँ के कवि श्रेष्ठ श्री उमाशंकर जोशी ने उस सगाँठी की अध्यक्षता की जिसमें मुझे और भी सन्तोष हुआ।

आन्ध्र में

आन्ध्र प्रदेश का एक साहित्य-सम्मेलन चारगल में सम्पन्न हुआ। मेरा तेलगु क्षेत्र का अनुभव बहुत कम था, एकदम नहीं था कहीं तो गलत न होगा। बहुत पहले यानी निजाम के शासन के समय जब मैं हैदराबाद गया था तब वहाँ के कुछ कानड भाषी लोगों से परिचय हुआ था। सन् 1926 से पहले अपनी मासिक पत्रिका 'वसन्त' के लिए वहाँ गया था। तब कानड प्रदेश का भाग कोप्पल हैदराबाद के निजाम के अधीन था। वहाँ के कानडवाले अपनी भाषा की रक्षा के लिए बहुत समय से संघर्ष कर रहे थे। हैदराबाद के प्रमुख श्री बी जी चिम्मलिंगी और श्री भीमसेनराय की, जो अब नहीं रहे, आज भी मुझे याद है। उनके द्वारा वहाँ की कानड जनता द्वारा स्थापित नूतन ग विद्यालय, निजाम कॉलेज, उस्मा

निवा कॉलेज आदि स्थानों पर मैंने भाषण दिये थे। लेकिन अब का निमंत्रण ऐसा नहीं था। अब हैदराबाद आंध्र की राजधानी है, अब वहाँ के साहित्य-बन्धुओं द्वारा आयोजित एक भाषा सम्मेलन के उदघाटन के लिए जाना था।

पहले जब एक बार गया था तो हैदराबाद से नब्बे मील दूर वारंगल भी गया था। यह नगर पूर्वकाल में चालुक्यों की राजधानी रहा था। उस यात्रा में मैं मल्लिक काफूर द्वारा विध्वस्त मंदिरों और अन्य अवशेषों को देखकर लौटा था। इस बार का कार्यक्रम ऐसा न था, इस बार मैं साहित्य सम्मेलन के लिए गया था। मई मास होने से 110 फारेनहाइट गर्मी पड़ रही थी। वहाँ एकत्रित, तेलुगु भाषा के लिए काम करनेवाले तीन चार सौ तेलुगु भाषियों के सामने मैंने भाषण दिया।

तमिलवाली का बुलावा

करीब तीन वर्ष पूर्व मद्रास में 'चिदम्बर चेट्टियार ट्रस्ट' ने अपने वार्षिक पुरस्कार समारोह में मुझे निमंत्रित किया था। नाटक, कहानियाँ उपन्यास आदि साहित्यिक विधाओं पर वे प्रतिवर्ष पुरस्कार देते हैं। उस पुरस्कार को एक साहित्यकार के हाथ से दिलाने के विचार से उन्होंने मुझे आमंत्रित किया था। मरी बेटा मद्रास में ही है। उससे मिलने में साल में एक बार जाता ही रहता हूँ। फिर भी तमिल लेखकों से मेरा घनिष्ट परिचय नहीं था। इस बार मैं नानपीठ पुरस्कार विजेता श्री जखिलन के घर भी गया। वयोवृद्ध सशोधक श्री त्रिविक्रम का दशनलाभ भी हुआ।

वर्लिंग देश

इसी प्रकार सन 1981 में उडिया के प्रमुख उद्योगी पण्डा दम्पती न उडिया भाषा के साहित्यकारों के सम्मान और पुरस्कार के अवसर मुझे भुवनेश्वर बुलाया था। तब वहाँ के साहित्यकारों, पत्रकारों से परिचय और स्नेह प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वहाँ के प्राच्य वास्तु-संग्रहालय के क्यूरेटर श्री नीलमणि मिश्र ने मेरे मूकज्जी उपन्यास का हिन्दी में उडिया में अनुवाद किया था।

इन सब बातों की याद करते समय, तीन दशक पूर्व मुझे कलकत्ता प्रवास की बात याद आ रही है। राजपूतान के भावू पर्वत से असम के बराम ग्राम तक यात्रा की थी तब मैं कलकत्ता में नेशनल लाइब्रेरी के प्रमुख डा. केशवन् के घर ठहरा था। पहले व मैंसूर महाराजा कॉलेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक रह आया। जब मैं कलकत्ता गया तब वे नेशनल लाइब्रेरी के निदेशक पद पर थे। आगे भी उन्होंने हम क्षेत्र में बहुत काम किया और ख्याति अर्जित की है। कलकत्ता में हिन्दी

साहित्यकारों का दल मुझे अपनी समस्या में ले गया था। उन्होंने यह कहते हुए, कि आगे चलकर हिंदी भाषा सारे देश की भाषा बननी हो तो सब को उसे सीखना चाहिए, उसके लिए काम करना चाहिए मुझसे भी उम्र की अपेक्षा की। उन्होंने कहा, 'कार तजी आगे से राष्ट्रभाषा हिंदी में ही लिखेंगे।' तब मैंने कहा, "मुझसे ऐसी अपेक्षा बिल्कुल ही नहीं रखियेगा। मेरी मातृभाषा कन्नड़ है, मैं अपना सुख दुःख उसी में व्यक्त कर सकता हूँ।" यही प्रवृत्ति मैंने तेहरान में मुनेस्को सभा में प्रतिनिधि के रूप में आये डॉ. शर्मा में देखी थी। वे हिंदी भाषा के कट्टर अभिमानियों थे। यह बात नहीं कि मैंने हिंदी नहीं सीखी। जब मैं मंगलूर में विद्यार्थी था तब वहाँ के आय समाज के प्रचारक से हिंदी सीखी थी। वह मुझे बहुत आसान लगी थी। उसमें 'ऐसे' 'कैसे' आदि कुछ शब्द छोड़कर अन्य मारे शब्द संस्कृत के ही हैं। जो भी हो, वे वैदिक धर्म के प्रचारक स्वामी दयानंद के शिष्य थे न। संस्कृत शब्दों में हिंदी का प्रत्यय लगाकर उन्होंने अपनी भाषा का निमाण किया। शायद इसलिए महात्मा गांधी ने यह इच्छा प्रकट की थी कि हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा 'हिंदुस्तानी' होनी चाहिए। उसमें उर्दू और अरबी शब्दों का प्रयोग भी होता है। उनके समय के बाद उत्तरापथ में यह भावना जोर पकड़ने लगी कि समस्त भारत की भाषा हिंदी होनी चाहिए। पहले के प्रशासकों की भाषा को उखाड़ देने पर ही यह ही सकता है। इस विवाद में कन्नड़ वालों ने विशेष भाग नहीं लिया पर तमिलवाले तो कट्टर विरोधी बन गये। वह विरोध केवल हिंदी तक ही सीमित नहीं रहा, आर्यों द्वारा भारत में लायी संस्कृति तक को भी उखाड़कर फेंक देने का उनका प्रयास है। वे सब कुछ शुद्ध तमिल में ही कहना चाहते हैं। साथ ही उन्हें अल इण्डिया रेडियो ही पसंद है, आकाशवाणी शब्द सुनना ही नहीं चाहते।

खर, हमारे यहाँ लोगों का भाषा व्यामोह अद्भुत है। लगता है, प्रत्येक प्रांतवासी में यह भाव कूट-कूट कर भरा है कि वह अपनी क्षेत्रीय भाषा से ही सब कुछ साध सकता है। अपने भाषणों में भी हम वही रट लगाए जाते हैं। पर वायु रूप में उसे परिणत नहीं करते। लगता है, साहित्य को छोड़कर देसी भाषाओं में आधुनिक ज्ञान के क्षेत्र की हवा तक नहीं लगी। यदि वह प्रयत्न किया जाता तो भारत की आज की स्थिति में, हमारी योग्यता और हमारे परिश्रम से हमारी प्रांतिय भाषाएं अंग्रेजी का स्थान लेने में कितनी योग्य हो गयी होती! हम यह भी समझ आ जाती कि केवल अभिमान से ही जीवन नहीं जीया जा सकता, भले ही संस्कृत हो या तमिल, या तमिल मूल की अन्य भाषाएँ, वे सब इसी देश में जन्मी और विकसित हुई हैं। इन दोनों भाषाओं की जननी भारत में द्रविड़ों और आर्यों से आयी, यह तो सत्य है ही।

हिंदी राज्य मे

मध्य प्रदेश हिंदी भाषी प्रांत है। 1983 के आरम्भ मे जबलपुर विश्व विद्यालय ने अपने पच्चीस वष पूरे होने का समारोह आयोजित किया। उसमे उन्होंने गानपीठ पुरस्कार विजेता सात आठ साहित्यकारों को आमंत्रित कर उन्हें डाक्टरेट की उपाधि से सम्मानित किया। उसमे कन्ह भाषा वाला में भी था। गुजराती भाषी भाई उमाशंकर जोशी भी थे। बंगाली और असमी के साहित्यकार भी आमंत्रित थे। दिल्ली से पंजाबी कविपित्री और लेखिका अमता प्रीतम भी आयी थी। मैं समझता हूँ कि एक हिंदी क्षेत्र के विश्वविद्यालय ने दूसरी भाषा वाला को आमंत्रित कर सम्मानित किया जो एक बड़प्पन का लक्षण है। वहाँ चार पाँच दिन रहा और सब हिंदी सुनी। कुछ पल्ले पड़ी और कुछ नहीं भी पड़ी। मैं तो उनसे थैप्रेजी मे ही बात कर रहा था। उसे उन्होंने खूब पसंद भी किया। उसमे भाषा आड़े नहीं आयी।

जब तक जीयें

अविस्मरणीय

यह मेरे जीवन का अंतिम पहर होने से आधु, बुढ़ापा, मृत्यु की याद करने का समय तो है ही। ये यादें ही जीवन की विकृत इच्छाओं की सही लगाम होती हैं। बुढ़ापा आने पर भी मानव की अभिलाषाएँ, इच्छाएँ समाप्त नहीं होती हैं। और की इच्छा करने पर जो मिलता है उससे सतुष्ट न होने वाले जीव भी हैं, तप्त होन वाले जीव भी हैं।

डी वी गुण्डप्पा

मेरे जीवन में कुछ ऐसे लोग अवश्य आये हैं, जो मेरे जीवन के माग में सहायक हुए हैं, जिनसे मैंने प्रेरणा और स्नेह पाया है, सतुष्ट का अनुभव किया है। एक लोग मुझसे आधु में बड़े भी हैं और छोटे भी। यह लिखते समय हमसे सदा के लिए दूर हो गण कुछ लोगो को यहाँ स्मरण किया जा रहा है। उनमें वयावद्ध पानवद्ध श्री डी वी गुण्डप्पा एक हैं। उनके और मेरे दृष्टिकोण, अभिप्राय और आदर्शों में भले ही कितना ही अंतर क्यों न रहा हो, उनसे स्वतंत्र और प्रामाणिक जीवों को मैं कभी भूल नहीं सकता। उन्होंने मुझे जो स्नेह और आश्रय दिया, वह सदैव अविस्मरणीय रहेगा। मुझे आशा है कि जनता में प्रजातंत्र और ससृष्टि के तत्त्व को समझाने के लिए उनके द्वारा बनाया गया 'गोष्ठे विचार मंच' उनके आदर्शों को आगे भी जारी रखेगा।

दिनकर देसाई

भारत के महान व्यक्तियों में एक, श्री गोपालकृष्ण गोष्ठे के आदर्शों में आकर्षित होनेवाले उत्तर कानड जिले के दिनकर देसाई मेरे दूसरे एक मित्र थे। अपने जीवन के दिना में जब मैं उत्तर कानड जिले की शासनाया, कॉलेजों में धूम रहा था, मुझे उनका परिचय प्राप्त हुआ था। बाद में वे सर्वोच्च सोभायटी ऑफ 'इण्डिया' के सदस्य बन गये थे। उन्होंने उत्तर कानड जिले में आर्थिक और बौद्धिक विकास के लिए कई शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित कीं। वे आरम्भ से ही परिश्रम और

प्रामाणिकता से अपना काम चलाने आ रहे थे। अंतिम बार उनके दशन उन्ही के द्वारा स्थापित अकोने के 'गोखले कालेज' के परिसर में हुए। तब तक उनकी दह दुबल हो चुकी थी और दृष्टि भी मंद हो गयी थी। हम अपने जीवन के व्यंग्य को उनके चुटक सन्नेन में पढ़ सकते हैं। उत्तर कन्नड़ जिले में मदिगा तक चलने वाली उनके द्वारा स्थापित अनेक शैक्षणिक संस्थाएँ उनकी देन हैं।

अनन्तकृष्ण शर्मा

9405 / 3487

दिवंगत श्री अनन्तकृष्ण शर्मा मैसूर में रहते थे। मरे मन में उनकी याद चिरकाल तक रहेगी। वे संगीत और साहित्य के महान पण्डित थे। उस साहित्यकार में गव की गंध भी नहीं थी। वे बड़े साफ-सुधरे व्यक्ति थे। जब मैं अपने दश के पूर्वजों की शाननृपा, विद्वत्ता और सादगापूण जीवन को याद करता हूँ तब मेरी आँखों के सामने यह आदर्श व्यक्तित्व आकर खड़ा हो जाता है।

राजरत्नम्

आयु में मुझमें जरा छोट तथा अपनी कृतियाँ और माहसिक जीवन से आधुनिक व उच्च साहित्यकारों में अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व के थे श्री जी जी राजरत्नम्। वे निष्ठा, प्रामाणिकता और आत्मविश्वास की मूर्ति थे। बिना श्रम और चिंतन के वे कभी नुपचाप नहीं बैठते थे। उनके निधन पर उनकी याद में मैंने पत्रिका में एक लेख लिखा था। तब कर्नाटक के एक साहित्यकार ने मुझे एक पत्र लिखा था, 'आपके द्वारा ऐसे लोगों की प्रशंसा कुछ जची नहीं। उस आलोचक का मन कितना निम्नकोटि का है, यह इतने से ही स्पष्ट हो जाता है।

स्वामी जी जी एल

मुझमें काफी छोटे अपने विद्यार्थी जीवन से ही मेरे परिचित श्री डी जी जी के पुत्र जी जी एल स्वामीजी को मैंने अपनी आँखों के सामने बड़े होते देखा। अपने प्रिय विषय संस्य शास्त्र के बारे में उन्होंने पर्याप्त अनुसंधान किया था। उस शास्त्र की नीरस कट्टर पढ़नेवाला को मैं "अरे, आपको उममें रस दिखायी नहीं देता?" कहते थे। उनका मन भी बसा ही उदार था। ऐसे अच्छे व्यवहार और स्नेहशील व्यक्ति का जीवन अपने छोटे श्रम में ही समाप्त हो गया यह देख कर मुझे अत्यंत दुःख हुआ।

सजीवराय

यस ही मेरे परिचित बहुत कम हैं जिनके बारे में मुझे याद रखने के निधन

358 / पगसे मन के दस्त चहरे

है। उनमें मूडबिंदी के श्री सजीवराय एक थे, जो आयु म मूलसे छोटे थे। वे पण्डित या साहित्यकार नहीं थे एकदम सामान्य व्यक्ति थे जो बम्बई के क नड वाला म घुलमिल गये थे। परंतु उनके समान उदारता, परोपकार और त्याग बहुत कम लोगो में पाया जाता है। मूडबिंदी के लोग उन्हें जानते हैं। मेरे प्रति उन्होंने जो विश्वास और गौरव दिखाया तथा मेरे कार्यों में उन्होंने जो सहयोग दिया वह बड़ा महत्त्वपूर्ण था। इस दृष्टि से मैं उन्हें दिवंगत मोलवलि शिवराय की पक्ति में रखता हूँ।

ये सभी महानुभाव एक एक दृष्टि से हमारे जीवन के आदर्श बन सकते हैं। वे अब नहीं हैं, हम भी नहीं रहेंगे। शेष रह जाता है केवल जीवन का प्रवाह। उस प्रवाह में भँवर में फँसे हम लोगो को अपना जीवन सुधारने में ऐसे महापुरुषों के जीवन सहायक हो सकते हैं।

कभी समाप्त न होनेवाला काम

तीसरे दशक से ही मैं रगमच से प्रभावित होकर कई प्रकार के प्रयोग करता आ रहा हूँ। इसका मुख्य कारण इसका आकर्षण है। उसकी सभावनाओं और असभावनाओं को समझने का प्रयास किया। प्रयोग से कितनी साध्यताएँ और असाध्यताएँ हो सकती हैं यह बात समय में आ सकती है। वही एकमात्र उद्देश्य नहीं रहा। नाटक ही साहित्य का उद्देश्य नहीं है। जीवन के अनुभवों, प्रेरणाओं को नाटकों के द्वारा व्यक्त करना ही उसका उद्देश्य होता है। यह जीवन चिरंतन रूप से चलानेवाली एक शक्ति है। अतः उसका हर स्थान पर और हमेशा एक जैसा अपरिवर्तनीय होकर रहना संभव नहीं है। जीवन के रूप, प्रेरणाएँ प्रत्येक जन समुदाय में, प्रत्येक काल में, अपनी परम्पराओं को लेकर चलने पर भी तत्कालीन प्रेरणा, आघात, दृष्टि अभिरूचियों में परिवर्तन आते रहते हैं। विभिन्न माध्यमों से युक्त रगमच उसका अपवाद नहीं हो सकता।

पुराने समय से लेकर अब तक आये सम्प्रदाय चाहे कितने ही नियमों में क्या न बंधे हो आजकल के लोगों की मनोलहरियाँ हमारे जीवन और अभिलक्षणों पर अपनी-अपनी छाप अवश्य डालती हैं। उनसे परम्परा का विकास हो सकता है। आज के लागू पुराने अर्थों का घटा सकते हैं, उद्देश्यपूर्वक उन्हें बनल सकते हैं। बिना उद्देश्य केवल जनरजन के लिए, नवीनता की चपलता के लिए, इधर-उधर दिखायी देनेवाली एकाग्र चीज में परिवर्तन लाने के सपने देखने में वे ठीक न बैठकर विवृत भी हो सकते हैं।

यक्षगान परम्परा

समय परिवर्तन के साथ, मेरे मन को आकर्षित करनेवाला यक्षगान सम्प्रदाय

इसी प्रकार का था। सम्प्रदाय ने हमें क्या क्या दिया यह जानने का प्रयत्न मैं सदा करता रहता हूँ। कला से हमें प्राप्त पारम्परिक वेशभूषाएँ, संगीत, नृत्य के अथवा कौन कौन से हैं यह जानना पहला काम है। पहले से चली आयी सम्पत्ति को यदि हम खो दें तो आज के सभापण के लिए आवश्यक सारे शब्दों की नयी दृष्टि से सृष्टि करना हमारे लिए संभव नहीं होगा न। इसलिए हमारा इस यक्षगान सम्प्रदाय के पारम्परिक नृत्यों को, उनकी पद्धतियों का संगीत से सम्बन्धित सारे राग और तालों को सीख कर उन्हें सुरक्षित बनाये रखना हमारा परम कर्तव्य होना चाहिए। यह रगमच की अथवा वाता से यानी वेश, अलंकार, मुखसज्जा आदि से भी सम्बन्धित काम है। इसीलिए उड़ुपि में महात्मा गाँधी कॉलेज के आध्यय में एक यक्षगान केन्द्र स्थापित करके विद्यार्थियों को पारम्परिक प्रशिक्षण देना शुरू किया गया है। उसका भार श्री हरिदास भट्ट और श्री प्रभाकर जैसे मित्रों ने सभाला है।

परम्परा का सद्व्योग और कठिनाईयाँ

पुरानी परम्परा के कई अंश नष्ट हो चुके हैं फिर भी कुछ तालें तो अभी भी सुरक्षित हैं। रागों में कई प्रयोग नही आते। उन्हें दूढ़कर प्रयोग में लाना चाहिए। वेश और अलंकारों की पद्धति में भी इस शताब्दी के आरम्भ से ही स्त्री वेश में जन सामान्य की वेशभूषा का अनुसरण करते देखा है। मैंने उन कर्मियों को पूरा करने का काम भी किया।

परन्तु परम्परागत कथानकों को रगमच पर लाने पर हमारी पारम्परिक नृत्य-सपदा, गीत-सपदा, वेश-सपदा से हमारा काम चल जाएगा, यह सोचने की बात है। भावाभिव्यक्ति के लिए अभिनय में भी कर्मियाँ हैं। मुख भागिमाओं की कर्मियाँ हैं। गाने में, नृत्य में, भावाभिव्यक्ति और उनमें भी सम्बन्ध है, इस ओर ध्यान दिये बिना ही हम सम्प्रदाय का विकास कर रहे हैं? ऐसी कर्मियों को दूर करने का प्रयत्न मैं बहुत समय से करता आ रहा हूँ। मैंने यह भी अनुभव किया कि प्रयास करते रहने पर इस दिशा में सफलता भी मिल सकती है।

एक की सीमा

चित्र, साहित्य, कला के समान यह एक व्यक्ति से पूरा होनेवाला काम नहीं है। गान और नृत्य के लिए दूसरों की सहायता चाहिए ही। वेशभूषा, मुख-सज्जा के बारे में किसी-न किसी निरक्षर पर पहुँचकर, पात्रों के अनुकूल वेशभूषा तैयार करके उपलब्ध करायी जा सकती है की भी है। वाद्यों के काम ऐसे काम से जुड़े लागे को ही समझ कर करने पड़ते हैं। ऐसे समझने-समझाने का काम तो मैं अपने

इसी प्रकार का था। सम्प्रदाय ने हमें क्या क्या दिया यह जानने का प्रयत्न मैं सदा करता रहता हूँ। कला से हमें प्राप्त पारम्परिक वेशभूषाएँ, संगीत, नृत्य के अंश कौन कौन स हैं यह जानना पहला काम है। पहले से चली आयी सम्पत्ति को यदि हम खा दें तो आज के सभापण के लिए आवश्यक सारे शब्दों की नयी दृष्टि से सृष्टि करना हमारे लिए संभव नहीं होगा न ! इसलिए हमारे इस यक्षगान सम्प्रदाय के पारम्परिक नृत्यों का, उनकी पद्धतियों को संगीत से सम्बन्धित सारे राग और तालों को सीख कर उन्हें सुरक्षित बनाये रखना हमारा परम कर्तव्य होना चाहिए। यह रगमच की अर्थ वाता से यानी वेश, अलंकार, मुखसज्जा आदि से भी सम्बन्धित काम है। इसलिए उड़ुपि में महात्मा गाँधी कॉलेज के आध्यक्ष में एक यक्षगान केन्द्र स्थापित करके विद्यार्थियों को पारम्परिक प्रशिक्षण देना शुरू किया गया है। उसका भार श्री हरिदास भट्ट और श्री प्रभाकर जैसे मित्रों ने सभाला है।

परम्परा का सद्व्योग और कठिनाईयाँ

पुरानी परम्परा के कई अंश नष्ट हो चुके हैं, फिर भी कुछ तालें तो अभी भी सुरक्षित हैं। रागों में कई प्रयोग नहीं आते। उन्हें बूढ़कर प्रयोग में लाना चाहिए। वेश और अलंकारों की पद्धति में भी इस शताब्दी के आरम्भ से ही स्त्री वंश में जन सामान्य की वेशभूषा का अनुसरण करते देखा है। मैं उन कमियों को पूरा करने का काम भी किया।

परंतु परम्परागत कथानकों के रगमच पर लाने पर हमारी पारम्परिक नृत्य-सपदा, गीत-सपदा, वेश-सपदा से हमारा काम चल जाएगा, यह सोचने की बात है। भावाभिव्यक्ति के लिए अभिनय में भी कमियाँ हैं। मुख भंगिमाओं की कमियाँ हैं। गाने में नृत्य में, भावाभिव्यक्ति और उनमें भी सम्बन्ध है, इस आरंभ के दिनों में ही हम सम्प्रदाय का विकास कर रहे हैं? ऐसी कमियों को दूर करने का प्रयत्न मैं बहुत समय से करता आ रहा हूँ। मैं यह भी अनुभव किया कि प्रयास करते रहने पर इस दिशा में सफलता भी मिल सकती है।

एक की सीमा

चित्र, साहित्य, कला के समान यह एक व्यक्ति से पूरा होनेवाला काम नहीं है। गान और नृत्य के लिए दूसरों की सहायता चाहिए ही। वेशभूषा, मुख-सज्जा के बारे में किसी-न किसी निरक्षर पर पहुँचकर, पात्रों के अनुकूल वेशभूषा तैयार करके उपलब्ध करायी जा सकती है, की भी है। वाक्यों के काम ऐसे काम से जुड़ना ही संभव कर करने पड़ते हैं। ऐसे समझने समझाने का काम तो मैं अपने

जीवन में कर ही सकता हूँ।

कुछ वय पूव 'यूजीलैण्ड' के एक कलाप्रेमी श्री बेन रे हमारे घर आय थे। तब उ होने पूछा था, "आप के बाद क्या होगा?" मैंने जवाब दिया था, "मुझे अपना कतव्य पूरा करना है।" अलग अलग ढंग स मेर कतव्य को दिखाते चले आने पर भी, कम से कम एकाध को यह काम समझकर इसे बढ़ाने के लिए आगे आना नही चाहिए? यक्षगान कला के बारे में केवल प्रेम या यक्षज्ञान अभिमान दिखा देने से काम चल जाएगा? सम्प्रदाय से आप कितने बढ है? क्यों बढ है? उसे छोड रहे है तो क्यों? यदि उसे और भी सुंदर किया जा सकता है तो क्यों नही किया जाता है? ऐसे प्रश्ना का उत्तर उस क्षेत्र में काम करनेवाले भागदशक न दें तो कैसे काम चलेगा? इस माध्यम की सर्वांगीण साध्यताओं को देखकर और जान लेने के बाद भी कि कानड भापा से अपरिचित दूसरे लागो को भी यह प्रिय हो सकता है, बच्चे छुच को सभालकर आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी कौन लेने को तयार होगा? यह ध्यान आने से लगता है कि जो काम मैं करता चला आ रहा हूँ, मेरे बाद वह आगे नही बढ पायगा। वह केवल भक्ति और विश्वास से बढ जाने वाली चीज नही, वह माध्यम, परिचय और ज्ञान से ही आगे बढ सकता है। यह सब ध्यान म आने पर बडी निराशा होती है। किसी भी माध्यम की सभावनाओं को समझने तक उसके जानने का कौतूहल ही हम दबाए रखता है। उसके आगे के विकास के प्रति तो मुझ से छोटा को उसमें अपनी अभिरुचि दिखानी चाहिए। वह रुचि केवल प्रदर्शन भर को उही होनी चाहिए, उसमें कला माध्यम से सतृप्ति लानवाली लगन होनी चाहिए। बाहर की दुनिया उस मा यता द या न द हम उससे तृप्ति मिलनी चाहिए। यह सकल्प, विश्वास और साधना होनी चाहिए तभी कुछ सम्भव है।

उपयोगी जीवन

मैंने जीवन के कल की यानी परलाक की चिंता नही की। आत्मा, भाग्य या परलोक पर विश्वास रखकर इस ससार की अवहेलना नही की, करूंगा भी नही। इहलोक ही मेरी साधनाओं की रगभूमि है। इस इह म मैं अपने चारा ओर की प्रकृति को, उसमें जीनेवाले समस्त जीवों को देखते हुए अपने जीवन से जो सम्बन्धित हूँ उह ओर भी अधिक आत्मभाव से देखने का प्रयत्न करता हूँ। यह मुझ अवन स कभी पूरा होनेवाला काय नही। ऐसे सम्बन्ध को मैं वचानिका के विचारा को पढ़कर समझने का प्रयास करता चला आ रहा हूँ। क्याकि निसर्ग और जीव का सम्बन्ध बहुत पुराना है। वह अगली पीढ़िया स भी सम्बन्धित है ऐसा समझकर हम अपना जीवन जीना चाहिए।

मनुष्य होने के नाते अपने चारा ओर के परिवर्तनशील व्यक्तित्वा के समाज

के साथ मुझे भी जीना है। ऐसे सामाजिक चाल चलन, विश्वास व व्यवहारों में मात्र किसी व्यक्ति विशेष का हित नहीं होता है। उसका साथ तो सभी का हित-अहित जुड़ा होता है। कल के लोगों के सामूहिक व्यवहार का परिणाम आज हम भोगना पड़ता है। हमारा आज का सामूहिक व्यवहार आनेवाले कल के लोगों को प्रभावित करेगा ही। कमफल अबले जीव का हिसाब किताब नहीं है, वह तो सामूहिक जीवन का हिसाब किताब है। उनमें हमारा कत्तव्य कितना है यह समझ कर व्यवहार करना हमारा काम है।

मनुष्य केवल अयमक्षी प्राणी नहीं है, वह बुद्धिजीवी भी है। उसे अपने सामूहिक जीवन में ऐसा व्यवहार करना चाहिए ताकि अपने और अपने चारों ओर के लोगों का हित हो। उसमें मरना हिस्सा मरने शक्ति का समर्पण भाव है—ऐसी दृष्टि से प्रयत्न करते हुए जीने का प्रयास करना पर्याप्त नहीं। ब्रह्माण्ड जन्म लेते हैं मिट जाते हैं। जब तक शरीर में चेतन है तब तक वह काम करे तो काम पर्याप्त नहीं होगा। ब्रह्माण्ड पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं, सागर, पर्वत पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। उनमें रहनेवाले जीवों का भला क्या महत्त्व है? चिरजीवी होने की इच्छा जसी बड़ी और मूर्खता नहीं। यदि ऐसी सम्भावना की कल्पना करें भी तो कोई पूछे 'इतने समय तक क्या करेंगे?' तो उसके उत्तर देने की शक्ति भी तो चाहिए। हम सीमित आयुवाले हैं। अपने व्यवहार ज्ञान से जब हम सही उत्तर नहीं दे सकते हैं तो हम किस सद्गति कह सकते हैं?





डॉ० के० गिवराम कारन्त

जन्म 10 अक्टूबर 1902, दक्षिण बनारा (कर्नाटक) के एक गाँव कोट में।

प्रारम्भिक शिक्षा कोट में ही, माध्यमिक कुन्दापुर में और उच्च शिक्षा बंगलौर में। गवर्नमेंट कॉलेज बंगलौर में प्रथम वर्ष की पढ़ाई चल ही रही थी कि 1922 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक के रूप में अमृतयोग आन्दोलन में बूढ़े पड़े। 1925-26 में बनारस मासिक 'वसु' में, तदुपरान्त एक अन्य पत्रिका 'विचारवाणी' का सम्पादन।

45 से भी अधिक उपवास और 40 नाटकों के लेखक। अनगनेक लेख भी। वात-ज्ञानयोग का तीन भागों में लेखन प्रकाशन। चार भागों में विज्ञान विश्वकोश। अनेक-सम्मरण और कला-समीक्षाएँ।

अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा मानद उपाधियाँ से सम्मानित। मशगल के सूत्रीयत में विविष्ट योगदान। व्यापक विवेक प्रमण।

1958 में साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1960 में स्वीडन अकादमी का साहस्य-पुरस्कार और 1977 में भारत के सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार— पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित।